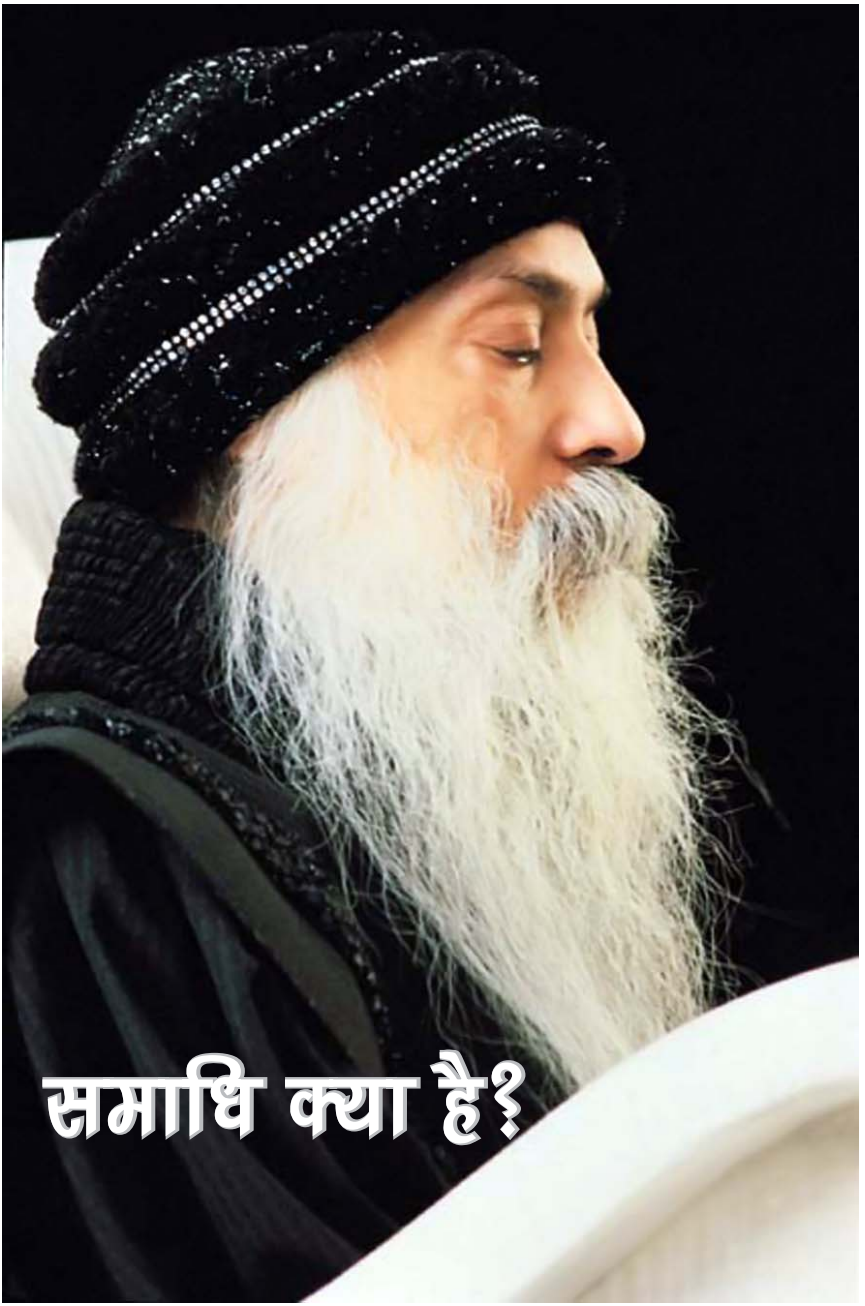

समाधि क्या है?

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिलाः सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org
www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565,+91-7988969660
+91-7015800931

विषय अनुक्रमांक

पेज	विषय
005	पतंजलि : अध्यात्म के आइंस्टाइन
010	सूत्र–1 अथ योग अनुशासनम्
015	सूत्र–2 योग क्या है
020	सूत्र–3 कैसे हो स्वयं का बोध
025	सूत्र–4 चैतन्य : भेड़ों में खो गया शेर
030	सूत्र–5 पाँच प्रकार की वृत्तियां
035	सूत्र–6 जीवन–रथ की सारथी वृत्तियां
039	सूत्र–7 सम्यक ज्ञान के तीन स्त्रोत
043	सूत्र–8 विपर्यय क्या है
048	सूत्र–9 शब्दों से न चिपकें
053	सूत्र–10 सुषुप्ति : स्वप्नरहित निद्रा
057	सूत्र–11 स्मृतियों के लोक में
062	सूत्र–12 वृत्तियों का निरोध कैसे हो
067	सूत्र–13 आत्मस्मरण में कैसे जियें
072	सूत्र–14 सफलता की कुंजी
077	सूत्र–15 परम–वैराग्य क्या है
081	सूत्र–16 तृष्णा कैसे मिटे
085	सूत्र–17 संप्रज्ञात समाधि
090	सूत्र–18 असंप्रज्ञात समाधि
094	सूत्र–19 विदेही के लिए सहज समाधि
098	सूत्र–20 समाधि प्राप्ति के अन्य उपाय
103	सूत्र–21 सच्ची लगन से प्रभु मिलन
108	सूत्र–22 समाधि के मापदंड
113	सूत्र–23 ओंकार है समाधि का द्वार
118	सूत्र–24 कौन व्यक्ति है ईश्वर
122	सूत्र–25 सर्वज्ञता का बीज कहां है
127	सूत्र–26 गुरु देह में ईश्वर
132	सूत्र–27 ओंकार ही ईश्वर
137	सूत्र–28 प्रणव की भावना में डूबो
142	सूत्र–29 ओंकार सुमिरन की महत्ता

पेज	विषय
146	सूत्र–30 मार्ग में चार मुख्य बाधाएँ
151	सूत्र–31 बाधाओं को दूर कैसे करें
155	सूत्र–32 सब रोगों की एक दवा
160	सूत्र–33 आनंद के लिए चार बातें
165	सूत्र–34 श्वास : अद्भुत कीमिया
170	सूत्र–35 अतींद्रिय अनुभवों का जगत
175	सूत्र–36 दुःखों का अंत कहाँ
180	सूत्र–37 वीतरागियों का संग
185	सूत्र–38 बोधपूर्वक निद्रा में प्रवेश
190	सूत्र–39 जो तुमको हो पसंद...
195	सूत्र–40 अतिसूक्ष्म से अपरिसीम तक
200	सूत्र–41 मणि समान निर्मल मन
205	सूत्र–42 सवितर्क समाधि
210	सूत्र–43 निर्वितर्क समाधि
215	सूत्र–44 सविचार व निर्विचार दशा
219	सूत्र–45 आंतरिक गहराई में पदार्पण
224	सूत्र–46 सबीज समाधि
228	सूत्र–47 निर्विचार समाधि
233	सूत्र–48 ऋतम्भरा प्रज्ञा
237	सूत्र–49 विराट सत्य : इंद्रियों से परे
242	सूत्र–50 ऋतंभरा काटे सब संस्कार
247	सूत्र–51 ऋतंभरा को भी अलविदा
251	समाधि पाद : एक पुनरावलोकन
258	विभूति पाद सूत्र–1 धारणा
263	विभूति पाद सूत्र–2 ध्यान
269	विभूति पाद सूत्र–3 समाधि
274	विभूति पाद पर विहंगम दृष्टि
283	कैवल्य पाद पर विहंगम दृष्टि
289	प्रथम प्रश्नोत्तर प्रवचन
295	अंतिम प्रश्नोत्तर प्रवचन

पतंजलि : अध्यात्म के आइंस्टाइन

गीत

बीमार अगर खोज ले लुक़मान–सा हकीम, है एक दवा काफ़ी आरोग के लिए।
राहों में न उलझो चलने से पहले, है एक राह काफ़ी उपयोग के लिए।
मिल जाए रहबरों का संबुद्ध संघ कोई, है एक क़दम काफ़ी संबोधि के लिए।
भूलों की भूल–भुलैया में न भूलो, है एक भूल काफ़ी अभियोग के लिए।
सारी उम्र लिखते रहो विरह की ग़ज़ल, है एक रात काफ़ी संयोग के लिए।
आसमां के लाखों तारों का ज़िक्र क्या, है एक दीप काफ़ी आलोक के लिए।
एक बोध काफ़ी है योग के लिए, एक सूत्र काफ़ी है खोज के लिए।

प्रश्नः आज औरंगाबाद के 'स्वामी योगानंद सरस्वती' ने एक सवाल पूछा है कि महर्षि पतंजलि के विषय में मुझे ग़लतफ़हमी थी कि वे अत्यंत कठिन, क्लिष्ट, गंभीर, व हठी क़िस्म के दार्शनिक हैं। प्रसिद्ध योगियों की नीरस व्याख्याएँ पढ़कर योग में मेरा रस ही समाप्त हो गया था। मेरे एक मित्र ने ओशो की प्रवचनमाला 'योगाः दि अल्फ़ा एंड दि ओमेगा' की कैसेट सुनाकर मेरी इस भ्रांति को तोड़ा। परमगुरु ओशो ने 'पातंजलयोगप्रदीप' को अतिसरल, मधुर, ग़ैर–गंभीर एवं वैज्ञानिक ढंग से समझाकर जगत पर अपनी करुणा बरसाई। आचार्य जी, आपसे विनम्र निवेदन है कि हिंदीभाषी श्रोताओं तक इस संबंध में ओशो का संदेश पहुंचाने की अनुकंपा करें। संयोगवश ओशो ने संन्यास–दीक्षा देते हुए मेरा नया नामकरण किया– स्वामी योगानंद सरस्वती। कृपया इस नाम का महत्त्व भी समझाएँ।

निश्चित रूप से योग के संबंध में जो आम धारणाएँ हैं; बड़ी जटिल एवं गंभीर हैं। योग पर व्याख्यायें और टीकाएँ लिखने वाले लोग उसे मूल किताब से भी ज़्यादा गंभीर बना देते हैं। उन्हें अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करना होता है, अपना ज्ञान बघारना होता है, पंडिताई दिखानी होती है। जिनके लिए किताब लिख रहे हैं; वे तो उनके ख़्याल में ही नहीं होते। पतंजलि के ऊपर अनेक शास्त्र लिखे गए हैं।

सबसे पहला भाष्य 'व्यास' ने लिखा जो बहुत कठिन है; फिर उसकी व्याख्या वाचस्पति मिश्र ने की। ये दो व्याख्यायें अतिप्रसिद्ध हैं। पतंजलि पर विज्ञान–भिक्षु और गणेश भट्ट की टीकाएँ भी बहुत प्रसिद्ध हुईं। लेकिन वे भी अत्यंत जटिल और दुरूह हैं। उनको समझना शायद मूलग्रंथ को समझने से भी ज़्यादा कठिन है। ओशो का भाष्य ऐसा समझो जैसे पतंजलि ही अपने बारे में बोलें। 'योगाः दि एल्फा एंड दि ओमेगा' में ओशो ने अंग्रेज़ी में सौ प्रवचन दिए और सारे विश्व को पतंजलि से परिचित कराया। हिंदी में इसका अनुवाद हुआ है 'पतंजलि योग सूत्र' के नाम से पाँच अध्यायों में बीस–बीस प्रवचन प्रकाशित हुए हैं।

पतंजलि के बारे में विभिन्न मान्यताएँ है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि वे महावीर और बुद्ध के क़रीब चार सौ वर्ष बाद पैदा हुए। एक दूसरी मान्यता है कि पतंजलि अत्यंत प्राचीन हैं। सांख्य के आदिवक्ता 'कपिल मुनि' व योग के आदि–आचार्य हिरण्यगर्भ के पश्चात, रामायण, महाभारत व ब्रह्मसूत्र के बहुत पहले पतंजलि हुए हैं। एक मान्यता यह भी है कि शायद पाणिनी–व्याकरण और चरक–संहिता के रचयिता भी वे ही रहे हैं। व्यास, वाचस्पति मिश्र, विज्ञान भिक्षु, गणेश भट्ट के भाष्य प्रसिद्ध हैं; तथापि ओशो का भाष्य सुगमतम है एवं विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवादित हो चुका है।

ओशो ने अपनी प्रवचनमाला में इन बातों का उल्लेख ही नहीं किया। वे कहते हैं– पतंजलि जैसे विरले लोगों को समयातीत जानो। भारत में इतिहास लिखने की प्रथा नहीं रही। पतंजलि कौन थे, उनके पिता का नाम क्या था, किस स्कूल में जन्मे, किस साल में उनकी मृत्यु हुई? ये बातें गौण हैं। पतंजलि जैसी चेतनाएँ कालातीत हैं, समयातीत है, दिशातीत हैं। वे किसी देश और काल के बंधन में नहीं होते, इसलिए इन व्यर्थ की बातों का कोई मूल्य नहीं। विद्वान इन्हीं बातों पर विवाद करते रहते हैं। ये व्यर्थ की बातें हैं; असली बाते हैं, जो पतंजलि ने कही हैं। वे कब पैदा हुए, यह बात गौण है; लेकिन अक्सर लोग भूल जाते हैं। अभी गीत सुन रहे थे न–

'भूलों की भूल–भुलैया में न भूलो, है एक भूल काफ़ी अभियोग के लिए।'
आसमां के लाखों तारों का ज़िक्र क्या, है एक दीप काफ़ी आलोक के लिए।
एक बोध काफ़ी है योग के लिए, एक सूत्र काफ़ी है खोज के लिए।

'एक सूत्र' हमारे भीतर का बोध है। पतंजलि उसी बोध को, साक्षीभाव को जगाने का प्रयास करेंगे। उस 'एक सूत्र' को भूल मत जाना।

'बीमार अगर खोज ले लुक़मान–सा हकीम, है एक दवा काफ़ी आरोग के लिए।'

पतंजलि वही लुक़मान हैं, जिन्होंने वह एक दवा खोज ली, जिससे आरोग्य घटित हो सकता है। उसका नाम ही उन्होंने योग रखा है; 'योग' अर्थात 'समाधि'। हमारा मन, हमारा चित्त व्याधि है और उसका समाधान है समाधि। वही है–

'है एक दवा काफ़ी आरोग के लिए।'

राहों में न उलझो चलने से पहले, है एक राह काफ़ी उपयोग के लिए।
मिल जाए रहबरों का संबुद्ध संघ कोई, है एक क़दम काफ़ी संबोधि के लिए।

पतंजलि के इस ग्रंथ के चार हिस्से हैं, जिन्हें पाद कहा जाता है पाद यानी पैर; जैसे चौपाया जानवर चार हाथ–पैरों से चलता है, ठीक वैसे ही पतंजलि का यह योगप्रदीप चार पादों में विभाजित है– समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। समाधिपाद में 51, साधनपाद में 55, विभूतिपाद में 55, कैवल्यपाद में 34; कुल 195 सूत्र हैं।

हर एक सूत्र अपने आप में पूर्ण है। हम एक सूत्र को भी ठीक से अपने जीवन में उतार लें, तो बाक़ी के एक सौ चौरानबे उसके साथ जुड़े चले आएंगे। साधनों के अनुसार योग के कई भेद किये गए हैं जैसे–1. कर्मयोग या निष्काम–कर्म, अनासक्तियोग 2. तंत्रयोग 3. हठ या कुंडलिनीयोग 4. भक्तियोग 5. मनोयोग या मंत्रयोग अथवा ज्ञानयोग 6. राजयोग या ध्यानयोग 7. सांख्ययोग।

इस विभाजन में सांख्य भी योग का एक हिस्सा हो जाता है। कपिल मुनि जो सांख्य के प्रवर्तक हैं; केवल वही सांख्य यानी सर्वोपरी हिस्से की बात करते हैं। नीचे के हिस्सों की बात छोड़ देते हैं। विशेष मंज़िल की बात करते हैं, मार्ग की नहीं। पतंजलि वैज्ञानिक हैं। वे पूरे मार्ग की बात करते हैं।

याद रखना, पतंजलि हिंदू नहीं हैं। यह संयोग की बात है कि वे हिंदू परिवार में पैदा हुए होंगे। जो योग उन्होंने खोजा है, वह किसी धर्म या संप्रदाय से संबंधित नहीं है। वह अपने आप में शुद्ध विज्ञान है। जैसे फ़िज़िक्स ईसाईयों ने खोजी, इसलिए फ़िज़िक्स ईसाई नहीं हो जाती; ठीक वैसे ही योग भी हिंदू नहीं है। उसका कोई दर्शनशास्त्र, उसकी कोई फ़िलॉसफ़ि, उसकी कोई मान्यता नहीं है। वह विश्वासों पर आधारित नहीं; बल्कि प्रयोग पर आधारित है। विज्ञान की प्रयोगशाला बाहर होती है; योग की प्रयोगशाला हमारी स्वयं की अंतर्चेतना है। विश्वास तो वस्त्रों की भाँति बदले जा सकते हैं। एक हिंदू रूपांतरित होकर ईसाई बन जाता है अथवा एक ईसाई मुसलमान बन जाता है। विश्वास बदले जा सकते हैं; विज्ञान नहीं बदला जाता। विज्ञान तो जीवन के सत्य की खोज है। योग आत्मरूपांतरण का विज्ञान है।

लेकिन याद रखना! योग के इस पथ पर जो सबसे बड़ी बाधा है– वह है हमारा स्वयं का अहंकार। अपना अहंकार काटना होगा, अपने अहं को मिटाना होगा; तभी 'ब्रह्म' का ज्ञान होता है। अहं से वियोग हो, तो परमात्मा से योग हो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन कॉफ़ी हाऊस में बैठा था। गाँव में एक सैनिक आया हुआ है। वह कॉफ़ी हाउस में बैठकर अपनी बहादुरी की बहुत बातें कर रहा है। वह कह रहा है कि मैंने इतने सिर काट दिये... इतने सिर काट दिये। मुल्ला बहुत देर सुनता रहा। उसने कहा,'दिस इज़ नथिंग।' यह कुछ भी नहीं है! एक दफ़ा मैं भी युद्ध में गया था, मैंने ना–मालूम कितने लोगों के पैर काट दिए!

उस योद्धा ने कहा कि महाशय, अच्छा होता यदि आप सिर काटते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सिर तो कोई पहले ही काट चुका था। न मालूम कितनों के पैर काटकर हम घर आ गए, कोई ज़रा–सी खरोंच तक नहीं लगी। तुम तो काफ़ी पिटे–कुटे मालूम होते हो।

दूसरे की गर्दन काटने में वीरता चाहिए। उससे भी बड़ी वीरता चाहिए–स्वयं की गर्दन काटने में, अपना अहंकार उतारने में। इसलिए तो 'महावीर' को 'महावीर' कहते हैं। 'महावीर' उनका नाम नहीं था, नाम तो था 'वर्धमान'। लेकिन अपना सिर उतार सकें, इससे बड़ी वीरता कोई और नहीं होती।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने क्लब के बाहर निकल रहा है। एक आदमी क्लॉकरूम से एक कोट को पहनने की कोशिश कर रहा है। मुल्ला उससे कहता है कि आप बड़े ग़लत आदमी हैं। उसने कहा–'मैंने तो कुछ किया ही नहीं! मैं तो अपना कोट पहन रहा हूँ।' मुल्ला ने कहा–'इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि आप ग़लत आदमी हैं। यह कोट मुल्ला नसरुद्दीन का है।' उस आदमी ने जानना चाहा कि यह मुल्ला नसरुद्दीन कौन है?

मुल्ला ने कहा–'यह मुल्ला नसरुद्दीन मैं हूँ, आप मेरा कोट पहन रहे हैं।'

उस आदमी ने झुंझलाकर कहा कि नासमझ! ऐसा क्यों नहीं कहता कि मैं ग़लत कोट पहन रहा हूँ। ऐसा क्यों कहता है कि मैं ग़लत आदमी हूँ?

मुल्ला ने कहा– ग़लत आदमी ही ग़लत कोट पहनते हैं।

जब आप कोई ग़लत काम करते हैं, तो आप चाहते हैं कि कोई ज़्यादा से ज़्यादा इतना कहे कि आपसे ग़लत काम हो गया। वह यह न कहे कि आप ग़लत आदमी हैं, क्योंकि काम की तो बड़ी छोटी सीमा है, एक क्षण में निपट जाएगा। 'आप!' आप तो पूरे जीवन पर आरोपित है। अगर कोई कहे– 'आप ग़लत हैं,' तो यह जीवनभर के लिए निंदा हो गई। अगर कर्म ग़लत है, एक क्षण की बात है, इसके विपरीत कर्म किया जा सकता है। किए को अनकिया किया जा सकता है, डन को अनडन किया जा सकता है, किए के लिए माफ़ी मांगी जा सकती है, किए के विपरीत किया जा सकता है। कर्म के ऊपर दोष देने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वही आदमी प्रायश्चित को उपलब्ध होता है, जो कहता है–'मैं ग़लत आदमी हूँ।'... लेकिन तब प्राणों में बड़ा मंथन होता है।

'मैं आदमी ही ग़लत हूँ'–यह मानना तो बड़ा कठिन है... अत्यंत दुष्कर है। कर्म ग़लत है तो सुधारा जा सकता है। भूल–चूक हो गई, तो क्षमा मांगी जा सकती है। चाहे कुछ हो, वास्तव में पतंजलि के साथ अगर चलना हो, तो पहले बिंदु पर ही इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लो कि हम आदमी ही ग़लत हैं– जैसे हम हैं... वैसे योग के मार्ग पर न चल सकेंगे। पतंजलि के संबंध में बोलते हुए ओशो ने कहा है–'पतंजलि अत्यंत विरल... बेजोड़ हैं।'

पतंजलि अत्यंत विरल व्यक्ति हैं। वे बुद्ध, कृष्ण और जीज़स की भाँति प्रबुद्ध हैं।

महावीर, मोहम्मद और ज़रथुस्त्र की भाँति। लेकिन एक ढंग से अलग हैं...। बुद्ध, कृष्ण, जीज़स, महावीर, मोहम्मद और ज़रथुस्त्र– इनमें से किसी का भी दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं है। वे सब महान धर्म–प्रवर्तक हैं। निस्संदेह उन्होंने मानव–मन और उसकी संरचना को बिल्कुल बदल दिया, लेकिन उनकी पहुँच वैज्ञानिक नहीं है।

पतंजलि बुद्ध पुरुषों की दुनिया के आइंस्टाइन हैं। वे अद्‌भुत घटना हैं। वे सरलता से आइंस्टाइन, बोर, मैक्स प्लांक या हेसनबर्ग की तरह नोबेल पुरस्कार विजेता हो सकते थे। उनकी अभिवृत्ति और दृष्टि वही है, जो किसी परिशुद्ध वैज्ञानिक मन की होती है। कृष्ण कवि हैं; पतंजलि कवि नहीं हैं। पतंजलि महावीर की तरह नैतिकवादी भी नहीं हैं। पतंजलि बुनियादी तौर पर एक वैज्ञानिक हैं, जो नियमों की भाषा में ही सोचते–विचारते हैं। उन्होंने मनुष्य के अंतर्जगत के निरपेक्ष नियमों का निगमन करके सत्य और मानवीय मानस की चरम कार्य–प्रणाली के विस्तार का अन्वेषण और प्रतिपादन किया। यदि तुम पतंजलि का अनुगमन करो, तो तुम पाओगे कि वे गणित के फॉर्मूले जैसी ही सटीक बात कहते हैं। जैसा वे कहते हैं, वैसा करो; परिणाम निकलेगा ही। ठीक 'दो और दो चार' की तरह सुनिश्चित। यह घटना उसी सुनिश्चित ढंग से घटेगी जैसे पानी को 100 डिग्री तक गरम करें, तो वह वाष्प बनकर उड़ जाता है। किसी विश्वास की कोई ज़रूरत ही नहीं। बस तुम उसे करो और जानो। यह कुछ ऐसा है, जिसे करके ही जाना जा सकता है; इसीलिए मैं कहता हूँ कि पतंजलि 'बेजोड़' हैं।

पतंजलि के साथ हम आगे यात्रा करेंगे। वे बड़े विरले पुरुष हैं। एक वैज्ञानिक चित्त लेकर, अन्वेषण की वृत्ति के साथ विश्वासों से मुक्त होकर उनके साथ चलना। यहाँ काव्य नहीं है, गणित है। सीधे–सीधे सूत्र हैं– प्रयोग करो और जानो!

कितने दीप बुझते हैं, कितने दीप जलते हैं,
अज़्मे–ज़िंदगी लेकर फिर भी लोग चलते हैं।

कारवां के चलने से कारवां के रुकने तक, मंज़िलें नहीं यारो रास्ते बदलते हैं। कितने डूब जाते हैं, कितने बच निकलते हैं, तीरगी निगलते हैं, रोशनी उगलते हैं एक बहार आती है, एक बहार जाती है, गुंचे मुस्कुराते हैं, फूल हाथ मलते हैं।।

जरा सोचो, कितने ही दीप बुझते–जलते रहते हैं, अज़्मे–ज़िंदगी लेकर फिर भी लोग चलते रहते हैं– मूर्च्छित दशा में। इस प्रकार के चलनेवालों के लिए पतंजलि नहीं हैं। मूढ़ों के लिए नहीं, भीड़ के लिए नहीं। बहुत समझदार, विवेकवान और प्रज्ञावान लोगों के लिए हैं पतंजलि। आम मानसिकता वालों के लिए नहीं। पतंजलि के साथ थोड़ा विवेकपूर्ण बनना।

आज से हम पतंजलि के साथ लम्बी यात्रा पर निकलते हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–1

अथ योग अनुशासनम्

अथ योगानुशासनम् ।। 1 ।।

आओ जानें हम, अब अनुशासन योग का
दुःख से वियोग का, आत्मा से योग का।

जहाँ खड़े हम लहराता संसार समंदर।
चल हंसा उस देस, जहाँ है मानसरोवर।

पतंजलि का पहला सूत्र– अथ योगानुशासनम्। भारत के बहुत से शास्त्र अथ से शुरू होते हैं। अथ यानी अब। पश्चिम में जब पहली बार भारतीय ग्रंथ अनुवादित हुए तो ऐसा विचित्र लगा कि शास्त्र शायद बीच में से शुरू हो रहा है। जैसे इससे पहले कोई और बात चल रही थी, वो छूट गई... अब योग का अनुशासन। नहीं, शास्त्र अधूरा नहीं छूटा है। शुरुआत होता है... अब से... यह अब क्यों? अब इसलिए कि वे लोग जो आशाओं में जी रहे हैं, मन की भाग–दौड़ में लगे हैं, जो संसार में व्यस्त हैं; उनके लिए यह शास्त्र नहीं है। जो संसार से पूरी तरह निराश हो चुके हैं, आशा–निराशा के भी पार जा चुके हैं, आसक्ति–विरक्ति जिनकी दोनों टूट चुकी हैं, जिनके भीतर विवेक का उदय हुआ है, संसार की व्यर्थता, कामनाओं की आपा–धापी, उनकी निरर्थकता जिनकी समझ में आ गई; उनके लिए अब योग का अनुशासन।

यह 'अब' प्रतीक है कि जिस यात्रा पर हम जा रहे हैं, वह संसार की यात्रा से बिल्कुल भिन्न है। जिनको अभी संसार में रस है; वे अपने भीतर न मुड़ सकेंगे; वे योग के अनुशासन में प्रवेश न कर सकेंगे।

पिछली सदी में 'फ़्रीडरिक नीत्शे' एक अद्भुत विचारक हुआ, जो कहा करता था कि आदमी बिना स्वप्न के नहीं जी सकता; उसे झूठ चाहिए, उसे भ्रांतियाँ चाहिएँ, उसे भ्रम और इलूज़न चाहिएं। और उसकी यह बात आम आदमी के बारे में बिल्कुल सच है। हम कहते ज़रूर है कि हम सत्य के खोजी हैं, लेकिन हम असत्य में जीना चाहते हैं। इस तरह के व्यक्ति के लिए 'योग' नहीं है। अब पतंजलि इस बात की ओर इशारा कर रहे हैं कि यह केवल परिपक्व लोगों के लिए है।

प्रथम पाद 'समाधिपाद' है। यह उच्च अधिकारियों के लिए है। श्रेष्ठ साधकों के लिए है। दूसरा 'साधनपाद' होगा। वह मध्यमवर्गीय साधकों के लिए है। तो हम

'समाधिपाद' आज से शुरू करते हैं... याद रखना केवल उनके लिए जो संसार में पक चुके हैं। और जिनकी अब सत्य में रुचि है। सत्य जैसा भी है वे उसके साथ राज़ी होंगे। केवल वही योग में प्रवेश कर सकेंगे। जिनके मन से सारी आशाएँ–निराशाएँ विदा हो गईं। यहाँ तक की परमात्मा को पाने तक की भी, आनंद को पाने की भी, ज्ञान को पाने की भी आकांक्षा जिनके भीतर न रही; वे अब इस क्षण में स्थापित हो सकेंगे। योगानंद सरस्वती ने कल सवाल पूछा था कि मेरे नाम का अर्थ समझाएँ... उस सवाल को मैं जानबूझकर छोड़ गया था। सरस्वती शब्द प्रतीक है ज्ञान का। योग के साथ आनंद और ज्ञान। लेकिन अगर ज्ञान और आनंद की बात कहो, तो मन में एक नई अभीप्सा पैदा हो जाती है। बुद्ध और पतंजलि जानबूझकर इन शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे। वे कहते हैं दुःख है और दुःख से निरोध का उपाय भी है। वह उपाय ही 'योग' है। चित्त हमारी व्याधि है, और समाधि उसका समाधान है।

अष्टावक्र कहते हैं– हे जनक! कामना जैसी व्याधि नहीं और निष्कामना–सी समाधि नहीं। अगर तुम आनंद की भी कामना से भर गए, ज्ञान की कामना से, ब्रह्म की कामना से... तो भी कामना तो बनी ही रही। फिर योग में गति न हो सकेगी।

निसदिन दीप जलाए पगली पाया घोर अंधेरा।
कौन कहे अब इसे हठीली अंत यही है तेरा।।
रैन की गोद खाली करके चांद–सितारे भागे,
अंधियारे में पीछे–पीछे ज्योति आगे–आगे।
होते–होते इन नैनों से ओझल हुआ सवेरा।
छाया घोर अंधेरा, अंत यही है तेरा।।
दूर–दूर तक एक उदासी, सड़ी–गली इक छाया,
धरती से आकाश तक उड़कर आशा ने क्या पाया?
चारों खूंट चली अंधियारी, चिंताओं ने घेरा।
है कौन यहाँ पर मेरा? अंत यही है तेरा।।
कौन चुने अब टूटे तारे, जोत कहाँ से आए?
कौन गगन पर सेज बिछाए? फूल तो हैं मुरझाए।
कौन है इस नगरी में अब आकर करे बसेरा?
निसदिन दीप जलाए पगली पाया घोर अंधेरा।
कौन कहे अब इसे हठीली, अंत यही है तेरा।।

जिसे संसार का यह अंत समझ में आ गया। यहाँ कितने ही दीप जलाओ... बुझ–बुझ जाते हैं। उसके जीवन में वह क्रांति का बिंदु आता है। सामान्यतः हमारा मन एक गोल घनचक्कर, एक रूटीन में घूमता रहता है। बुढ़ापा भी आ जाता है, लेकिन

परिपक्वता नहीं आती। बाल सफ़ेद हो जाते है, बुद्धि नहीं पकती।

मैंने सुना है– मुल्ला नसरुद्दीन एक शाम को कॉफ़ी हाउस में मित्रों के पास बैठकर गपशप कर रहा है। सभी बूढ़े हैं, उसके मित्र हैं। नसरुद्दीन साठ साल का हो गया है। गपशप का रुख़ अनेक बातों से घूमता हुआ इस बात पर आ गया कि एक बूढ़े मित्र ने पूछा– नसरुद्दीन, तुम्हारी ज़िंदगी में कोई ऐसा मौक़ा आया, तुम्हें ख़्याल आता हो कि जब तुम बड़ी परेशानी में पड़ गए– बहुत ऑकवर्ड मोमेंट? नसरुद्दीन ने कहा– सभी की ज़िंदगी में आता है। लेकिन तुम अपनी ज़िंदगी का कहो, तो हम भी कहें।

तो सभी बूढ़ों ने अपनी–अपनी ज़िंदगी के वे क्षण बताए जब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए, जहां कुछ निकलने का रास्ता न रहा। कभी किसी ने कोई चोरी की और रंगे हाथों पकड़ा गया। कभी कोई झूठ बोला और झूठ नग्नता से प्रगट हो गया और कोई उपाय न रहा, उसको बचाने का।

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे भी याद है– घर की नौकरानी स्नान कर रही है और मैं ताली के छेद (की–होल) में से उसको देख रहा था। मेरी माँ ने मुझे पकड़ लिया। उस वक्त मेरी बुरी हालत हुई थी। बाक़ी बूढ़े हंसे। आँखें मिचकाईं। उन्होंने कहा–'नहीं, इसमें इतने परेशान मत होओ। सभी की ज़िंदगी में, बचपन में ऐसे मौक़े आ जाते हैं।'

नसरुद्दीन ने कहा– 'वट आर यू सेइंग, दिस इज़ अबाउट यस्टरडे! क्या कह रहे हो, बचपन! अरे जनाब, यह कल की ही बात है।'

आदमी बूढ़ा हो जाता है, लेकिन बचपन जाता ही नहीं। ऐसे लोगों के लिए योग नहीं है। योग एक अनुशासन है। पतंजलि कहते हैं; अनुशासन का अर्थ है–एक ऑर्डर, एक डिसिप्लिन। सामान्यतया हमारा मन बड़ा केऑटिक, अराजक है। टुकड़े–टुकड़े हैं, खण्ड–खण्ड हैं– एक खण्ड यहाँ जा रहा है, एक खण्ड वहाँ जा रहा है। हमारी ऐसी हालत है जैसे किसी बैलगाड़ी में चारों तरफ़ बैल जुते हों। यह बैलगाड़ी कहीं भी यात्रा न कर सकेगी, क्योंकि चारों बैल इसे अलग–अलग दिशा में खींच रहे हैं। इस प्रकार का चित्त लेकर योग में गति संभव नहीं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन यात्रा कर रहा था। जब ऊपर की बर्थ पर सोने लगा, तो उसने नीचे के आदमी से पूछा कि मैं यह तो पूछना ही भूल गया कि आप कहाँ जा रहे हैं? उस नीचे के आदमी ने कहा कि मैं मुंबई जा रहा हूँ।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा– ग़ज़ब! विज्ञान का चमत्कार! मैं कोलकाता जा रहा हूँ, एक ही गाड़ी में हम दोनों! विज्ञान का चमत्कार देखो कि नीचे की बर्थ मुंबई जा रही है, ऊपर की बर्थ कोलकाता जा रही है, और मुल्ला शान से सो गया।

मुल्ला पर हमें हँसी आयेगी, लेकिन हमारी ज़िंदगी ऐसी ही है; एक बर्थ मुंबई जा रही है, एक कोलकाता जा रही है। आप विरोधी काम किये चले जा रहे हैं, पूरे वक़्त। मज़े

की बात यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, क़रीब–क़रीब उसके विपरीत भी किए जा रहे हैं। बल्कि जब तक विपरीत नहीं करते, तब तक भीतर एक बेचैनी मालूम पड़ती है। विपरीत कर लेते हैं, तो सब ठीक हो जाता है।

एक आदमी क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। आप आम तौर से सोचते होंगे कि पश्चात्ताप करनेवाला आदमी अच्छा आदमी है। लेकिन आपको पता नहीं– एक बर्थ कोलकाता जा रही है, एक मुंबई जा रही है। क्रोध करता है, पश्चात्ताप करता है; फिर क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। ज़िंदगीभर यही चलता है– कभी आपने ख़्याल किया? क्रोध करके पश्चात्ताप कर लेता है। हमेशा सोचता है– अब क्रोध न करूँगा। होता क्या है? आम तौर से आदमी सोचता है, क्रोध करके पश्चात्ताप कर लिया, अच्छा ही हुआ, अब कभी क्रोध न करेंगे। लेकिन यह तो पहले बहुत बार हो चुका है। हर बार क्रोध किया, पश्चात्ताप किया... पश्चात्ताप से क्रोध कटता नहीं।

हमें हँसी आएगी नसरुद्दीन पर। लेकिन हमारी हालत इससे भी विचित्र है। हमारे मन का एक हिस्सा मुंबई जा रहा है और दूसरा कोलकाता। तीसरा कश्मीर, चौथा कन्याकुमारी और सामान जा रहा है बंगाल। उसमें भी एक सूटकेस पाकिस्तान जा रहा है, दूसरा सूटकेस बांग्लादेश जा रहा है। हमारी हालत बड़ी विचित्र है! ऐसी खंडित मानसिकता के साथ योग में प्रवेश नहीं हो सकता। महावीर कहते थे– मनुष्य बहुचित्तवान है– पोलीसाइकिक, मल्टीसायकिक। हमारे भीतर एक चित्त नहीं है। एकचित्तता न होना ही हमारी व्याधि है, हमारी बीमारी है।

अनुशासन का अर्थ है–हमारे भीतर क्रिस्टलाइज़्ड सैन्टर पैदा हो। भीतर हम एकजुट हों, जुड़ें। योग का अर्थ होता है जोड़। सबसे पहले तो हम अपने भीतर क्रिस्टलाइज़्ड सैन्टर का निर्माण करें। गुरजिएफ कहता था– आदमी एक भीड़ है और भीड़ में कोई कैसे आनंदित हो सकता है? टुकड़े–टुकड़े, खंड–खंड है। आनंद तो केवल अखंडता में होता है। उसके लिए अनुशासन याद रखना! अनुशासन कोई चिकित्सा नहीं है। पश्चिम के लोग समझते हैं कि योग भी एक थैरपी है, मनोचिकित्सा है। सुनो इस बारे में ओशो क्या कहते हैं–

योग अनुशासन है, साधना है। यह तुम्हारा स्वयं को रूपांतरित करने का प्रयत्न है और इसमें बहुत–सी चीज़ें समझ लेने जैसी हैं। योग चिकित्सा–विज्ञान नहीं है। पश्चिम में आज बहुत–से मनोवैज्ञानिक रोगोपचारों का चलन है और पश्चिम के बहुत–से मनोवैज्ञानिक समझते हैं कि योग भी एक चिकित्सा है। ऐसा नहीं है। योग अनुशासन है, साधना है। अंतर क्या है? अंतर यही है कि चिकित्सा की आवश्यकता होती है यदि तुम बीमार हो, रोगग्रस्त हो। लेकिन अनुशासन की आवश्यकता तो स्वस्थ होने पर भी है। वास्तव में अनुशासन तो सहायक ही तभी होता है जब तुम स्वस्थ होते हो।

रोगियों के लिए योग नहीं है। यह उनके लिए है जो चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से पूरी तरह स्वस्थ हैं, जो सहज सामान्य हैं। जो स्किट्सोफ्रैनिक (खंडित मनस्क) नहीं हैं, पागल नहीं हैं, न्यूरॉटिक, विक्षिप्त नहीं हैं। वे सहज सामान्य लोग हैं, स्वस्थ लोग हैं, उन्हें कोई रोग नहीं है। फिर भी वे जान गए हैं कि जिसे सामान्य कहा जाता है, वह व्यर्थ है। जिसे स्वास्थ्य कहा जाता है, वह भी बेकार है। कुछ और चाहिए, कुछ ज़्यादा विशाल चाहिए... कुछ ज़्यादा स्वस्थ, ज़्यादा पावन और ज़्यादा समग्र चाहिए। चिकित्साएँ बीमार लोगों के लिए होती हैं, चिकित्साएँ तुम्हारी सहायता कर सकती हैं योग तक आने के लिए। लेकिन योग चिकित्सा–विज्ञान नहीं है। योग स्वास्थ्य की एक अलग और ऊँची दशा के लिए है। एक भिन्न प्रकार की समग्रता और सत्ता के लिए है।

योग को चिकित्सा मत समझना। सामान्यतः हठ योगियों ने इस प्रकार की धारणा सारे विश्व में प्रचलित कर दी है कि योग चिकित्सा का विज्ञान है– स्वस्थ होने के लिए है। नहीं, क्षमा करें। योग साधारण स्वास्थ्य के लिए नहीं; असली स्वास्थ्य के लिए है। इस स्वस्थ शब्द का अर्थ होता है–स्वयं में स्थित होना। हम चित्त से तादात्म्य कर बैठे हैं। आत्मा से हमारा संपर्क विस्मृत हो गया है। चित्त से तादात्म्य को तोड़कर जब चेतना स्वयं में स्थापित होती है–उसका नाम है योग।

एक डिसिप्लिन एक ऑर्डर से गुज़रना होगा; जो गुरु के निकट ही संभव है। इसलिए बिना गुरु की मौजूदगी के योग घटित नहीं होता। गुरु के पास निष्ठापूर्वक खुले हृदय से बैठना; वही सत्संग का अर्थ है। हाँ, किसी विश्वास की ज़रूरत नहीं; लेकिन इस यात्रा के लिए एक भरोसा तो चाहिए। जो नाविक नाव चला रहा है; उसपर एक हाइपोथैटिकल ट्रस्ट एक परिकल्पनात्मक भरोसा; तभी यह यात्रा संभव हो पाती है।

'आओ जानें हम अब अनुशासन योग का
चित्त से वियोग का आत्मा से योग का।'

बड़ा सरल है, अगर तुम विवेकपूर्ण हो। चित्त से तादात्म्य तोड़ना है, आत्मा से तादात्म्य जोड़ना है। जो हम हैं, उसे जानना है; जो हम नहीं हैं और भूल में पड़कर अपने को कुछ और समझने लगे हैं, उससे मुक्त होना है। अपने सत्य में स्थापित होना है। तो योग के साथ हम एक–एक क़दम...एक–एक क़दम आगे बढ़ेंगे। यह यात्रा अतिसरल है; कठिन मानकर मत चलना। क्योंकि हम जैसा मानकर चलते हैं वैसी ही हो जाती है– अतिसरल है। जो हम हैं, उसी को पाना है। जो हम नहीं हैं, और भ्रम में पड़ गए हैं, उससे मुक्त हो जाना है। स्वप्न से छूटना है, सत्य में जागना है– अथ योगानुशासनम्।

पातंजलयोगप्रदीप का, सुन लो पहला नाद,
प्रज्ञावान जिज्ञासु हेतु, प्रथम समाधिपाद।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–2

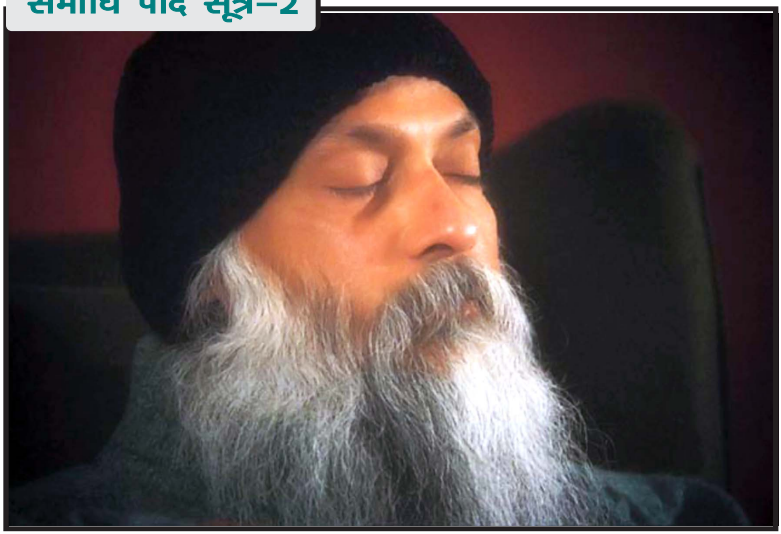

योग क्या है

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।।2।।

योगः चित्तवृत्ति निरोधः

हो गया जैसे स्वप्न में, दृश्य से संयोग;
योग है इस मनरूपी, रोग का निरोध।

योगः चित्तवृत्ति निरोधः। चित्तवृत्तियों का निरोध अर्थात मन की समाप्ति है योग। बड़ी सरल, सीधी संक्षिप्त परिभाषा पतंजलि ने की। इससे सुंदर परिभाषा योग की हो नहीं सकती। अन्य लोगों ने भाँति–भाँति से परिभाषित किया है। कोई कहता है–परमात्मा से जुड़ जाना योग है। कोई कहता है–आत्मा परमात्मा का संयोग योग है; और कई–कई तरह की परिभाषाएँ हैं। पतंजलि सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं; वे एक भी ऐसा शब्द प्रयोग नहीं करते जो अनावश्यक हो। यहाँ तक कि वे 'ईश्वर' शब्द को भी बीच में नहीं लाते। सीधी–सीधी बात; मन की समाप्ति है योग। इस परिभाषा पर बोलते हुए हमारे प्यारे सदगुरु ओशो ने समझाया है–

योग मन की समाप्ति है–यही 'योग' की परिभाषा है, सबसे सही परिभाषा। योग को अनेक ढंगों से परिभाषित किया गया है। बहुत–सी परिभाषाएँ हैं इसकी। कुछ

कहते हैं कि योग दिव्य सत्ता के साथ मन का मिलन है, इसीलिए इसे योग कहा जाता है। क्योंकि योग का मतलब है मिलना, दो का जुड़ना। कई कहते हैं कि योग का अर्थ है–अहंकार का गिर जाना। अहंकार ही बीच में बाधा है और जिस क्षण तुमने अहंकार को गिरा दिया, तुम दिव्य सत्ता से जुड़ जाते हो। तुम जुड़े ही हुए थे; लेकिन इस अहं के कारण ही लगता रहा कि तुम जुड़े ही नहीं हो।

बहुत व्याख्याएँ हैं, लेकिन पतंजलि की परिभाषा सबसे ज़्यादा वैज्ञानिक है। वे कहते हैं–योग मन का अवसान है, समाप्ति है, अ–मन होने की अवस्था है। यह शब्द 'मन' इन सबको अपने में समेटता है– तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी इच्छाएँ, तुम्हारी आशाएँ, तुम्हारा तत्त्वज्ञान, तुम्हारे धर्म, तुम्हारे शास्त्र। ये सब मन के अंतर्गत हैं, जो कुछ भी तुम सोचते हो, वह मन है। जो भी जाना गया है, जो भी जाना जा सकता है, जो ज्ञेय है; वह सब मन के अंतर्गत है।

मन की समाप्ति का अर्थ है, जो जाना है उसकी समाप्ति, जो जानना है उसकी समाप्ति। यह एक छलाँग है– अज्ञात में। जब मन न रहा, तो तब तुम अज्ञात हो। योग अज्ञात में एक छलाँग है, पर उसे अज्ञात कहना भी सही न होगा। वास्तव में उसे कहना चाहिए–अज्ञेय, ज्ञानातीत। मन क्या है, मन कर क्या रहा है?

आम तौर पर हम यही सोच लेते हैं कि मन सिर में पड़ी कोई भौतिक चीज़ है। पतंजलि इसे नहीं स्वीकारते। अब जिसने मन के भीतर को जाना है, इसे स्वीकारेगा भी कैसे? आधुनिक विज्ञान भी इसे नहीं स्वीकारता। मन कोई भौतिक तत्त्व नहीं, जो पड़ा है सिर में। मन एक वृत्ति है, क्रियाशीलता है। तुम चलते हो; तो मैं कहता हूँ, तुम चल रहे हो। पर यह चलना है क्या? तुम रुक जाते हो तो वह चलना, चाल कहाँ है? यदि तुम बैठ जाओ, तो चलना किधर चला गया? चलना कोई ठोस भौतिक चीज़ नहीं है; वह तो एक क्रिया है। इसलिए जब तुम बैठे हुए हो, तो कोई नहीं पूछ सकता कि तुमने अपनी गति कहाँ रख दी? अभी–अभी तो तुम चल रहे थे, कहाँ गया वह चलना? तुम हँसोगे इस पर। तुम कहोगे चलना कोई वास्तविक तत्त्व नहीं है; वह तो एक क्रिया मात्र है, मैं चल सकता हूँ। मैं फिर–फिर चल सकता हूँ और मैं चलना रोक भी सकता हूँ। यह तो क्रियाकलाप है।

मन भी एक क्रिया है। लेकिन इस शब्द 'मन' की वजह से लगता है कि वह भीतर कोई ठोस चीज़ है। इस मन को, इस माइंड को माइंडिंग कहना बेहतर होगा–जैसे चलने को वॉकिंग कहते हैं।

यह जो निरंतर गतिमान है। हमारे भीतर विचारों की, स्मृतियों की, कल्पनाओं की प्रक्रिया; यह प्रोसैस जो निरंतर चल रही है। इसका नाम है मन और इसका बंद हो

जाना 'योग' की अवस्था है। यह मन कोई वस्तु नहीं है। अगर हम इसे वस्तु मानकर चले, हम इससे कभी मुक्त न हो सकेंगे। लोग मन से लड़ने लगते हैं। अपने मन के विरोधी हो जाते हैं, तब वे मन को कभी नहीं जीत पाते। इस बात को बहुत ग़ौर से समझना।

एक अद्भुत झेन फ़क़ीर हुआ– बोधिधर्म। सम्राट उसके पास आया और कहा कि मेरा चित्त बड़ा अशांत है। मैं बहुत बेचैन और व्यग्र रहता हूँ। कृपया मेरी मदद करें। बोधिधर्म ने कहा–कल सुबह चार बजे आना; तुम्हारे मन को ठिकाने लगा दूंगा। सम्राट थोड़ा चौंका। एक फ़क़ीर से ऐसा उत्तर अपेक्षित न था। बोधिधर्म ने कहा– सुनो... अकेले आना। ये फौज–फाटा, सेनापति... इत्यादि कोई साथ में न आए। तुम्हारे मन से निपट ही लूंगा।

सम्राट रात को चैन से न सो सका। कौन जाने कि उस आदमी के पास कोई ख़तरनाक षड्यंत्र हो। लेकिन बोधिधर्म से वो बहुत आकर्षित हुआ था। उसके चेहरे की आभा, उसकी शांति, उसका आनंद, उसकी प्रफुल्लता। सुबह चार बजे उसने हिम्मत की। अकेला पहुँचा, बिना फौज फाटे के...। बोधिधर्म बैठा लकड़ी के एक डंडे पर तेल मल रहा था। बोधिधर्म ने कहा कि मुझे डर था कि कहीं तुम न आओ। बैठो सामने मेरे यहाँ। देखता हूँ तुम्हारा मन कैसे तुम्हें अशांत और बेचैन करता है!

सम्राट थोड़ा डरा कि मारेगा, क्या करेगा? लेकिन जब आ ही गए थे, तो प्रयोग कर लेना उचित था। बैठ गया। बोधिधर्म ने कहा– रीढ़ सीधी, गर्दन सीधी और आराम से बैठो और भीतर अपने मन को खोज के बताओ कहाँ है? मिल जाए तो मुझे इशारा कर देना। बस एक डंडा दूंगा, सदा–सदा के लिए निरोध हो जाएगा। सम्राट जीवन में इतना जागरूक कभी न हुआ था। ख़तरे के क्षणों में हम बहुत सजग हो जाते हैं। कई गुरुओं ने उससे कहा था कि सजगता साधो, जागरूकता साधो, साक्षीभाव साधो; लेकिन कभी साध न पाया था। आज अपने आप डर के मारे सध गया। भीतर ढूँढ़ने लगा।

बोधिधर्म ने कहा– कहां–कहां तुम्हारी बेचैनी है, तनाव है, ज़रा ग़ौर से खोज लो। ये मन है कहाँ? आज उसे ठिकाने लगा ही देना है। जैसे–जैसे वो सजग हुआ अपने भीतर की बेचैनी को, विचारों की प्रक्रिया को देखने लगा। आती–जाती भावनाओं को निहारने लगा। उसने पाया कि विचार धीरे–धीरे सब विदा हो गए। एक सन्नाटा रह गया, एक शून्यता रह गई। उसके चेहरे पर अद्भुत शांति छा गई। कोई आधे घंटे बाद बोधिधर्म ने उसे हिलाया; क्या हुआ तुम तो खो ही गए बिल्कुल? मिला कि नहीं वो तुम्हारा दुश्मन मन? जो तुम्हें बेचैन और व्यग्र करता है।

सम्राट ने आँखें खोलीं। चरणों में झुक गया। उसने कहा सचमुच आपने उसे समाप्त कर ही दिया। बोधिधर्म ने कहा, इस बात को समझो। जितने ज़्यादा तुम मूर्छित होते हो, उतना ही मन होता है। मन अर्थात् एक प्रक्रिया विचारों की, ऊहापोह भावनाओं की, स्मृतियों की और कल्पनाओं की। जितने ज़्यादा तुम सजग होते हो उतना ही मन विदा हो जाता है। अवलोकन मनविरोधी है; अ–मन की अवस्था उपलब्ध होने लगती है। तुम जागरूक बनो, सूत्र तुम्हारे हाथ में आ गया। जाओ और इसको साधो। अ–मन की अवस्था अवलोकन से प्राप्त होती है। न तो मन को सहयोग करना और न ही मन के विरोधी बनना। मन से दुश्मनी भी नहीं, मन से दोस्ती भी नहीं; उपेक्षा भाव अपनाना। तब तुम पाओगे मन की वृत्तियाँ शनैः शनैः विदा होने लगीं।

न आस्तिकता चाहिए, न नास्तिकता। एक वैज्ञानिकता चाहिए। एक निरीक्षण करने की क्षमता चाहिए। पतंजलि के अनुसार हमारे चित्त की पाँच प्रकार की भूमियाँ है। इसमें से प्रथम दो भूमिवालों के लिए तो योग की साधना नहीं हैं। तीसरी भूमि से योग की साधना शुरू की जा सकती है। योग का आरम्भ हो सकता है। चौथी और पाँचवीं... समाधि के अनुकूल हैं।

इन पाँच नामों को समझना। पहला है– मूढ़, तमस प्रधान। यह भ्रमित और आलसी होता है। भयभीत रहता है। तंद्रा ज़्यादा घेरती है। बुद्धिहीन होता है। कामी और क्रोधी ज़्यादा होता है... मूढ़ व्यक्ति के लिए योग नहीं है।

दूसरी को कहते हैं पारिभाषिक शब्दों में क्षिप्त, क्षिप्त का अर्थ है– बहुत ज़्यादा रजस, बहुत ज़्यादा चंचलता। ये लोग चिंतित होते हैं। दुःखी होते हैं, बड़े अहंकारी होते हैं, संसार उन्मुख होते हैं। बहुत महत्त्वाकांक्षाओं से भरे, चालाक और राजनीतिक होते है। संपन्नता के प्रति इनका विशेष झुकाव होता है। लोभी प्रवृत्ति, मोह, राग, द्वेष से पीड़ित होते हैं। ये भी योग में गति नहीं कर सकते।

तीसरी भूमि है– विक्षिप्त। आधुनिक भाषा में विक्षिप्त शब्द पागल के लिए प्रयोग किया जाता है। संस्कृत भाषा में उसका वैसा अर्थ नहीं है। क्षिप्त से ज़्यादा बेहतर है विक्षिप्त। विशेष प्रकार के क्षिप्त, इनमें भी विक्षेप होते हैं; लेकिन कभी–कभी ये शांति के क्षणों को भी जानते हैं। तो विक्षिप्त का अर्थ है– सत्त्व प्रधान। ज़्यादातर रजस में जीता है; लेकिन कभी–कभी क्षणिक स्थिरता भी उपलब्ध होती है। ये लोग; प्रसन्नता, क्षमा, धैर्य, दया, उत्साह, ऊर्जा आदि सात्विक गुणों से ओतप्रोत होते हैं– यहाँ से योग का आरम्भ हो सकता है।

चौथी भूमि है– एकाग्र अथवा संप्रज्ञात। ये लोग तटस्थभाव में जीते हैं। साक्षीभाव इनके भीतर घना होता है। और जिस विषय का अनुभव करते हैं उसका यथार्थ ज्ञान, उसका सम्यक बोध इन्हें होता है। इन्हें हम कह सकते हैं– ध्यानपूर्ण लोग।

पाँचवीं भूमि है– निरुद्ध। जहाँ सारी चित्तवृत्तियों का निरोध हो गया। यह असंप्रज्ञात समाधि अथवा परमवैराग्य कहलाती है। इसमें स्वरूप का यथार्थ बोध होता है। चौथी भूमि में विषय का सही–सही ज्ञान होता है। पाँचवीं भूमि में स्वयं की, विषयी की सब्जैक्टिव नॉलिज घटित होती है।

देखना तुम कहाँ हो? सामान्यतः लोग मूढ़ता की अवस्था में जी रहे होते हैं, या क्षिप्त अवस्था में।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन कश्मीर से कन्याकुमारी जानेवाली एक लम्बी दूरी की ट्रेन में सवार हुआ। ए सी फ़र्स्ट क्लास का कंपार्टमेंट, सामने की सीट पर एक वृद्ध महिला बैठी थी। पंद्रह–बीस मिनट बाद उस युवक ने रोना शुरू कर दिया। अपने दोनों घुटनों में सिर दबाकर नसरुद्दीन सिसकियाँ भर रहा है, और आंसुओं से सराबोर। वृद्ध महिला ने सोचा कि पता नहीं प्रियजनों से बिछुड़ के आया होगा। कोई कठिनाई घटित हुई होगी। बीच में बोलना ठीक नहीं। रात हुई; वह वृद्ध महिला सो गई।

सुबह जब उसकी नींद खुली तो यह देखकर चकित रह गई कि नसरुद्दीन वैसे ही बैठा घुटनों में सिर देकर रो रहा था। हिचकियाँ पर हिचकियाँ आ रहीं थीं। बार–बार आँसू पोंछते–पोंछते एक टावल पूरा गीला हो चुका था। उसने दूसरा टावल निकाल लिया था आँसू पोंछने के लिए। उस महिला ने सोचा, हद हो गई! यह आदमी रातभर से रो रहा है। हुआ क्या इसको? लेकिन अजनबी आदमी है, बीच में बोलना ठीक नहीं। पता नहीं, कितना दुःख है। कहीं कुछ कहकर इसके घावों को कुरेद न दूं। फलस्वरूप वह महिला चुप रही। दूसरा दिन बीत गया। तीसरा दिन आ गया नसरुद्दीन रोए ही जा रहा था। लम्बी यात्रा थी कश्मीर से कन्याकुमारी तक की।

आख़िर उस बुढ़िया से न रहा गया। उसने कहा बेटा कुछ कहो, शायद कहने से ही दुःख हल्का हो जाए। नसरुद्दीन ने कहा कि क्या कहूँ तुम मेरी मदद न कर सकोगी। उसने कहा कह तो दो...मदद न कर पाऊँ तो क्या। नसरुद्दीन ने कहा ट्रेन में बैठने के पंद्रह मिनट बाद पता चला कि मैं ग़लत ट्रेन में सवार हो गया हूँ।

हमें नसरुद्दीन पर हँसी आती है। लेकिन हम भी ग़लत ट्रेन में सवार हैं। हम जिसे चित्त कह रहे हैं। वो जो चित्तवृत्तियों की बोगियाँ हैं हमें बिल्कुल ग़लत दिशा में ले जा रहीं हैं। हम दुःखी हो रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, हम पीड़ित हो रहे हैं; लेकिन हम उस ट्रेन से उतर नहीं रहे।

पतंजलि कहते हैं– चित्तवृत्ति निरोधः। इस ट्रेन से नीचे उतर आओ। इस दुःख की लम्बी यात्रा को समाप्त किया जा सकता है– योग उसी की विधि है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

कैसे हो स्वयं का बोध

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।। 3 ।।

तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्।

साधक के भीतर जब, बोध घटित होता है,
साक्षी स्वयं में तब स्थापित होता है।

साक्षी स्वयं में तब स्थापित होता है, साधक के भीतर जब बोध घटित होता है।

टैलिग्राम जैसे संक्षिप्त सूत्र हैं ये साधना के! सीधे तीर हैं। चुभ जाएँ तुम्हारे हृदय में, तो परम जागरण घट जाए, समाधि फल जाए। बस इतना ही करना है। अपनी चेतना को स्वयं में स्थापित कर लेना है।

हमारी स्थिति ऐसी है जैसे किसी दर्पण के सामने हम खड़े हों और अपने प्रतिबिंब को स्वयं का होना समझने लगे हों। दृश्य में हम उलझ गए। और द्रष्टा को भूल गए।

पतंजलि कहते हैं–द्रष्टा स्वयं को पहचाने। वह जो प्रतिबिंब नज़र आ रहा है; वह मैं नहीं हूँ। मैं तो दर्पण के सामने खड़ा व्यक्ति हूँ। अपने होने का एहसास जिस दिन हो जाए; जानना कि यह अवस्था फलित हो गई। ओशो ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है–

जब मन का होना समाप्त होता है; साक्षी स्वयं में स्थापित हो जाता है। जब तुम केवल देख सको बिना मन के साथ तादात्म्य बनाए, बिना निर्णय किए, बिना प्रशंसा या आलोचना किए, बिना चुनाव किए; बस केवल देखते रहो, जबकि मन बह रहा हो। तो ऐसा क्षण आ जाता है, जब मन स्वयं ही रुक जाता है, थम जाता है...।

जब मन नहीं है, तब तुम अपने साक्षी में प्रतिष्ठित हो जाते हो। तब तुम साक्षी बन गए– केवल देखने वाले एक द्रष्टा। तब तुम कर्त्ता न रहे, विचारक न रहे; तब बस तुम हो– शुद्ध अस्तित्व, शुद्धतम अस्तित्व। तब साक्षी स्वयं में स्थापित हो गया।

मन की यह समझ ही मन से मुक्ति बनती है। एक–एक क़दम इन प्रतिबिंबों को, चित्त की वृत्तियों को समझते हुए चलना, उनसे छुटकारा होता चलेगा। प्रतिबिंब को प्रतिबिंब की भाँति जान लेना, छाया को छाया की भाँति पहचान लेना ही मुक्ति है।

मैंने सुनी है एक कहानी कि सेठ चंदूलाल अपनी दस मंज़िला इमारत की छत पर शाम को टहल रहे थे। एक दीन दरिद्र से दिखनेवाले व्यक्ति ने नीचे सड़क से आवाज़ लगाई कि सेठ जी कृपया नीचे आइए। जल्दी नीचे आइए। चंदूलाल ने सोचा पता नहीं बेचारा किस मुसीबत में है? कौन–सी इमरजंसी आ गई! भागे–भागे दस मंज़िला मकान की सीढ़ियाँ उतरते–उतरते नीचे आया। आते–आते सांस फूल गई, पूछा उस दीन दरिद्र आदमी से– क्या बात है, क्यों मुझे इतनी जल्दी बुलाया? उसने कहा मैं एक भिखारी हूँ, हुज़ूर। कुछ पाँच–दस पैसे मिल जाएं। कुछ रोटी, दाल, चावल मिल जाएं।

चंदूलाल ने कहा, बस इतनी–सी बात! आ मेरे साथ। चंदूलाल तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ते गए पीछे–पीछे भिखारी बड़ी आशा से भरा हुआ। दस मंज़िल ऊपर चढ़कर, फिर छत पर पहुँचकर चंदूलाल ने कहा कि क्षमा करना आज तो मैं देने के मूड में नहीं हूँ। उस भिखारी ने कहा हद कर दी। दस मंज़िल मुझे ऊपर चढ़ा के क्यों लाए...? भिखारी ने कहा, मुझे इतना क्यों दौड़ाया आपने? मैं थक गया चढ़ते–चढ़ते...। चंदूलाल ने कहा– जब तू भिखारी होकर मुझे नीचे दौड़ा सकता है। क्या मैं मालिक होकर तुझे ऊपर नहीं बुला सकता?

चित्त हमारा गुलाम है। चित्तवृत्तियाँ भिखारी हैं। हमारी इंद्रियाँ भोगासक्ति से भरी हमें नीचे की ओर खींच रही हैं। साक्षी जब स्वयं में स्थापित हो जाता है अर्थात् ऊर्जा ऊर्ध्वगामी हो जाती है। या कह लो अंतर्मुखी हो जाती है। ऊपर जाना और भीतर

जाना अध्यात्म के मार्ग में एक ही अर्थ रखते हैं। जब मालिक इन्द्रियों की नहीं सुनता, अपनी छत पर विराजमान होता है। उसे जहाँ होना चाहिए, वहाँ होता है। भिखारी उसे नीचे नहीं बुलाते।

चित्तवृत्तियाँ क्या हैं? कामनाएँ हैं, वासनाएँ हैं; वे सब भिखारी हैं। लगातार उनकी डिमांड है; मुझे ये चाहिए; मुझे वो चाहिए। हमारा मालिक भिखारियों के पीछे दौड़ रहा है; अधोगामी हो गया है। पतंजलि कहते हैं– 'साक्षी तब स्वयं में स्थापित हो जाता है, जब वह भिखारियों को भिखारियों की भाँति पहचान लेता है। फिर वह इन्द्रियों के पीछे नहीं दौड़ता; बल्कि इंद्रियाँ उसका अनुगमन करती हैं। मालिक को अपनी मिल्कियत का एहसास हो जाता है। लेकिन हम मूर्छित हैं, हम भूल गए हैं कि हम स्वामी हैं, हम मालिक हैं। थोड़ा होश में आना पड़ेगा। भिखारियों के पीछे दौड़ते–दौड़ते हम भी भिखमंगे जैसे हो गए हैं। लेकिन सिर्फ़ जैसे ही हुए हैं; वास्तव में भिखारी नहीं हुए हैं। काश हमें अपने स्वरूप का स्मरण आ जाए!

'तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्'

तब हम अपने स्वरूप में स्थापित हो जाएँ।

'आई ना फिर नज़र कहीं जाने किधर गई,
उन तक तो साथ गर्दिशे शामो–सहर गई
कुछ इतना बेसबाब था हर जलवा–ए–हयात
लौट आई ज़ख़्म खाके जिधर भी नज़र गई।'

दृश्य में हमारी नज़र उलझ जाती है, फिर स्वयं पर लौट नहीं पाती।

आ देख मुझसे रूठने वाले तेरे बग़ैर
दिन भी गुज़र गया मेरी शब भी गुज़र गई।
तकदीर जो बिगड़ न सकी वो खुद संवर गई,
जो भी आई सामने वो हालत निखर गई
सिर्फ़ दिल के होश में आने की देर थी,
हर चीज़ अपनी–अपनी जगह पे ठहर गई।'

एक बार साक्षीभाव आ जाए। एक बार दिल में ज़रा होश आ जाए। फिर सारी ज़िंदगी संवर जाती है। सबकुछ निखर जाता है। वह मन जो बड़ी तीव्र गति से चलायमान था... वह ठहर जाता है।

'हर चीज़ अपनी अपनी जगह पे ठहर गई।'

जब साक्षी स्वयं में स्थापित होता है, शेष सब चीज़ें भी अपनी–अपनी जगह ठहर जाती हैं। तीन चार शब्दों को समझना–एक है दृश्य, दूसरा है दर्शक, तीसरा है द्रष्टा।

दृश्य अर्थात् वह विषय जिसे हम जान रहे हैं; दर्शक अर्थात् दृश्य में उलझ गया साक्षी; द्रष्टा का अर्थ है साक्षी स्वयं की तरफ़ मुड़ने लगा, स्थापित होने लगा। दृश्य बाहर है, द्रष्टा भीतर है। दृश्य में उलझना दो प्रकार से हो सकता है– एक चंचलता, एक एकाग्रता। चंचलता में विषय बारंबार बदल रहा है। एकाग्रता में विषय स्थिर है लम्बे समय के लिए, किन्तु फिर भी है वह स्वयं से बाहर ही; इसीलिए मैं कहता हूँ एकाग्रता ध्यान नहीं है।

कॉन्सनट्रेशन इज़ नॉट मैडिटेशन. एकाग्रता भी चित्त की एक वृत्ति है। साक्षी स्वयं में स्थापित नहीं हुआ। अभी भी विषय में उलझा है। माना की तल्लीन है विषय में। चित्त की ये तीन अवस्थाएँ जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति... और जागृति में भी दो प्रकार... चंचलता और एकाग्रता–इन तीनों स्थितियों के पार हमारा स्वयं का होना है, तुरीय अवस्था। पतंजलि उसी की ओर इशारा कर रहे हैं। अपने आप में स्थापित हो जाओ।

ओशो ने अपने प्रवचन में बड़ी प्यारी कहानी कही है। तीन युवक एक जंगल में मोर्निंग–वॉक के लिए निकले थे। उन्होंने देखा पहाड़ की चोटी पर एक साधु खड़ा हुआ है, चुपचाप शांत। वे तीनों मित्र आपस में बात करने लगे। पहले युवक ने कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि हमारी तरह यह साधु भी अपने मित्रों के साथ घूमने निकला होगा। मित्र किसी कारणवश पीछे छूट गए हैं। यह उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। दूसरा मित्र बोला–नहीं, तुम्हारी बात मुझे जँची नहीं। जो आदमी किसी की प्रतीक्षा करेगा, वह पीछे पलटकर तो देखेगा। मेरा अनुमान है, इसके आश्रम की, इसके मठ की कोई गाय, भैंस इत्यादि जंगल में खो गई है। पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर ये उसे ही ढूँढ़ रहा है। तीसरा युवक कहने लगा कि तुम्हारी बात भी मुझे हज़म नहीं हुई। यदि यह कुछ खोज रहा होता तो कुछ हिलता–डुलता तो, अपनी गरदन इधर–उधर तो घुमाता। ये तो बिल्कुल स्थिर खड़ा है!

मुझे तो ऐसा लगता है कि ब्रह्म–मुहूर्त के सुंदर क्षण में ईश्वर की प्रार्थना में लीन है। उन तीनों युवकों में विवाद छिड़ गया। उन्होंने सोचा, क्यों न चलकर हम स्वयं उस साधु से ही पूछें? वे पहाड़ पर चढ़े। पहले युवक ने जाकर पूछा–महाराज, क्या आपके संगी–साथी पीछे छूट गए हैं, क्या आप उनका इंतज़ार कर रहे हैं? साधु मुस्कुराने लगा और कहा कि नहीं, साधु का कौन संगी कौन साथी? अकेले जग में आए, अकेले जीते, अकेले जाना... संग–साथ भ्रम है। हम असंग हैं; इसीलिए तो संन्यासी हैं। दूसरा युवक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने झट से पूछा–'तो क्या आपके आश्रम की कोई गाय, भैंस खो गई है, उसे ढूँढ़ रहे हैं?' साधु कहने लगा– 'क्षमा करें मेरा न कोई आश्रम है, न कोई गाय, न भैंस। अब मैं बस अपना मालिक स्वयं हूँ। इस जगत में मेरा

और कुछ भी नहीं।'

बड़े मज़े की बात है! संन्यासी को हम कहते हैं स्वामी, स्वामी यानी मालिक। किसका मालिक? जिसने सारी दुनिया छोड़ दी उसे हम कहते हैं स्वामी! वह अपने साक्षीत्व का, अपनी चेतना का मालिक है। अब वो दृश्यों में नहीं उलझता, संसार के विषयों में नहीं डोलता, अपने आप में पैर जमा के खड़ा है। यही उसकी मिल्कियत है; यही उसका स्वामित्व है। तीसरा युवक बोला तब तो मेरी बात सही होगी। क्या आप प्रभु की प्रार्थना में लीन हैं? संन्यासी ज़ोर से हँसा। उसने कहा कि पागल हो गए! कहाँ का प्रभु और कैसी प्रार्थना? ऐसा कोई प्रभु नहीं है, जिससे प्रार्थना की जा सके। तब तो वे तीनों युवक बहुत हैरान हुए। उन्होंने फिर पूछा कि कृपया आप ही बताएँ कि आप यहाँ क्या कर रहे हैं इतनी देर से?

साधु ने कहा–'कुछ करना ज़रूरी है?' जिस वृक्ष के नीचे हम खड़े हैं, यह बरगद का पेड़ चार सौ साल पुराना लगता है। यह क्या कर रहा है? किसी की प्रतीक्षा, किसी की खोज या किसी की प्रार्थना? वे युवक बोले–'नहीं, ये तीनों ही बातें वृक्ष पर लागू नहीं होतीं।' साधु ने कहा–'छोड़ो पेड़ को, जिस चट्टान पर हम खड़े हैं, अनुमानतः कोई एक अरब साल पुरानी है। बताओ एक अरब साल से यह चट्टान यहाँ क्या कर रही है? किसी का इंतज़ार, किसी को ढूँढ़ रही है, या किसी से प्रार्थना कर रही है?' वे युवक भौचक्के हो गए। उन्होंने कहा–'ये तीनों ही बातें लागू नहीं होतीं। न पेड़ पर, न चट्टान पर।' उस साधु ने कहा–'जब पेड़ को, चट्टान को अनुमति है, बिना कुछ किए होने की; क्या तुम मुझे परमिशन न दोगे कि थोड़ी देर के लिए बिना कुछ किए हो सकूँ। मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। मैं बस हूँ।'

ये जो सिर्फ़ होना है; साक्षी का स्वयं में स्थापित होना है। कोई व्यस्तता नहीं, कुछ कर नहीं रहे, चेतना बाहर किसी विषय की ओर नहीं जा रही। सिर्फ़ स्वयं ही स्वयं को जान रही है; उस अवस्था का नाम ध्यान है, योग है, समाधि है; साक्षी स्वयं में स्थापित हो जाता है। इस परम दशा को, इस अमनी दशा को पाना है। और पाना किसी कामना का हिस्सा न हो; क्योंकि कामना पुनः चित्तवृत्ति है। किसी कामना से नहीं, बस जागो, जानो। ओशो की किताब है 'ध्यान योग प्रथम एवं अंतिम मुक्ति' मैडिटेशन द फर्स्ट एंड लास्ट फ़रीडम, उसमें एक बड़ी अद्भुत ध्यान की विधि ओशो ने दी है। 'मैं हूँ' ध्यान, तुम इस भाव में डूबो कि मैं हूँ। पहाड़ पर खड़े उस साधु का स्मरण करना और इस भाव में डूबना कि मैं हूँ और तुम पाओगे साक्षी स्वयं में स्थापित होने लगा है। ऑब्जैक्ट से हटे और अपनी सब्जैक्टिविटी में डूबने लगे। वही योग है।

धन्यवाद! जय ओशो।।

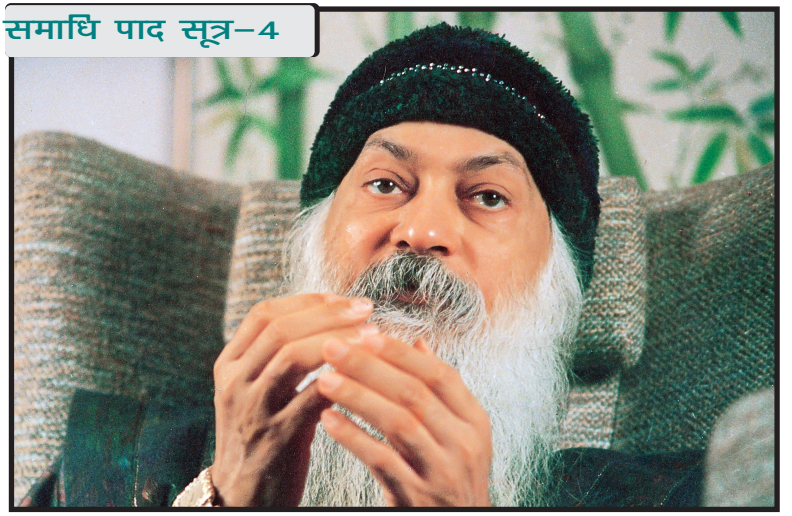

चैतन्य : भेड़ों में खो गया शेर

वृत्तिसारूप्यमितरत्र।। 4 ।।

वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र।

चेतना तादात्म्य अक्सर, मन से कर लेती है;
और फिर वृत्तियों की, जैसी ही दिखती है।

मुझे एक कहानी याद आती है। एक शराबघर का मालिक अपने घर में सो रहा था। रात को दो बजे अचानक टेलिफोन की घंटी बजी... सोचा इतनी रात को किसने फोन किया? सुना फोन, पूछा आप कौन बोल रहे हैं? उत्तर मिला; मैं सुभाष चन्द्र बोस बोल रहा हूँ। मालिक हैरान हुआ! सुभाष चन्द्र बोस जीवित हो सकता है... क्योंकि मृत्यु का तो उल्लेख कहीं आता नहीं। लेकिन वह लड़खड़ाती आवाज़ तो किसी शराबी की आवाज़ थी। उस मालिक ने गुस्से में फ़ोन पटक दिया। पाँच मिनट बाद फिर घंटी बजी फिर उसी शराबी की लड़खड़ाती आवाज़ कि क्षमा करें मैं सुभाष चन्द्र बोस नहीं हूँ; वास्तव में मैं महात्मा गाँधी हूँ। तब तो मालिक को बहुत ही गुस्सा आया। उसने कहा महात्मा गाँधी तो कभी शराब नहीं पीते थे, होश में हो कि बेहोश हो? उसने फिर फ़ोन पटक दिया। कुछ समय बाद फिर घंटी बजी; फिर उसी शराबी की लड़खड़ाती आवाज़! लगता था इस बार और भी ज़्यादा पीए हुए था; पहले से भी ज़्यादा बिल्कुल

नशे में धुत! मालिक ने पूछा, कौन? मैं श्रीमती इंदिरा गाँधी हूँ। पुरुष की आवाज़ में कह रहा है– श्रीमती इंदिरा गाँधी हूँ। मालिक ने कहा– चुपचाप सो जाओ; तुम बहुत पी चुके हो। फिर उसने फ़ोन वापिस रख दिया।

दो–तीन मिनट ही बीते थे, फ़ोन की घंटी फिर बजी, मालिक ने पूछा कौन? उसने कहा– मैं मुल्ला नसरुद्दीन। तब उसने कहा मुझे पहले भी शक हो रहा था। तुम तो हमारे पुराने ग्राहक हो, क्या पूछना चाहते हो? नसरुद्दीन ने कहा मैं पूछना चाहता हूँ कि शराबघर कब खुलेगा? मालिक को बहुत गुस्सा आया और कहा कि तुमने फ़ोन कर–करके मेरी सारी रात बर्बाद कर दी। कभी कहते हो सुभाष चन्द्र बोस, कभी महात्मा गाँधी, कभी इंदिरा गाँधी; मुझे पहले ही शक हो रहा था कि आवाज़ नसरुद्दीन की है। पूछते हो शराबघर कब खुलेगा। तुम तो हमारे पुराने ग्राहक हो। तुम्हें पता है शाम को पाँच बजे खुलता है। रात को दो बजे से क्यों फ़ोन कर रहे हो? पाँच बजे आना। नसरुद्दीन ने कहा मुझे क्षमा करें, मुझे आना नहीं है। मैं भूल से शराबघर के भीतर बंद रह गया हूँ; मुझे बाहर जाना है। और जो फोटोग्राफ टंगे हुए हैं; महात्मा गाँधी के, इंदिरा गाँधी के; उनके सामने जाके मैं समझ रहा था कि दर्पण में स्वयं को देख रहा हूँ। अब आईने के सामने आया हूँ; तब पता चला कि मैं तो मुल्ला नसरुद्दीन हूँ। मुझे भी लग रहा था कि सुभाषचन्द्र, महात्मा गाँधी तक तो ठीक, लेकिन मैं इंदिरा गाँधी कैसे हो गया? अब दर्पण के सामने आया।

चित्तवृत्तियों से हमारा तादात्म्य हो जाता है। नसरुद्दीन की तरह सब मूर्छित अवस्था में हैं। जो भी फोटोग्राफ हमारे सामने आ जाता है हम उसी के साथ एक हो जाते हैं। सुख आ जाता है, हम कहते है कि मैं सुखी हूँ; दुःख आ जाता है, तो समझते हैं कि मैं दुःखी हूँ। न मैं सुखी हूँ न मैं दुःखी हूँ; और मैं हो भी नहीं सकता हूँ, मैं तो साक्षी चैतन्य हूँ। यह सुख की घटना सामने से गुज़री; यह दुःख की घटना सामने से गुज़री; दृश्य के साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है। यही हमारी बेहोशी है। नसरुद्दीन की बात पर हंसना नहीं; हम सब उसी अवस्था में है। हमारा मन के साथ, चित्तवृत्तियों के साथ आइडेंटिफ़िकेशन हो गया है। पतंजलि कह रहे हैं तब साक्षी स्वयं में स्थापित होता है और अगर स्थापित न हो पाए, तो वह चित्तवृत्तियों के साथ आइडेंटिफ़ाइड हो जाता हैं। वह बेहोश हो जाता है; जो सामने होता है, उसी के साथ हम स्वयं को एक मानने लगते है। यही हमारे भ्रम का, हमारे भीतर माया का सूत्र है। अगर इससे जागना है, इस मूर्छा को तोड़ना है; तो सदा याद रखना जो भी दृश्य है तुम वह नहीं हो– नेति...नेति...। न मैं ये हूँ, न मैं वह हूँ; जिसे भी मैं जान रहा हूँ मैं उससे भिन्न और पृथक हूँ। यह योग की साधना होगी। इस सूत्र पर बोलते हुए हमारे प्यारे सदगुरु ओशो ने इस प्रकार समझाया है–

अन्य अवस्थाओं में मन की वृत्तियों के साथ तादात्म्य बना ही रहता है। साक्षी के अतिरिक्त... और दूसरी सभी अवस्थाओं में मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य बना रहता है। तुम विचारों के प्रवाह के साथ एक हो जाते हो; एक हो जाते हो बादलों के साथः कई बार सफेद बादलों के साथ, कई बार वर्षा से भरे बादलों के साथ, तो कई बार वर्षारिक्त खाली बादलों के साथ। लेकिन कुछ भी हो, तुम किसी विचार के साथ, किसी बादल के साथ एक हो ही जाते हो। और इस तरह तुम आकाश की शुद्धता गंवा देते हो, खो देते हो अंतरिक्ष की शुद्धता। तुम बादलों में घिर जाते हो और वह इसलिए, क्योंकि तुम तादात्म्य जोड़ लेते हो, तुम विचारों के साथ एक हो जाते हो।

ख़्याल आता है कि तुम भूखे हो और विचार मन में कौंध जाता है। विचार इतना भर है कि भूख है, कि पेट को भूख लगी है। उसी क्षण तुम तादात्म्य स्थापित कर लेते हो। तुम कहते हो, 'मैं भूखा हूं, मुझे भूख लगी है।' मन में तो भूख का विचार भर आया था पर तुमने उसके साथ तादात्म्य बना लिया है। तुम कह देते हो, 'मुझे भूख लगी है।' यही तादात्म्य है।

बुद्ध भी भूख महसूस करते हैं, पतंजलि भी भूख महसूस करते हैं, लेकिन पतंजलि कभी नहीं कहेंगे, 'मुझे भूख लगी है।' वे कहेंगे कि शरीर भूखा है। वे कहेंगे, मेरा पेट भूख महसूस कर रहा है। वे कहेंगे, भूख वहां है। वे कहेंगे, मैं साक्षी हूं। मैं इस विचार का साक्षी बना हूं जो पेट द्वारा दिमाग तक कौंध गया, वह यह कि मुझे भूख लगी है। पेट भूखा है। पतंजलि तो उसके साक्षीमात्र बने रहेंगे। लेकिन तुम तादात्म्य बना लेते हो, विचार के साथ एक हो जाते हो।

'तब साक्षी स्वयं में स्थापित होता है।'

'अन्य अवस्थाओं में मन की वृत्तियों के साथ तादात्म्य हो जाता है।'

इस बात को खूब गहराई से समझना– बाहर की परिस्थितियां और भीतर की मनःस्थितियां– ये दो दृश्य हैं जिनके साथ हम अपने आप को एकात्म कर लेते हैं और स्वयं के होने से चूक जाते हैं। ऐसा समझो जैसे कोई झील तरंगित हो रही हो; हवाएँ बह रही हों; लहरें उठ रही हों; पूर्णिमा की रात हो और चांद का प्रतिबिंब झील में उतर आए। तरंगित झील में चांद एक न होकर अनेक खण्डों में टूट जाए, पूरी झील पर छितर जाए। चांदनी फैल जाए। हमें लगेगा कि चांद हिल रहा है। लेकिन वास्तव में चांद नहीं हिल रहा है; झील में पानी हिल रहा है। तरंगें झील में है, चांद में नहीं; लेकिन चांद हिलता हुआ प्रतीत होता है। उसका प्रतिबिंब हिलता है।

ठीक ऐसे ही चित्तवृत्तियों में हमारी चेतना उलझ जाती है; अपने आपको उनके साथ एक समझ लेती है। कभी किसी मैले दर्पण में आपने अपना चेहरा देखा? ऐसा

आभास होने लगता है कि चेहरे पर मलिनता है। आईने पर कहीं कोई धब्बा लगा है, तो आपको यही लगेगा कि आपके चेहरे पर कोई धब्बा लगा है। दर्पण के प्रतिबिंब के साथ हमने अपने आप को एक मान लिया।

मैंने सुना है महाशराबी मुल्ला नसरुद्दीन रात को पीकर घर आता था। रास्ते में कहीं गिर जाता, चोट लग जाती; पत्नी को बड़ी सेवा करनी पड़ती। एक दिन नसरुद्दीन ने सोचा कि चुपचाप जाके जो भी चोट–वोट लगी खुद ही अपनी पट्टी बांध लूंगा, मरहम लगा लूंगा, बैंडेड चिपका लूंगा; पत्नी को पता ही न चले। सुबह जब उठूंगा तब तक घाव वग़ैरह कुछ नहीं रहेंगे। नसरुद्दीन ने बड़ी होशियारी की; धीरे–धीरे घर के अंदर क़दम रखा, बिना कोई आवाज़ किए चुपचाप बाथरूम में पहुँच गया, हल्की–सी रोशनी जला ली। तेज प्रकाश में पत्नी कहीं जाग न जाए।

बेचारा नाली में गिर के, कीचड़ से सन गया था। उसने अपने घाव पोंछे, कीचड़ हटाया। फिर सोचा मरहम–पट्टी कर लूं। बैंडेड लगा लूं। तो उसने जगह–जगह अपने चेहरे पर, कंधे पर, हाथ पर; जहाँ–जहाँ चोट लगी थी वहाँ मरहम लगाकर पट्टी चिपका ली। फिर आकर चुपचाप कंबल ओढ़के सो गया।

सोच रहा था कि पत्नी को धोखा दे दूंगा। उसको पता ही नहीं चलेगा। सुबह तक मेरी चोटें वग़ैरह ठीक भी हो जाएंगी। सुबह पत्नी उठी। बाथरूम में गई। ज़ोर से चीखी कि फिर तुम रात को पीकर आ गए। नसरुद्दीन भी घबरा गया कि इसको कैसे पता चल जाता है? बड़ी तेज़ इन्ट्यूशन पावर है! नसरुद्दीन ने कहा– नहीं, बिल्कुल नहीं। मैंने नहीं पी रात।

पत्नी ने कहा तो फिर पूरे आईने पर बैंडेड और मरहम किसने लगाई है?

शराब के नशे में कहाँ पता चलेगा कि वास्तव में अपने चेहरे पे लगा रहे हो कि आईने में जो प्रतिबिंब बन रहा है उसके चेहरे पर लगा रहे हो! शराबी तो शराबी, उसे हम क्षमा कर सकते हैं; अगर वो आइडैंटिफाइड हो जाता है। लेकिन हम सब भी इसी प्रकार के तादात्म्य में जीते हैं। यही हमारी व्याधि है। इस मन के साथ हम एकात्म हो गए हैं। द्रष्टा बनो, साक्षी बनो। यह तादात्म्य घटता क्यों है? इसका भी कारण समझना। जब कोई सुखद अवस्था आती है तब हम उसके साथ उत्तेजना का रस लेना चाहते हैं।

हम तादात्म्य कर लेते हैं। हमें तादात्म्य की आदत पड़ गई फिर दुःखद अवस्था में भी वही होगा। उसमें भी हमें तादात्म्य करना ही पड़ेगा। यद्यपि हम करना नहीं चाहते, लेकिन हमारी मजबूरी और लाचारी हो गई है। और इसलिए सुख–दुःख दोनों में हमारा तादात्म्य हो जाएगा। सुख में हम करना चाहते हैं, दुःख में मजबूरी में हो जाएगा। आदतवश आइडैंटिफ़िकेशन को तोड़ना है। उसकी कीमिया होगी सुख के प्रति जागना।

सुख से तादात्म्य न करना। सुख में डूबना नहीं, उत्तेजित न होना।

कठिन है मामला! क्योंकि दुःख से तो हम टूटना चाहते हैं सुख से हम टूटना नहीं चाहते। सुख को हम भोगना चाहते हैं, लेकिन जो व्यक्ति सुख को भोगेगा फिर उसको दुःख भी भोगना पड़ेगा। दुःख से तो सभी मुक्ति चाहते हैं। संत शिरोमणि कबीर साहब ने कहा है–

'दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय,
जो सुख में सुमिरन करे दुःख काहे को होय।'

सुमिरन अर्थात् साक्षी का स्मरण; अपनी याद। दुःख में तो सब स्वयं की याद करना चाहते हैं, लेकिन कर नहीं पाएंगे; क्योंकि उसका अभ्यास नहीं किया। सुख में हम स्वयं को भूल जाना चाहते हैं, आत्म–विस्मरण में चले जाना चाहते हैं; वरन फिर सुख भी सुख जैसा नहीं लगेगा। याद रखना! अगर तुम साक्षी भाव में जियोगे; न दुःख दुःख रह जाएगा, न सुख सुख रह जाएगा। हम चूंकि सुख में डूबना चाहते हैं; इसलिए फिर मजबूरी में हमें दुःख में भी डूबना पड़ेगा। डूबने की हमारी आदत हो गई। और इससे एक गहन साधना का सूत्र निकला। यदि तादात्म्य को तोड़ना है, तो दुःख में आसान है; क्योंकि हमारी चेतना स्वयं ही उस समय तोड़ना चाह रही है। इसीलिए तपस्याएँ शुरू हुईं हम जानबूझकर कुछ दुःख आमंत्रित कर लें। किसी रविवार के दिन नाश्ता और लंच मत लेना। थोड़ा–सा उपवास कुछ घंटे का और तुम पाओगे इस उपवास के साथ बॉडी से आइडैंटिफ़िकेशन तोड़ना आसान हो गया। उपवास के इन क्षणों में भूख लगी हुई है, और भूख से कौन आइडैन्टिफाइड होना चाहेगा। साक्षीभाव साधना आसान हो जाएगा। तो योगियों ने पाया कि दुःख से तादात्म्य तोड़ना ज़्यादा सरल है। एक बार उसका अभ्यास हो जाए, तो सुख से तोड़ना भी सरल हो जाएगा।

'दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय'

अगर एक बार सुख में शुरुआत हो गई तब फिर बहुत आसान है। दो प्रकार के साधक हुए हैं– एक महावीर जैसे साधक जिन्होंने दुःखों से तादात्म्य तोड़ा दुःखों को आमंत्रित किया, तपस्या की और एक राजा जनक जैसे साधक जिन्होंने सुखों से तादात्म्य तोड़ा राजमहल में रहते हुए भी साक्षीभाव में डूब गए। मैं आपसे कहना चाहूँगा सुख–दुःख की चिंता ही न करो। न महावीर जैसे होने की ज़रूरत; न जनक जैसे होने की ज़रूरत। ज़िंदगी में सुख और दुःख बारी–बारी से आ ही रहे हैं। तुम तो हर स्थिति में चित्तवृत्ति से स्वयं को अलग जानो, खुद को पृथक पहचानो, साक्षी में डूबो; तब तुम योगी हुए।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–5

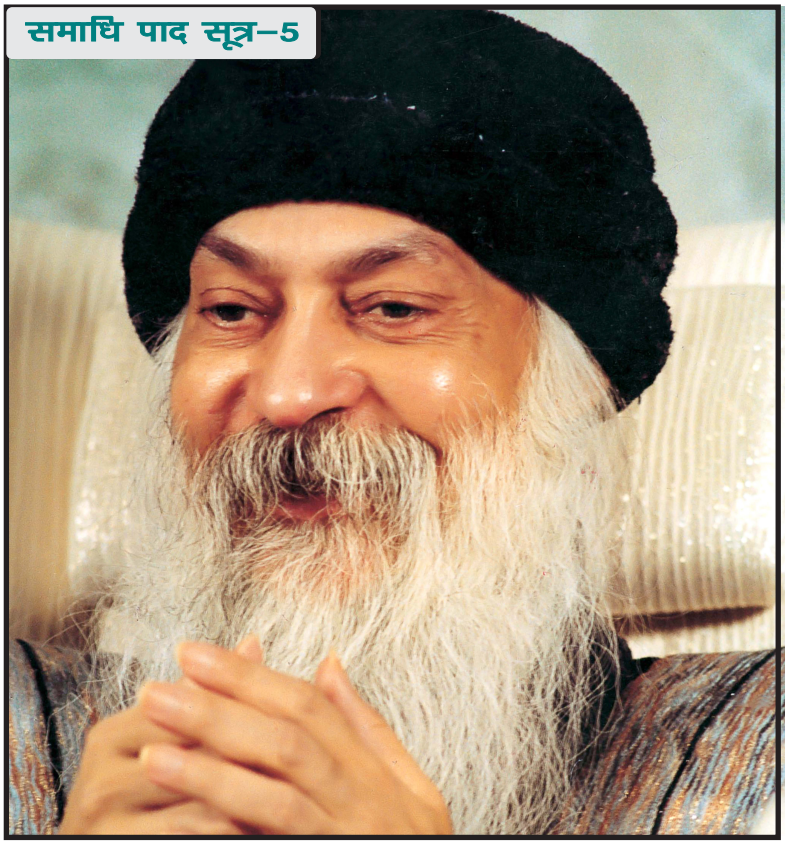

पाँच प्रकार की वृत्तियां

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।। 5 ।।

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाः अक्लिष्टाः।

मन में पांच ढंग की, होती हैं वृत्तियां;
इनसे ही बनती हैं, सुख–दुख की स्थितियाँ।

आज का सूत्र बड़ा प्यारा है! पाँच ढंग की वृत्तियाँ मन की होती हैं। जो दुःख का अथवा अदुःख का कारण हो सकती हैं। इनसे क्लेश भी उत्पन्न हो सकता है, और अक्लेश भी। पतंजलि बड़े वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे यह नहीं कहते कि

आनंद की उपलब्धि हो सकती है। क्योंकि आनंद तो हमारा स्वभाव है। वह तो हमारी अंतरात्मा में मौजूद ही है। मन की किसी वृत्ति के द्वारा उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मन को ऐसा समझना जैसे एक खिड़की है। यदि खिड़की खुली हो तो सूरज की रोशनी भीतर आ सकती है। खिड़की बंद हो, तो सूरज का प्रकाश भीतर न आ सकेगा। ठीक इसी प्रकार यदि हमारा मन खुले प्रकार का है, तो भीतर जो आनंद का सूर्य उगा हुआ है, उसकी रश्मियां बाहर तक जीवन में आ सकेंगी। जीवन प्रफुल्लता से, आनंद से आप्लावित हो सकेगा। और यदि यह खिड़की बंद है तब बाहर उदासी, रुग्णता, बेचैनी, अशांति हो जाएगी; दुःख निर्मित हो जाएगा। खिड़की खोलने या बंद करने से सूरज नहीं उगता; लेकिन खिड़की का खुला होना या बंद होना सूरज के आने के लिए मार्ग बन सकता है या बाधा बन सकता है।

तो मन की वृत्तियाँ या तो दुःख पैदा कर सकती हैं, या अदुःख की अवस्था। उस अदुःख की अवस्था में भीतर जो आनंद का झरना बह रहा है वह बाहर तक आ सकेगा। हमारे जीवन को स्वर्ग बना सकेगा।

एक और अद्भुत बात ख़्याल में रखना। भारत में जो धर्म उत्पन्न हुए हैं। इनमें तीन शब्द आते हैं– स्वर्ग, नरक और मोक्ष। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुए, वे केवल दो चीज़ों की बात करते हैं– स्वर्ग की और नरक की। तीसरी धारणा वहाँ पर नहीं है। स्वर्ग यानी सुख, नरक यानी दुःख और मोक्ष अर्थात् दोनों के पार दोनों से मुक्त– परमानंद और शांति की दशा। आनंद सुख नहीं है। सुख से भिन्न और दुःख से भी। सुख और दुःख दोनों उत्तेजना की अवस्थाएँ हैं। आनंद उत्तेजनारहित शांत अनएक्साइटिड स्टेट ऑफ कॉन्शासनैस है। तो मन की यह क्षमता है कि वह सुख या दुःख पैदा कर सकता है।

सुख के लिए पतंजलि अदुःख शब्द का प्रयोग करते हैं। नॉन एंगविष, नॉन मिज़री और भी ज़्यादा सटीक शब्द है। फिर भी साधारण भाषा में हम अक्लेश को सुख कह सकते हैं। याद रखते हुए कि आनंद इसके भी पार है...। यह मन कैसे पैदा करता है दुःख?

एक घटना याद आती है, एक बार सेठ चंदूलाल अपने घर के बाहर सीढ़ी पर बड़े उदास बैठे हुए थे। उनका कोई मित्र वहाँ से गुज़रा और उन्होंने पूछा कि सेठ जी इतने दुःखी क्यों हैं? चंदूलाल ने कहा कि मेरे जीवन में पिछले तीन हफ़्ते से बड़ी दुःखद घटनाएँ घट रही हैं। तीन हफ़्ते पहले मेरे मामा जी की मृत्यु हो गई जो अपना घर और सारी ज़मीन, जायदाद, खेत इत्यादि मेरे नाम लिख गए। वो आदमी बोला अरे, अरे! बड़े दुःख की बात है! चंदूलाल ने कहा यह कुछ भी नहीं। दो हफ़्ते पहले मेरे चाचाजी की

मृत्यु हो गई जो अपनी कार और घर के सारे आभूषण वसीयत में मुझे दे गए। उस मित्र ने कहा कि अरे! एक के बाद एक आपत्ति चली आ रही है आप के ऊपर। चंदूलाल ने कहा कि पिछले हफ़्ते मेरे एक दूर के रिश्तेदार की मृत्यु हो गई। वो निःसन्तान थे। और वो अपनी वसीयत का आधा हिस्सा एक ट्रस्ट को और आधा मुझे दान दे गए हैं। उस आदमी की आँखों में आँसू आ गए। उसने कहा चंदूलाल जी आपके जीवन में वास्तव में बड़ी दुःखद घटनाएँ घट रही हैं। चंदूलाल ने कहा ये तो कुछ भी नहीं। एक हफ़्ता पूरा गुज़र गया। और अभी तक कोई और ख़बर ही नहीं आई।

इंतज़ार कर रहे हैं... अब कोई और मरे, वसीयत में कुछ और दे जाए। अब ये मन जो अपेक्षा से भरा हुआ है, लोभ से भरा हुआ है; यह मन की ही वृत्ति है। अपेक्षा एक्सपैक्टेशन लोभ से भरा हुआ है। यह दुःख निर्मित करती है। काश अनासक्ति से भरा हो मन, निर्मोही हो! तब दुःख पैदा न होगा। मोहग्रस्त होना भी मन की एक प्रवृत्ति है और अनासक्त होना भी मन की एक प्रवृत्ति है। एक से दुःख उत्पन्न होता है दूसरे से सुख उत्पन्न होता है। यह हम पर निर्भर है...।

कुछ वृत्तियाँ हैं जिनसे आनंद की तरफ़ जाने में मदद मिलेगी। अदुःख का द्वार खुलेगा। वे वृत्तियाँ हैं– करुणा, प्रसन्नताभाव अर्थात् मुदिता, समताभाव, मैत्रीभाव, अहोभाव, साक्षीभाव, अनासक्तभाव...। इन वृत्तियों को जो विकसित करेगा उसका मन शनैः शनैः प्रसन्नता की ओर बढ़ता जाएगा। अंततः आनंद में डूबने में एक दिन सफल हो सकेगा। इनके विपरीत जो वृत्तियाँ हैं; जैसे– क्रूरता, उदासी, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, लोभ, काम, क्रोध, शिकायत, अपेक्षा, तादात्म्य भाव, अभिमान का भाव... ये दुःख पैदा करती हैं। ये भी मन का ही ढंग हैं।

अतः मन दो प्रकार का हो सकता है। यह हमपर निर्भर है कि हम कैसा मन निर्मित करते हैं अपना। जो व्यक्ति शिकायतभाव में जी रहा है। वह सदा दुःखी रहेगा। जो व्यक्ति अहोभाव में जीने लगा। उसके जीवन से दुःख विदा हो जाएंगे। दुःख निरोध हो जाएगा। पतंजलि के इस सूत्र की व्याख्या ओशो ने बड़े सरल शब्दों में इस प्रकार की है–

मन की क्रियाएं क्लेश का भी स्रोत हो सकती हैं और अक्लेश का भी। मन की ये पांच वृत्तियां, मन की यह समग्रता तुम्हें गहरी वेदना में पहुंचा सकती है। पहुंचा सकती हैं दुःख में, पीड़ा में। और यदि तुम मन का, इसकी क्रियात्मकता का उपयोग ठीक ढंग से करते हो, तो ये तुम्हें गैर–दुख में भी ले जा सकती हैं।

गैर–दुख शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। पतंजलि नहीं कहते कि मन तुम्हें आनंद में ले जाएगा, परम आनंद में ले जाएगा–नहीं। यह तुम्हें दुःख में भी ले जा सकता है यदि तुम

इसका गलत ढंग से उपयोग करते हो, यदि तुम इसके गुलाम बन जाते हो। लेकिन यदि तुम मालिक बन जाओ, तो यह तुम्हें गैर–दुःख में ले जा सकता है, आनंद में नहीं, क्योंकि आनंद तुम्हारा स्वभाव ही है। मन तुम्हें उस तक नहीं ले जा सकता। लेकिन यदि तुम गैर–दुख में हो, तो आंतरिक आनंद बहना शुरू हो जाता है।

आनंद वहां भीतर सदा से ही है। यह तुम्हारा निजी स्वभाव है। यह कोई प्राप्त करने वाली या अर्जित करने वाली चीज़ नहीं है। यह कहीं और पहुंचने और पाने की चीज़ नहीं है। तुम इसके साथ जन्मे हो; तुम्हारे पास यह है ही। यह अवस्था मिली ही हुई है।

एक अरबी कहावत है कि नरक और स्वर्ग कोई भौगौलिक स्थान नहीं हैं, वे दृष्टिकोण हैं और कोई स्वर्ग या नरक में प्रवेश नहीं करता। हर कोई स्वर्ग और नरक सहित प्रवेश करता है। जहां कहीं तुम जाते हो तुम अपने नरक का और स्वर्ग का प्रक्षेपण साथ लेकर जाते हो। तुम्हारे भीतर एक प्रक्षेपक है। फौरन तुम प्रक्षेपण कर लेते हो।

लेकिन पतंजलि सतर्क हैं। वे कहते हैं दुख या गैर–दुख; विधायक दुख या नकारात्मक दुख; लेकिन आनंद नहीं। मन तुम्हें आनंद नहीं दे सकता; आनंद कोई भी नहीं दे सकता। आनंद तुममें ही छिपा है। जब मन गैर दुख की अवस्था में होता है, तो आनंद बहने लगता है। यह मन से नहीं आता; यह कहीं पार से आ रहा होता है। इसलिए मन की वृत्तियां क्लेश का स्रोत भी हो सकती हैं और अक्लेश का भी।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में। हमेशा बहुत उदास, बहुत दुःखी रहा करता था। उसके सेब के बगीचे थे। अक्सर उसकी शिकायत होती थी... बड़ा नुक़सान हो गया.. बहुत–से सेब सड़ गए... कभी पानी कम गिरता था, सेब सूख जाते थे। सेबों को कभी पक्षी खा गए। तोतों के झुंड आ गए। सारे पेड़ बर्बाद हो गए। कभी कुछ, कभी कुछ, कभी फसल अच्छी आ जाती; लेकिन बाज़ार में दाम अच्छे नहीं मिलते, सेब का रेट गिर जाता...। एक बार संयोग से, सेब की पैदावार भी खूब हुई, कीड़े भी नहीं लगे। पानी भी ठीक जितना बरसना चाहिए, उतना ही बरसा। मार्किट में सेब की कीमत भी सही मिल रही थी। एक भी फल सड़ा नहीं था। फिर भी नसरुद्दीन बड़ा उदास और दुःखी! किसी ने उसको कहा कि नसरुद्दीन कम–स– कम इस साल तो खुश हो जाओ; इस साल तो चांदी ही चांदी है। नसरुद्दीन ने अपना सिर ठोक लिया– खाक चांदी ही चांदी! हर साल जो सड़े–गले सेब थे, वो जानवरों को खिलाने के काम आ जाते थे। इस बार जानवरों को क्या खिलाएँ? अच्छे ख़ासे सेब जानवरों को खिलाने पड़ रहे हैं।

आदमी ने कसम खा ली है कि हर चीज़ में से दुःख निकाल लेगा। यद्यपि इसका ठीक विपरीत भी संभव है। जिस व्यक्ति का मन सुखद अवस्थाओं को प्रोजैक्ट करता है; वह हर परिस्थिति में से सुख निकाल सकता है। महावीर ने कहा है–मनुष्य का मन ही उसका सबसे बड़ा मित्र है और वही उसका सबसे बड़ा शत्रु है। अगर हम मन के स्वामी हैं, मालिक हैं; मन हमारा सेवक हो गया, वह सुख का स्रोत हो जाता है और यदि हम मन के दास या गुलाम हो गए; तो मन हमारा शत्रु हो गया।

जिन स्वरों से मधुर संगीत बनता है उन्हीं सात स्वरों से शोरगुल भी बनता है। संगीत शांतिदायी है, शोरगुल दुःखदायी है। हैं वही सात स्वर; लेकिन उनका समायोजन कैसे किया? वही छब्बीस एल्फाबैट्स हैं; उन्हीं से गीत भी बन जाते हैं, उन्हीं से गालियां भी बन जाती हैं, उन्हीं से महाकाव्यों की रचना हो जाती है–अक्षर वही हैं। हम पर निर्भर है कि इस मन का हम क्या बनाएंगे? सजग होकर अपने मन का उपयोग करना सीखो।

हमारे तन और मन आपस में जुड़े हुए हैं; हम एक साईकोसोमैटिक यूनिट हैं। शरीर में कुछ होता है, तो वह मन को प्रभावित करता है और मन में कुछ होता है, तो वह शरीर को प्रभावित करता है। तन, मन और चेतन सब आपस में संयुक्त हैं। मन के प्रति खूब सजग होना। आगे हम विस्तार से बात करेंगे। ये पाँच प्रकार की प्रवृत्तियाँ कौन–कौन सी हैं और कैसे वे दुःख या अदुःख का कारण बन सकती हैं।

साधक को चाहिए वह ज़्यादा से ज़्यादा प्रसन्नता के भाव में, अदुःख की स्थिति में रहे; ताकि सच्चिदानंद का अनुभव हो सके। भीतर दुःखी व्यक्ति आनंद का अनुभव नहीं कर सकता। इस जगत की मुश्किल यही है कि दुःखी लोग परमात्मा की खोज में निकलते हैं परंतु उनकी प्रभु से मुलाकात नहीं हो सकती। वे सूरज की तलाश में तो हैं, लेकिन खिड़की उन्होंने बंद कर रखी है। जिसने खिड़की खोली है वही सूरज की धूप को जान सकेगा; वही रोशन जगत से जुड़ सकेगा। इस मन का इस भाँति उपयोग करना कि वह खुल जाए, वह खिल जाए, वह फैल सके।

भीतर जो है वह बाहर प्रवाहित हो सके। जो बाहर है वह भीतर जा सके। प्रेम का यही तो अर्थ है। हम इतने फैल जाते हैं हम दूसरे में और दूसरा हम में प्रवाहित हो सकता है; इसीलिए प्रेम में इतना आनंद है। जो व्यक्ति दुःखी होता है वो सिकुड़ जाता है– फैलने का ठीक विपरीत– और दुःखी व्यक्ति आत्महत्या में उत्सुक हो जाता है। उसका जीवन नर्क हो गया। फैलो, खिलो फूल की तरह... तब तुमसे आनंद की सुगंध उठ सकेगी... जीवन एक उत्सव बन सकेगा।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–6

जीवन–रथ की सारथी वृत्तियां

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।। 6 ।।

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः

जिंदगी चलाती हैं, ये मन की पाँच वृत्तियाँ
सच्चा ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, नींद, कल्पना, स्मृतियां।

मन की ये पाँच वृत्तियाँ ही जीवन को चलाती हैं। ये पाँच वृत्तियाँ हैं– सम्यक ज्ञान या प्रमाण, दूसरा विपर्यय या मिथ्या ज्ञान, तीसरा विकल्प अर्थात् कल्पना, चौथा निद्रा अर्थात् स्वप्न रहित नींद और पाँचवा स्मृति, याददाश्त। इन पाँच वृत्तियों से ही जीवन चल रहा है। ओशो ने इस सूत्र को समझाते हुए कहा है–

मन के पास क्षमता है प्रमाण की, सम्यक ज्ञान की, प्रज्ञा की। एक बार तुम जान लो कि इसे कैसे प्रयुक्त करना है, तब तुम कहीं भी इसका प्रकाश भेजो, सम्यक ज्ञान ही उद्घाटित होगा। इस क्षमता का उपयोग कैसे किया जाता है? यह जाने बिना... जो कुछ भी तुम जानते हो, वह गलत ही होगा।

मन की क्षमता है– असत ज्ञान की भी। संस्कृत में गलत ज्ञान को 'विपर्यय' कहा गया है– वह झूठा है, मिथ्या है। तुम्हारी वह भी क्षमता है। तुम नशा करते हो, और क्या हो जाता है? सारा संसार विपर्यय बन जाता है, सारा संसार मिथ्या हो जाता है। तुम उन चीज़ों को देखने लगते हो, जो वहां हैं ही नहीं।

मन की तीसरी वृत्ति है– कल्पना। मन के पास कल्पना करने की क्षमता है। यह अच्छा है, यह सुंदर है। वह जो सुंदर है– कल्पनाशक्ति के द्वारा उतरा है। चित्रकारी, कला, नृत्य, संगीत, जो भी सुंदर है, वह कल्पना द्वारा जनमी है। लेकिन जो असुंदर है, वह भी कल्पना द्वारा आया है। हिटलर, माओ, मुसोलिनी, ये सब कल्पनाशक्ति द्वारा बने हैं।

मन की चौथी वृत्ति है निद्रा। निद्रा का अर्थ है– मूर्छा। तुम्हारा चैतन्य स्वयं में ही बहुत गहरे चला गया है। क्रिया रुक गयी है, सचेतन क्रिया रुक गयी है। मन कार्य नहीं कर रहा है। निद्रा अक्रिया है मन की। यदि तुम्हें सपना आ रहा है, तो वह निद्रा नहीं है। तुम केवल जागने और सोने के बीच हो। तुमने जागना छोड़ दिया है, लेकिन अभी तुमने निद्रा में प्रवेश नहीं किया है। तुम तो बस बीच में हो।

निद्रा का अर्थ है एक समग्र निर्विषय अवस्था; कोई क्रिया, कोई चेष्टा मन में नहीं है। मन पूरी तरह से लीन हो गया है। वह विश्राम में है।

और अंतिम, मन की पांचवीं वृत्ति है– स्मृति। इसका भी उपयोग या दुरुपयोग हो सकता है। यदि स्मृति का दुरुपयोग किया जाता है, तो भ्रांति बनती है। वास्तव में तुम्हें कुछ याद भी रह जाए, तो भी तुम निश्चित नहीं हो सकते कि उस तरह घटित हुआ था या नहीं। तुम्हारी स्मृति विश्वसनीय नहीं है। तुम इसमें बहुत सारी चीज़ें जोड़ सकते हो। इसमें कल्पना प्रवेश कर सकती है। हो सकता है तुम इससे बहुत सारी चीज़ें निकाल दो, तुम इसके साथ बहुत कुछ कर लो। जब तुम कहते हो, 'यह मेरी स्मृति है,' यह बहुत संस्कारित हो चुकी होती है, बहुत बदली हुई। यह वास्तविक नहीं होती है। बहुत कुछ इसमें जोड़ा या घटाया जा चुका होता है।

इन पाँच वृत्तियों को समझना, क्योंकि ये दुःख का भी कारण हो सकती हैं और दुःख निरोध का भी। यदि हमने इनका ठीक ढंग से इस्तेमाल किया, तो हम दुःख से मुक्त हो सकते हैं और ग़लत ढंग से इस्तेमाल किया, तो हम और गहरे दुःख में पड़ सकते हैं। उदाहरण के लिए–सम्यक ज्ञान; संस्कृत में उसके लिए शब्द है प्रमाण। यह बना है प्रमा और करण से प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान, करण अर्थात उसका कारण, उसका साधन। यथार्थ ज्ञान का जो साधन है उसे प्रमाण या सच्चा ज्ञान या सम्यक ज्ञान कहते हैं। अर्थात् जो स्वयं सिद्ध रूप से स्पष्ट है जिसे सिद्ध करने के लिए किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं।

रामकृष्ण परमहंस से किसी ने पूछा क्या ईश्वर है? उन्होंने कहा–हाँ। उस व्यक्ति ने पूछा–कैसे? सिद्ध करें। रामकृष्ण ने कहा मैं जानता हूँ बस, सिद्ध करने का कोई सवाल नहीं। वह स्वयंसिद्ध है। तुम से कोई पूछे क्या तुम प्रेम करते हो किसी को? तुम कहोगे हाँ... लेकिन अगर कोई पूछे तार्किक रूप से सिद्ध करो... क्या वास्तव में प्रेम है? तब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे...। इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। तुम भली–भाँति जानते हो कि है प्रेम... लेकिन बुद्धि की यह क्षमता नहीं कि सिद्ध कर सके। वह स्वयं प्रमाणित है। वह स्वयं प्रकाशित है। तुम जानते हो, सीधे–सीधे जानते हो। प्रमाण का अर्थ है सम्यक ज्ञान, यथार्थ का सीधे–सीधे स्पष्ट बोध।

इसका ठीक उल्टा है–मिथ्या ज्ञान या विपर्यय। यहाँ चीज़ें वैसी नहीं दिखाई देतीं जैसी की वे वास्तव में हैं। कुछ का कुछ नज़र आता है। एक छोटा–सा उदाहरण दूं–

कांच के गिलास में आधा पानी भर देना और एक चम्मच उसमें डालना। चम्मच तिरछी या मुड़ी हुई दिखाई देगी। यद्यपि तुम भली–भाँति जानते हो कि चम्मच सीधी है। बाहर निकाल के देखोगे सीधी है। लेकिन पानी में डाल के देखोगे तो फिर तिरछी दिखाई देगी। प्रकाश के अपवर्तन के नियम से लाइट रेज़ रिफरैक्ट हो जाती हैं, मुड़ जाती हैं। इसलिए चम्मच तिरछी या टूटी हुई दिखाई देती है।

इस जगत में जिसे हम यथार्थ ज्ञान समझ रहे हैं उसमें बहुत–सी बातें विपर्यय हैं– विकृत ज्ञान। विपर्यय का अर्थ है– विकृत ज्ञान। चीज़ें वैसी नज़र नहीं आ रहीं

जैसी की वे हैं। कुछ का कुछ देखने लगे। सुबह हम कहते हैं कि सूर्य उदय हो रहा है शायद आपके मन में कभी शक पैदा नहीं हुआ होगा कि आप ग़लत देख रहे हैं; क्योंकि सूरज तो क़रीब–क़रीब नौ–दस मिनट पहले ही उदय हो चुका था। वहां से हम तक प्रकाश की किरण आने में नौ–दस मिनट लगे। अभी हम देख रहे हैं सूर्य उदय हो रहा है। वास्तव में तो वह दस मिनट पहले ही हो चुका था।

फिर तारे हैं रात में हमें दिखाई देते हैं। एक भी तारा वहाँ नहीं हैं जहाँ हमें दिखाई देता है। वे हमसे लाखों करोड़ों प्रकाश–वर्ष की दूरी पर हैं। उनसे हम तक रोशनी आने में करोड़ों–करोड़ों साल लगते हैं। कई करोड़ साल पहले वह तारा वहां था जहां हमें आज रात दिखाई देगा। इस बीच में उसका क्या हुआ? वो है भी कि नहीं है, कुछ पता नहीं। तो जगत के हमारे बहुत–सा ज्ञान विपर्यय हैं– विकृत ज्ञान हैं। हमें सम्यक रूप से बोध नहीं हो रहा है। मन की तीसरी प्रवृत्ति है– कल्पना।

हम सब जानते हैं कल्पना का सदुपयोग भी हो सकता है एवं दुरुपयोग भी। हिटलर ने एक सुपरमैन की कल्पना की थी; और योगीराज अरविंद ने भी। लेकिन दोनों की दिशाएँ भिन्न–भिन्न हो गईं। हिटलर कहता था कि सुपरमैन ही बचना चाहिए। महामानव से सबको नष्ट कर दो। यहूदियों को मिटा डालो। उसने कत्ले–आम कर दिया। कोई साठ लाख से ज़्यादा लोग उसने मार डाले! सैकंड वर्ल्ड वॉर हिटलर के कारण ही हुआ। बड़ी तबाही मची! हिटलर की कल्पना थी– सिर्फ़ शुद्ध जाति के लोग बचने चाहिएं। जो निकृष्ट लोग हैं उनको समाप्त करो; ताकि एक सुंदर दुनिया बन सके। बहुत खून उसने बहाया! कल्पना बड़ी सुंदर थी; आदर्श बड़ा ऊँचा था।

योगीराज अरविंद ने भी महामानव की, सुपरमैन की कल्पना की। लेकिन उसके द्वारा उन्होंने आत्मविकास किया। साधना में लगे और हज़ारों–हज़ारों लोगों को आध्यात्मिक साधना के लिए प्रेरित किया कि तुम महामानव बनो। अतः कल्पना बड़े दुःख में भी ले जा सकती है। और कल्पना ही गहन साधना में लगा सकती है; आनंद का द्वार भी खोल सकती है। यह मन की ही प्रवृत्ति है। हम कैसे उसका सदुपयोग करेंगे अथवा दुरुपयोग करेंगे। उसपर सबकुछ निर्भर है। स्मृति एक वृत्ति है; स्मृति सुखद हो सकती है, दुःखद भी हो सकती है।

कुछ लोग हैं जो ज़िंदगी में जो–जो दुर्घटनाएँ घटीं, बुरा हुआ, अपमान मिला, असफलता मिली उन काँटों को ही अपनी छाती से चिपकाए बैठे रहते हैं। बार–बार उन्हीं घावों को कुरेदते रहते हैं। स्मृति अर्थात जो अनुभूत विषय है जिसे हमने जाना– उसकी याद। तुम दुःख की याद कर सकते हो तब दुःख और घना होगा; लेकिन तुम चाहो तो सुखद स्मृति में भी जी सकते हो। हटाओ इन काँटों को! जीवन में बहुत सारे फूल भी खिले थे। कुछ सुखद और शांति के क्षण भी मिले थे। उनकी स्मृति को संजोओ। तब तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर सुख की संभावना और ज़्यादा बढ़ गई।

तुम जिस प्रकार की स्मृति में जियोगे उसी प्रकार की घटनाएँ और और ज़्यादा घटेंगी। ये हमारे मन की प्रवृत्तियाँ हैं; इन्हें समझना। कवि भी कल्पना करता है, चित्रकार भी कल्पना से चलता है, एक अभिनेता भी, एक संगीतकार भी। लेकिन उसकी कल्पना बड़ी सृजनात्मक होती है। मैं एक गीत पढ़ रहा था–

'कब ठहरेगा दर्दे–दिल कब रात बसर होगी
सुनते थे वो आएंगे सुनते थे सहर होगी
कब जान लहू होगी कब इश्क गोहर होगा
किस दिन तेरी सुनवाई दीदा–ए–तर होगी
कब चमकेगी फसले–गुल कब बहकेगा मयखाना
कब सुबह सुखन होगी कब शामे–नज़र होगी
कब ठहरेगा दर्दे–दिल कब रात बसर होगी
सुनते थे वो आएंगे सुनते थे सहर होगी।'

तुम अच्छी कल्पनाएँ कर सकते हो... बुरी कल्पनाएँ कर सकते हो। तुम सुखद स्वप्न देख सकते हो... तुम दुःखद स्वप्न देख सकते हो। बहुत लोग हैं जिनका न केवल दिन दुःख से भरा है; बल्कि रात भी नाइटमेयर्स दुःस्वप्नों से भरी हुई है। मन की इन प्रवृत्तियों के प्रति सावधान होना! अपने मन को एक दिशा देना– शुभ की दिशा में, सुख की दिशा में। दुःख निरोध की दिशा में इन वृत्तियों को लगाना।

विज्ञान जिसने दवाएँ खोजीं, उसी विज्ञान ने ज़हर भी खोजे। अणुबम खोजा– हिरोशिमा और नागासाकी में एक–एक लाख लोग एक सैकंड में भस्मीभूत हो गए! उसी अणु–विज्ञान से बड़ी विद्युत पैदा की जा सकती हैं। सारी दुनिया को समृद्ध और स्वर्ग बनाया जा सकता है। और उसी अणु के विस्फोट से तृतीय विश्वयुद्ध हो सकता है। वही नूक्लियर वैपन्स इस धरती को राख कर देंगे, सारे जीवन को समाप्त कर देंगे। उसी नूक्लियर विज्ञान से इतनी शक्ति पैदा की जा सकती है कि किसी को ग़रीब रहने की ज़रूरत न पड़े। स्वर्ग से भी बड़ा स्वर्ग धरती पर पैदा हो सकता हैं।

बीमारी के जो कीटाणु होते हैं जिनसे रोग फैलते थे। चिकित्सा विज्ञान ने उन्हीं कीटाणुओं के टीके बना लिए वैक्सीन्स और रोगों से प्रिवैंशन बचाव का उपाय कर लिया। वही रोग के कीटाणु जिनसे टीबी होती थी; उन्हीं कीटाणुओं का इंजैक्शन लगाकर टीबी से बचने का उपाय कर लिया।

ज्ञान का उपयोग हम कैसे करेंगे– ख़तरनाक ढंग से या सृजनात्मक ढंग से; विध्वंसात्मक ढंग से या रचनात्मक ढंग से–यह सब हम पर निर्भर है। अपने मन का सदुपयोग करना; दुरुपयोग से बचना। हम अगले सूत्रों में विस्तार से इन पाँच वृत्तियों की चर्चा करेंगे।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–7

सम्यक ज्ञान के तीन स्त्रोत

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।। 7 ।।

प्रत्यक्ष अनुमान आगमाः प्रमाणानि

हैं सम्यक ज्ञान के, तीन ही प्रमुख उद्गम;
प्रत्यक्ष बोध, अनुमान, और तीसरा है आगम।

आज पतंजलि सम्यक ज्ञान के तीन स्रोतों की बात करते हैं। पहला प्रत्यक्ष ज्ञान दूसरा अनुमान और तीसरा आगम। आगम अर्थात ज्ञानियों के वचन।

पहला प्रत्यक्ष ज्ञान। इस शब्द को ठीक से समझना! अक्ष यानीं आँख। हम कहते हैं न–साक्षी? अर्थात् आँखों देखा गवाह। मीनाक्षी अर्थात मछली जैसी आँख है जिसकी। प्रत्यक्ष का अर्थ है आँखों के समक्ष हमने स्वयं अपनी इन्द्रियों से जिसे जाना। चार्वाक कहते हैं– ईश्वर को दिखाओ, अगर ईश्वर है तो मेरी आँखों के सामने लाओ।

अध्यात्म में 'प्रत्यक्ष' शब्द का अर्थ भिन्न है। वह जो भीतर द्रष्टा है हमारे, वह जो साक्षी चैतन्य है; उसका स्वयं को जानना ही केवल प्रत्यक्ष है। डायरेक्ट कॉगनिशन। इन्द्रियों के द्वारा जो हम जानेंगे उसमें तो भूलचूक हो सकती है। इसलिए प्रत्यक्ष शब्द के वास्तविक अर्थ को समझना। सामान्य भाषा में तो है इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान। लेकिन इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान मे भी भूलचूक हो सकती है।

कल मैंने आपको कहा था– कांच के गिलास को आधा पानी से भर के उसमें हम एक चम्मच डालें तो मुड़ी दिखाई पड़ती है। हम खुद अपनी आँखों से जान रहे हैं; लेकिन क्या वह सत्य है? नहीं, सत्य तो वह नहीं है। आपने जादू के खेल देखे होंगे। जादूगर क्या–क्या कमाल दिखाते हैं। हम खुद अपनी आँखों से देख रहे हैं; लेकिन वह सत्य तो नहीं है। वह यथार्थ तो नहीं कि जादूगर स्टेज पर हाथी को लाकर खड़ा करता है, और चुटकी बजाते ही हाथी गायब हो जाता है। यह वास्तव में तो नहीं हुआ। लेकिन उसने इस प्रकार की व्यवस्था की है कि हमारी आँखें धोखा खा सकें।

प्रत्यक्ष ज्ञान में भी तीन प्रकार के दोष संभव हैं– विषय दोष, इन्द्रिय दोष और मनोदोष। कुछ प्रकाश के नियमों में, कुछ ध्वनि के नियमों में ऐसा है कि हम उस वस्तु को ठीक–ठीक वैसा नहीं जान पा रहे जैसी वह है। मैंने आपसे कहा था कि तारे वहाँ नहीं हैं जहाँ हमें दिखाई दे रहे हैं। चांद–सूरज वहाँ नहीं जहाँ हमें दिखाई दे रहे हैं। यह विषय दोष है। इसमें हमारी आँख का दोष नहीं है। बरसात में बिजली चमकती है, बादल गड़गड़ाते हैं। आपने कभी ग़ौर किया? चमक पहले दिखाई दे जाती है।

गड़गड़ाहट की आवाज़ बाद में आती है। क्यों? क्योंकि प्रकाश की गति अति तीव्र है लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकंड और उसकी तुलना में ध्वनि की गति बहुत धीमी है। मुश्किल से तीन सौ मीटर प्रति सैकंड। तो बादल का गर्जना और बिजली का चमकना जो युगपत साइमलटेनियसली घटा; लेकिन सुनने में और देखने में हमें बड़ा अंतर महसूस हुआ। हमें चमक पहले दिखाई दी। और उसके बीस–पच्चीस सैकंड बाद– वह निर्भर करेगा कि बादल हमसे कितनी दूर है– कभी–कभी तो एक मिनट बाद गड़गड़ाहट सुनाई देती हैं। हम समझेंगे कि बादल चमका पहले, गरजा बाद में।

इन्द्रियों का दोष भी हो सकता है। हमारे आँख, कान खराब हो जाते हैं। तब हमें वैसा सुनाई और दिखाई नहीं देता जैसा की है। हमारी सूघंने की क्षमता बहुत कम है। अन्य जानवरों को वैसा नहीं जान पड़ता जैसा एक कुत्ते को जान पड़ता है; जैसा एक घोड़े को जान पड़ता है। उनकी इंद्रियाँ अलग ढंग से काम करती हैं। हममें से बहुत लोग कलर ब्लांइड हैं– हरा और लाल एक ही देखते हैं। लेकिन सामान्यतः हमें पता नहीं चलेगा। उसके टैस्ट करें तब हमें पता चलेगा। कि हममें से बहुत से लोग कलर ब्लाइंड है। नीले और हरे को एक ही देखते हैं। या लाल और हरे को एक ही देखते हैं। या लाल और पीले को एक ही देखते हैं। इन्द्रिय दोष हो गया।

फिर मनोदोष, मनोदोष का अर्थ है हमारे भाव, हमारे विचार, हमारी धारणाएँ चीज़ों को बदलते हैं। जब आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं, और उसमें जो सौंदर्य दिखाई पड़ता है। वह सौंदर्य मनोदोष है वह यथार्थतः वहाँ नहीं है। वह और किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा। लैला में जो सौंदर्य मजनू को दिखाई पड़ता है वो किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता। लोग कहते हैं कि लैला एक साधारण लड़की है। उसमें कोई सुंदरता नहीं तुम क्यों दीवाने हो रहे हो? मजनू कहता है–लैला की सुंदरता को देखने के लिए मजनू की आँख चाहिए। जब तुम क्रोध में होते हो तब तुम्हें वो बुराईयां उस व्यक्ति में दिखाई देती हैं। वो हमेशा नहीं दिखाई देतीं। यह मनोदोष है। तुमने क्रोध का चश्मा पहन लिया। अब तुम यथार्थ को नहीं देख रहे। कुछ का कुछ दिखाई पड़ रहा है।

जब तुम भयभीत होते हो... तुम शाम को जा रहे हो सड़क पर... रस्सी दिखाई पड़ती है। अगर तुम भयभीत प्रकार के व्यक्ति हो... संभव है तुम्हें सांप नज़र आए। यह सांप कहाँ से उत्पन्न हुआ? यह तुम्हारे भय का परिणाम है। तो इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कहा जा सकता।

ओशो इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान का अर्थ है स्वयं को इंद्रियातीत चैतन्य रूप में जानना। अपने निराकार का अनुभव, स्वयं की चेतना का अनुभव ही वास्तव में प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रत्यक्ष ज्ञान का दूसरा स्रोत है–अनुमान इनफरेंस, जैसे धुएं को देखकर हम अनुमान लगाते हैं कि आग होगी। ठंडक से हम अनुमान लगाते हैं कि निकट में कोई

जलाशय होगा। कोई नदी होगी। हमारा अनुमान भी ग़लत हो सकता है। उसमें भी धोखा हो सकता है। फिल्मों में हम देखते हैं धुएँ का दृश्य। वो धुआं वास्तविक धुआं नहीं है। वो नकली धुआं है। सिर्फ़ धोखा है। हम देखते हैं एक मकान में आग लगी है। फिल्म में वह दृश्य देखकर यह मत सोचना कि सचमुच में किसी मकान को जलाया गया है। इस प्रकार का दृश्य पैदा किया जा सकता है। हमारा अनुमान भी ग़लत हो सकता है। थर्मामीटर से बुखार नापकर वैद्य अनुमान लगाता है कि बीमारी कितनी ख़तरनाक है। अनुमान भी ग़लत हो सकता है। हो सकता है उस व्यक्ति ने धोखा देने के लिए डॉक्टर के आने से पहले ही गरमा–गरम चाय काफ़ी पी ली हो; ताकि थर्मामीटर में मुँह का टैंपरेचर ज़्यादा आए। अनुमान ग़लत हो जाएगा। इस प्रकार अनुमान के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें भी त्रुटि की संभावना है। फिर अनुमान तर्क पर आधारित होता है।

इस जगत की सुंदर व्यवस्था को देखकर नियमबद्धता को देखकर कोई व्यक्ति अनुमान लगा सकता है परमात्मा के होने का। यह जगत इतने नियमबद्ध तरीके से, इतने हारमोनियस ढंग से चल रहा है– ज़रूर ईश्वर होगा। लेकिन कोई विपरीत तर्क भी कर सकता है। वह कह सकता है कि जगत इतने नियमबद्ध तरीके से चल रहा है– अवश्य ही ईश्वर नहीं है। यदि कोई व्यक्ति इसके पीछे होता तो भूलचूक की संभावना थी। यह जगत बिल्कुल यांत्रिक और मकैनिकल है; इसीलिए कोई भूलचूक नहीं हो रही। दोनों ही व्यक्ति तार्किक हैं।

याद रखना! एक का अनुमान विकासवादी है। जिसने परमात्मा को स्वीकारा। जगत के नियम को देखकर उसके भीतर अध्यात्म की संभावना खुली। अब वह साधना में रत हो सकेगा। जिस व्यक्ति ने इंकार कर दिया, वह भी बड़ा तार्किक है। लेकिन उसका अनुमान उसे नैगटिविटी में ले जाएगा, नास्तिकता में ले जाएगा और विकास का द्वार बंद कर देगा।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन को शनिवार की सुबह–सुबह छींक आई। तीन छींकें आईं। नसरुद्दीन ने हड़कंप मचा दिया। उसने कहा– बुलाओ सारे पत्रकारों को! प्रैस कान्फरैंस ली। उसने कहा कि मैं घोषणा करता हूँ कि तृतीय विश्वयुद्ध होने वाला है। लोगों ने कहा आपने कैसे अनुमान लगाया? नसरुद्दीन ने कहा सुनो! बचपन में मुझे शनिवार के दिन एक छींक आई थी, उसी दिन फस्ट वर्ल्ड वॉर छिड़ गया था। फिर जवानी के दिनों में शनिवार की सुबह मुझे दो बार छींक आई थी, और द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया था। अब बुढ़ापे में आज शनिवार को सुबह तीन छींकें आईं– थर्ड वर्ल्ड वॉर सुनिश्चित है। यह आदमी का तर्क, यह अनुमान ग़लत दिशा में जा रहा है। तो अनुमान में भी भ्राँति हो सकती है। भ्रम पैदा हो सकता है। लेकिन सम्यक ज्ञान का एक गौण उपकरण तो यह हो ही सकता है। अतः तर्क का सही उपयोग हो। ओशो समझाते हैं–

पतंजलि कहते हैं, अनुमान दूसरा स्रोत है सम्यक ज्ञान का। सम्यक तर्क, सम्यक

संदेह, सम्यक युक्ति, तुम्हें कुछ ऐसी चीज़ दे सकते हैं जो वास्तविक ज्ञान की ओर जाने में तुम्हारी मदद कर सकती है। यही चीज़ है जिसे वे कहते हैं अनुमान। तुमने प्रत्यक्ष तौर पर नहीं देखा है, लेकिन हर चीज़ सिद्ध करती है कि ऐसा ही होना चाहिए। परिस्थितिजनक प्रमाण मिल जाते हैं कि यह उसी तरह ही होना चाहिए।

उदाहरण के लिए तुम इस विराट सृष्टि में चारों ओर खोजते हो, हो सकता है तुम कल्पना न कर पाओ कि ईश्वर वहां है, लेकिन तुम इसका खंडन नहीं कर सकते हो। सामान्य अनुमान द्वारा भी तुम खंडन नहीं कर सकते इसका कि सारा जगत एक व्यवस्था है, एक सुसंगत जोड़ है, एक उद्देश्यात्मक रूप है। इसका खंडन नहीं किया जा सकता। वह रूपरेखा इतनी स्पष्ट है कि विज्ञान भी इसका खंडन नहीं कर सकता। बल्कि इसके विपरीत विज्ञान अधिक से अधिक रूपरेखाएं, ज़्यादा से ज़्यादा नियम खोजता चला जाता है। यदि यह जगत मात्र एक संयोग है, तो विज्ञान असंभव है। लेकिन जगत संयोग जैसा नहीं लगता है। यह आयोजित किया हुआ जान पड़ता है। और यह निश्चित नियमों के अनुसार चल रहा है, जो नियम कभी नहीं टूटते।

पतंजलि कहेंगे कि सृष्टि की संरचना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। और यदि तुम एक बार अनुभव कर लेते हो कि सृजन है, तब सृजनकर्ता प्रवेश कर चुका होता है। लेकिन यह अनुमान है; तुमने प्रत्यक्ष रूप से उसे नहीं जाना है। तुमने केवल सृष्टि की इस रूपरेखा को जाना है, योजना को, नियमों को, व्यवस्था को जाना है। और व्यवस्था बहुत भव्य है। यह बहुत सूक्ष्म है, बहुत असीम है। एक सुव्यवस्था है वहां। हर चीज़ व्यवस्थाबद्ध रूप से मर्मर ध्वनि कर रही है। सारे ब्रह्माण्ड में एक संगीतपूर्ण लयबद्धता है। कोई पीछे छिपा हुआ प्रतीत होता है। लेकिन यह अनुमान है।

पतंजलि कहते हैं अनुमान भी मदद कर सकता है सम्यक ज्ञान की तरफ जाने में, लेकिन वह सम्यक अनुमान होना चाहिए। तर्क ख़तरनाक है। वह दुधारा होता है। तुम तर्क को गलत ढंग से प्रयोग कर सकते हो, और तब भी तुम किसी निष्पत्ति पर पहुंचोगे।

सम्यक ज्ञान का तीसरा स्रोत– बुद्धों के वचन, जाग्रत पुरुषों के वचन। यह भी एक उपकरण है यथार्थ ज्ञान की तरफ़ बढ़ने का। बुद्धों के वचन पर श्रद्धा करना। जिन्होंने स्वयं जाना है उनपर श्रद्धा हमें विकास का अवसर देगी, हम विकसित हो सकेंगे। उन पर संदेह हमारे विकास के द्वार को बंद करेगा। लेकिन यह बड़ा कठिन है। हम कैसे जानें कौन बुद्धपुरुष है, कौन सच्चा ज्ञानी है? इसलिए इसको तीसरे नम्बर पर रखा है। यदा–कदा जाग्रत पुरुष होते हैं। उनके वचनों को एक हाइपोथैटिकल ट्रस्ट की तरह लेना। उस पर प्रयोग करना। और प्रयोग से तुम स्वयं निष्कर्ष निकाल लोगे प्रत्यक्ष ज्ञान पा लो तब वह तुम्हारा ज्ञान होगा। वह सच्चा ज्ञान होगा।

सम्यक ज्ञान के ये तीन स्रोत हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

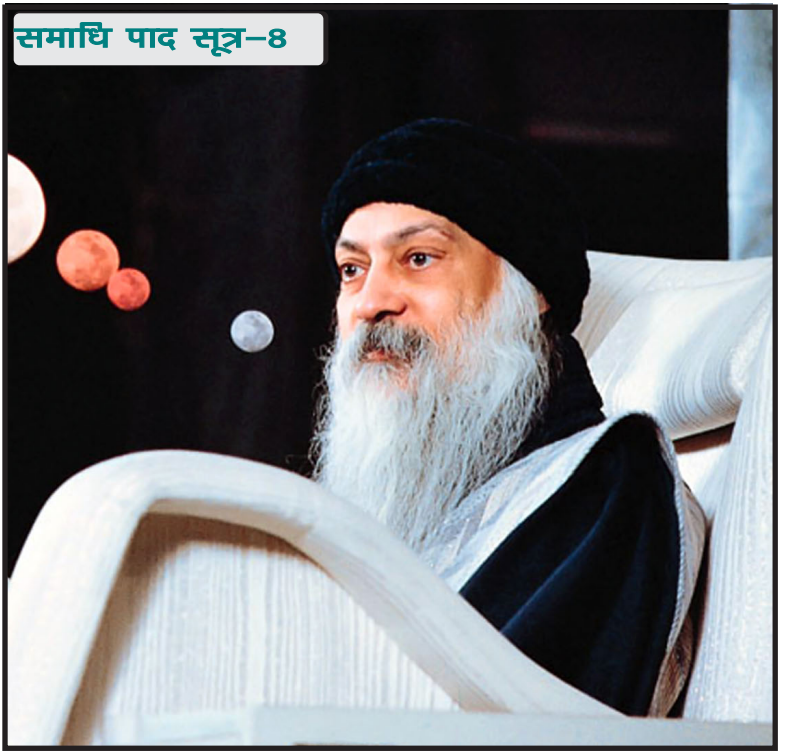

विपर्यय क्या है

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।। ८ ।।

विपर्ययः मिथ्याज्ञानम् अतद्रूप प्रतिष्ठम्

विपर्यय कथा है जिसमें, झूठ ज्यादा, सत्य कम;
जैसे रस्सी में होता, साँप का मिथ्या भ्रम।

पतंजलि कहते हैं विपर्यय एक मिथ्या ज्ञान है जो विषय के सच्चे रूप में प्रतिष्ठित नहीं है अर्थात जो वास्तविकता से मेल नहीं खाता।

कुछ का कुछ दिखाई देता है। हमारे भीतर, हमारे मस्तिष्क में जैसे एक सम्यकज्ञान का केन्द्र है; ठीक वैसे ही एक असत्यज्ञान का केन्द्र भी है। वहाँ से माया पैदा होती है। जब कोई मादक द्रव्य हम लेते हैं– हमारा असत्य ज्ञान का केन्द्र सक्रिय हो जाता है। चीज़ें वैसी दिखाई पड़ने लगती हैं जैसी वे नहीं हैं।

मैंने सुना है एक बार नसरुद्दीन रात देर तक शराब पीता रहा। एक और आदमी नशे में धुत्त हो गया था। जब शराबख़ाना बंद होने का समय आया, तो उस आदमी ने नसरुद्दीन से कहा कि मेरे भाई मेरी मदद करो मुझे कुछ सूझ नहीं रहा। मैं कैसे अपने घर पहुचूंगा। नसरुद्दीन ने कहा– मैं बताता हूँ तुम्हारे घर का रास्ता। इस सामनेवाली सड़क से जाना फिर आगे एक चौराहा आएगा। चौराहे पर कहीं मुड़ने की ज़रूरत नहीं बिल्कुल सीधे निकल जाना। कोई एक फर्लांग बाद फिर रास्ता दो हिस्सों में बंट जाएगा। एक बाईं तरफ़ जाने वाली सड़क है एक दाहिनी तरफ़ जाने वाली सड़क है। भूलकर भी दाहिनी तरफ़ जाने वाली सड़क पर मत जाना, क्योंकि मैं कई बार उस सड़क पर जा चुका हूँ; वो सड़क है ही नहीं। हमेशा बायीं वाली सड़क से जाना।

और एक दूसरी घटना सुनी है मैंने कि नसरुद्दीन का बेटा फजलू युवा हो गया। उसने कहा कि पापा अब मैं भी शराब पीऊँगा। नसरुद्दीन ने कहा– ठीक। मना तो कर नहीं सकता था क्योंकि खुद पीता था। उसने कहा– कुछ उसूल हैं शराब पीने के। उनका पालन करना। चलो आज शराबख़ाने में वही तुमको सिखाता हूँ। पहला उसूल ये है– शराब पीते–पीते नसरुद्दीन ने अपने बेटे से कहा– देखो! जो वे दो आदमी बैठे हैं, जब वे दो की जगह चार दिखाई पड़ने लगें; तब समझ लेना कि तुमने काफ़ी मात्रा में पी ली है। अब घर जाने का समय आ गया। फजलू ने कहा–लेकिन पापा मुझे तो वहाँ एक ही आदमी बैठा दिखाई दे रहा है। नसरुद्दीन पहले ही ओवरड्रंक हो चुके थे।

नशा हमारे असत्य–ज्ञान के केन्द्र को सक्रिय कर देता है। कई प्रकार के नशे हैं। शराब ही एक नशा नहीं है; प्रेम भी एक नशा है, क्रोध भी एक नशा है, घृणा भी एक नशा है, ज्ञान भी एक नशा है। जो सूचनाएं हमने इकट्ठी कर ली हैं, अपनी स्मृति में संजो ली हैं; उससे हमारे पूर्वाग्रह प्रैजुडिसिज़ निर्मित हो गए हैं। जब आप एक मुसलमान व्यक्ति से मिलते हैं, और आप एक हिंदू हैं, तो आप उस आदमी से नहीं मिल रहे जो वास्तव में वहाँ है। आपके मन में मुसलमान की धारणा पहले से ही समायी हुई है। आप वह धारणा प्रोजैक्ट कर रहे हैं इस जीवित व्यक्ति पर। इस बेचारे का उस धारणा से कुछ लेना–देना नहीं। आप हिंदू हैं। आपके मन में है कि मुसलमान खराब होते हैं। कट्टरपंथी होते हैं। ज़्यादा संभावना है आप इस व्यक्ति में भी अपनी ही धारणा को देख पाएंगे। जो आप देख रहे हैं वो बिल्कुल ग़लत है।

जब मुसलमान किसी ग़ैर मुस्लिम की तरफ़ देखता है। वह भी इस भाँति से देखता है कि ये सब काफ़िर हैं, पापी हैं। सिर्फ़ मुसलमान होना ही पुण्यात्मा होना है, शेष सब पापी हैं। बाक़ी तो कुफ़्र कर रहे हैं– नर्क जाएंगे। इस चश्मे को चढ़ा के ही वह देखता है।

ज्ञान का चश्मा बड़ा ख़तरनाक है। साधारण शराब से बहुत ज़्यादा ख़तरनाक।

और जितनी हमारी स्मृति सूचनाओं से भरती चली जाती है, भंडार बड़ा होता जाता है; हम उतने ही पूर्वाग्रही प्रैजुडिस्ट होते चले जाते हैं। तब हम जो भी देखते हैं वह सब मिथ्या ज्ञान होता है।

जीज़स से किसी ने पूछा कि आपके प्रभु के राज्य में प्रवेश के कौन अधिकारी होंगे? जीज़स ने कहा कि वे जो... बच्चों की भाँति हैं। बच्चों में ऐसी कौन–सी खूबी है? बच्चों के पास स्मृति का भंडार नहीं है। अभी वे पूर्वाग्रह से मुक्त हैं। वह चीज़ों को ठीक प्रत्यक्ष देख पाते हैं। डायरेक्ट कॉगनिशन हो पाता है। आश्चर्य से भरे बिना किसी पूर्वाग्रह के, बिना किसी ज्ञान के वे जगत को वैसा ही देखते हैं जैसा वह है। और तब बड़े विमुग्ध एवं आनंदित होते हैं। जैसे–जैसे हम बड़े होते जाते हैं सूचनाएँ हमारे पास इकट्ठी होती जाती हैं। और तब हम जगत को अपनी धारणाओं, विश्वासों, मान्यताओं एवं अपने शास्त्रों के माध्यम से देखते हैं। तब मिथ्या ज्ञान पैदा होता है। ओशो कहते हैं–

मनोवैज्ञानिकों की सबसे नई खोज है कि जब बच्चे स्कूल में दाखिल होते हैं, तो वे ज़्यादा बुद्धिमान होते हैं उससे जबकि वे यूनिवर्सिटी छोड़ते हैं। नवीनतम खोजें यही सिद्ध करती हैं। पहली श्रेणी में जब बच्चे प्रवेश करते हैं तब उनके पास ज़्यादा बुद्धि होती है। उनकी बुद्धि कम और कम होती जाएगी, जैसे–जैसे वे ज्ञान में विकसित होते जाते हैं।

जब तक वे स्नातक और पंडित और डॉक्टर होते हैं, वे समाप्त हो जाते हैं। जब वे लौटते हैं डॉक्टर की डिग्री लेकर, पीएच. डी लेकर, वे अपनी बुद्धि कहीं यूनिवर्सिटी में ही छोड़ चुके होते हैं। वे मुर्दा होते हैं। वे ज्ञान से भरे हुए होते हैं, ज्ञान से ठसाठस भरे हुए होते हैं, लेकिन यह ज्ञान मिथ्या ही है– हर चीज़ के लिए पूर्वाग्रह। अब वे चीज़ों को सीधे–सीधे अनुभव नहीं कर सकते। वे जीवित व्यक्तियों का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकते। वे सीधे तौर पर संबंधित नहीं हो सकते। हर चीज़ शब्दों का आडंबर हो गई है, शाब्दिक। अब वह वास्तविक नहीं है, वह मनोगत हो गई है।

विपर्यय एक मिथ्या ज्ञान है जो विषय से उस तरह मेल नहीं खाती जैसा वह है।

अपने पूर्वाग्रह, ज्ञान, धारणाएं, पहले से सूत्रबद्ध की हुई जानकारी एक ओर रख दो, और ताज़ी निगाहों से देखो। फिर से बालक बन जाओ। ऐसा क्षण–प्रतिक्षण करना पड़ता है क्योंकि हर क्षण तुम धूल इकट्ठी कर रहे हो।

सबसे पुराने योगसूत्रों में से एक सूत्र हैः हर क्षण अतीत के प्रति मरो; ताकि तुम हर क्षण पुनर्जीवित हो सको। अतीत के हर क्षण को जाने दो; उस सारी धूल को फेंको जो तुमने इकट्ठी कर ली है, और फिर नए सिरे से देखो। लेकिन ऐसा निरंतर करना पड़ता है क्योंकि अगले ही क्षण धूल फिर इकट्ठी हो चुकी होगी।

हमारे भीतर जो मिथ्या ज्ञान है। वह बड़ा तर्क से भरा भी हो सकता है। उमर ने कहा है कि ख़ुदा तो बड़ा रहीम है, रहमान है, करुणावान है। कुरान में ऐसा लिखा है। इसीलिए उमर खय्याम कहता है– जी भर के पीयो, जी भर के पाप करो। वह करुणावान है। वह सबको क्षमा कर देता है। अब देखिए! बड़ी तार्किक बात वो कह रहा है। उसका कहना था जब परमात्मा करुणावान है तुम पाप करने से क्यों डर रहे हो? तुम्हें भरोसा नहीं कि वो क्षमा कर देगा? अरे अगर सच में आस्तिक हो तो जी भर के पाप करो। आस्तिक को तो भरोसा होना चाहिए परमात्मा पर– वो रहीम है, रहमान है।

अब उमर खय्याम का तर्क बड़ा ख़तरनाक है। लोग गंगा स्नान करने जाते हैं– प्रयागराज में, तीर्थराज प्रयाग में। अब है तो मिथ्या ज्ञान कि गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाएंगे; लेकिन इसका भी सम्यक और असम्यक उपयोग हो सकता है। सम्यक उपयोग ऐसा हो सकता है कि हम अपने अतीत की धूल से मुक्त हो जाएं, अपराध बोध गिल्ट फीलिंग से मुक्त हो जाएं; ताकि हम जीवन को नए सिरे से तरोताज़ा होकर जी सकें– ज़्यादा जागरूक, ज़्यादा प्रेमपूर्ण, ज़्यादा ध्यानपूर्ण होकर। गंगा स्नान का साधना में उपयोग हो सकता है, अतीत से मुक्ति में मददगार होगा। वो जो बोझ हृदय पर कहीं है कि मुझसे कोई भूलचूक हुई, अगर कोई व्यक्ति यह मानता है कि गंगा स्नान से पाप धुल जाएंगे; तो वास्तव में धुल जाएंगे।

लेकिन कोई इसका दुरुपयोग भी कर सकता है कि हर्ज क्या है... हर साल जाके नहा लेंगे वाराणसी में, अथवा कुंभ के मेले में जाके नहा लेंगे। सब पापों से मुक्त हो जाएंगे! नए सिरे से फिर पाप शुरू कर दो। नया अकाउंट फिर खोल लो। क्योंकि फिर बाद में जला देंगे अकाउंट को। गंगा स्नान में सब धुल जाता है। फिर... फ़िक्र क्या पाप और पुण्य की?

यह आदमी भी तार्किक है। लेकिन इसका तर्क इसका जीवन नष्ट कर देगा; पाप से भर देगा। तो मिथ्या ज्ञान का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। गंगा में पाप धुलते हैं। यह बात मिथ्या है। किन्तु इस मिथ्या का भी सदुपयोग हो सकता है और दुरुपयोग भी।

ख़्याल रखना ये जो पाँच वृत्तियों की चर्चा हम कर रहे हैं। इनका सदुपयोग व दुरुपयोग दोनों संभव हैं। दुरुपयोग वह है जो हमारे जीवन को विकास की दिशा में न ले जाए। और सदुपयोग वह है जो हमें विकसित, प्रफुल्लित, आनंदित, शांत, प्रेमपूर्ण और समाधिस्थ करे।

मैंने सुना है। एक आदमी ने द्वार खटखटाया एक साइकायट्रिस्ट का और कहा कि पूरा गांव पागल हो गया है, और आप...! आप यहाँ चैन की नींद सो रहे हैं! सबका

इलाज करिए। सब लोग मुझे घूर–घूर के देखते हैं। उस मनोचिकित्सक ने दरवाजा खोला कि कौन आदमी है? कह रहा है पूरा गांव पागल हो गया है! दरवाजा खोलके देखा मुल्ला नसरुद्दीन नाम का एक नंगधड़ंग आदमी खड़ा है... उसने कहा सारे गांववाले पागल हो गए हैं। सब लोग मुझे घूर–घूर के देखते हैं। मुझे समझ नहीं आता कि लोगों का क्या हो गया है? साइकायट्रिस्ट भी उसे घूर–घूर के ऊपर से नीचे तक देख रहा था। मुल्ला ने कहा ऐसा लगता है कि आप भी इसी रोग से पीड़ित हैं।

साइकायट्रिस्ट ने कहा, बैठिए। पूरी बात बताइए हुआ क्या? नसरुद्दीन ने कहा मैं बहुत हैरान हूँ गांव के सारे लोग विक्षिप्त हो गए है। जहाँ भी जाता हूँ बाज़ार में... सड़क पर... लोग घूर–घूर के मेरी तरफ़ देखते हैं। बताइए क्यों देखते हैं? आप तो साइकायट्रिस्ट हैं। लोगों को कौन–सा पागलपन सवार है? उस साइकायट्रिस्ट ने कहा मुझे लगता है कि आप कोई अदृश्य वस्त्र पहने हुए हैं। वो इतने सुंदर हैं कि लोग उन अदृश्य वस्त्रों ट्रैंसपैरंट क्लोद्ज़ को देखते हैं। नसरुद्दीन ने कहा–बिल्कुल ठीक! आप ही एक समझदार आदमी मिले हैं। बोलिए आपकी कितनी फीस हुई? उस साइकायट्रिस्ट ने सोचा– है तो पागल! अच्छी फीस वसूल ली जाए। उसने कहा कि दस हज़ार रुपए। नसरुद्दीन ने कहा कि कोई फ़िक्र नहीं! नसरुद्दीन ने अपनी जेब में हाथ डाला उन अदृश्य कपड़ों में जो हैं ही नहीं... निकाले दस हज़ार रुपए... दिये साइकायट्रिस्ट को– लीजिए। उसने कहा आपके हाथ में तो कुछ है नहीं। नसरुद्दीन ने कहा–ये दस हज़ार रुपए हैं... अदृश्य हैं... घूर–घूर के देखो तब दिखाई देंगे...।

मिथ्याज्ञान पागलपन में भी ले जा सकता है। मिथ्याज्ञान सत्य में भी ले जा सकता है। जब शंकराचार्य कहते हैं– जगत माया है– तो याद रखना! यह कोई सिद्धांत नहीं है। यह बात मिथ्या है। लेकिन तुम अगर इसे मानकर जियो... जगत माया है... स्वप्नवत है। तब तुम संसार की आपा–धापी से मुक्त हो जाओगे। महत्त्वाकांक्षाओं से मुक्त हो जाओगे। संसार की चिंता फ़िक्र छूट जाएगी। तब तुम ध्यानस्थ हो सकोगे। वर्तमान के क्षण में जी सकोगे। यद्यपि यह बात झूठ है कि संसार माया है; लेकिन अगर तुम इसे हृदय में ग्रहण कर सको तब समाधिस्थ होने में बड़ी मदद मिलेगी। निर्विचार अवस्था में डूब जाओगे। और माया का क्या विचार करना... स्वप्न की ऐसी क्या फ़िक्र करना। तब तुम्हारे सारे दुःख तिरोहित हो जाएंगे। तब ये मिथ्या–ज्ञान तुम्हें सत्य में ले जाने वाला सिद्ध हुआ।

एक–एक क़दम हम धीरे–धीरे समझेंगे कि मन की ये वृत्तियाँ कैसे दुःख में ले जा सकती हैं। विक्षिप्तता में ले जा सकती हैं। अथवा ध्यान और समाधि में ले जाने में सहयोगी हो सकती हैं।

ध्न्यवाद। जय ओशो।।

शब्दों से न चिपकें

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।। ९ ।।

शब्द ज्ञान अनुपाती वस्तुशून्यः विकल्पः

अर्थ है विकल्प का– बस एक कल्पना,
शब्दों से जन्मी हुई, झूठी एक धारणा।

पतंजलि कहते हैं शब्द से उत्पन्न वह धारणा जिसके पीछे कोई सच्चाई नहीं है, वह विकल्प है।

हमारा मन शब्दों से संचालित होता है। शब्दों से हम बुरी तरह प्रभावित होते हैं। एक साधक को इसके प्रति खूब सजग रहना होगा। ये शब्द, यह भाषा हमें सम्यक दिशा में भी ले जा सकती है और ग़लत में भी। कुछ लोग शब्दों के पीछे ही पड़े रहते हैं। शब्दों पर कितना वाद–विवाद होता है। हिंदू–मुसलमान के झगड़े कि यहूदी और ईसाईयों के झगड़े... किस चीज़ के झगड़े हैं? शब्दों के झगड़े। कोई परमात्मा को कह रहा है ईश्वर... कोई कह रहा है गॉड... कोई कह रहा है अल्लाह... बस इसी पर तलवारें निकल आएंगी। शब्द हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो गए। वो जीवित आदमी उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है... उसकी गर्दन तलवार से काटी जा सकती है। एक काल्पनिक शब्द के पीछे! विकल्प की यह वृत्ति बड़ी ख़तरनाक है। शब्दों के पीछे हम एक धारणा खड़ी कर लेते हैं... इमेजिनेशन जो कि बिल्कुल झूठी है।

मैंने सुना है चंदूलाल के घर पर एक मेहमान आया। और उसने कहा कि सेठ जी एक पानी का गिलास दे दीजिए। खूब थक गया हूँ। तेज धूप में पैदल चल के आया हूँ। पसीना–पसीना हो रहा हूँ...प्यास लगी है। चंदूलाल ने कहा कि भाई साहब यह तो संभव नहीं। पानी का गिलास तो मैं नहीं दे सकता। उस आदमी ने बड़ा हैरान होकर कहा कि क्यों नहीं दे सकते? चंदूलाल ने कहा– पानी का गिलास होता ही नहीं। अरे! कांच का होता है... स्टील का होता है... या चीनी मिट्टी का होता है। पानी का गिलास कैसे हो सकता है? ऐसा कहो कि स्टील के गिलास में पानी डाल के दो। तब दे सकता हूँ। शब्दों के पीछे हम पड़ जाते हैं।

मैंने सुना है एक हड्डी रोग विशेषज्ञ ने नई–नई अपनी प्रैक्टिस शुरू की। नई क्लिनिक खोली। आसपास बगीचा था और मोहल्ले के बच्चे दिनभर पेड़ों पर चढ़ते शोरगुल मचाते। एक दिन कंपाउंडर ने कहा कि डॉक्टर साहब अगर आप कहें तो मैं इन बच्चों को मना करके आऊँ? बहुत शोर मचाते हैं। पेड़ों पर चढ़ते हैं। डॉक्टर ने कहा– नहीं, नहीं, खेलने दो इन बेचारों को... बच्चे हैं... शोर तो मचाएंगे। कंपाउंडर ने मक्खन लगाते हुए कहा कि डॉक्टर साहब आपको बच्चों से बहुत प्यार है। डॉक्टर ने कहा– नहीं रे! अगर आज खेल रहे हैं, आज पेड़ों पर चढ़ रहे हैं। तो कल पेड़ों से टपकेंगे भी, तो हड्डियां टूटेंगी– तभी तो यहाँ आएंगे। शब्दों से धोखा पैदा हो जाता है... हमें लग सकता है कि डॉक्टर को बच्चों से ज़्यादा प्यार है, कह रहा है– बच्चे हैं, खेलने दो, वो शोर तो करेंगे ही... शब्दों से बड़ा भ्रम पैदा हो जाता है।

नसरुद्दीन अपनी प्रेमिका से कह रहा था कि अगर तुमने मुझसे शादी के लिए हाँ नहीं कही, तो मैं ख़ुदा की कसम खाता हूँ, आज रात ही आत्महत्या कर लूंगा। वो स्त्री थोड़ी घबराई... उसने कहा नहीं, नहीं... आत्महत्या मत करना, मैं सोचूंगी...

विचारूंगी। नसरुद्दीन ने कहा ठीक यही बात मैं पहले क़रीब बीस स्त्रियों से कह चुका हूँ। जब भी मैं किसी से प्रेम करता हूँ... सीधे आत्महत्या पर ही पहुँच जाता हूँ। लेकिन शब्द से लोग प्रभावित हो जाते हैं। अगर तुम आत्महत्या की धमकी दोगे, तो उस औरत को भी सोचना पड़ेगा। फिर जब नसरुद्दीन अपनी प्रेमिका से विदा ले रहा था, तो उसने कहा कि मैं तेरे बिना जी नहीं सकता... बस ऐसा समझ मेरा शरीर ही जा रहा है... मेरा हृदय मेरी आत्मा तो यहीं तेरे पास मौजूद है। अपनी आत्मा तेरे पास छोड़कर जा रहा हूँ। वो बहुत प्रसन्न हुई। स्त्रियां यही सुनना चाहती हैं।

नसरुद्दीन ने आगे कहा कि तुझसे ज़्यादा सुंदर स्त्री न है, न कभी हुई है, न कभी होगी। वो स्त्री फूली न समायी... नसरुद्दीन सीढ़ियाँ उतर रहा था और उसने पीछे मुड़कर देखा... कहा कि इतनी ज़्यादा प्रसन्न न हो... यह बात सैकड़ों स्त्रियों से पहले भी कह चुका हूँ, और आगे भी कहूंगा; ये मेरी आदत है। मैं सभी से यही कहता हूँ।

लेकिन लोग शब्दों से प्रभावित होते हैं। अगर तुम किसी स्त्री से कहो कि तुम सामान्य महिला जैसी हो... जैसी और सब हैं। उदास हो जाएगी... प्रेम पैदा ही न हो सकेगा। प्रेम झूठ पर ही आधारित है, शब्दों पर आधारित है, शब्द से हमारा जीवन चलता है। लेकिन उसमें झूठ, झूठ और एक झूठ में से हज़ार झूठ निकलते चले आते हैं।

मैंने सुना है कि नसरुद्दीन एक आफ़िस में काम करता था। उसके काम से कोई भी खुश नहीं था। सारे आफिसर्स तंग आ गए थे। नसरुद्दीन भी बहुत तंग आ गया था। अंततः उसने सोचा जब मैं यहाँ के अफसरों को खुश कर ही नहीं सकता, तो क्यों न इस्तीफा दे दूं! और उसने इस्तीफा दे ही दिया नौकरी से। सभी लोग मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। अब विदाई समारोह हो रहा था। हर विदाई समारोह की तरह लोगों ने उसे भी गिफ़्ट्स दिये। प्रशंसा में बड़ी अच्छी–अच्छी बातें! कहीं ऐसा ईमानदार आदमी नहीं देखा। किसी ने कहा–कर्मठ व्यक्ति है... किसी ने कहा आफिस के लिए तो अपनी जान न्यौछावर करने को तैयार है। सभी अफसरों ने भी बड़ी प्यारी–प्यारी बातें नसरुद्दीन के बारे में कहीं। नसरुद्दीन ने कहा कि क्षमा करें मुझे तो पता ही नहीं कि आप लोगों के मेरे बारे मे इतने अच्छे विचार हैं। मैं अपना इस्तीफा वापिस लेता हूँ।

शब्दों पर मत जाना... शब्द से बड़ा झूठ पैदा हो जाता है। शब्दों के इस झूठ से, विकल्प से सावधान! ईश्वर शब्द में ईश्वर नहीं है, भगवान शब्द में भगवान नहीं है। घोड़ा शब्द में घोड़ा नहीं है; वास्तविक घोड़ा अस्तबल में बंधा है। और जिसे हम राष्ट्रीय झंडा कह रहे हैं उसपर दंगे फसाद हो सकते हैं। कोई झंडे पे थूक दे, तो मारकाट मच जाएगी। हालांकि झंडा सिर्फ़ एक कपड़ा है, एक कपड़े का टुकड़ा है; लेकिन वो प्रतीक बन गया। वो प्रतीक बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं... शब्द भी प्रतीक हैं, सिंबोलिक हैं। उनमें कोई

वास्तविकता नहीं है। बड़े मज़े की बात है! किसी ने भारतमाता की मूर्ति पे थूक दिया, तो लोग तलवारें निकाल लेंगे बंदूकें निकाल लेंगे मारने के लिए और वे धरती माता पर रोज़ थूकते हैं। न केवल थूकते हैं, बल्कि मल–विसर्जन भी करते हैं... वास्तविक धरती के ऊपर। और भारतमाता सिर्फ़ एक प्रतिमा है... भारतमाता जैसी कोई चीज़ है नहीं! लेकिन वो प्रतिमा हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाती है।

इस बात से साधक को खूब–खूब सजग होना होगा कि शब्दों के पीछे कोई यथार्थ है कि नहीं, कोई झूठी धारणा तो खड़ी नहीं हो गई?

मैंने सुना है सरदार विचित्तर सिंह रेलवे प्लेटफार्म पर खड़े थे। घोषणा हुई कि ट्रेन प्लेटफार्म नम्बर दो पर आने वाली है। ट्रेन सामने दिख भी रही थी... बस आने को ही थी। अचानक विचित्तर सिंह कूद पड़े प्लेटफार्म से... पटरियों पे जाकर लेट गए। लोगों ने कहा, अरे! यह क्या कर रहे हो? ट्रेन आने वाली है... मर जाओगे! विचित्तर सिंह ने कहा तुम भी यहीं आ जाओ... तुमने सुना नहीं अनाउंसमैंट कि ट्रेन प्लेटफार्म पर आ रही है! यह पटरी ही सुरक्षित जगह है। ट्रेन प्लेटफार्म पर आ रही है... शब्दों को पकड़ लिया। देखना चाहिए उसका भावार्थ क्या है? नहीं तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। ये शब्द नेगटिव भी हो सकते हैं; पॉज़टिव भी हो सकते हैं।

अमेरिका की अभिनेत्री हुई– ग्रेटा गारबो। आपने नाम सुना होगा! एक नाईवाड़े सैलून में काम किया करती थी। लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाया करती थी। साधारण गांव की लड़की थी। बाईस साल की हो गई थी। कभी उसे ख़्याल नहीं आया था कि वह सुंदर है। किसी ने कहा ही नहीं था उसको सुंदर... गांव की एक सामान्य गंवार लड़की। संयोग की बात एक फिल्म डायरेक्टर अपनी फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में गांव में आया हुआ था। वह सैलून में दाढ़ी बनवाने आया। ग्रेटा गारबो जब उसकी दाढ़ी पर साबुन लगा रही थी उसने आईने में उसकी शक्ल देखकर कहा था– यू आर वैरी ब्युटीफुल! तुम अत्यंत सुंदर हो। और ये शब्द सुनते ही... ग्रेटा गारबो के चेहरे पर कुछ हुआ। उसने खुद दर्पण में अपनी शक्ल पहली बार देखी। और एक सौंदर्य की अनुभूति उसको हुई। उसने पूछा सच? उस डायरेक्टर ने कहा– हाँ, सच।

उसने कहा, क्याऽऽऽ आप मुझे अपनी फिल्म में काम देंगे? डायरेक्टर ने कहा– हाँ, ज़रूर...। उसने अपना विज़िटिंग कार्ड उसको थमा दिया। ग्रेटा गारबो पहुँच गई... उसे भी लगा मैं सुंदर हूँ। ज़िंदगी में... पहली बार लगा। बाईस साल तक उसे पता ही नहीं था कि वह सुंदर है। और वह दुनिया की सर्वाधिक सुंदर अभिनेत्रियों में साबित हुई!

शब्द अद्भुत कमाल करते हैं! जब तुम अपने छोटे बच्चे से कहते हो कि तुम गधे हो.. . नालायक हो... किसी काम के नहीं, बेवकूफ़, बुद्धू। तब तुम उसको गधा बनने पर

मजबूर कर रहे हो... उसको हिप्नोटाइज़ कर रहे हो... कह कह के कि तुम बेवकूफ़ हो, इडियट हो तुम किसी काम के नहीं। एक दिन वो सिद्ध कर देगा कि पिता जी ने जो कहा था बिल्कुल वैसा ही है। वो बुद्धू होता जा रहा है तुम्हारे कहने से... अगर तुम दूसरी धारणा उसको पकड़ा दो कि तुम बहुत होशियार हो, बहुत बुद्धिमान हो, इस साल तो परीक्षा में तुम्हारे नम्बर पिछले साल से भी ज़्यादा आएंगे... तुम रोज़–रोज़ ज़्यादा बुद्धिमान होते जा रहे हो और तुम्हारा बच्चा बुद्धिमान होने लगेगा।

फ्रांस में एक व्यक्ति हुआ– कुए। उसने शब्दों के साथ बड़ा अद्भुत प्रयोग किया। वो लोगों से सिर्फ़ कहता था कि तुम स्वस्थ हो रहे हो और उसने लाखों लोगों को यही कह–कहकर स्वस्थ कर दिया। ओशो कहते हैं–

मनुष्य के लिए शब्द, भाषा, शाब्दिक ढांचे इतने महत्त्वपूर्ण हो गए हैं कि अब इससे ज़्यादा कोई चीज़ महत्त्वपूर्ण नहीं रही। यदि कोई अचानक चीख पड़ता है– आग! तो यह शब्द तुम्हें फौरन बदल देगा। हो सकता है कहीं कोई आग न हो, लेकिन तब भी तुम मुझे सुनना बंद कर दोगे। बंद करने के लिए कोई प्रयास न करना होगा। अचानक तुम सुनना बंद कर दोगे और तुम यहां–वहां दौड़ना शुरू कर दोगे। यह शब्द 'आग' कल्पना को पकड़ चुका होगा।

और तुम शब्दों द्वारा इस तरह प्रभावित होते हो! विज्ञापन व्यापार वाले लोग जानते हैं कि कौन–से शब्दों का उपयोग करना है कल्पना के सागर में ले जाने के लिए? उन शब्दों द्वारा वे तुम पर अधिकार जमा लेते हैं। वे तमाम जनसमूह को जीत लेते हैं। और बहुत–से ऐसे शब्द होते हैं जो फैशन के साथ बदलते रहते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से ख़ास शब्द चल रहा है 'नया'। तो विज्ञापनों के अनुसार हर चीज़ है नई। 'न्यू लक्स सोप!' नया लक्स साबुन! 'पुराना लक्स' नहीं चलेगा। यह 'नया' तुरंत आकर्षित करता है। हर व्यक्ति नए के पीछे है, हर व्यक्ति नए को खोज रहा है– कुछ नया। क्योंकि हर व्यक्ति पुराने से ऊब चुका है। इसलिए हर नई चीज़ में आकर्षण है। हो सकता है वह पुरानी चीज़ से बेहतर न हो। वह बदतर हो सकती है, लेकिन मात्र यह शब्द 'नया' मन में कई प्रत्याशाएं खोल देता है।

ऐसे शब्द और उनके प्रभाव गहराई से समझ लेने होंगे। वह व्यक्ति जो सत्य की खोज में है, उसे शब्दों के प्रभाव के प्रति जाग्रत रहना होगा। राजनीतिज्ञ, विज्ञापन देनेवाले लोग, वे शब्दों का इस्तेमाल कर रहे हैं। और वे शब्दों द्वारा ऐसी धारणाएं निर्मित कर सकते हैं कि तुम अपने जीवन की बाज़ी लगा सकते हो। शब्दों के पीछे हम अपनी जान तक न्यौछावर कर सकते हैं। शब्दों के पीछे सदा ढूंढ़ना वास्तव में कुछ यथार्थ है या नहीं?

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–10

सुषुप्ति : स्वप्नरहित निद्रा

अभावप्रत्ययालंबना वृत्तिर्निद्रा।। 10 ।।

अभाव प्रत्यय आलंबना वृत्तिः निद्रा

विषयों के होने का, पता नहीं चलना,
यही तो है स्वप्नरहित, निद्रा में सोना।

आज पतंजलि के सूत्रों में हम मन की चौथी वृत्ति की चर्चा करते हैं जिसे निद्रा या नींद कहते हैं। सम्यक ज्ञान, मिथ्या ज्ञान और कल्पना के बाद नींद को समझें। नींद का अर्थ है– विषयों की अनुपस्थितियों का ज्ञान। यह भी एक प्रकार का ज्ञान है। कुछ विद्वान इस पर विवाद करते हैं कि निद्रा मन की अवस्था है अथवा नहीं? निश्चित रूप से मन की ही वृत्ति है, क्योंकि अभाव की प्रतीति होना भी एक प्रकार की प्रतीति है। सुबह उठकर कोई कहता है कि आज मुझे बहुत अच्छी नींद आई। यह किसे पता चला कि बहुत अच्छी नींद आई? किसी दिन वह कहता है कि आज नींद अच्छी नहीं आई। सपने चलते रहे... रात को बेचैनी रही... सुबह स्फूर्ति और ताज़गी महसूस नहीं हो रही। यह किसे पता चला? किसी को तो पता चला। तो कोई विषय नहीं है जानने का। इसका भी ज्ञान एक प्रकार का ज्ञान ही है।

पतंजलि निद्रा की परिभाषा करते हैं– विषयवस्तु के अभाव की अनुभूति फीलिंग द एबसंस ऑफ कटैंट्स नींद है। जैसे दिन में प्रकाश होता है और प्रकाश में हमें वस्तुएँ दिखाई देती हैं। यदि अंधकार छा जाए, रात आ जाए, तो हमें अंधकार का ज्ञान होता है। वस्तुएँ दिखाई नहीं दे रहीं– यह भी तो एक प्रकार का ज्ञान है। अंधे आदमी को तो अंधकार का भी ज्ञान नहीं होता। अंधकार का ज्ञान भी केवल आँखवाले को ही होता है। अतः विषय–वस्तु कोई नहीं रही, विचार नहीं रहे, स्वप्न नहीं रहे; वह स्वप्नरहित निद्रा... वही गहरी निद्रा है। उसे सुषुप्ति कहा जाता है। हमारे मन के इन आयामों को समझना।

ऐसा समझें एक क्रॉसरोड एक चौराहा है। उस चौराहे पर एक तरफ़ जागृति और दूसरी तरफ़ स्वप्न है। यह विषयों का आयाम है। जागृति में विचार और बाहर के दृश्य हैं। स्वप्न में बाहर की घटनाओं की स्मृतियां हैं। उनकी कल्पनाएँ हैं। लेकिन विषय हैं मौजूद; आंतरिक विषय हैं, बाहरी विषय तो नहीं हैं। और दूसरा आयाम, दूसरी जो सड़क है, वह दूसरा डायमैन्शन विषयरहितता का है कटैंटलैसनैस का है। उसमें एक

तरफ़ सुषुप्ति है। और दूसरी तरफ़ समाधि है। समाधि में और सुषुप्ति में भेद यह है कि सुषुप्ति में बेहोशी घेर लेती है और ज्ञाता को स्वयं का ज्ञान नहीं होता; जबकि समाधि में होश बना रहता है। विषयरहित जागरूकता का नाम समाधि है।

पतंजलि कहते हैं सुषुप्ति और समाधि एक समान। निश्चित रूप से जहां तक कंटैन्ट्स की बात है, दोनों समान हैं। दोनों विषयरहित हैं कंटैन्टलैस हैं। लेकिन जहाँ तक जागरूकता की बात है– दोनों में बड़ा भेद है। सुषुप्ति में मूर्छा है, समाधि में जागरूकता है।

जिस प्रकार अन्य तीन वृत्तियों को हमने देखा कि उनका सदुपयोग भी किया जा सकता है और दुरुपयोग भी। ठीक इसी प्रकार निद्रा की वृत्ति का भी एक तो सामान्य सहज उपयोग है; विश्राम प्राप्त करना, भीतर से स्फूर्ति और ताज़गी प्राप्त करना। गहरी नींद में वह घटता है। यदि हम आठ घंटे सोते हैं। तो लगभग छह घंटे तो स्वप्न चलते हैं। क़रीब दो घंटे सुषुप्ति के होते हैं, ड्रीमलैस स्लीप के होते हैं। वे दो घंटे भी इकट्ठे नहीं होते। कभी दस मिनट, कभी पंद्रह मिनट, कभी बीस मिनट– खंडों में होते हैं– कोई सात–आठ टुकड़ों में सुषुप्ति घटित होती है। अब तो वैज्ञानिक परीक्षण के उपाय हैं। इस प्रकार की मशीनें बन गई हैं जिससे पता चल जाता है कि व्यक्ति स्वप्न देख रहा है या सुषुप्ति में है।

बिना मशीन के भी आप जांच कर सकते हैं। किसी सोते हुए व्यक्ति का निरीक्षण करें उसकी बंद पलकों से। अगर उसकी पुतलियां हिलती हुई नज़र आती हैं, तो जानना कि वो स्वप्न देख रहा है; जैसे हम टेलिविज़न या सिनेमा देखें तो हमारी पुतली दृश्य के साथ यहाँ–वहाँ हिलती है। स्वप्न देखते हुए भी हमारी पुतली की गति होती है। जब सुषुप्ति घटती है उस समय पुतली के मूवमैंटस बहुत कम हो जाते हैं या पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। मैडिकल लैंग्वेज में इसको बोलते हैं– रैपिड आई मूवमंट (रैम)

नींद के दो प्रकार है। एक जिसमे रैपिड आई मूवमंट है और एक जिसमें रैपिड आई मूवमंट नहीं है। रैम स्लीप एंड नॉन रैम स्लीप. सुषुप्ति अर्थात् नॉन रैम स्लीप.

एक तो हुई सामान्य प्राकृतिक निद्रा। यदि इसका दुरुपयोग किया गया, तो दो प्रकार से हो सकता है। यदि नींद की कमी हो जाए, तो अनिद्रा की बीमारी इनसोमनिया उत्पन्न हो जाती है। तब बड़ी बेचैनी रैस्टलैसनैस, जीवन में तनाव, अशांति बढ़ जाती है। आधुनिक युग में विशेषकर विद्युत की खोज के बाद लोग रात को ज़्यादा जागने लगे हैं। नींद में कमी हो गई है। सामान्य नींद भी उपलब्ध नहीं हो पा रही है। और याद रखना यदि हम ठीक से सोए नहीं है। तो फिर हम ठीक से जाग भी न सकेंगे। जीवन मे हर विपरीत बात का संतुलन है। जितनी गहरी नींद आएगी उतना ही गहरा जागरण फलित हो सकेगा।

अतः एक दुरुपयोग है– नींद की कमी, अनिद्रा में जाना। कुछ लोग इस दुरुपयोग को अध्यात्म की भाँति देखते है। सूफ़ी फ़क़ीर रात–रातभर तक जागे बैठे रहते हैं। अब

हिंदुओं में देवी–जागरण की प्रथा चल निकली है। जहाँ देखो वहाँ देवी–जागरण हो रहा है। रातभर जाग रहे हैं। यह एक प्रकार का दुरुपयोग है।

जब कोई व्यक्ति सामान्य निद्रा मे नहीं जाएगा तब उसके स्वप्न देखने की क्षमता खुली आँखों भी हो जाएगी। ऐसा व्यक्ति खुली आँखों भी सपना देखने लगेगा। भीतर सपना चल रहा है मन में और बाहर से ऐसा लग रहा है कि वह जागा हुआ है। हो सकता है कोई देवी का भक्त देवी का सपना देख ले और समझे कि देवी ने दर्शन दिए। कोई शंकर जी का भक्त शंकर जी को देख लेगा। कोई अली साहब का भक्त अली साहब को देख लेगा। कोई जीज़स का भक्त जीज़स को देख लेगा। लेकिन यह स्वप्न ही है। यह कोई आध्यात्मिक अनुभव नहीं है। यह तो एक प्रकार का दुरुपयोग हो गया।

दूसरा दुरुपयोग– मंत्र जाप। यदि कोई व्यक्ति एक ही शब्द बार–बार बोलता जाए... समझो कोई कह रहा है राम राम राम राम... लगातार कह रहा है। तो एक प्रकार की तंद्रा घेर लेगी। ऑटो हिप्नोटिक स्लीप में वह प्रवेश कर जाएगा। इसकी कोई आध्यात्मिक कीमत नहीं है। नींद की गोली ट्रैंक्विलाइज़र खाकर सोने से तो ज़्यादा अच्छा है, लेकिन है ये भी नींद ही और पश्चिम में जहाँ अनिद्रा का रोग बड़ी तेज़ी से फैला, महर्षि महेश जैसे योगियों का बड़ा प्रभाव पड़ा। इसलिए नहीं कि उनके दर्शनशास्त्र में कोई प्राण हैं या कि उनकी बातों में कोई दम है; बल्कि सीधी–सी टैकनीक उन्होंने यूज़ की, मंत्र–जाप लोगों को सिखाया। पश्चिम के लिए वो नई बात थी।

अब कोई आदमी राम राम राम राम... कहता रहे, तो मन ऊब से भर जाएगा, बोर हो जाएगा और तब वह सोने चला जाएगा। दस–पंद्रह मिनट मे ही उसे नींद घेर लेगी। इसमें राम शब्द का उपयोग है ऐसा मत समझना। तुम कुछ भी कह लो, कोका कोला कहते जाओ... दस–पंद्रह मिनट में नींद आ जाएगी। सभी माताएँ इस ट्रिक को बहुत अच्छी तरह जानती हैं। बेटा सो नहीं रहा... उसको कंधे पर रख लिया। पीठ पर थपकी दे रही थप... थप... और लोरी भी गा रही है। राजा मुन्ना सो जा... राजा मुन्ना सो जा... सुनते–सुनते राजा मुन्ना बोर हो जाता है। थप, थप, थप की थपकी चल रही है तालबद्ध और राजा मुन्ना सो जा, राजा मुन्ना सो जा, सुनते–सुनते राजा मुन्ना ऊब के सो जाते हैं, खर्राटे भरने लगते हैं। माँ की बोरिंग आवाज़ से बचने के लिए। माँ बड़ी प्रसन्न होती है कि मेरी आवाज़ बड़ी मधुर है, मेरी लोरी सुनके बच्चा सो गया।

महेश योगी उसी लोरी का प्रयोग मंत्र रूप में सिखा रहे हैं। ठीक है, नींद अच्छी आ जाती है, अच्छी बात है। लेकिन इसकी कोई आध्यात्मिक कीमत नहीं है। आध्यात्मिक कीमत तो तब होगी जब हम नींद जैसी शिथिलता के साथ ख़तरे जैसी जागरूकता जोड़ें; तब समाधि फलित होती है। समाधि अर्थात ऐसे विश्रामपूर्ण, इतने शिथिल, इतने रीलैक्स्ट जैसे की नींद में होते हो, कंटैंटलैस कोई विषय न हो और इतने

जागरूक जितना दिन के समय किसी ख़तरे की अवस्था में होते हो। इन दोनों का संयोग बन जाए, तो समाधि फलित होती है। यह हुआ निद्रा का सदुपयोग।

निद्रा का दुरुपयोग नहीं करना। भारत में बहुत से साधु, संत, संन्यासी, महात्मा नशों का प्रयोग करते रहे। वेदों मे वर्णन है सोमरस का; वो एल एच डी जैसा कोई ड्रग रहा होगा। गांजा, भांग, अफीम, चरस, हुक्के... ये साधुओं में बड़े प्रचलित हैं। ये एक प्रकार की नींद पैदा कर देंगे और नशे में भी आदमी बेहोश होकर कटैंटलैस हो जाएगा। लेकिन यह कोई समाधि की अवस्था नहीं है। यह तो कैमिकल्स का उपयोग करके नींद में जाने जैसा है। चाहे तुम मंत्र का उपयोग करके जाओ, चाहे कैमिकल्स का उपयोग करके जाओ, निद्रा की अति हो जाना निद्रा का दुरुपयोग है। और अनिद्रा में जाकर जबरदस्ती जागरण में बैठकर खुली आँखों सपने देखना वह भी दुरुपयोग है।

अध्यात्म का अर्थ है होशपूर्ण विश्राम–ओशो कहते हैं–

मन की वह वृत्ति जो अपने में किसी विषय–वस्तु की अनुपस्थिति पर आधारित होती है, निद्रा है।

यही निद्रा की परिभाषा है। मन की चौथी वृत्ति। जब कोई विषय–वस्तु नहीं होता है...निद्रा के अतिरिक्त मन हमेशा विषय–वस्तु से भरा रहता है। कुछ न कुछ वहां होता है। कोई विचार चल रहा होता है, कोई आवेश होता है, कोई आकांक्षा बढ़ रही होती है, कोई स्मृति, कोई भावी कल्पना, कोई शब्द, कोई चीज़ चलती ही रहती है। निरंतर कुछ चलता रहता है। केवल जब तुम सोए होते हो गहरी निद्रा में, तभी अंतर्विषय थमते हैं, मन मिटता है, और तुम स्वयं में होते हो बिना किसी विषय–वस्तु के।

इसे ध्यान में रख लेना क्योंकि यही अवस्था समाधि में भी होने वाली है, केवल एक अंतर के साथ कि तुम जागरूक रहोगे। नींद में तुम जागरूक नहीं होते, मन पूरी तरह गैर–अस्तित्व में चला जाता है। तुम अकेले हो जाते हो, अकेले छोड़ दिए जाते हो। कोई विचार नहीं होते; केवल तुम्हारा अस्तित्व होता है। लेकिन तुम जागरूक नहीं हो। तुम्हें विचलित करने के लिए मन वहां नहीं है, लेकिन तुम जागरूक नहीं हो। वरना निद्रा संबोधि बन सकती है। विषय–वस्तु रहित चेतना वहां है, लेकिन वह चेतना जागरूक नहीं है। वह छिपी हुई है बीजमात्र में। समाधि में वह बीज प्रस्फुटित हो जाता है, चेतना जागरूक हो जाती है। यदि चेतना जागरूक हो और कोई अंतर्विषय न रहे– यही तो लक्ष्य है! निद्रा हो और जागरूकता हो, यही है लक्ष्य!

यह है मन की चौथी वृत्ति– निद्रा। लेकिन वह लक्ष्य– जागरूकता के साथ घटित हुई निद्रा, मन की वृत्ति नहीं है। वह मन के बाहर है, जागरूकता मन के परे है। यदि तुम निद्रा और जागरूकता को एक साथ जोड़ सके, तो तुम संबोधि पा गए।

निद्रा जैसा विश्राम और ख़तरे जैसी जागरूकता– इन दोनों का संयोग समाधि है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–11

स्मृतियों के लोक में

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।। 11 ।।

अनुभूत विषय असम्प्रमोषः स्मृतिः

अनुभव की यादें हीं, कहलातीं स्मृतियां;
पैदा उनको करतीं हैं, मन की हीं वृत्तियाँ।

आज हम पाँचवीं वृत्ति... स्मृति पर चर्चा करेंगे। स्मृति का अर्थ है याददाश्त। पतंजलि स्पैसिफाई करते हैं कि अनुभूत विषय की याद अर्थात जो हमने स्वयं अनुभव किया है। वे कहते हैं असम्प्रमोश, अर्थात् जो चुराया हुआ न हो। समझो आपने किसी से केवल सुना है कि क्रोध हो रहा है, आपका स्वयं का अनुभव नहीं है। यह सुना हुआ शब्द भी आपकी स्मृति में उपलब्ध है, लेकिन यह स्मृति वास्तव में आपकी नहीं है। आपने किताब में पढ़ा है या किसी गुरु से सुन लिया है कि क्रोध हो रहा है। यह स्मृति किसी काम न आएगी। क्योंकि जब कोई आपका अपमान करेगा, तो आप क्रोध से भर जाएंगे। यद्यपि आप भली–भाँति जानते थे (वो जो आपने पढ़ा हुआ है, सुना हुआ है) कि क्रोध बुरा है, नहीं करना चाहिए। लेकिन यह अनुभूत विषय नहीं है, इसे आपने स्वयं नहीं जाना है।

जिस चीज़ को आपने स्वयं जाना है वही आपकी प्रामाणिक स्मृति है। ऑथैंटिक मैमरी। आग में हाथ डालने से हाथ जलता है। ऐसा आपने स्वयं जाना है। इसलिए आप दुबारा अब आग में हाथ नहीं डालेंगे। कोई कहे कि लो पचास रुपए देता हूँ, थोड़ा–सा तो आग में झुलसा के देख लो, क्या पता जलता है कि नहीं! आप कहेंगे क्या मज़ाक करते हो! तुम पचास दो कि पचास हज़ार मैं आग में हाथ नहीं डालूंगा। क्योंकि तुम स्वयं जानते हो, यह तुम्हारी स्मृति का हिस्सा कि तुम एक बार आग में जले थे। बड़ी तकलीफ व पीड़ा हुई थी। क्रोध की अग्नि में अनेक बार जले, लेकिन वह तुम्हारी स्वयं की स्मृति नहीं बनी। ऐसा तुमने दूसरों से सुना है, पढ़ा है किताबों में। वह चुराया हुआ ज्ञान प्रामाणिक स्मृति नहीं है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने दोस्त चंदूलाल को बता रहा था कि मेरा कुत्ता बड़ा ही वफादार कुत्ता है। चंदूलाल ने पूछा, ऐसी कौन–सी विशेष बात वो करता है? नसरुद्दीन ने कहा वो अखबार और पत्रिकाएँ मुँह में दबाकर उठाके ले आता है और

मुझे देके जाता है। चंदूलाल ने कहा, यह तो कोई ख़ास बात नहीं, सभी कुत्ते यही करते हैं। मेरा कुत्ता भी यही करता है। इसमें वफादारी की कौन–सी बात? नसरुद्दीन ने कहा– तुम समझे नहीं। वो अखबार और मैगजीन मेरे घर से नहीं, पड़ोसियों के यहाँ से उठाकर लाता है।

पतंजलि कहते हैं– असम्प्रमोश– चुराया हुआ न हो, पड़ोसी के घर से उठाया हुआ नहीं, शास्त्रों और ग्रंथों से नहीं, उपदेशकों की बातों में से उठाया हुआ नहीं, सुनी सुनाई बात नहीं, तुम्हारे स्वयं के ज्ञान की स्मृति ही तुम्हारी प्रामाणिक स्मृति है। भ्रांतिपूर्ण स्मृति पूर्णतः हमारी होती है। हम जिसे समझते हैं कि सचमुच में ऐसा हुआ था, तो कोई ज़रूरी नहीं कि वैसा हुआ हो।

सब लोग कहते हैं कि बचपन के दिन बड़े स्वर्णिम थे; कोई बच्चा इस बात से राज़ी नहीं है। बच्चे जल्दी से जल्दी बड़े हो जाना चाहते हैं। वे अपने पिता की बगल में टेबल पर खड़े होकर कहते हैं कि लीजिए मैं भी आपके जैसा बड़ा हो गया। वो एक दो रुपए की नकली मूंछ ले आते हैं बाज़ार से। नकली मूंछ लगाकर वे बड़े होने का सुख ले लेते हैं। कोई बच्चा सुखी नहीं है बचपन में, सर्वथा दूसरों पर निर्भर है, दूसरों की आज्ञा उसे माननी पड़ती है। हर छोटी–छोटी बात के लिए उसे औरों से पूछना पड़ता है। कोई स्वतंत्रता नहीं, अपने मन से वह जी नहीं सकता। वो जल्द से जल्द बड़ा और शक्तिशाली होना चाहता है। फिर बूढ़े होकर यही लोग कविताएँ लिखेंगे कि बचपन के दिन कैसे प्यारे थे!

निश्चित रूप से इनकी यह स्मृति बड़ी भ्रांति से उत्पन्न हो रही है। यह प्रामाणिक नहीं है। बुढ़ापा और भी खराब है; इसीलिए अब ये पीछे पलट कर देख रहे हैं कि शायद वही दिन अच्छे थे। न केवल व्यक्तिगत रूप से सामाजिक रूप से भी हम इस भ्रांतिपूर्ण स्मृति में जीते हैं। भारत में लोग कहते हैं कि पहले सतयुग था राम के ज़माने में या और पहले... फिर धीरे–धीरे पतन हो गया। अब कहते हैं कि कलयुग आ गया, पतन की पराकाष्ठा। यह धारणा सिर्फ इतना बताती है कि हमारा देश बूढ़ा हो गया है। कभी कोई सतयुग नहीं था। लेकिन हमने भ्रांतिपूर्ण स्मृति निर्मित कर ली। उससे हमारा अहंकार तृप्त होता है कि कभी बड़े सुख के दिन थे। अहंकारपूर्ण भ्रांति से बचना, क्योंकि जिसे हम अपनी स्मृति कहते हैं वास्तव में बहुत कुछ प्रक्षेपित और कल्पित होती है।

मैंने सुनी है, खलील जिब्रान की लिखी हुई एक कहानी कि एक घर में माँ–बेटी रहा करती थीं। दोनों को नींद में चलने की बीमारी थी। एक दिन ऐसा हुआ सुबह चार बजे दोनों अलग–अलग अपनी–अपनी नींद में बगीचे में आ गईं। जैसे ही उस बूढ़ी स्त्री ने अपनी जवान बेटी को देखा– ज़ोर से चिल्लाई – तेरे ही कारण मेरी युवावस्था

समाप्त हो गई। घर में जो भी आता है, तेरी तरफ़ उसकी नज़र उठती है। मेरी तरफ़ कोई देखता भी नहीं। तूने ही मेरा सौंदर्य नष्ट कर दिया है। तू मेरी दुश्मन है। तू समाप्त हो जाए, तो मेरे जीवन में फिर से बहार आ जाए। तेरे कारण मेरी जवानी बरबाद हो गई। वह लड़की बोली अपनी माँ से कि बुढ़िया तेरी वजह से मैं किसी से प्रेम नहीं कर पाती, मैं किसी से मिल नहीं पाती, तू मेरी चौकीदारनी बनी बैठी रहती है। तूने मेरी युवावस्था में ज़हर घोल दिया। जवान रहते हुए भी मैं जवानी का सुख नहीं भोग पा रही हूँ– सिर्फ़ तेरे कारण! तू ही मेरे जीवन में एकमात्र व्यवधान है। तू ही मेरे जीवन में बाधाएँ खड़ी करती है। तभी सुबह के पक्षी बोले... मुर्गे ने बांग दी, सुबह की ठंडी हवाएँ चलीं, दोनों की नींद अचानक खुली!

वो लड़की अपनी माँ से बोली, अरे माँ! आप इतनी ठंड में यहाँ क्यों आ गईं? चलिए कहीं तुम्हें सर्दी न लग जाए। सुबह की ठंडी हवाएँ हैं। मैं शाल लाकर दूं? चलिए भीतर चलिए, आपकी वैसे भी तबियत ठीक नहीं। डॉक्टर ने आपको रैस्ट करने के लिए कहा है। वो बूढ़ी बोली– नहीं बेटी, मैं ठीक हूँ, मुझे तेरी चिंता है। मेरा क्या! मैं तो बूढ़ी हो गई। तू स्वस्थ रहे, तू सुखी रहे, तू लम्बे समय तक जी, तू दीर्घायु, तू शतायु हो! चल भीतर, तुझे चाय बनाकर पिला दूं। ये दोनों स्त्रियां बाद में स्मरण भी न कर पाएंगी। इन्होंने नींद की अवस्था में क्या कहा था। जागृति में हम एक अलग जीवन जीते हैं और नींद में अलग।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे बोली कि सुनो जी तुम रात में बहुत कुछ उल्टा सीधा बड़बड़ा रहे थे, नींद में मुझे गालियां दे रहे थे। नसरुद्दीन ने कहा– नींद में कौन साला था, मैं तो पूरी तरह जागा हुआ था। मैंने सोचा तुम सो रही हो, इसलिए साहस करके वो बातें बोल पाया जो तुम्हारे जागते हुए नहीं बोल पाता।

हमारे भीतर कुछ और चल रहा है। लेकिन हम अपनी स्मृति को भी धोखा दे रहे हैं। अपनी भ्रांतिपूर्ण स्मृति से सावधान! स्मृति के प्रति ईमानदार होना, जागरूक होना! प्रामाणिकता विकास में सहयोगी होगी। मुक्तिदायी है प्रामाणिकता, लेकिन है कठिन! तुम्हें अपने भीतर की सच्चाई का सामना करना सीखना होगा। जो वास्तव में तुम्हारी स्मृति में अंकित है उसको जानना तपस्या है। क्योंकि तुम खुद ही उसे देखना नहीं चाहते। जब व्यक्ति साक्षी हो जाता है अपनी स्मृति का, ऐसा नहीं कि उसकी स्मृतियां समाप्त हो जाती हैं; वह जो मन में रिकॉर्डिंग्स हैं उनके प्रति वह तटस्थ हो जाता है। यद्यपि वे रिकॉर्डिंग्स तब भी मौजूद रहती हैं और समय आने पर वह उनका उपयोग करता है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि वो रिकॉर्डिंग वो टेप रिकॉर्डर दिन–रात चौबीसों घंटे चलता नहीं रहता है।

सामान्यतः हमारे भीतर की जो स्मृतियां है वो निरंतर चलती ही रहती हैं। कोई ज़रूरत हो कि न हो और इन स्मृतियों के कारण जीवन में बड़ी ऊब उत्पन्न होती है। छोटे बच्चों को देखते हो! कितने उत्फुल, कितने प्रसन्न! उनकी प्रसन्नता का कारण– क्योंकि उनके अंदर कोई स्मृति नहीं है। वे जगत को पहली बार देख रहे हैं। आश्चर्यचकित और विमुग्ध होकर देखते हैं, इसीलिए बच्चे इतने आनंदित दिखाई पड़ते हैं। नदी तट पर खेलते हुए बच्चे चमकदार पत्थरों, सीपियों और शंखों को जोड़कर कितने आनंदित होते हैं! तुम्हें उसमें कोई आनंद नहीं आता क्योंकि तुम कहते हो कि यह तो मेरा जाना हुआ है। इस सीपी, शंख में क्या रखा है? इस चमकदार कंकड़ में क्या रखा है?

जैसे–जैसे हमारी स्मृति हम पर हावी होती जाती है वैसे–वैसे हमारे जीवन का आनंद नष्ट होता जाता है। चांद पर पहुंचने के लिए लाखों साल से आदमी ने सपने देखे थे। कृष्ण की कहानी है कि चांद पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाते तो यशोदा माँ थाली में पानी भरके चांद का प्रतिबिंब उनको दिखा देती। पूरी मनुष्य जाति में सभी बच्चे चांद पर जाने का सपना देखते रहे। लाखों साल बाद विज्ञान यह इंतज़ाम कर पाया कि मनुष्य चांद पर पहुँचे। सब लोग बड़े एक्साइटिड थे! अपने–अपने टेलिविज़न से चिपके हुए देख रहे थे जब नील आर्मस्ट्रांग अपोलो यान में चांद पर पहुँचा। लेकिन दस–पंद्रह मिनट में सारा एक्साइटमैंट समाप्त हो गया। देख लिया दृश्य, देख लिया चांद को, बात आई गई हो गई, ख़तम हो गई। अब चांद पर पहुँचना उत्तेजना की बात नहीं रही। लाखों साल जिसका इंतज़ार किया था अब वो हमारी स्मृति का हिस्सा हो गया। देख लिया वो दृश्य, अब उसमें सारा रस समाप्त हो गया। स्मृति अगर हम पर हावी हो जाए तो हमारे जीवन की प्रसन्नता को नष्ट कर देती है। स्मृति का सदुपयोग जब–जब ज़रूरत पड़े, तो वह बीच में आए अन्यथा बीच में न आए। ओशो कहते हैं–

स्मृति क्या है? पिछले अनुभवों को स्मरण करना...।

ये परिभाषाएं हैं। पतंजलि चीज़ों को स्पष्ट कर रहे हैं ताकि बाद में तुम उलझन में न पड़ो। निरंतर स्मृति घटित हो रही है। जब कभी तुम कुछ देखते हो, फौरन स्मृति बीच में चली आती है और उसे विकृत कर देती है। तुम पहले मुझे देख चुके हो। जब तुम मुझे फिर देखते हो, स्मृति तत्काल चली आती है। यदि तुमने मुझे पांच वर्ष पहले देखा था, तब पांच वर्ष पहले की तस्वीर, वह पिछली तस्वीर तुम्हारी दृष्टि में आ जाती है और तुम्हारी आँखों को भर देती है। तुम मुझे उस तस्वीर द्वारा देखोगे।

इसीलिए यदि तुमने अपने मित्र को बहुत दिनों से नहीं देखा होता है, तो जिस क्षण उसे देखते हो तुरंत कह देते हो, 'तुम बहुत दुबले दिख रहे हो', या 'तुम बहुत अस्वस्थ दिख रहे हो', या 'तुम्हारा मोटापा बढ़ गया है।' तुरंत तुम यह कह देते हो।

क्यों? क्योंकि तुम तुलना कर रहे हो, स्मृति बीच में आ गई है। भले ही वह आदमी स्वयं न जानता हो कि वह मोटा हो गया है, या कि पतला हो गया है, लेकिन तुम जान जाते हो; क्योंकि फौरन तुम तुलना कर सकते हो। वह पिछला, वह उसका अंतिम चित्र जो तुम्हारे मन में था, चला आता है, और फौरन तुम तुलना कर सकते हो।

यह स्मृति निरंतर रहती है। यह प्रक्षेपित हो रही है हर चीज़ पर, जिसे तुम देखते हो। लेकिन यह पिछली स्मृति छोड़नी होती है। इसे तुम्हारे बोध में सतत हस्तक्षेप नहीं बने रहना चाहिए; क्योंकि यह तुम्हें नए को जानने नहीं देती। तुम हमेशा पुराने ढांचे जानते हो। वह तुम्हें नए को अनुभव नहीं करने देती, वह हर चीज़ को पुराना और रद्दी बना देती है। और स्मृति के कारण हर व्यक्ति ऊबा हुआ है, सारी मानवता ऊबी हुई है। किसी के चेहरे की ओर देखो हर कोई ऊबा हुआ दिखता है। मरने की हालत तक ऊबे हुए हैं। कुछ नया नहीं है। कोई उल्लास नहीं है।

अतीत की स्मृतियों को बीच में न आने दें। वर्तमान के क्षण में जीना सीखें तब स्मृति का सदुपयोग हो पाएगा। अभी स्मृति हमारे बीच में जबरदस्ती आ रही है और स्मृति को ज्ञान न समझें। किसी ने गीता कंठस्थ कर ली है; किसी ने पतंजलि के सूत्र रट लिए हैं; यह पांडित्य किसी कीमत का नहीं। यह मन की वृत्ति ही स्मृति है। यह वास्तविक ज्ञान नहीं है। इसलिए मैमोरी और अवेयरनैस दोनों पर्यायवाची नहीं हैं। हमारी शिक्षा–पद्धति हमारी स्मृति को ही मजबूत करती है। स्कूल में जो परीक्षाएँ हम लेते हैं बच्चों की वे उनकी याददाश्त की परीक्षाएँ हैं। उनकी चैतन्यता की नहीं।

चैतन्यता सीखो, जागरूकता सीखो! जागरूकता मन की वृत्ति नहीं है। इसलिए स्मृति आध्यात्मिक रूप से धोखा है। वह जो पंडित, पुरोहित हैं जिन्हें हम बड़ा ज्ञानी कहते हैं; केवल उनका स्मृति भंडार मजबूत है बस। टेप रिकॉर्डर की कसैट में अगर गीता भरी हुई है या कुरान या बाईबल इससे टेप रिकॉर्डर की कसैट मोक्ष को उपलब्ध नहीं हो जाएगी। किसी ऑडियो सीडी में पूरा का पूरा धर्मग्रंथ उपनिषद सारे भरे हुए हैं उससे सीडी मोक्ष नहीं चली जाएगी। वैसे ही ये पंडित, पुरोहित जिन्होंने तोता रटन सब याद कर लिया है, भी मुक्ति को उपलब्ध नहीं होंगे, मुक्ति तो घटती है जागरूकता से, ध्यान से, समाधि से...।

धन्यवाद। जय ओशो।।

वृत्तियों का निरोध कैसे हो

अभ्यासवैराग्ययाभ्यां तन्निरोधः।। 12 ।।

अभ्यास वैराग्ययाभ्याम् तत् निरोधः

वैराग्य से रुक जाता, बाहर को जाता मन;
अभ्यास से संचालित, होता भीतर सुमिरन।

एक बार ज़रा याद करें कि पूर्व सूत्रों में पतंजलि ने क्या कहा? सबसे पहले– योग की परिभाषा। चित्तवृत्तियों का निरोध योग है। फिर समझाया की चित्तवृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं जो दुःख या अदुःख का कारण हो सकती हैं। ये हैं– सम्यक ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, निद्रा, कल्पना और स्मृतियां। ये दो दिशाओं में ले जा सकती हैं– सुख अथवा दुःख। आनंद तीसरी बात है। शांति बिल्कुल भिन्न बात है। वह मन की किसी वृत्ति का हिस्सा नहीं; वह हमारा सहज स्वभाव है; वह मन के पार हमारी अंतरात्मा की सहज अवस्था है। लेकिन जो व्यक्ति मन के तल पर सुख में जीने लगा, जिसका दुःख निरोध हो गया; केवल वही व्यक्ति आनंद की ओर अग्रसर हो सकता है। जो दुःख के काँटों में उलझा है। उसके भीतर से आनंद प्रवाहित न हो सकेगा। दुःख की चट्टानें उस आनंद को बहने न देंगी। झरना तो भीतर मौजूद है; लेकिन बह न पाएगा।

अब पतंजलि चर्चा करते हैं कि कैसे इन वृत्तियों का निरोध हो? दो बातें– अभ्यास और वैराग्य। अभ्यास अर्थात किसी क्रिया की पुनरावृत्ति रैपिटिशन; बार बार उसे करना, याद रखना। कोई बात हमें यदि बौद्धिक रूप से समझ आ गई; इससे वह हमारे जीवन का हिस्सा नहीं हो जाती; उसका अभ्यास करना पड़ता है। अभ्यास के द्वारा हम धीरे–धीरे उसमें पारंगत होते हैं।

ऐसा समझो, आप ड्राइविंग सीखने गए। सिखाने वाले ने पाँच मिनट में आपको सबकुछ समझा दिया– यह है स्टीयरिंग, यह है एक्सीलरेटर, यह है ब्रेक– इसको कब दबाना, कब नहीं दबाना– यह चाबी रही स्टार्ट करने की। क्या इतना समझने से आप गाड़ी चलाना सीख गए? नहीं, अभी गाड़ी को स्वयं चलाना होगा। धीरे–धीरे पंद्रह, बीस दिन... गाड़ी चलाते–चलाते आप लाइसेंस प्राप्त करने के योग्य हो पाएंगे और उसके बाद भी और... और अभ्यास करना होगा। जैसे–जैसे ड्राइविंग का अभ्यास बढ़ता चला जाएगा, आप कुशल और निपुण होते चले जाएंगे। जहां पहले चेतन मन को इनवोल्व होना पड़ रहा था गाड़ी चलाने में, अब धीरे–धीरे अवचेतन मन टेकओवर कर लेगा। फिर आप गीत गुनगुनाते हुए, म्यूज़िक सुनते हुए, मोबाइल पर बात करते हुए... जैसे चाहें ड्राइव कर सकते हैं। अब ड्राइविंग की क्रिया से आपकी चेतना मुक्त हो गई। अब यह किसी अन्य काम में लग सकती है।

अतः अभ्यास के द्वारा ही सारी चीज़ें हो सकती हैं। चाहे वह संगीत हो, कला हो कि अभिनय हो, कोई अच्छा वक्ता हो कि कोई अच्छा कवि हो या लेखक हो– अभ्यास के द्वारा ही निपुणता आती है। सर्कस के लोग क्या–क्या कमाल के काम करते हैं! जादूगर कैसे–कैसे जादू दिखाता है। अभ्यास से वे अपने काम में कुशल हो गए! तो अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। यदि हमने अपने जीवन में कुछ रूपांतरण करना है। तो हमें विपरीत का अभ्यास साधना होगा। क्योंकि पुराने अभ्यास से मुक्त होने का एक ही उपाय है। उसके विपरीत अभ्यास किया जाए।

पुराने अभ्यास का एक मोमैंटम है... जैसे आप साईकल चला रहे हैं; आप पैडल मार रहे थे... आपने पैडल मारना बंद भी कर दिया, तो भी साईकल अभी रुक नहीं जाएगी। पुराना मोमैंटम, संवेग अभी साईकल को और चलाए जाएगा; थोड़ी दूर तक साईकल और आगे जाएगी।

अब ब्रेक लगाने का भी अभ्यास करना होगा। किसी आदमी को सिगरेट पीने की आदत है। सिर्फ़ यह समझ लेने से कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए ख़तरनाक है, आदत नहीं छूट जाएगी। सिगरेट न पीने का भी अभ्यास करना होगा। हमारे भीतर दो गुण हैं– रजोगुण और तमोगुण। रजोगुण की मांग है कि पुराने अभ्यास को जारी रखा जाए चाहे। वह अभ्यास कैसा भी हो हम उसकी पुनरावृत्ति रैपिटिशन की मांग करते हैं। रजोगुण चाहता है वह पुनः पुनः, बार–बार हो और हमारे भीतर का तमोगुण नए का प्रतिरोध करता है; रिज़िस्टंस टु द न्यू. वह नए को जीवन में नहीं आने देना चाहता।

एक आध्यात्मिक साधक को अपनी इन दो प्रवृत्तियों के प्रति जागरूक होना पड़ेगा। पुराने अभ्यास को तोड़ना और नए का स्वागत– वैराग्य और अभ्यास– ये दो

बातें महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसा समझें एक नदी बह रही थी। यदि हम इस नदी के पानी को किसी नए स्थान पर नहर द्वारा ले जाना चाहते हैं, तो हमें दो काम करने पड़ेंगे। एक तो डैम बनाना होगा, एक बांध; ताकि पानी रुके। वह पुरानी धारा में बहता चला गया, तो नई जगह ले जाने के लिए पानी ही न बचेगा। एक तो बांध बनाना होगा और दूसरे एक नई नहर खोदनी होगी। फिर हम इस पानी को खेतों में सिंचाई के लिए, या वाटर सप्लाई टैंक में, अथवा विद्युत पैदा करने के लिए ले जा सकेंगे।

वैराग्य का अर्थ है बांध बनाना और अभ्यास का अर्थ है एक नई नहर खोदना। वो जो पुरानी आदतों में हमारी इच्छाएं, हमारे राग हमें खींच रहे थे– उनको रोकना, उनको ठहराना। मान लीजिए आपको क्रोध करने की आदत है। आज आपको समझ भी आ गया कि क्रोध नहीं करना चाहिए। इससे क्रोध रुक नहीं जाएगा। क्रोध आपके अचेतन मन का हिस्सा बन गया है; वो शरीर में समाहित हो गया है। शरीर में ऐसे हॉरमोन्स हैं, ऐसे विषैले द्रव्य हैं जो क्रोध के समय छूट जाते हैं। इनके स्त्रावित होते ही आपका वश नहीं है। चीज़ें आपके कन्ट्रोल से बाहर हो जाती हैं। आपकी बौद्धिक समझ काम नहीं करेगी कि क्रोध बुरा है; अक्रोध की आदत बनानी होगी।

गुरजिएफ के पिता ने मरते समय कहा कि बेटा मेरे पास वसीयत में देने के लिए कोई धन–संपदा तो है नहीं; एक छोटा–सा सूत्र, छोटी–सी शिक्षा तुझे देकर जाता हूँ। जब कभी क्रोध आए– चौबीस घंटे के लिए रुक जाना, पोस्टपोन कर देना! उस आदमी से कहना कि हम उस संबंध में कल बात करेंगे। मैं तुझ से यह नहीं कह रहा हूँ कि क्रोध करना कि न करना; जो तुझे करना हो करना; लेकिन चौबीस घंटे बाद। गुरजिएफ नौ साल का था; मरते हुए पिता को दिए हुए वचन का उसने ज़िंदगी भर पालन किया और ज़िंदगी में कभी भी क्रोध न कर सका। क्योंकि एक नई आदत जुड़ गई– चौबीस घंटे पोस्टपोन करने की आदत। चौबीस घंटे में तो क्रोध का भूत उतर जाएगा। वो जो शरीर में ज़हरीले रसायन हॉरमोन्स छूट गए थे, नष्ट हो जाएंगे; एक नई आदत जुड़ गई।

पुरानी आदतों से मुक्त होना है और नई आदतों का निर्माण करना होगा। हमारी चेतना जो बहिर्मुखी है उसे अभ्यास के द्वारा भीतर लाने की अंतर्यात्रा की भी आदत डालनी होगी; ध्यान का भी अभ्यास करना होगा। समाधि का भी अभ्यास करना होगा। निर्विचार, मौन में भी डूबने का अभ्यास करना होगा। याद रखना! विचारों की आदत बड़ी पुरानी है। जन्मों–जन्मों से चल रही है। सिर्फ़ मेरी बात सुनकर कि निर्विचार होना है... अचानक वो विचारों की साईकल रुक नहीं जाएगी। तुमने बहुत पैडल उसको मारे थे... वो मोमैंटम से चलेगी। दूसरों में दोष देखने की आदत है। अगर इस आदत को बदलना है, तो एक नई आदत डालनी होगी। स्वयं के दोष देखने की

आदत, आत्मनिरीक्षण इंट्रोस्पैक्शन की आदत डालनी होगी। अपनी तरफ़ देखना होगा।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की चौथी शादी हुई। मुसलमानों में तो चार शादियां होती हैं। नई बीवी ने आकर देखा कि तीन फोटो टंगी हुई हैं। उसने कहा ये फोटो किनकी हैं, ये स्त्रियां कौन हैं? नसरुद्दीन ने कहा ये तीन मेरी पुरानी बीवियां है। उसने पूछा, ये कहाँ हैं? मिलवाइये। नसरुद्दीन ने कहा तीनों का देहांत हो गया। पत्नी ने पूछा कि कैसे? नसरुद्दीन ने कहा कि उन्हीं का दोष था; मेरी कोई ग़लती नहीं है। फिर भी उसने पूछा कि तीनों का देहांत कैसे हुआ? नसरुद्दीन ने कहा– जो सबसे बड़ी बेगम थी वो फ़ूड पोयज़निंग ज़हरीला खाना खाने की वजह से मरी; उसी की भूल–चूक थी। पत्नी ने पूछा– और दूसरी बीवी? उसने कहा संयोग की बात वह भी फ़ूड पोयज़निंग की वजह से, ज़हरीला खाना खाने की वजह से मरी; उसी की भूल–चूक थी, उसी की ग़लती थी। और तीसरी बीवी का क्या हुआ? बीवी ने पूछा।

नसरुद्दीन ने कहा– वह बेचारी स्कल फ्रैक्चर, सिर की हडिड्यां टूटने से मरी।

मरी। पत्नी ने पूछा– उसके सिर की हड्डियां कैसे टूट गईं? नसरूदीन ने कहा– ग़लती उसी की थी। मैंने उसे बहुत कहा, लेकिन ज़हरीला खाना खाने को तैयार हीं न हुई; तब मैंने डंडा मार–मार के सिर तोड़ दिया। भूल उसी की है। खाना खाने को तैयार हीं न हुई। यह दोष देखने की जो आदत है इसको बदलना होगा।

मैंने सुना है, सेठ चंदूलाल के बारे में कि अपनी पत्नी के काम में वो नुक़्स निकालते रहते थे। नाश्ते में पत्नी अंडे उबालकर लेकर आती, तब वो ज़ोर से प्लेट पटक देते और कहते हद कर दी! अपनी बेवकूफ़ी से बाज़ कब आओगी। आज मुझे ऑमलेट खाना था; तुमने अंडे उबाल दिये। अगर पत्नी ऑमलेट बना कर लाती, तो चंदूलाल कहते...ये लो, कर दिया न सब बर्बाद! आज मेरा मन था उबले अंडे खाने का। तुम हो कि ऑमलेट बना लाई। कब तुम्हें अक्ल आएगी? पत्नी ने एक दिन होशियारी की– एक अंडे को उबालकर और एक अंडे का ऑमलेट बनाकर ले आई। चंदूलाल ने उठाकर प्लेट पटक दी... तुम्हें अक्ल आने से रही बेवकूफ़! जिस अंडे को उबालना था उसका तुमने ऑमलेट बना दिया और जिसका ऑमलेट बनाना था उसको उबाल दिया।

जब पतंजलि कहते हैं– वैराग्य अर्थात् इच्छारहितता, निष्कामना; उसका यह अर्थ नहीं है कि तुम जीवन में पसंद और नापसंद न करोगे। तुम्हारी लाइकिंग और डिसलाइकिंग होंगी; हाँ, उसके प्रति तुम मोहग्रस्त न होंगे। मैं कुछ भी नहीं चाहता...ऐसा सोचना वैराग्य का अर्थ नहीं; ऐसा नहीं कि तुम जीवन के आनंद को नष्ट कर लो।

वैराग्य का अर्थ है– नॉन अटैचमंट। अब मेरा सुख किसी चीज़ पर आधारित नहीं है। जो उपलब्ध होगा मैं उसी में सुखी हो सकूंगा। अभ्यास और वैराग्य के बारे में ओशो कहते हैं–

'अभ्यास' का अर्थ है किसी चीज़ को अविरत दोहराए जाने की प्रक्रिया। लेकिन ऐसा क्यों है कि दोहराव के द्वारा कोई चीज़ अवचेतन मन का हिस्सा बन जाती है? इसके कुछ कारण हैं।

यदि तुम कुछ सीखना चाहते हो, तो तुम्हें उसे दोहराना ही पड़ेगा। क्यों? यदि तुम कोई कविता बस एक बार पढ़ते हो, तुम शायद तुम उसमें से कुछ इक्के–दुक्के शब्द याद कर लो, लेकिन अगर इसे दो बार, तीन बार, बहुत ज़्यादा बार पढ़ लेते हो, तब तुम याद कर सकते हो पंक्तियों को, पैराग्राफ को। यदि तुम इसे सौ बार दोहराते हो, तब तुम इसे संपूर्ण ढांचे की भांति याद कर सकते हो। और अगर तुम और भी ज़्यादा दोहराते हो, तो यह वर्षों तक तुम्हारी स्मृति में बनी रह सकती है। तुम इसे भूल न सकोगे।

क्या घट रहा है? जब तुम एक निश्चित चीज़ को दोहराते जाते हो, जितना ज़्यादा तुम दोहराते जाते हो उतना ज़्यादा यह मस्तिष्क कोशिकाओं पर अंकित होती जाती है। सतत दोहराव एक सतत चोट है। तब वह मन पर अंकित हो जाता है। वह तुम्हारी मस्तिष्क कोशिकाओं का एक हिस्सा हो जाता है। और जितना ज़्यादा यह तुम्हारी मस्तिष्क कोशिकाओं का हिस्सा बनता है, चेतना की आवश्यकता उतनी ही कम होती है। तुम्हारी चेतना आगे बढ़ सकती है। अब उसकी ज़रूरत नहीं है।

अतः ये दो चीज़ें करनी हैं– अनासक्ति होनी चाहिए; हर चीज़ के प्रति अनासक्ति। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि तुम आनंद लेना बंद कर दो। यह गलतफहमी रही है, और योग का बहुत ढंग से गलत अर्थ लगाया गया है। जिनमें से एक भ्रांत व्याख्या यह है कि योग कह रहा है कि तुम जीवन के प्रति मरो, क्योंकि अनासक्ति का अर्थ है कि तुम किसी चीज़ की इच्छा नहीं करते। यदि तुम किसी चीज़ की इच्छा नहीं करते, यदि तुम्हें किसी चीज़ का मोह नहीं है, यदि तुम्हें किसी चीज़ से प्रेम नहीं है, तो तुम एक मुर्दा लाश होओगे।

नहीं, यह अर्थ नहीं है। अनासक्ति का अर्थ हैः किसी चीज़ पर निर्भर मत हों। अपने जीवन तथा खुशी को किसी चीज़ पर निर्भर मत बनने दो। पसंद ठीक है, लेकिन मोह ठीक नहीं है। जब मैं कहता हूं पसंद ठीक है, तो मेरा मतलब है तुम कुछ ज़्यादा पसंद कर सकते हो, तुम्हें पसंद करना ही पड़ता है। अगर बहुत–से लोग हैं, तो तुम्हें किसी को प्रेम करना होता है, तुम्हें किसी को चुनना पड़ता है, तुम्हें किसी के साथ मैत्रीपूर्ण होना पड़ता है। किसी को पसंद करो, लेकिन मोह मत बनाओ।

ये दो पंख हैं– अभ्यास और वैराग्य; जिन पंखों पर अध्यात्म का पक्षी परमात्मा के आकाश में उड़ान भरता है और समाधि की मंज़िल तक पहुँचता है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

आत्मस्मरण में कैसे जियें

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।। 13 ।।

तत्र स्थितौ यत्नः अभ्यासः

आत्मस्मरण में जीने का, करते रहो प्रयास;
खुद में स्थित होने की ही, कोशिश है अभ्यास।

'ज्ञान की धरती लगन की साधना के नीर सींची
भावना की खाद डाली नित समय से प्रेम के कुछ बीज बोए।
कल उगेंगे अरुण अंकुर...
कसमसाकर तोड़ मिट्टी की तरुण सोंधी परत को
धूप नूतन रूप देगी मेघ वर्षा में सघन घिरकर बरस कर
तर करेंगे मूल तक को गंध फूटेगी गमक कर गंध फूटेगी गमक कर
गांव वन उपवन हंसेंगे घर नए उजड़े बसेंगे।
प्राण प्राणों से जुड़ेंगे मुक्ति कण–कण को छुएगी
शरद की गीली हवाओं के परस से
नए पत्ते नए कल्ले नयी कलियां खिल उठेंगी
रंग फूटेंगे धरा पर इन्द्रधनुषी सुरभि से उद्यान महकेगा अनवरत
कर्म श्रम निष्फल कभी होता नहीं है। है अटल विश्वास... उगेंगे अरुण अंकुर'
सुख–शांति–आनंद के फल–फूल निश्चित ही खिलेंगे।

याद रखना! मेहनत व्यर्थ नहीं जाती। जिस दिशा में हम अभ्यास कर रहे हैं निश्चित ही फल आते हैं।

'कर्म श्रम निष्फल कभी होता नहीं है।' है अटल विश्वास...
सुख के शांति के आनंद के फल–फूल निश्चित ही मिलेंगे।

पतंजलि कहते हैं– स्वयं में स्थित होने का अभ्यास करते जाओ। धीरे–धीरे ही बात बनती है। इस ज़िंदगी में सभी चीज़ें धीरे–धीरे करते–करते हो जाती हैं। हम हमेशा दृश्य में उलझे रहे; जन्मों–जन्मों की हमारी आदत है; जिसे हम देखते हैं उसके साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है। एक नए अभ्यास की शुरुआत करनी होगी। दृश्य में न उलझूं, आत्म–स्मरण सैल्फ़ रिमैम्बरन्स; अपनी याद आती रहे। एक नई आदत अपने जीवन में शामिल करनी होगी। कुछ भी करने से पहले आत्मस्मरण से भर जाओ! किसी ने तुम्हारा अपमान किया; अभी तुरन्त क्रोधित मत होओ, रुको! पाँच मिनट के लिए रुक जाओ, पहले स्वयं में स्थित हो जाओ; फिर जो करने योग्य लगे वह करना। किसी ने तुम्हारी प्रशंसा की, तुम्हारा अहंकार फूलने लगा। रुको! ठहरो! पहले आत्मस्मरण से भर जाओ फिर तुम्हें जो उचित लगे वो करना। धीरे–धीरे तुम्हारे जीवन में एक नया अभ्यास आ गया। आत्मस्थित होने का...।

सूफ़ी फ़क़ीर कुछ भी करने से पहले अल्लाह का स्मरण करते हैं। उठते हैं तो कहते हैं– अल्लाह! बैठते हैं तो कहते हैं– अल्लाह! पानी पी लिया, कहा अल्लाह! भोजन किया, कहा अल्लाह! कोई आया, नमस्कार की, तो अल्लाह! ये छोटा–सा शब्द अल्लाह... क्या करता होगा? एक गैप खड़ा कर देता है। वो जो घटना घट रही थी और भीतर से मन की कोई प्रवृत्ति काम करने जा रही थी... अल्लाह कहते ही कुछ सैकंड का व्यवधान उत्पन्न हो गया। अब तुम मूर्च्छावश कुछ न कर पाओगे। बीच में जागरूकता आ गई। एक छोटा–सा अंतराल क्या चमत्कार पैदा कर सकता है...! कभी कर के देखना। 'अल्लाह' शब्द कोई ज़रूरी नहीं... कोई भी शब्द काम कर जाएगा। थोड़ा–सा रुक जाओ।

एक बार एक युवक ओशो के पास आया और उसने कहा कि मैं बहुत ही क्रोधी प्रवृत्ति का हूँ। कैसे क्रोध से छुटकारा पाऊँ? मैं तंग आ गया हूँ खुद भी तंग आ गया हूँ। दूसरे तो मुझसे परेशान हैं ही, मैं स्वयं भी बहुत व्यथित हूँ। ओशो ने कहा एक काम करो : एक काग़ज़ पर मंत्र लिखकर देता हूँ। जब भी क्रोध आए, पहले अपनी जेब में हाथ डालना, यह काग़ज़ निकालना, खोलना, पाँच बार इसे पढ़ना; फिर वापस जेब में रख लेना। एक पंक्ति उसको लिख कर दी– वो तो सोच रहा था कि संस्कृत की कोई पंक्ति होगी, सूत्र होगा कठिन–सा... लेकिन एक छोटी–सी लाइन थी, हिंदी भाषा में ही... 'मुझे क्रोध आ रहा है।' बस ये छोटे–से पाँच शब्द 'मुझे क्रोध आ रहा है।' उस युवक ने पूछा– इससे क्या होगा? ये तो मैं जानता ही हूँ कि मुझे क्रोध आ रहा है। ओशो ने कहा– तुम एक हफ़्ता करके देखो फिर मुझे रिपोर्ट करना। सप्ताह भर बाद वो युवक

आया। बड़ा शांत और प्रफुल्लित! उसने कहा कि ग़ज़ब कर दिया! इन शब्दों में कौन–सा जादू है? आपकी लिखाई का कोई चमत्कार होगा।

ओशो ने कहा– नहीं, चमत्कार लिखाई का नहीं है, शब्दों का नहीं है। जब तुम्हें क्रोध आया, तुमने काग़ज़ निकाला, पाँच बार इसको पढ़ा... एक अंतराल आ गया। वो जो क्रोध का भूत तुम्हारे ऊपर सवार हो गया था, तुरंत कुछ कर दिखाना चाह रहा था; उसे मौक़ा न मिल पाया। और पाँच बार पढ़ने में समझो... पंद्रह सैकंड लगे, इन पंद्रह सैकंड में तुम्हारे भीतर जागृति पैदा हो गई, मूर्छा टूटी। अब वह क्रोध उस प्रकार से हावी नहीं हो सकता था जैसे पहले। ये कोई शब्दों का चमत्कार नहीं है। बीच में एक अंतराल... आ गया। सुनो पतंजलि के सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो ने क्या कहा–

मन की समाप्ति सतत आंतरिक अभ्यास और वैराग्य द्वारा लायी जा सकती है। इन दो में से– अभ्यास– स्वयं में दृढ़ता से प्रतिष्ठित होने को प्रयास है।

अभ्यास का सार है स्वयं में केन्द्रित होना। जो कुछ भी घटित हो तुम्हें तुरंत प्रभावित नहीं होना चाहिए। पहले तुम्हें स्वयं में केन्द्रित हो जाना चाहिए, और फिर उस केन्द्रस्थ दशा से आसपास देखना चाहिए, और फिर निर्णय लेना चाहिए।

कोई तुम्हारा अपमान कर देता है, और तुम उस अपमान द्वारा धकेल दिए जाते हो। अपने केंद्र का संपर्क किए बगैर तुम आगे बढ़ गए हो। एक क्षण के लिए भी केंद्र तक वापस गए बगैर फिर आगे बढ़ रहे हो, तुम आगे सरक चुके हो।

अभ्यास का अर्थ है आंतरिक प्रयास। सचेतन प्रयास का अर्थ है– 'इससे पहले कि मैं बाहर बढ़ूं, मुझे भीतर बढ़ना चाहिए। पहले मुझे अपने केंद्र से संपर्क स्थापित करना चाहिए। वहां केंद्रित होकर मैं स्थिति पर दृष्टि डालूंगा और फिर निर्णय लूंगा।' और यह इतनी बड़ी, इतनी रूपांतरकारी घटना है कि एक बार तुम भीतर केंद्रित हो जाते हो तो सारी बात ही अलग दिखाई पड़ने लगती है, परिप्रेक्ष्य बदल चुका होता है। तब अपमान शायद अपमान जैसा न लगे। हो सकता है वह आदमी तो बस मूर्ख लगे। या अगर तुम वास्तव में केंद्रित हो गए हो, तो तुम शायद जान जाओ कि वह ठीक है; कि यह कोई अपमान नहीं है। वह तुम्हारे बारे में कुछ गलत नहीं बोला है।

मैंने सुना है प्रधानमंत्री जी किसी अखबार के संपादक से बहुत नाराज़ थे; क्योंकि वह उनके बारे में उल्टी सीधी ख़बरें, मनगढ़ंत कहानियां छापता रहता था। एक दिन गुस्से में पहुँच गए उस सम्पादक के दफ़्तर में। उससे कहा कि सुनो! मैं तुम पर मुक़दमा दायर कर दूंगा। तुम मेरे बारे में बहुत झूठी बातें छाप रहे हो। सम्पादक ने गुर्रा के देखा और कहा कि गनीमत है कि झूठी बातें छाप रहा हूँ। अगर तुमने धमकी दी, तो तुम्हारे बारे में सारा सच छाप दूंगा; वो और भी ख़तरनाक होगा। मंत्री जी ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा कि क्षमा करो! झूठ ही चलने दो।

अगर हम होशपूर्वक देखें, तो हम पाएंगे कि जो आदमी हमारी बुराई कर रहा था, माना की झूठ है; लेकिन सत्य शायद और भी ज़्यादा ख़तरनाक हो। तब हम चाहेंगे कि झूठ ही चलने दें। लेकिन हम यांत्रिक व्यवहार करते हैं; एक रोबोट की भाँति हम जीते हैं; एक यंत्रमानव की तरह। किसी ने आकर अपमान किया और तुरंत क्रोध आ गया। जैसे किसी ने हमारा रिमोट कंट्रोल बटन दबाया क्रोध का और क्रोध शुरू... किसी ने प्रशंसा क्या कर दी, हमारे भीतर प्रेम की धारा बहनी शुरू...। यह प्रेम भी मकैनिकल है। और यह क्रोध भी मकैनिकल है। इसमें हमारी चैतन्यता नहीं है। और लोगों को पता है आपका कौन–सा बटन कहाँ है? वे सब आपको मनिप्युलेट करते हैं। आपसे कोई काम निकलवाना है, आपकी कोई झूठी तारीफ़ कर देता है चमचागिरी कर देता है, या मक्खन लगा देता है। आप खुश होकर उसका काम कर देते हो– उसको पता है आपका ब.. ट.. न। किसी को यह पता है कि आपको कैसे भड़काना है। किसी को पता है आपको कैसे प्रेमपूर्ण करना है। हम आदमी हैं कि मशीन? ये बिजली का पंखा लगा है; हम बटन दबाएंगे तो चलने लगेगा। हम बटन दबाएंगे तो बंद हो जाएगा। क्योंकि पंखे की कोई आत्मा नहीं है। तुम अपना जीवन व्यवहार देखना : एक महीने की डायरी लिखो– दिन भर में क्या–क्या हो रहा है? तुम यह जानकर बड़े आश्चर्यचकित होओगे कि तुम्हारे जीवन में क़रीब–क़रीब वही बातें बारंबार–बारंबार रिपीट हो रही हैं। हो सकता है तुम हर सोमवार की सुबह क्रोधित होते हो, हर मंगलवार बड़े प्रेमपूर्ण हो जाते हो, हर बुधवार की शाम उदास हो जाते हो; क़रीब–क़रीब एक फिक्स्ट पैटर्न है। उस पैटर्न में हम जी रहे हैं। इस पैटर्न को तोड़ने के लिए एक अभ्यास की ज़रूरत है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के घर जनगणना करनेवाला अधिकारी आया। उसने पूछा आपके परिवार में कितने लोग हैं और क्या–क्या करते हैं। नसरुद्दीन ने अपना माथा ठोंक लिया कि तुम किस मुसीबत की बात मुझसे पूछ रहे हो! मेरे परिवार का हिसाब–किताब बड़ा मुश्किल है– लिखो, बताता हूँ। पिता जी मेरे तीन साल से जेल में है। मत पूछना कि ऐसा क्या अपराध किया? ऐसा कोई भी अपराध नहीं जो उन्होंने न किया हो, लम्बी–चौड़ी लिस्ट है मुझे भी याद नहीं ठीक–ठीक। मेरी माता जी ने आठ साल पहले आत्महत्या कर ली थी कारण–वारण न पूछना। मेरा बड़ा बेटा पागलखाने में है। और मेरी बेटी अभी हफ़्तेभर पहले किसी के साथ भाग गई। मैंने यह पता लगाने की भी कोशिश नहीं की कि किसके साथ? उसको तो किसी न किसी के साथ भागना ही था। मेरे पास इतना समय भी नहीं और फुर्सत भी नहीं कि पता लगाऊँ कि किसके साथ भागी, कहाँ भागी।

अधिकारी तो घबराया कि बड़ा विचित्र परिवार है। कोई जेल में, कोई पागलखाने में, कोई भाग गई, कोई मर गई, सूइसाइड कर लिया। तभी नसरुद्दीन ने कहा, और

मेरा छोटा बेटा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में है। अधिकारी ने थोड़ी चैन की सांस ली कि चलो तुम्हारे घर में एक तो प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हुआ जो विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहा है। नसरुद्दीन बोला– तुम्हारा दिमाग खराब है! हमारे घर में कोई प्रतिभाशाली होगा, और अध्ययन करेगा? तुम समझे नहीं। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रतिभाशाली लोग मेरे बेटे का अध्ययन कर रहे हैं। हमारे परिवार का पैटर्न है एक, उस पैटर्न के बाहर कुछ नहीं जा सकता।

हम एक ख़ास पैटर्न में जी रहे हैं। इस पैटर्न को तोड़ने के लिए सतत आंतरिक अभ्यास की ज़रूरत है। साक्षीभाव में बार–बार प्रतिष्ठित होना, माना कि चूक–चूक जाएंगे, वो पुराना पैटर्न इतनी जल्दी टूटनेवाला नहीं। लोग पूछते है कि कब हो पाएगा ध्यान, कब लग पाएगी समाधि? मैं कहता हूँ, जल्दी ही। वो दो चार दिन बाद आकर पूछते हैं कि अभी तक कुछ हुआ नहीं। मैंने कहा, तुम जल्दी का मतलब नहीं समझे। वो जो तुम अनंत जन्मों से अभ्यास करते आ रहे हो– उसके विपरीत नया अभ्यास– जल्दी का मतलब दो–चार जन्म, पचास–साठ साल। तुम जल्दी का मतलब ये मत समझना कि आज या कल। धीरजपूर्वक नया अभ्यास करते जाओ, निश्चित रूप से पुराना पैटर्न टूटेगा। उसे टूटना ही पड़ेगा। इस पर निर्भर करेगा कि तुम कितनी त्वरा से नया अभ्यास करते हो।

मैंने सुना है एक सूफ़ी फ़क़ीर, जुनैद, हुआ। एक आदमी ने उससे आकर पूछा कि राजधानी तक पहुँचने में कितना समय लगेगा। जुनैद चुपचाप बैठा रहा कोई उत्तर नहीं दिया। उस आदमी ने सोचा पता नहीं कैसा फ़क़ीर है। पागल है कि क्या है कुछ बोलता ही नहीं। फिर उसने दुबारा पूछा कि यहाँ से राजधानी पहुँचने में कितना समय लगेगा। जुनैद आँखें खोले देखता रहा कुछ बोला नहीं। उस आदमी ने सोचा चलो किसी और से पूछेंगे और चल दिया एक रास्ते पर... जुनैद भी उसके पीछे–पीछे चलने लगा। राहगीर ने पीछे पलट कर देखा कि यह पीछे क्यों आ रहा है? कुछ पागल है कि क्या है? खैर वो अपनी राह चलता गया... चलता गया।

कोई दो मील तक जुनैद उसके साथ चला तब उसने कहा, रुको! राजधानी तक पहुचने में तुम्हें छह घंटे लगेंगे। उसने कहा– तुमने उसी समय उत्तर क्यों न दिया? जुनैद ने कहा– 'पहले देख तो लूँ तुम्हारी चाल कितनी है, तुम किस गति से चलते हो। अगर इसी गति से चलते रहे तो मैं बता सकता हूँ कितने समय में राजधानी पहुँचोगे।'

कब परमात्मा की मंज़िल मिलेगी; तुम्हारी त्वरा, तुम्हारी तीव्रता, तुम्हारी निष्ठा और श्रद्धा पर निर्भर है। साक्षी में प्रतिष्ठित होने का अभ्यास करते रहो।

धन्यवाद। जय ओशो।।

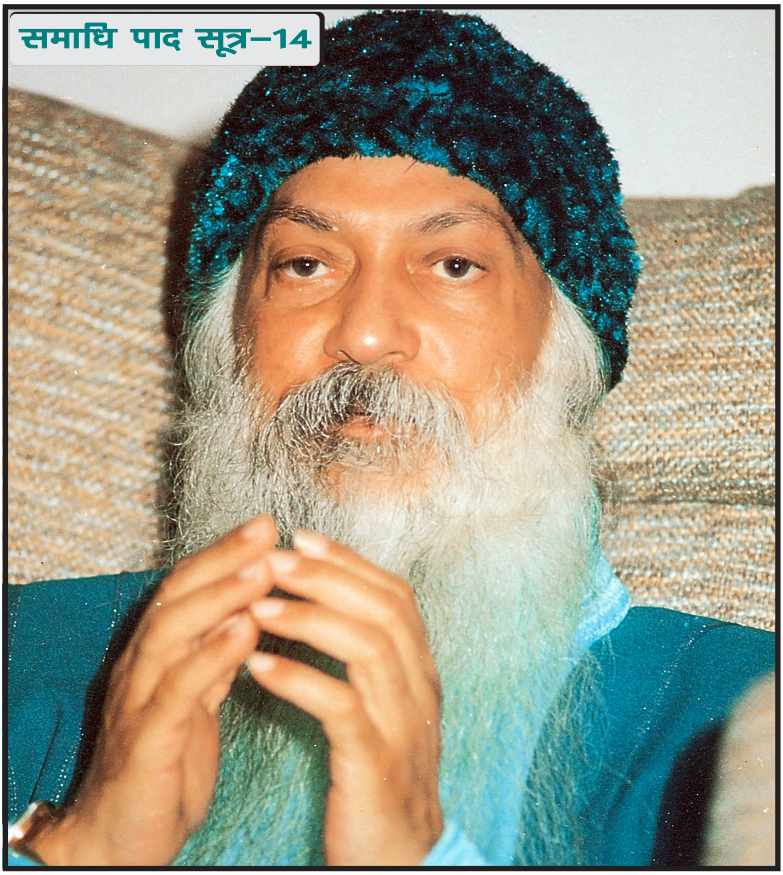

सफलता की कुंजी

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः।। 14 ।।

सः तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कार आसेवितः दृढ़भूमिः

विघ्नरहित, श्रद्धासहित, जो करता पुरुषार्थ निरंतर;
वह दृढ़ता पा लेता जैसे, रस्सी से घिस जाता पत्थर।

आज के सूत्र में पतंजलि कहते हैं, बिना किसी व्यवधान के श्रद्धापूर्वक, निष्ठा सहित, निरंतर, दीर्घकाल तक जो साधक अभ्यास करता है। वह दृढ़ अवस्था वाला हो जाता है।

ये पाँच बातें ख़्याल रखना। पहला, बिना व्यवधान के। हम छोटी-छोटी चीज़ों को व्यवधान मानते हैं, तो वे व्यवधान बन जाती हैं। हम ख़ुद उन्हें व्यवधान बनाते हैं। यदि उनको हम बाधाएँ न मानें, तो वे बाधाएँ नहीं रह जातीं। आप ध्यान करने बैठे... बाहर सड़क पर कुत्ता भौंक रहा है, कि बच्चे ने टेलिविज़न लगा लिया, कि पत्नी ने किचन में बर्तन गिरा दिया, आप कहते हैं ध्यान में व्यवधान पड़ गया। नहीं, इन घटनाओं से व्यवधान नहीं पड़ा। आप मानते हैं कि कुत्ते के भौंकने से बाधा पड़ती है, इसलिए बाधा पड़ी। यदि आप अपनी मान्यता छोड़ दें, तो कुत्ते अपना काम कर रहे हैं। उन बेचारों को तो पता भी नहीं कि आप ध्यान करने बैठे थे।

कुत्ते नहीं कह रहे कि आपके ध्यान करने से हमारे भौंकने में बाधा पड़ती है, तो आप क्यों कह रहे हैं कि कुत्ते के भौंकने से हमारे ध्यान में बाधा पड़ती है। बर्तन गिर गया, आवाज़ हो गई खनखनाहट की, कि बच्चा रोने लगा- आप कहते हैं कि यह व्यवधान है। आपका मन ही व्यवधान पैदा कर रहा है मान कर। आप साक्षीभाव से इन आवाजों को सुनें, स्वयं में स्थित रहें। आप अपना अभ्यास जारी रखें स्वयं में स्थित होने का। आप कुत्ते की आवाज़ के पीछे न भागें, बच्चे के रोने की आवाज के पीछे या टेलिविज़न के शोर के पीछे या बर्तन की आवाज़ के पीछे; आप स्वयं में स्थित रहें।

इस परिस्थिति का उपयोग करें कि मैं अपनी चेतना को बहिर्गामी नहीं होने दूंगा। बाहर कोई भी घटना घटे, मैं स्वयं में स्थित रहकर सुनूंगा, देखूंगा, मैं संवेदनशील रहूँगा। जो भी हो रहा है उसके प्रति जागरूक रहूँगा; किन्तु मैं स्वयं में स्थित रहूँगा। स्वस्थ होने का शाब्दिक अर्थ है स्वयं में स्थित होना- बिना किसी व्यवधान के। याद रखना! व्यवधान बाहर नहीं; बल्कि हमारी मान्यता की वजह से है।

दूसरी बात कहते हैं पतंजलि श्रद्धापूर्वक और तीसरी निष्ठापूर्वक। निष्ठा यानी सिंसेरिटी और श्रद्धा यानी प्रेम का भाव। जो भी कर रहे हो लगाव के साथ करना। पश्चिमी साधक मेरे पास आते हैं। उनके पास श्रद्धा का भाव नहीं होता, निष्ठा का भाव होता है। जो भी उनको कहा जाए बड़ी सिंसियरली करते हैं। लेकिन तुमने बिना लगाव के, बिना प्रेम के कुछ किया, तो वो मात्र क्रियाकाण्ड ही होगा। पूरी सिंसेरिटी के साथ, ठीक-ठीक तुमने विधि का पालन किया। जैसा निर्देश दिया गया था बिल्कुल सटीक वैसा ही किया। फिर भी कोई परिणाम नहीं आएगा यदि उस विधि के साथ तुम्हारा लगाव नहीं है, श्रद्धा नहीं है। इसलिए अध्यात्म के जगत में गुरु-शिष्य संबंध पर इतना ज़ोर दिया जाता है। श्रद्धा का भाव हो।

भारत के लोग आते हैं साधना करने; श्रद्धा का भाव, भरोसा उनके भीतर आसानी से उत्पन्न हो जाता है। गुरु के चरणों में झुकना उनके लिए सरल है। किन्तु निष्ठा नहीं है। समर्पण का भाव तो है; लेकिन जो करने के लिए कहा जा रहा है उसे

सिंसियरली वे करते नहीं। उसमें बेईमानी और चालाकी! हमारे देश की ख़ास गुणवत्ता है– बेईमानी! हर चीज़ में हम बेईमान हैं। साधना में भी हम बेईमानी करेंगे, उसमें भी हम झूठ करेंगे। मैं लोगों को बोलता हूँ कि रोज़ डायरी लिखना है। जब वे अगली समाधि के लिए आते हैं, उनकी डायरी देखता हूँ, पचास प्रतिशत लोगों की डायरी बिल्कुल झूठी होती है। उन्होंने एक दिन में ही बैठके पूरे तीन महीने की डायरी लिख दी। गुरु के साथ भी बेईमानी कर रहे हैं। इनपर और क्या भरोसा किया जाए कि घर जाकर इन्होंने कोई साधना की होगी।

निष्ठा और श्रद्धा का मिलन चाहिए। ऐसे निष्ठावान बनो जैसे पश्चिम के लोग हैं और ऐसे श्रद्धावान बनो जैसे पूरब के लोग हैं। पूरब और पश्चिम का यह मिलन घटित हो... तब तुम दृढ़ अवस्था पाकर स्वयं में स्थित हो सकोगे। अकेली निष्ठा भी काम की नहीं और अकेली श्रद्धा भी काम की नहीं। सुनो! इस बारे में ओशो समझाते हैं–

इन दो में से अभ्यास...आंतरिक अभ्यास, स्वयं में दृढ़ता से स्थिर होने का प्रयास है। बिना किसी व्यवधान के श्रद्धा से भरी निष्ठा के साथ लगातार लंबे समय तक इसे जारी रखने से यह दृढ़ अवस्था वाला हो जाता है।

दो बातें हैं। पहली बात– बहुत लंबे समय तक निरंतर अभ्यास। लेकिन कितने समय तक? यह निर्भर करेगा। यह तुम पर निर्भर करेगा, एक–एक व्यक्ति पर। समय की लंबाई निर्भर करेगी प्रगाढ़ता पर। अगर प्रगाढ़ता समग्र है, तब यह बहुत जल्दी घट सकता है– तत्काल भी। अगर प्रगाढ़ता बहुत गहन नहीं है, तब यह बहुत ज़्यादा लंबा समय लेगा।

और दूसरी बात तुम्हें श्रद्धाभरी निष्ठा के साथ अभ्यास करना चाहिए। तुम अभ्यास कर सकते हो यांत्रिक ढंग से, बिना किसी प्रेम के, बिना किसी निष्ठा के, उसके प्रति पावनता की अनुभूति के बिना। तब इसमें बहुत लंबा समय लगेगा, क्योंकि केवल प्रेम द्वारा चीज़ें आसानी से तुम्हारे भीतर उतरती हैं। निष्ठा के द्वारा तुम खुले होते हो, ज़्यादा खुले। बीज अधिक गहरे गिरता है।

बिना निष्ठा के तुम अभ्यास कर सकते हो उसी चीज़ का। एक मंदिर को देखते हो जहां किराए का पुजारी होता है। वर्षों से वह लगातार प्रार्थनाएं किए चला जा रहा है, बिना किसी परिणाम के, इसमें किसी परितोष के बिना। वह इसे कर रहा है जैसा कि इसे निर्धारित किया गया है। लेकिन यह काम बगैर निष्ठा का है। वह निष्ठा दिखा सकता है, लेकिन वह नौकर मात्र है। उसे अपने वेतन में रुचि है, प्रार्थना में नहीं, पूजा में नहीं, धार्मिक अनुष्ठान में नहीं। इसे करना ही पड़ेगा। यह एक कर्तव्य है, यह कोई प्रेम नहीं है। इसलिए वह ऐसा वर्षों तक करेगा। अपनी पूरी ज़िंदगी वह किराए का पुजारी ही बना रहेगा, एक वेतनभोगी आदमी। अंत में वह ऐसे मर जाएगा, जैसे उसने

कभी प्रार्थना की ही न थी। हो सकता वह मंदिर में प्रार्थना करते हुए मरे, लेकिन ऐसे वह मरेगा, जैसे उसने कभी प्रार्थना नहीं की थी, क्योंकि उसमें कोई निष्ठा न थी।

वो जो मंदिर का पुजारी है, वो जो मस्जिद का मौलवी है, और चर्च का पादरी है; वह बिना श्रद्धाभाव के अपनी आजीविका कमा रहा है, वह रोज़ पूजा कर रहा है; लेकिन एक भी दिन पूजा कभी हुई ही नहीं। निष्ठापूर्वक करता है। पूरा विधि-विधान, क्रिया-काण्ड सब पूरा कर देता है। लेकिन फिर भी पूजा हुई नहीं; क्योंकि भीतर कोई लगाव न था। उसे अपनी तनख्वाह से मतलब है बस। कोई कार्य करो, तो समग्रता से करना, पूर्णता से करना और श्रद्धाभाव सहित करना। इंटेंसिटी और त्वरा से करना, टोटैलिटी से करना।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन बुढ़ापे में अपने गांव में मजिस्ट्रेट नियुक्त कर दिया गया था। पहला ही मुक़दमा आया। एक आदमी सिर्फ़ अंडरवियर पहने आया। उसने कहा, रिपोर्ट लिखिए, आप के गांव के लोगों ने मुझे लूट लिया है। मेरा सबकुछ छीन लिया। उसने लम्बी-चौड़ी लिस्ट लिखवाई। नसरुद्दीन ने उसकी बात सुनी और कहा कि तुम्हारी अंडरवियर तो बची हुई है। नसरुद्दीन ने कहा कि ये मुक़दमा हमारे गांव का नहीं है। हमारी अदालत में हम इसको दर्ज नहीं करेंगे। तुम बगल के गांव में जाकर एफ. आई. आर. दर्ज करवाओ। उस आदमी ने कहा, क्यों? नसरुद्दीन ने कहा जिस आदमी ने तुम्हें लूटा वह हमारे गांव का नहीं हो सकता। हमारे गांव के लोग जो भी काम करते हैं पूर्णता से करते हैं- अंडरवियर भी न छोड़ते! यह पर्याप्त प्रमाण है कि वे चोर हमारे गांव के नहीं थे। कोई ऐसे नौसिखिये चोर होंगे दूसरे गांव के। हमारे यहाँ तो हर आदमी परफैक्ट है। परपैक्शन तो हो, त्वरा हो, समग्रता हो; लेकिन श्रद्धा सहित हो। बिना श्रद्धा के वह काम नहीं आती। और एक बात... निरंतर। बीच में गैप न पड़े। तुम ध्यान करते हो दो दिन फिर हफ़्ते भर छोड़ दिया। फिर चार-छह दिन किया। फिर महीना भर छोड़ दिया। फिर दस-पंद्रह दिन किया... फिर गैप पड़ गया। उस गैप में फिर तुम अपने गैर ध्यान की अवस्था को मजबूत कर रहे हो। कुछ लाभ न होगा, श्रम बहुत होगा, परिणाम कुछ न होगा।

मैंने सुना है, तीन आदमी जहाज़ के डूब जाने से किसी छोटे-से द्वीप के किनारे जा लगे। वह द्वीप उनके देश से क़रीब दस मील दूर था। उन्होंने सोचा कि हम तैर के चलें; क्योंकि यहाँ तो फंस गये, यहाँ तो खाने-पीने को भी नहीं, तैर के चलें, अब और कोई उपाय न था। सरदार विचित्तर सिंह भी उसमें थे। बड़े प्रसिद्ध तैराक थे वो! तैराकी में पहले पुरस्कार भी हासिल कर चुके थे। कुल दस मील तैरना था। तीनों ने तैरना शुरू किया। पहला आदमी तो दो मील तैरने के बाद ही डूब गया और समाप्त हो

गया। दूसरा आदमी साढ़े तीन मील तक गया और डूब गया। सरदार विचित्तर सिंह पांच मील तक तैर गए। कुल दस मील तक जाना था, पाँच मील तक वे तैर गए, तब उन्हें ख़्याल आया कि अरे! मैं बहुत थक गया हूँ और वापिस उसी द्वीप पर चले गए। भला यह कहां की बुद्धिमत्ता! वापिस लौटने में भी पांच मील तैरना पड़ा उतने में तो अपने देश आ जाते। लेकिन जो व्यक्ति निरंतर मेहनत न करेगा, एक दिशा में सीधा यात्रा न करेगा, चलेगा तो बहुत, पहुँचेगा कहीं भी नहीं। कोल्हू के बैल की तरह एक ही जगह गोल–गोल घूमता रहेगा।

एक आख़िरी बात याद रखना– धैर्य रखना, धीरज रखना। लम्बा समय लगेगा सूफ़ियों ने परमात्मा के निन्यानवे नाम रखे हैं। उनमें एक बड़ा प्यारा नाम है– सबूर यानी सब्र, धीरज, धैर्य... अनंतकाल तक प्रतीक्षा करने का भाव हो, तो घटना बड़ी ही शीघ्र घट जाएगी। जितना तुम्हारे मन में उतावलापन होगा, परमात्मा के मिलने में उतनी ही देर लगेगी। जितना ज़्यादा धैर्य होगा उतना ही शीघ्र परिणाम घट जाएगा। किसी शायर ने लिखा है–

उम्मीदे–मर्ग कब तक ज़िंदगी का दर्दे–सर कब तक
माना की सब्र करते हैं मोहब्बत में मगर कब तक।
दियारे–दोस्त हद होती है यूँ भी दिल बहलने की
न याद आए गरीबों को तेरे दीवारो–दर कब तक
ये तदबीरें भी तकदीरे–मोहब्बत बन नहीं सकती
किसी को हिज्र में भूले रहेंगे हम मगर कब तक।
इनायत की कर्म की लुत्फ की आख़िर कोई हद है
कोई करता होगा चाराए जख़्मे–जिगर कब तक
किसी का हुस्न रुसवा हो गया पर्दे ही पर्दे में
न लाए रंग आख़िरकार तासीरे–नज़र कब तक?

अगर तुमने पूछा 'कब तक' तो फिर बात न बनेगी। ध्यान करो साक्षीभाव में डूबो और परिणाम को भूल जाओ मत पूछो–

'उम्मीदे–मर्ग कब तक ज़िंदगी का दर्दे–सर कब तक
माना की सब्र करते हैं मोहब्बत में मगर कब तक'

कब तक की बात भूल जाओ फल पर तुम्हारी नज़र न हो, तो फल बड़े शीघ्र आ जाता है और जितना ही ज़्यादा तुम फलासक्ति से भरोगे उतना ही विलम्ब हो जाएगा; देर लग जाएगी। धैर्यपूर्वक चले चलो... साक्षी में स्थित होते रहो। यही सहज योग है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

परम–वैराग्य क्या है

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।151।

दृष्ट आनुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्

विषयों से विरक्ति तो, आरंभिक–वैराग्य है;
पूर्ण इच्छा–मुक्ति ही, सही परम–वैराग्य है।

पतंजलि वैराग्य को भी दो हिस्सों में विभाजित करते हैं। एक आरंभिक वैराग्य जिसे वे कहते हैं वशीकार वैराग्य और दूसरा परम वैराग्य, एक को अपर और दूसरे को परवैराग्य कहते हैं। चीज़ों को छोटे–छोटे खंडों में बांटकर समझना आसान हो जाता है। एक तो है आसक्ति, दूसरा है विरक्ति। सामान्य सांसारिक व्यक्ति विषयों के प्रति आसक्ति से भरा हुआ है, भोगासक्ति, राग से भरा है। राग अर्थात लगाव, जोड़। वह समझता है कि उसे जो सुख की प्राप्ति हो रही है वो बाह्य विषयों की वजह से हो रही है। आसक्ति हमेशा सुख के कारण होती है भले ही हमारे समझने में भूल हो।

आपने कभी–कभी देखे होंगे कि कुत्ते सूखी हड्डी उठा लाते हैं और उस हड्डी को चूसते रहते हैं तथा बड़ा रस उसमें लेते हैं। बड़े मग्नभाव से! उनसे हड्डी छुड़ाकर भी फेंक दो, दौड़ के फिर वापिस उठा लाते हैं। हड्डी में कोई रस नहीं है। लेकिन उस सूखी हड्डी से कुत्ते को भ्रांति पैदा हो जाती है। सूखी हड्डी चबाते हुए उसके भीतर घाव हो जाते हैं। उसके मसूड़ों में, उसकी जीह्वा में घाव हो जाते हैं, उनसे खून बहने लगता है। अपने ही मसूड़ों से, अपने ही तालु से बहते हुए खून को कुत्ता समझता है कि हड्डी से प्राप्त हो रहा है।

जब हम वासनाओं में घिरते हैं, इच्छाओं के जाल में फंसते है, तब वही स्थिति हमारी होती है। हम समझते हैं कि बाह्य विषयों से हमारे जीवन में सुख आ रहा है। फलस्वरूप विषयों के प्रति आसक्ति बढ़ती चली जाती है तब हम और ज़्यादा विषयों में उलझ जाते हैं, फंस जाते हैं। यद्यपि मिलता केवल दुःख ही है। लेकिन यह तो वे जान पाएंगे जो सजग होकर देखेंगे। मूर्छा में पता ही नहीं चलता। कुत्ते को कहाँ पता चलता है कि हड्डी से सिर्फ़ दुःख मिल रहा है, घाव हो रहे हैं, अपना ही खून बह रहा है। जहाँ–जहाँ सुख मिलता है ज़रा ग़ौर से सचेतन होकर देखना... एक कॉन्शास एफर्ट एक सचेतन प्रयास चाहिए। हम अपने जीवन के सुख और दुःख ठीक–ठीक निरीक्षण

करें– वास्तव में सुख कहाँ से आ रहा है? वह पता लग जाए, तो हम अपने स्वभाव में स्थित हो जाएं। तो वह तो हो जाएगा– परम वैराग्य; जब हम आनंद के वास्तविक स्रोत को पहचान लेंगे। लेकिन उससे पहले दुःख के स्रोत को तो पहचानें जिससे हमें घाव हो गए हैं, जिससे हमें पीड़ा हो रही है, वे हमारी ही वासनाएँ, हमारी ही इच्छाएं तो हैं; खूब–खूब घाव लगे हैं। किसी शायर ने कहा है–

'तमाम जिस्म ही घायल था घाव ऐसा था
कोई न जान सका रख–रखाव ऐसा था।'

सभी लोग ऊपर–ऊपर से बड़ा रख–रखाव किए हुए हैं। किसी से पूछो कैसे हैं, तो वह कहता है बड़े मज़े में हैं। जबकि हम भली–भाँति जानते हैं कि कोई मज़े में नहीं है। ऊपर–ऊपर से दिखावा कर रहे हैं। मा प्रिया ने एक ग़ज़ल लिखी थी–

जाने किसकी तलाश जारी है क्या खूब ख्वाइश हमारी है।
किसी सिंदूर से कभी न भरी मांग की मांग सदा कुंवारी है।
इस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले वही इंसान एक भिखारी है।

यहाँ छोटे भिखारी भी हैं, दो–चार रुपए मांग रहे हैं। यहाँ बड़े–बड़े भिखारी भी हैं, करोड़ों–अरबों से भी उनका पेट न भरा... मांगे ही चले जाते हैं, भिखमंगापन और बड़ा होता चला जाता है। जितनी वासना को तृप्त करने की कोशिश करो वासना उतनी ही सुलगती जाती है। अग्नि में घी के समान काम करती है। वासना कभी तृप्त नहीं होती और भड़कती चली जाती है।

इस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले वही इंसान एक भिखारी है।
भरी कितनी मगर ये खाली रही दिल तो एक जादू की पिटारी है।
नशाए–जुस्तजू में चलती हुई चुक गई ज़िंदगी बेचारी है।
पैर तो थक के चूर–चूर हुए आई नहीं हसरतों की बारी है।

वो हसरतें थकती ही नहीं ख्वाइशें ख़तम होती ही नहीं। मांग पर मांग बढ़ती चली जाती है। कैसे ख़तम होंगी ये हसरतें? सजग होकर देखने से। निरीक्षण करो। इन कामनाओं से सिवाय दुःख के कुछ भी नहीं मिला।

बुद्ध कहते थे तृष्णा दुष्पूर है, कभी पूरी होती ही नहीं। जैसे कोई आदमी क्षितिज पकड़ने को चले! दिखता है कि क्षितिज होगा कोई तीन–चार किलोमीटर दूर; लेकिन हम कितना भी भागें, कितना ही दौड़ें, क्षितिज तक कभी नहीं पहुँच पाते; वह सिर्फ़ एक

आभास मात्र है। दिखता है कि तीन–चार किलोमीटर की दूरी पर ज़मीन और आसमान मिल रहे हैं, लेकिन वास्तव में वे कहीं भी नहीं मिल रहे। हम कितना ही भागें, कितना ही दौड़ें हम कभी भी क्षितिज को न पकड़ सकेंगे। सारी तृष्णाएँ ऐसी ही हैं। सामान्य आदमी ही नहीं; बल्कि बड़े–बड़े हिटलर और सिकंदर भी नहीं पकड़ पाते। क्षितिज हमेशा उतना ही दूर बना रहता है। बल्कि उल्टा है, जितनी कामनाएं तुम पूरी कर लो उतनी और भड़क जाती हैं।

मैंने सुना है सिकंदर के बारे में जब वो विश्व–विजय अभियान पर निकला डायोजनीज़ नामक यूनान के एक संत ने उसके साथ बड़ा मज़ाक़ किया। सिकंदर! सुना है, तुम विश्व जीतने जा रहे हो। सिकंदर ने बड़े गर्व से कहा– हाँ। डायोजनीज़ मुस्कुराया और पूछा कि सिकंदर इस बात का ख़्याल करो कि कुल एक ही दुनिया है; तुमने जीत ली, फिर क्या करोगे? कहते हैं कि इस प्रश्न को सुनकर सिकंदर उदास हो गया। फिर क्या करोगे? ये सोच के ही उदासी आ जाती है। क्योंकि अब और काम करने को रहेगा नहीं। पूरे विश्व के तुम मालिक हो गए। फिर करोगे क्या?

सिकंदर उदास होकर बोला– नहीं। कृपया ऐसा सवाल मुझसे न पूछें, बड़ी उदासी घेरती है। तृष्णा तृष्णा को भड़काती है, एक में से और दस तृष्णाएँ निकल आती हैं। लाभ से लोभ और बढ़ता चला जाता है। आदमी और... और... दुःख में उलझता चला जाता है। गए थे सुख की तलाश में, पहुँच गए और भी ज़्यादा दुःख में...।

मैंने सुनी है एक व्यंग्य कविता : गणित की किताब खोलते हुए नौवें पुत्र ने अपने पिता से विनम्रतापूर्वक पूछा– एक और एक मिलकर होते हैं कितने? पहले दो फिर ग्यारह– बाप नें यूँ फरमाया– सुबह से क्यों मेरा भेजा खाता, हो जा यहाँ से नौ दो ग्यारह। एक और एक मिलकर पहले दो होते हैं, फिर नौ बच्चे हो जाते हैं– नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। वासना से वासना बढ़ती ही चली जाती है। कोई अंत ही नहीं आता वासनाओं का... वासना के स्वभाव को पहचानना जिनसे सिर्फ़ दुःख मिलता है। तब वैराग्य उत्पन्न होता है– वशीकार वैराग्य– यह वैराग्य की आरम्भिक अवस्था है।

ओशो कहते हैं– वैराग्य, निराकांक्षा की वशीकार संज्ञा नामक पहली अवस्था है– ऐंद्रिक सुखों की तृष्णा में, सचेतन प्रयास द्वारा, भोगासक्ति की समाप्ति।

बहुत सारी चीज़ें अनित हैं और समझनी पड़ेंगी। एक– इंद्रिय सुख में लिप्तता। तुम ऐंद्रिक सुख की मांग क्यों करते हो? क्यों मन सदा इंद्रिय भोगों के बारे में सोचता रहता है।? क्यों तुम बार–बार भोगासक्ति के उसी ढांचे में सरकते रहते हो?

पतंजलि के लिए, और उन सबके लिए जिन्होंने जाना है, कारण यह है कि तुम भीतर आनंदित नहीं होते हो, इसलिए ऐंद्रिक सुख के लिए इच्छा होती है। सुखोन्मुख का अर्थ है कि जैसे तुम हो, अपने भीतर तुम आनंदित नहीं हो। इसीलिए तुम सुख को

कहीं और ही खोजते चले जाते हो। कोई व्यक्ति जो दुखी है, इच्छाओं में सरकने को विवश है। इच्छा... दुखी मन के लिए सुख खोजने का एक ढंग है। बेशक, यह मन कहीं सुख नहीं पा सकता। ज़्यादा से ज़्यादा यह थोड़ी झलक पा सकता है। वे झलकियां सुख की भांति प्रतीत होती हैं। सुख का अर्थ होता है प्रसन्नता की झलकियां। और यह भ्रामकता है कि सुख खोजने वाला मन सोचता है कि ये झलकियां और सुख कहीं और से, बाहर से आ रहे हैं। लेकिन वे हमेशा भीतर से आते हैं।

बोधपूर्ण प्रयास की आवश्यकता है। तो जब कभी तुम अनुभव करो कि एक ऐंद्रिक सुख का क्षण है, तो उसे ध्यानपूर्ण अवस्था में रूपांतरित कर दो। जब कभी तुम्हें प्रतीत हो कि तुम सुख का अनुभव कर रहे हो, तुम प्रसन्न, आनंदपूर्ण हो, तब अपनी आँखे बंद कर लेना, भीतर झांकना और जानना कि यह कहां से आ रहा है। यह क्षण मत गंवाओ, यह कीमती है। अगर तुम सचेतन नहीं होते तो तुम शायद सोचना जारी रखो कि यह बाहर से आता है, और यही संसार का भ्रम है।

यदि तुम सचेतन और ध्यानपूर्ण होते हो और यदि तुम वास्तविक स्रोत की खोज करते हो, तो कभी न कभी तुम जान जाओगे कि यह भीतर से प्रवाहित हो रहा है। एक बार तुम जान लो कि यह सदा भीतर से प्रवाहित होता है, कि यह वह कुछ है जो तुम्हारे पास पहले से ही है, तब भोग–विलास... लोलुपता गिर जाएगी, और यह पहला चरण होगा वैराग्य का। तब तुम खोज नहीं रहे होते; लालायित नहीं हो रहे होते। तो तुम इच्छाओं को मार नहीं रहे हो; तुम इच्छाओं से लड़ नहीं रहे हो। कुछ ज़्यादा मूल्यवान पा लिया तुमने अतः अब इच्छाएं उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं लगतीं, वे निस्तेज हो जाती हैं।

वासनाएं अपने आप विदा हो जाती हैं। याद रखना इस जगत में कुछ झूठे वैरागी हैं। किसी रोग की वजह से, असमर्थता की वजह से, विषयों की अनुपलब्धि की वजह से अथवा नर्क के भय से, स्वर्ग के लोभ से अथवा दिखावे हेतु, अहंकार और सम्मान पाने हेतु वे विषय का त्याग कर देते हैं। वह सच्चा वैराग्य नहीं है।

सच्चा वैराग्य सदा ही वासना के इस दुःखद स्वभाव को जानकर उत्पन्न होता है। वासना में जो थोड़ी–सी झलक सुख की मिलती है उस झलक को पकड़ कर यदि हम अपने भीतर डूबें, उसके स्रोत को ढूँढें कि यह सुख की झलक कहाँ से आई...?

तब हम अपने आंतरिक स्वभाव में पहुँच जाते हैं जो आनंद से ओत–प्रोत है। कुकामना के दुःख रूप को पहचानना कहलाता है– विरक्ति या आंरभिक वैराग्य, वशीकार वैराग्य। अपने स्वभाव को जानना, परम आनंद में डूबना कहलाता है– परम वैराग्य। उसकी चर्चा हम अगले सूत्र में करेंगे।

धन्यवाद। जय ओशो।।

तृष्णा कैसे मिटे

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्।। 16 ।।

तत् परम् पुरुषख्यातेः गुण वैतृष्ण्यम्

प्रथम सचेतन–यत्न से, विषयासक्ति घट जाती।
फिर स्वभाव के ज्ञान से, तृष्णा पूरी मिट जाती।

पतंजलि कहते हैं, निराकांक्षा की पहली अवस्था है– अपर वैराग्य। ऐंद्रिक सुखों की तृष्णा में सचेतन प्रयास द्वारा भोगासक्ति की समाप्ति। और निराकांक्षा की अंतिम अवस्था है, पुरुष के अपने स्वयं के स्वभाव को जानने से परमानंद की प्राप्ति के कारण इच्छा–विहीनता। एक नेगटिव है, दूसरा पॉज़टिव है। एक है रोग से मुक्ति, दूसरा है विधायक रूप से स्वस्थ होना। इससे पहले की हम स्वस्थ हों, रोग से मुक्ति आवश्यक है। सीधे–सीधे स्वास्थ्य नहीं पाया जा सकता।

पतंजलि बड़े वैज्ञानिक तरीके से एक–एक क़दम चल रहे हैं। साधारण सांसारिक व्यक्ति की अवस्था है– राग की, आसक्ति की। क्योंकि वह सोचता है कि कामनाएं सुखदायी हैं। इसलिए उसका चित्त चंचल होता है। इधर–उधर विषयों में भागता है। चंचलता उसका परिणाम है। जब ऐसा व्यक्ति सचेतन प्रयत्न के द्वारा जागकर देखता है, तो वह पाता है कि मैं भ्रांति में था, कामनाओं से सुख नहीं मिल रहा, कामनाओं से सिर्फ़ पीड़ा मिल रही है... लेकिन जागकर देखोगे तो ही पता चलेगा!

'अग्नि–सी है रोएं–रोएं में नस–नस दुःख से चूर,
प्रेम में हम पर जीवन का जो वार पड़ा भरपूर।
ग़म की चिता में राख हुए हैं जलकर सांझ–सवेरे,
दिन जो ढला तो रात खड़ी थी अपने बाल बिखेरे।
जन्म–मरण का साथ था जिनका उन्हें भी हम से बैर,
जन्म–मरण का साथ था जिनका उन्हें भी हम से बैर
बुला ले वापिस अब तो भगवन् हो गई जग की सैर।'

संसार में जो भी जागकर देखेगा वही वापिस लौटना चाहेगा; वापिस अपने भीतर अंतर्यात्रा की शुरुआत होगी। पतंजलि उसे प्रत्याहार कहते हैं। महावीर उसे

प्रतिक्रमण कहते हैं। अपने भीतर वापिस लौटना– जापान के झेन फ़क़ीर कहते हैं– रिटर्निंग टु द सोर्स. लेकिन उससे पहले इस बात का ज्ञान हो जाना ज़रूरी है कि कामना दुष्पूर है, तृष्णा दुःख की जननी है। यह सुनी–सुनाई, पढ़ी–पढ़ाई बात न हो। स्वयं अपनी आँखों से देखा गया एक तथ्य हो। तब जीवन में विरक्ति पैदा होती है, विराग उत्पन्न होता है। पतंजलि कहते हैं– वशीकार वैराग्य या अपर वैराग्य उत्पन्न होता है, तब हमारा चित्त चंचलता की बजाय एकाग्रता की भूमि पर आता है। ध्यान अथवा संप्रज्ञात समाधि फलित होती है।

इसके बाद आता है परम वैराग्य– निराकांक्षा की अंतिम अवस्था। वह मिलती है इस बात के ज्ञान से कि मेरा स्वभाव, मेरी आंतरिक सहजता ही आनंदपूर्ण है। एक विधायक उपलब्धि। जब व्यक्ति ग़ौर करता है कि जब–जब मुझे सुख मिलता है या सुख की झलक भर मिलती है; तब मैं देखता हूँ कि वह मेरे ही भीतर से आता है।

आप एक हिल स्टेशन पर गए। सुबह सुंदर सूर्योदय देखा। पक्षी चहचहा रहे थे, शीतल हवा बह रही थी, सूरज की रोशनी, रंग बिरंगे बादल। क्षण भर को मन स्तब्ध रह गया! विचार ठिठक गए। मन रुक गया। इस जागरूकता की और निर्विचार की अवस्था में आप कहते हैं कि बड़े आनंद की झलक मिली, भीतर बड़ी पुलक पैदा हुई। सामान्यतः हम सोचते हैं कि बाहर का जो विषय था– हवा की शीतलता, सूरज की कुनकुनी धूप, बादलों का रंग–बिरंगा होना, पक्षियों की आवाज़– उन सबकी वजह से बड़ा आनंद मिला। हम ग़लती में हैं। वहाँ हिल स्टेशन पर रहने वाले आदमी से पूछो जो वहीं पैदा हुआ है। उसे कभी कोई आनंद की पुलक महसूस नहीं हुई; क्योंकि वह देख–देखकर आदी हो गया। उसे आश्चर्य होता है कि टूरिस्ट क्यों चले आते हैं यहाँ। यहाँ पहाड़ पर क्या रखा है?

उसे कोई सुख नहीं मिलता क्योंकि वह निर्विचारता को उपलब्ध नहीं होता। आपने वह दृश्य पहली बार देखा; भीतर आपका मन ठिठक गया। सौंदर्य से अभिभूत हो गया! हम कहेंगे कि सौंदर्य की वजह से आनंद मिला। ज्ञानी कहेंगे, नहीं। आनंद तुम्हारे भीतर था। उस सौंदर्य को निहारते हुए तुम निर्विचार अवस्था में पहुंच गए। इसलिए भीतर का आनंद बाहर प्रवाहित हो सका। अगर तुम विचार करते रहते, चिंता करते रहते अतीत और भविष्य की, तब यह आनंद प्रवाहित नहीं हो पाता।

किसी स्त्री या पुरुष के सौंदर्य को देखकर जो पुलक महसूस होती है, वह उस व्यक्ति के चेहरे से नहीं तुम्हारे भीतर से ही आती है। लेकिन तुम सोचते हो कि विषय के कारण आ रही है... तो तुम्हारी भूल है, भ्रांति है। जो व्यक्ति खोजबीन करेगा कि सुख कहाँ से मिलता है। वो सदा पाएगा कि मेरे ही भीतर से आता है।

उदाहरण के लिए, उस व्यक्ति के साथ तुम विवाह करके तुम उसे अपने घर ले आओ फिर वह सुख न मिलेगा; क्योंकि तुम आदी हो गए। जैसे वो हिल स्टेशन पर रहने वाला सूर्योदय का आदी हो गया था उसी प्रकार जिस सुंदर स्त्री को तुम पत्नी बनाकर घर ले आए तुम भी उसके आदी हो गए। अब तुम उसको देखकर ठिठकते नहीं, अब तुम्हारे विचार रुकते नहीं; इसलिए तुम कहते हो कि कोई आनंद नहीं मिल रहा। विवाह के पहले बड़ा मज़ा था। अब वो मज़ा नहीं आ रहा। वो मज़ा वास्तव में तुम्हारी निर्विचार अवस्था का था।

ख़तरों से खेलने में लोगों को मज़ा आता है। पहाड़ों पर चढ़ते हैं, अपनी जान जोखिम में डालते हैं। हिलेरी और तेनज़िंग एवरेस्ट पर पहुँचे जबकि पहले कई हज़ार लोग एवरेस्ट पर चढ़ने की कोशिश में अपने प्राण गंवा चुके थे। इन लोगों को ज़रूर कोई आनंद आता होगा। इतनी ख़तरनाक स्थिति में जा रहे हैं जबकि पता है कि कितने लोग मर चुके; फिर भी जा रहे हैं। ख़तरे की स्थिति में हमारा मन ठिठक जाता है और हम अत्यंत जागरूक होते हैं। सामान्यतः हम इतने सजग कभी भी नहीं होते। अचानक कोई ख़तरा मौजूद हो जाए, तो हम अति जागरूक हो जाते हैं– सुपर कॉन्शसनैस– वही तो समाधि की अवस्था है। अतिचैतन्य होना।

पहाड़ों पर चढ़ने का मज़ा या दूसरे ख़तरों से खेलने का मज़ा, अतिचैतन्य होने का आनंद है। उतनी जागरूकता में चित्त की चंचलता समाप्त हो जाती है। पहाड़ पर चढ़ रहे हैं, बर्फ की फिसलन, संकरी राह है, बिल्कुल ज़रा–सा दो इंच पैर फिसला कि नीचे गहरी खाई में गिरकर हड्डियां चकनाचूर हो जाएंगी, लाश भी न मिलेगी। ऐसी स्थिति में मन में विचार नहीं चल सकते।

खोजना जहाँ–जहाँ तुम्हें सुख की झलक मिली वहाँ ज़रूर– जागरूकता और निर्विचार– ये दो बातें घटित हो रही थीं। अतीतकाल में न जाने किन अनजान ऋषियों ने, बड़े प्रज्ञावान लोगों ने इस बात को खोज लिया कि जहाँ–जहाँ भी आनंद मिला; चाहे किसी ख़तरे में, चाहे प्रेम के किन्हीं क्षणों में, चाहे सौंदर्य को देखकर अभिभूत हो जाने में या संगीत सुनते–सुनते विचारों के थम जाने में, जहाँ–जहाँ आनंद मिला वह सदा ही निर्विचार जागरूकता की अवस्था से मिला अर्थात अपने भीतर के स्वभाव से ही वह आया। बाहर की परिस्थिति तो बहाना थी। आनंद हमारे भीतर ही था।

जब यह बात निश्चित हो गई तो क्यों न हम सीधे ही आनंद के उस सागर में डुबकी मारना सीखें? तब असंप्रज्ञात समाधि घटित होती है। अनासक्ति पैदा होती है। आसक्ति भी गई, विरक्ति भी गई...। राग भी गया, विराग भी गया। अब वीतरागता आती है। सबीज समाधि उपलब्ध होती है। इसके बाद एक क़दम और है उसकी चर्चा

हम बाद में करेंगे। वो है निर्बीज समाधि... जब आनंद में भी रस समाप्त हो जाता है। वो तो बहुत गहरी बात है...। अभी तो हम इस पर–वैराग्य को समझ लें और उसे जीना शुरू कर दें। याद रखना! समझ ही क्रान्तिकारी है। जिस बात को तुम समझ लेते हो वो तुम्हारे जीवन में रूपान्तरण ले आती है। ओशो कहते हैं–

पुरुष के उस परम आत्मा के अंतरतम स्वभाव को जानने से समस्त इच्छाओं का विलीन हो जाना।

पहले तुम्हें जानना पड़ता है कि सारी प्रसन्नता जो तुममें घटित होती है, तुम्हीं हो उसके मूल उद्गम। दूसरी बात, तुम्हें अपनी आंतरिक आत्मा के समग्र स्वभाव को जानना पड़ता है। पहली बात, तुम्हीं हो उद्गम। दूसरी बात तुम्हें जानना पड़ता है कि यह उद्गम है क्या? पहले इतना भर काफी है कि तुम अपनी प्रसन्नता के उद्गम हो। और दूसरी बात, तुम्हें जानना होता है कि यह स्रोत अपनी समग्रता में क्या है। यह पुरुष, आंतरिक आत्मा क्या है! मैं कौन हूं समग्र रूप में!

एक बार तुम इस उद्गम को इसकी समग्रता में जान लेते हो, तो तुमने सब जान लिया होता है। तब केवल प्रसन्नता ही नहीं, सारा ब्रह्मांड भीतर ही होता है। केवल प्रसन्नता ही नहीं, तब वह सब जिसका अस्तित्व है, भीतर वास करता है। तब ईश्वर कहीं बादलों में नहीं बैठा हुआ होता है, वह भीतर विद्यमान होता है। तब तुम उद्गम होते हो, सबके मूल स्रोत। तब तुम्हीं केंद्र होते हो।

और एक बार तुम अस्तित्व के केंद्र बन जाते हो, एक बार तुम जान लेते हो कि तुम अस्तित्व के केंद्र हो, तो सारे दुख मिट जाते हैं। अब इच्छारहितता सहज स्वाभाविक बन जाती है। किसी प्रयास, किसी मेहनत, किसी संपोषण की आवश्यकता नहीं। यह बस है, यह स्वाभाविक बन गई है।

आनंद हमारी सहज अवस्था है और इसलिए पतंजलि के योग सूत्रों को हम सहजयोग के अंतर्गत ले रहे हैं। अपनी सहजता में रमना है। अपने स्वभाव में पहुँचना है। निश्चित ही यह कोई कठिन बात नहीं हो सकती। कठिन तो यह है कि हम दुःखों में पड़ गए हैं। आनंद में पहुँच जाना तो बड़ा ही सरल, सुगम, सहज और स्वाभाविक है सिर्फ़ समझ की, जागरूकता की बात है। यही सहजयोग है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–17

संप्रज्ञात समाधि

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।।17।।

वितर्क विचार आनन्द अस्मितारूप अनुगमात् सम्प्रज्ञातः

पहली समाधि का नाम संप्रज्ञात है;

वितर्क या विचार है, आनंद, अस्मिता भाव है।

पतंजलि के सूत्र के विषय में हमारे प्यारे सदगुरु ओशो ने इस प्रकार समझाया है–

संप्रज्ञात समाधि वह समाधि है जो वितर्क, विचार, आनंद और अस्मिता के भाव से युक्त होती है।

वे समाधि को, उस परम सत्य को दो चरणों में बांट देते हैं। परम सत्य बांटा नहीं जा सकता, वह तो अविभाज्य है और वस्तुतः कोई चरण है ही नहीं। लेकिन मन को, साधक को सहायता देने के लिए ही वे पहले इसे दो चरणों में बांट देते हैं। पहले चरण को वे नाम देते हैं संप्रज्ञात समाधि। यह वह समाधि है जिसमें मन अपनी शुद्धता में सुरक्षित रहता है।

इस पहले चरण में, मन को परिष्कृत और शुद्ध होना पड़ता है। पतंजलि कहते हैं, तुम इसे एकदम से गिरा नहीं सकते। इसे गिराना असंभव है; क्योंकि अशुद्धियों की प्रवृत्ति है चिपकने की। तुम इसे केवल तभी गिरा सकते हो जब मन बिल्कुल शुद्ध होता है, इतना शुद्ध, इतना सूक्ष्म कि उसकी कोई प्रवृत्ति नहीं रहती चिपकने की।

वे यह नहीं कहते की मन को गिरा दो जैसा कि झेन गुरु कहते हैं। पतंजलि तो कहते हैं कि यह (मन को गिराना) असंभव है। और यदि तुम ऐसा कहते हो, तो तुम नासमझी की बात कर रहे हो। तुम सत्य ही कह रहे हो, पर यह संभव नहीं है क्योंकि एक अशुद्ध मन बोझिल होता है। किसी पत्थर की भांति यह बोझ झूलता रहता है। और एक अशुद्ध मन में लाखों इच्छाएं होती हैं, जो अधूरी हैं, जो पूरी होने को ललकती रहती हैं, पूरी होने की मांग करती हैं। इसमें लाखों विचार हैं, जो अपूर्ण हैं। कैसे गिरा सकते हो तुम इसे? अपूर्ण सदा संपूर्ण होने की चेष्टा करता है।

ध्यान रखना, पतंजलि कहते हैं कि जब कोई चीज़ संपूर्ण होती है केवल तभी तुम उसे गिरा सकते हो। तुमने ध्यान दिया? अगर तुम चित्रकार हो और तुम चित्र बना रहे हो, तो जब तक चित्र पूरा नहीं हो जाता, तुम उसे भूल नहीं सकते; वह बना रहता है,

तुम्हारे पीछे लगा रहता है। तुम ठीक से सो नहीं सकते; वह वहीं डटा है। मन में इसकी अंतर्धारा है; वह सक्रिय रहती है और संपूर्ण होने की मांग करती है। एक बार यह पूरी हो जाती है, तो बात खतम हो गई। तुम इसे भूल सकते हो।

मन की वृत्ति है संपूर्णता की ओर जाने की। मन पूर्णतावादी है, इसलिए जो कुछ अपूर्ण रहता है वह मन पर तनाव हो जाता है। पतंजलि कहते हैं कि तुम सोचने को नहीं गिरा सकते जब तक कि सोचना इतना संपूर्ण न हो जाए कि अब इसके बारे में करने–सोचने को कुछ रहे ही न। तब तुम इसे सरलता से गिरा सकते हो और भूल सकते हो।

यह झेन से, हेराक्लतु से पूरी तरह विपरीत मार्ग है।

प्रथम समाधि जो केवल नाममात्र की समाधि है, वह है संप्रज्ञात समाधि– सूक्ष्म और शुद्ध हुए मन वाली समाधि। द्वितीय समाधि है असंप्रज्ञात समाधि; अ–मन की समाधि। किंतु पतंजलि कहते हैं कि जब मन तिरोहित हो जाता है, जब कोई विचार नहीं बचते; फिर भी अतीत के सूक्ष्म बीज अचेतन में संचित रहते हैं।

पतंजलि का यह विभाजन बड़ा उपयोगी है। सामान्य शब्दों में हम जिसे तल्लीनता कहते हैं, पतंजलि उसी को कह रहे हैं संप्रज्ञात समाधि। कभी आप कोई कार्य करते हुए कार्य में डूब जाते हैं वह एक प्रकार की कर्म–समाधि हो गई। कोई व्यक्ति तर्क–वितर्क में, विचार में डूब जाए वह विचार–समाधि हो गई। कोई भाव में डूब जाए वह भाव–समाधि हो गई। इसके लिए एक पारिभाषिक शब्द है सालंबन समाधि अर्थात् जिसमें आलंबन मौजूद है। कोई सहारा, कोई आधार मौजूद है। उसके सहारे हम तल्लीन हो गए, डूब गए।

कार्ल मार्क्स के बारे में आपने सुना होगा। एक बार शनिवार की रात को ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में भूल से वह अंदर बंद रह गया। लाइब्रेरियन बंद करके चला गया। मार्क्स दिन–रात किताबें पढ़ता रहता था, नोट्स बनाता रहता था, विचार मग्न रहता था। शनिवार की रात बीत गई, रविवार का पूरा दिन बीत गया, रविवार को लाइब्रेरी बंद रहती थी। सोमवार की सुबह पुस्तकालय खोलनेवाला आया। वो देखके बड़ा हैरान हुआ कि अंदर यह धुआँ कैसा है। मार्क्स चेन स्मोकर था, दिन–रात सिगरेट पीता रहता था। उसने देखा मार्क्स भीतर बैठा है। उसने कहा, अरे! आप यहाँ! मार्क्स ने कहा, क्यों? क्या लाइब्रेरी बंद करने का समय हो गया? उस आदमी ने कहा बंद करने का समय! मैं अभी–अभी खोल रहा हूँ। आप यहाँ भीतर कैसे मौजूद हैं? तब पता चला कि शनिवार की रात से वह यहाँ रह गए हैं। उन सज्जन को अभी यह भी नहीं पता कि कितना समय बीत चुका है। विचार में इतने मग्न! यह एक प्रकार की

विचार–समाधि हो गई।

पतंजलि इसे कहेंगे, यह भी समाधि का एक प्रकार है। मन तो उसमें मौजूद है, यह अ–मन की दशा नहीं है, निर्विचार की अवस्था नहीं हैं; लेकिन फिर भी खूब गहराई आने लगी अ–मन की तरफ़ यात्रा की शुरुआत हो गई।

पतंजलि कहते हैं जब कोई चीज़ अपनी शुद्धतम अवस्था में पहुँच जाती है, अपने परफैक्ट फोर्म में पहुँच जाती है तभी उसे छोड़ा जा सकता है। बहुत लोग कोशिश करते हैं निर्विचार होने की, बिना इस बात को समझे कि उन्होंने विचार तो कभी ठीक से किया नहीं फिर निर्विचार कैसे होंगे। निर्विचार में वही व्यक्ति जा सकेगा जिसने विचार को खूब–खूब साधा है। तर्क के पार वही उठ सकेगा जिसने तर्क को खूब संभाला है। मन के पार वही जा सकेगा जिसने मन का पूरा–पूरा सम्यक ढंग से सदुपयोग किया है। अतः पतंजलि कहते हैं– आंतरिक आलंबन चार प्रकार के हो सकते हैं– वितर्क, विचार, आनंदभाव और अस्मिता भाव। वितर्क शब्द बड़ा अद्भुत है!

तीन शब्दों को समझना... एक है कुतर्क, दूसरा है सही तर्क और तीसरा है वितर्क। वितर्क यानी विशिष्ट तर्क। कुतर्क का मतलब होता है कि हम केवल नकारात्मक पक्ष देख रहे हैं, केवल दूसरे की निंदा और आलोचना में हमारा रस है। सही तर्क का अर्थ होता है कि हम विधायक पक्ष देख रहे हैं। निंदा, आलोचना में रस नहीं है; बल्कि तर्क के द्वारा क्या पॉज़िटिव किया जा सकता है। उस दिशा में हम गति कर रहे हैं। और वितर्क का अर्थ है अब हम न नकारात्मक हैं न विधायक; न नेगटिव न पॉज़िटिव। अब हम मन के द्वारा बिल्कुल सम्यक रूप से चीज़ों को वैसा ही जानने की कोशिश कर रहे हैं जैसी वे हैं– वह है वितर्क।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन से उसके दोस्त ने पूछा– तुम भ्रमण पर जाने की सोच रहे थे, कोई लम्बे टूर पर जाने की योजना बना रहे थे, तो क्या तय हुआ? कहाँ जाना सुनिश्चित हुआ? नसरुद्दीन ने कहा कि पत्नी बड़ा झंझट कर रही है, मैं अलग–अलग जगह सुझाता हूँ कि यहाँ चलेंगे, वह हमेशा मना कर देती है कि वहाँ नहीं कहीं ओर... फिर जहां वह कहती है वहीं का प्लैन करते हैं, लेकिन फिर बदल जाती है। दोस्त ने पूछा– अंततः क्या तय हुआ? नसरुद्दीन ने कहा–' मैं कह रहा हूँ कि चलो वर्ल्ड टूर पर चलते हैं, पूरी दुनिया घूम के आएंगे; लेकिन पत्नी कह रही है कहीं ओर चलेंगे...। अब पूरी दुनिया घूम के आएंगे... इसमें भी राज़ी नहीं। असल में पति से राज़ी होना ही नहीं है, तय ही कर लिया है।

यह है कुतर्क। जहाँ लक्ष्य है दूसरे को ग़लत साबित करना, उसकी आलोचना करना। कुतर्क से बेहतर है विधायक तर्क और उससे भी अच्छा है वितर्क : बिल्कुल सम्यक; न किसी के पक्ष में, न किसी के विपक्ष में। सत्य को जैसा है तर्क के द्वारा

वैसा। विज्ञान वितर्क की दिशा में गति करता है; इसलिए विज्ञान इतना प्रगति कर पाया। पुराने जो दार्शनिक थे वे फिजूल की बातों में तर्क–वितर्क करते रहते थे; वस्तुतः कुतर्क ही करते रहते थे। इसलिए पुरानी जो फिलॉसफ़ी थी उससे कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ। दस हज़ार साल का दर्शनशास्त्र का इतिहास है, कुछ भी उपयोगी न निकला। विज्ञान ने वितर्क की दिशा पकड़ी और इसलिए पिछले ढाई सौ–तीन सौ सालों में ही इतने चमत्कार कर दिखाए। सत्य को उजागर करके देखा।

वैज्ञानिक भी एक प्रकार की तल्लीनता में डूबता है। टॉमस एल्वा एडिसन जिसने एक हज़ार से ज़्यादा आविष्कार किये; अपनी पत्नी को भूल गया था; और एक बार तो हद हो गई जब अपना नाम ही भूल गया। नाम भूलना बड़ा कठिन है। वो हमारे बहुत अचेतन में दबा हुआ है। एडिसन अपना नाम ही भूल गया था। विचार और वितर्क की दुनिया में वह जी रहा है।

आंतरिक आलंबन चार प्रकार के हो सकते हैं– याद रखना– यह नाममात्र की ही समाधि है। ऐसा समझो कि समाधि की दिशा में पहला क़दम है। एक वितर्क के द्वारा; दूसरा विचार का सहारा लेकर। जिसने सम्यक रूप से विचार करना सीखा, जिसने खूब–खूब मौलिक विचार किये, वही व्यक्ति निर्विचार हो सकेगा। इस बात को ठीक से याद रखना।

जिस व्यक्ति ने ठीक–ठीक श्रम किया है वही व्यक्ति विश्राम को उपलब्ध हो सकता है। जिस आदमी ने श्रम ही नहीं किया, दिनभर से आराम कर रहा है, रात को वो सो न सकेगा ठीक से। यद्यपि ऐसा लगेगा की इस आदमी को अच्छी नींद आनी चाहिए, बेचारे ने दिन भर प्रैक्टिस की है, रिहर्सल करता रहा नींद में जाने का, दिन भर से रिहर्सल कर रहा है, रात को गहरी नींद लगनी चाहिए।

...और वो आदमी जो सारा दिन शारीरिक श्रम करता रहा, जी–तोड़ मेहनत, उसने तो रिहर्सल की नहीं विश्राम की, इसलिए हो सकता है उसको रात में नींद ही न आए। नहीं, उल्टा है। जिसने खूब मेहनत की है, जो थक गया है, वही ठीक विश्राम में जा सकेगा।

इसलिए जब तक तुमने मौलिक विचार की क्षमता अर्जित नहीं कर ली, जब तक तुमने मन का पूरा–पूरा उपयोग नहीं किया, तब तक तुम अ–मन की अवस्था में, निर्विचार की अवस्था में भी न जा सकोगे। लोग शॉर्ट–कट खोजते हैं। ओशो की किताब पढ़ ली और सोचने लगे कि निर्विचार अवस्था को कैसे उपलब्ध हों। ये भूल गए कि ओशो की छह सौ पचास किताबों में कितने मौलिक विचार हैं। देखें तो भरोसा नहीं आता कि एक आदमी ने अपनी छोटी–सी ज़िंदगी में जीवन के हर पहलू के बारे में इतना

विचार किया होगा। उन्होंने इतना श्रम किया है, अतः उन्होंने पात्रता अर्जित कर ली विश्राम में जाने की, निर्विचार में जाने की।

तुमने विचार ही नहीं किया, तुमने सिर्फ़ किताब में पढ़ लिया कि निर्विचार होने से आनंद मिलता है। तुम शॉर्टकट खोजने लगे कि कैसे निर्विचार हो जाएं, तुम बिना श्रम के विश्राम पाने की कोशिश कर रहे हो। नहीं, यह मुमकिन नहीं होगा। मेहनत करनी होगी, विचार की भी तल्लीनता साधनी होगी, मन को भी अपने शुद्धतम रूप में उपयोग करना होगा।

फिर इससे भी और सूक्ष्म आलंबन है– अहंकार का भाव। आनंदभाव उसी से उत्पन्न होता है यद्यपि है वह ग़लत। 'मैं' का असम्यक ज्ञान है अहंकार। वह वास्तविक 'मैं' नहीं है। वह स्वरूप स्थिति नहीं है द्रष्टा की, वह साक्षीभाव नहीं है। किन्तु इस रास्ते पर तर्क के बाद विचार।

फिर विचार से भी ज़्यादा सूक्ष्म है– अहंकार– स्वयं के होने का भाव। बड़ा आनंद घटित होता है। लगता है मैं बहुत सुखी हूँ, मैं आनंदित हूँ और बहुत लोग इस आनंदभाव में ही रुक जाते हैं एवं इसी को अंतिम लक्ष्य समझ लेते हैं।

पतंजलि यहाँ याद दिलाते हैं कि इसे अंतिम लक्ष्य मत समझना। जिसे विदेही और प्रकृतिलयी कहा जाता है; वे लोग हैं जो आनंदभाव में डूब गए। यह अंतिम लक्ष्य नहीं है, इसके भी पार जाना है।

आनंदभाव से भी ज़्यादा सूक्ष्म है अस्मिताभाव। अस्मिता भी 'मैं' का भाव है। ऐसा समझो इसमें 'मैं' नहीं, हूँपन है। अहंकार का अर्थ है– मैं हूँ आई एम और अस्मिता का अर्थ है हूँ एमनैस, आई खो गया, मैं खो गया, उतनी स्थूलता न रही, और भी सूक्ष्म... सिर्फ़ होने का भाव शेष रह गया। यह समाधि संप्रज्ञात समाधि की सबसे गहरी अवस्था है। जो व्यक्ति यहाँ तक पहुँच गया, अगला क़दम उठाना उसके लिए बहुत आसान होगा, असंप्रज्ञात में उसकी यात्रा हो सकेगी। अगली बार हम असंप्रज्ञात समाधि की चर्चा करेंगे। जो मैं कह रहा हूँ उसे केवल सुनना और समझना ही नहीं; उसे जीते जाना; उसे अपने जीवन का हिस्सा बनने देना।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–18

असंप्रज्ञात समाधि

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।। 18 ।।

विराम प्रत्यय अभ्यासपूर्वः संस्कारशेषः अन्यः

दूसरी समाधि का, नाम असंप्रज्ञात है;
मिट जाते विषय किंतु, रहता संस्कार है।

पतंजलि आगे चर्चा करते हैं असंप्रज्ञात समाधि की। इसे निरालंब समाधि भी कहा जाता है। यह ज्ञेय से मुक्त होती है। जानने को कुछ और नहीं होता। जाननेवाला स्वयं को ही जानता है। ज्ञाता को स्वयं का ही ज्ञान होता है। द्रष्टा स्वयं दृश्य हो जाता है। जे. कृष्णमूर्ति जी कहा करते हैं– वेयर द ऑब्जर्वर बिकम्स द ऑब्ज़र्व्ड. ज्ञाता और ज्ञेय जहाँ एक ही हो गए। चंचलता में हम बाहर की अनेक वस्तुओं को जान रहे थे। एकाग्रता में हम बाहर की किसी वस्तु को जान रहे थे। तल्लीनता में हमने अपने स्वयं के भीतर के विषय को जाना, वितर्क को, विचार को, अहंकार को, अस्मिता को। और असंप्रज्ञात समाधि में हम एक क़दम और आगे बढ़े... भीतर भी कोई विषय न बचा। नो ऑब्जैक्ट लैफ्ट बट द सब्जैक्टिव नोइंग।

इसलिए इसको निरालंब भी कहते हैं। इसमें किसी चीज़ का सहारा नहीं है; कोई आलंबन शेष नहीं बचा। जानने को कुछ भी नहीं बचा। बस स्वयं ही हम अपने आप को जान रहे हैं।

मैंने सुना है एक चुटकुला, टाइटैनिक नामक एक जहाज़ डूब रहा था। सरदार विचित्तर सिंह भी उस जहाज़ पर थे। उन्होंने चिल्लाकर लोगों से पूछा कि ज़मीन यहाँ से कितनी दूर है? किसी ने कह दिया कि सिर्फ़ चार मील दूर। सरदार विचित्तर सिंह पानी में कूद गए, कह रहे थे कि मैं तो बहुत कुशल तैराक हूँ। मैं तो कई बार दस–दस बीस–बीस मील दूर तक तैर चुका हूँ। चार मील मेरे लिए कुछ भी नहीं मैं अभी ज़मीन पर पहुँच जाऊँगा। फिर सागर में कूदने के बाद उन्होंने पूछा कि ज़मीन किस दिशा में है। कप्तान ने बताया– नीचे की तरफ़।

हमारा बहिर्मुखी चित्त बाहर की दिशाओं में दौड़ रहा था। अब अपने भीतर की दिशा में चलें, अब भीतर की तरफ़, नीचे की तरफ़, बाहर की दिशाएं न रहीं।

चार मील। और भीतर के चार मील के पत्थर हैं– पहला वितर्क, दूसरा विचार, तीसरा आनंद, चौथा अस्मिता। इन चार मील को पार कर गए तो अपनी आत्मभूमि पर पहुँच गए। असंप्रज्ञात समाधि का हल्का–हल्का अहसास संप्रज्ञात अवस्थाओं में भी होने लगता है, दूर से ही दिखाई देने लगता है। माना की अभी हम एवरैस्ट के शिखर पर नहीं पहुँचे परंतु एवरैस्ट के शिखर को दूर से देख लेना भी अपने आप में भरोसा बढ़ाने वाला होता है। एक बात तो तय हो गई कि मंजिल है। अब वहाँ तक पहुंचने की बात है। दूर से देख लेना भी बहुत है। ध्यान–समाधि में जो लोग आते हैं, उन साधकों को पहली बार जब ओंकार का ज्ञान होता है, तो समाधि की एक प्रकार से शुरुआत हो गई। लेकिन वह शुरुआत ऐसी है जैसे आप हमारे माधोपुर के आश्रम में या नेपाल में चितवन के आश्रम से हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों को देखते हैं। माधोपुर के आश्रम से और चितवन के आश्रम से हिमालय दिखाई देता है। अभी आप हिमालय पर पहुँच नहीं गए; सैंकड़ों किलोमीटर का फासला है। लेकिन हिमालय का दिख जाना भी पर्याप्त है। कम–से–कम भरोसा तो हो गया कि यहाँ पहुंचा जा सकता है। ओंकार का ज्ञान दूर से ही सही, अब पैरों में दम आ जाएगा, बल आ जाएगा, पहुंचा जा सकता है।

मैंने सुना है, एक वृद्ध महिला ने पुलिस इंस्पैक्टर को फ़ोन किया कि कृपया आप आकर मेरी मदद कीजिए। बड़ी मुश्किल हो गई है। मेरे घर के सामने ही कुछ युवक अपनी छत पर अश्लील हरकतें करते हैं, मुझे भड़काते हैं, मुझे उकसाते हैं, मैं बहुत बेचैन हो रही हूँ... मदद करिए! उसने जब कई बार फ़ोन किया, तो इंस्पैक्टर आया। उसने उस वृद्ध महिला से कहा कि कहाँ हैं वे लोग? मैं उनको पकड़ कर थाने ले जाता हूँ। उस महिला ने इशारा किया खिड़की में से... वो मकान जो दिख रहा है। इंस्पैक्टर ने कहा वो मकान? वहां से तुम्हें अश्लील हरकतें करके कोई कैसे उकसा सकता है! वह तो मकान भी इतनी दूर है कि ठीक से दिख भी नहीं रहा...तीन, चार किलोमीटर! बुढ़िया ने कहा– ऐसे नहीं दिखाई देगा, आप इस कुर्सी के ऊपर स्टूल रखिए, स्टूल के ऊपर आप खड़े हो जाइये और मैं आपको दूरबीन देती हूँ... इस दूरबीन से देखिए रोशनदान में से– वो लड़के वहाँ अश्लील हरकतें करते हैं।

इतनी दूर से भी दिख जाए परम सत्य दूरबीन से ही सही... फिर पहुँच जाना आसान होगा सत्य तक। असंप्रज्ञात समाधि का हल्का–हल्का एहसास संप्रज्ञात अवस्थाओं में होने लगता है। माना कि अभी हम मन के तल पर हैं, माना की अभी अहंकार और अस्मिता अभी विदा नहीं हुए, लेकिन ओंकार की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी अपनी अंतरात्मा की ख़बर तो आने लगी। निश्चित रूप से एक दिन वहाँ पहुंचना भी हो जाएगा। इस सूत्र के संबंध में हमारे प्यारे सदगुरु ओशो ने इस प्रकार समझाया है–

'असंप्रज्ञात समाधि में सारी मानसिक क्रिया की समाप्ति होती है और मन केवल अप्रकट संस्कारों को धारण किए रहता है।' किंतु फिर भी यही ध्येय नहीं है। क्योंकि क्या होगा उन सब प्रभावों का, विचारों का जिन्हें तुमने अतीत में इकट्ठा किया है? अनेक-अनेक जन्मों को तुमने जीया है, अभिनीत किया है, प्रतिक्रिया की है। तुमने बहुत सारी चीज़ें की हैं, बहुत-सी नहीं की हैं। क्या होगा उनका? चेतन मन शुद्ध हो चुका है; चेतन मन ने शुद्धता की क्रिया को भी गिरा दिया है। किंतु अचेतन बड़ा है और वहां तुम सारे बीजों को वहन करते हो, सारी रूपरेखाओं को। वे तुम्हारे भीतर हैं।

वृक्ष मिट चुका है; तुम संपूर्णतया काट चुके हो वृक्ष को। पर बीज जो गिर चुके हैं वे धरती पर पड़े हुए हैं। वे फूटेंगे, जब उनका मौसम आएगा। तुम्हारी एक और ज़िंदगी होगी, तुम फिर पैदा होओगे। निस्संदेह तुम्हारी गुणवत्ता अब भिन्न होगी, किंतु तुम फिर पैदा होओगे क्योंकि वे बीज अब भी जले नहीं हैं।

तुमने उसे काट दिया है जो व्यक्त हुआ था। उस चीज़ को काट देना सरल है जिसकी अभिव्यक्ति हुई हो। सारे वृक्षों को काट देना आसान होता है। तुम बगीचे में जा सकते हो और सारे लॉन को, घास को पूरी तरह उखाड़ सकते हो; तुम हर चीज़ को नष्ट कर सकते हो। पर दो सप्ताह के भीतर ही घास फिर से बढ़ जाएगी क्योंकि तुमने केवल उसे उखाड़ा था जो प्रकट हुआ था। जो बीज मिट्टी में पड़े हुए हैं उन्हें तुमने अभी तक छुआ नहीं है। यही करना होता है तीसरी अवस्था में।

असंप्रज्ञात समाधि अब भी 'सबीज' है, बीजों सहित है। और विधियां मौजूद हैं उन बीजों को जलाने की, अग्नि निर्मित करने की- वह अग्नि जिसकी चर्चा हेराक्लतु करते हैं, कि अग्नि कैसे निर्मित करें और अचेतन बीजों को जला दें। जब वे भी मिट जाते हैं, तब भूमि नितांत शुद्ध होती है; कुछ भी नहीं उदित हो सकता है इसमें से। फिर कोई जन्म नहीं, कोई मृत्यु नहीं। तब सारा चक्र तुम्हारे लिए थम जाता है; तुम चक्र के बाहर गिर चुके होते हो। और समाज से बाहर निकल आना कारगर न होगा, जब तक कि तुम भव-चक्र से ही बाहर न आ जाओ। तब तुम एक संपूर्ण समाप्ति बनते हो।

असली संन्यास समाज का त्याग नहीं, संस्कारों का त्याग है। असंप्रज्ञात समाधि में बीज रूपी संस्कार शेष रह जाते हैं। ऊपर-ऊपर सब साफ सुथरा हो गया लेकिन भीतर अभी भी छुपे हुए बीज मौजूद हैं। समय आने पर वे फिर अकुंरित हो जाएंगे। इसलिए असंप्रज्ञात समाधि भी अंतिम नहीं है। अंतिम है निर्बीज समाधि सीडलैस समाधि... जब संस्कारों के बीज भी दग्ध हो जाते हैं। उपनिषदों में इस बात को बहुत सुंदर उपमा से सजाया गया है।

समझो एक लालटेन है, उसके भीतर आत्मा की ज्योति जल रही है, लालटेन का

जो कांच है उसमें कई परते हैं। तीन हिस्सों में हम बांट सकते हैं– स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। सबसे बाहर की जो परत है वो है स्थूल शरीर अथवा अन्नमयकोश। यह रजवीर्य से उत्पन्न हुआ और भोजन, अन्न के द्वारा विकसित होता है– यह स्थूल शरीर, फिज़िकल बॉडी। सूक्ष्म शरीर की फिर तीन परते हैं– प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष– ये तीन सूक्ष्म परते हैं– सूक्ष्म शरीर की। इसके और भीतर है, आनंदमय कोष, जिसे कारण शरीर भी कहा जाता है। सबसे भीतर चेतना की ज्योति जगमगा रही है।

संप्रज्ञात समाधि में हम सूक्ष्म शरीर के तलों पर आ जाते हैं। प्राणमय कोष को, मनोमय कोष को, विज्ञानमय कोष को जानते हैं; इसके पश्चात असंप्रज्ञात समाधि में हम और भी भीतर की परत आनंदमय कोष में पहुँच जाते हैं। वहाँ हम बिल्कुल भीतर चेतना की ज्योति के निकट हैं, समझें ज्योति को हमने जान ही लिया; लेकिन फिर भी अभी अप्रकट संस्कारों के बीज मौजूद हैं, ज्योति अकेली जल रही है, निष्कंप जलने लगी, स्थितप्रज्ञ हम हो गए; लेकिन अभी थोड़ा और इंतज़ार करना होगा।

यह मंदिर का दीप इसे अकंप जलने दो, यह मंदिर का दीप इसे अकंप जलने दो
शंख, मजीरा, ढोल भजन कीर्तन जो गाए, आरती बेला में बड़ा कोलाहल भर गए
रह गया यहाँ पर इष्ट अकेला...
इसे जगत का शून्य उजागर अब करने दो, यह मंदिर का दीप इसे अकंप जलने दो
माला मनके फेर मंत्र जप लोग चले गए, पढ़ गीता के श्लोक सभी पुजारी सो गए
थमी मुखरता मौन वाणी में...
अब तो प्रभु कथा इसी लौ को कहने दो, यह मंदिर का दीप इसे अकंप जलने दो
लम्बी है दिग्भ्रांत रात की मूर्छा गहरी, रात्रि जागरण करेगा ज्योति का ये लघु प्रहरी।
सूर्य उदय की बाट जोहता दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो,
यह मंदिर का दीप इसे अकंप जलने दो।

अब भीतर वह ज्योति जगमगा उठती है। उसके हम बिल्कुल सम्मुख हो जाते हैं, क़रीब–क़रीब द्रष्टाभाव में स्थित, क़रीब–क़रीब कह रहा हूँ; क्योंकि संभावना अभी भी बाक़ी है; बीज अभी दग्ध नहीं हुए। अतः असंप्रज्ञात समाधि भी साधक का अंतिम लक्ष्य नहीं है। संस्कार कंडिशनिंग, मन अतिसूक्ष्म रूप में मौजूद है। अनमैनिफैस्टिड अप्रकट संस्कार में मौजूद है। वे भी दग्ध हो जाएं, समय लगता है, लम्बी है यात्रा, धीरे–धीरे एक–एक क़दम चलते हुए हजारों मील की यात्रा भी पूरी हो जाती है। चरैवेती... चरैवेती... चलते चलो... चलते चलो...।

धन्यवाद। जय ओशो।।

विदेही के लिए सहज समाधि

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्।। 19 ।।

भवप्रत्ययः विदेह प्रकृति लयानाम्

स्वयं को देह से जो भिन्न जान लेते हैं,
करुणावश वे भी कभी जन्म लेते हैं।
ऐसे विदेही जब वसुंधरा पर आते हैं,
दूसरी समाधि को सहज ही पा जाते हैं।

आज सुबह–सुबह एक बड़ा शानदार चुटकुला मैं पढ़ रहा था। रामू नामक अफीमची नौकर गांव से शहर आया। मालिक ने पूछा, रामू! घर में सब ठीक तो हैं न? अफीमची रामू ने कहा, मालिक सब ठीक हैं पर आपका लाड़ला कुत्ता नहीं रहा। मालिक ने कहा– अरे! मेरा कुत्ता कैसे मर गया? हुजूर आपके पालतू हिरण की टांग की लम्बी हड्डी निगलने की वजह से उसका पेट फट गया, बाक़ी सब ठीक है। मालिक ने कहा– अरे! मेरा प्यारा हिरण कैसे मर गया। मालिक, हिरण के खाने के लिए घास ही नहीं बची, सो बेचारा भूख से मर गया, बाक़ी सब खैरियत है। मालिक ने कहा, मैं तो उसके लिए चार क्विंटल घास छोड़ के आया था, इतनी जल्दी कैसे समाप्त हो गई। रामू ने कहा, माफ करें हुजूर, आपकी माता जी के दाह–संस्कार में पूरी घास जल गई। बाक़ी सब कुशल मंगल है। ओ...गॉड! मेरी माता जी अचानक कैसे चल बसी? आपके आदरणीय पिता जी के देहांत के सदमे को बर्दाश्त न कर पाई इसलिए... बाक़ी सब कुशल मंगल है। मालिक ने कहा, पिता जी भी चल बसे! लेकिन कैसे? रामू ने कहा, आप तो जानते ही हैं, वे हार्ट अटैक के रोगी थे, बिल्ली के मर जाने के दुःख की वजह से उनको हार्ट अटैक हो गया। बाक़ी सब कुशल मंगल है। मालिक ने कहा– अरे! बिल्ली की मृत्यु कैसे हुई? रामू ने कहा, हुजूर! जब आपके बच्चे दूध न मिलने के कारण मर गये, तो बेचारी बिल्ली कैसे जिंदा बचती? बाक़ी सब खैरियत है। मालिक ने कहा– दूध! दूध की कमी कैसे पड़ी? हमारी गाय तो रोज़ दस किलो दूध देती थी। अफीमची नौकर ने कहा कि क्या बताऊँ मालिक... आप के घर की छत गिर जाने से गाय मर गई, बाक़ी सब कुशल मंगल हैं।

योग के इन सोपानों पर चलते–चलते धीरे–धीरे हम दूसरी तरफ़ चल रहे हैं। अहंकार गया, अस्मिता गई, तर्क गए, विचार मर गए, मन मर गया, वासनाएं मर गईं, अब बचा केवल मालिक। इस चुटकुले में मैं सोच रहा था कि एक और लाइन होनी चाहिए। कि रामू कहे कि हुजूर केवल आप ही बचे हैं। असंप्रज्ञात समाधि के बाद बस द्रष्टा ही शेष रह जाता है। कोई और दृश्य बचता नहीं, बाक़ी सब विदा हो गए। लेकिन अगर मालिक भी बचा है तो भी संस्कार के बीज अभी शेष बचे हैं। मालिक के बचने से फिर पूरा परिवार खड़ा हो सकता है, फिर पत्नी आ सकती है, फिर बच्चे आ सकते हैं, फिर गाय, हिरण, कुत्ता फिर सब पैदा हो जाएंगे; बीज अभी मौजूद है।

पतंजलि कहते हैं कि विदेही और प्रकृतिलयी लोग भी इस धरती पर आते हैं; क्योंकि उनके संस्कार अभी शेष रह गये थे। उन्होंने पिछले जन्म में जान लिया था असंप्रज्ञात को, लेकिन अभी संस्कार नष्ट नहीं हुए थे। सबीज समाधि थी। वे फिर इस धरती पर जन्म लेते हैं। और ऐसे लोग इस जन्म में बड़े सहज रूप से असंप्रज्ञात समाधि को प्राप्त कर लेते हैं। विदेह शब्द का अर्थ है बाडीलैसनैस। प्रकृतिलयी का भी वही अर्थ है।

थियसॉफिकल सोसाइटी वाले जब विश्व गुरु बनाने के लिए किसी व्यक्ति को खोज रहे थे। पूरे हिंदुस्तान में जगह–जगह एनी बेसेंट और लैड बीटर ढूँढ़ते रहे कि कोई ऐसे बच्चे मिल जाएं जो विदेही हों। तब उन्होंने जे. कृष्णमूर्ति को चुना। साउथ इंडिया में एक छोटा–सा गांव अदियार। वहाँ से गुज़र रहे थे थियसॉफिकल सोसाइटी के लोग। उन्होंने देखा नदी में कुछ बच्चे खेल रहे हैं। कृष्णमूर्ति की उम्र उस समय नौ साल की थी। बच्चे उधम मचा रहे हैं, एक दूसरे को तंग कर रहे हैं। एक दूसरे पर पानी फेंक रहे हैं, धूल–मिट्टी, कीचड़ उछाल रहे हैं। लेकिन कृष्णमूर्ति ऐसे खड़े हैं जैसे उन्हें कुछ हो ही नहीं रहा। कोई उनको पानी मार रहा या कीचड़ उनपर फेंक रहा है; लेकिन वे जैसे अस्पर्शित हों। इस घटना को देखकर थियसॉफिकल सोसाइटी के उन अधिकारियों ने कृष्णमूर्ति को चुन लिया। यह जानकर कि यह बच्चा विदेहभाव में है, इसको बॉडीलैसनैस घट गई है और इसको विश्वगुरु, जगद्गुरु बनाया जा सकता है। एक वर्ल्ड टीचर होने की संभावना इसमें है। यह पिछले जन्म से ही असंप्रज्ञात समाधि को जानकर आया है।

ऐसे लोगों का एक जन्म और होता है; ताकि जो अनमैनिफैसटिड छुपे हुए बीज रह गए हैं, वे भी प्रगट हो जाएं। वे भी अंकुरित हो जाएं। और वे साक्षीभाव की अग्नि में उनको भी दग्ध हो जाने दें। उनके दग्ध होने में वक्त लगता है। ओशो ने इस सूत्र को समझाते हुए कहा है–

'असंप्रज्ञात समाधि में सारी मानसिक क्रिया की समाप्ति होती है और मन केवल अप्रकट संस्कारों को धारण किए रहता है।'

विदेहियों और प्रकृतिलयों को असंप्रज्ञात समाधि उपलब्ध होती है; क्योंकि अपने पिछले जन्म में उन्होंने अपने शरीर के साथ तादात्म्य बनाना समाप्त कर दिया था। वे फिर जन्म लेते हैं; क्योंकि इच्छा के बीज बने रहते हैं।

बुद्ध भी जन्म लेते हैं। अपने पिछले जन्म में वे 'असंप्रज्ञात समाधि' को उपलब्ध हो चुके थे, लेकिन बीज मौजूद थे। उन्हें एक बार और आना ही था। महावीर भी जन्म लेते हैं, बीज उन्हें ले आते हैं। लेकिन यह अंतिम जन्म ही होता है। असंप्रज्ञात समाधि के पश्चात केवल एक जीवन संभव है। लेकिन तब जीवन की गुणवत्ता संपूर्णतया भिन्न होगी; क्योंकि यह व्यक्ति देह के साथ तादात्म्य नहीं बनाएगा। इस व्यक्ति को वस्तुतः कुछ करना नहीं होता। क्योंकि मन की क्रिया समाप्त हो चुकी है, तो क्या करेगा वह? इस ज़िंदगी की ही ज़रूरत किसलिए है? उसे तो बस उन बीजों को व्यक्त होने देना है और वह साक्षी बना रहेगा। यही है अग्नि।

ये दो शब्द सुंदर हैं– 'विदेह' और 'प्रकृतिलय'। 'विदेह' का अर्थ है– वह जो जानता है कि वह देह नहीं है। ध्यान रहे, जो जानता है, विश्वास ही नहीं करता है। 'प्रकृतिलय' वह है, जो जानता है कि वह शरीर नहीं है; अब वह प्रकृति नहीं रहा।

देह भौतिक से संबंध रखती है। एक बार तुम्हारा पदार्थ के साथ, बाह्य के साथ तादात्म्य टूट जाता है तो तुम्हारा प्रकृति से संबंध विसर्जित हो जाता है। वह व्यक्ति जो अब इस अवस्था को उपलब्ध हो जाता है जहां वह अब देह नहीं रहता; जो उस अवस्था को प्राप्त करता है जिसमें अब वह अभिव्यक्त न रहा, प्रकृति न रहा, तब उसका प्रकृति से नाता समाप्त हो जाता है। उसके लिए अब कोई संसार नहीं। उसका अब कोई तादात्म्य नहीं है। वह इसका साक्षी बन गया है। ऐसा व्यक्ति भी कम से कम एक बार पुनर्जन्म लेता है; क्योंकि उसे बहुत सारे हिसाब समाप्त करने होते हैं। बहुत वचन पूरे करने होते हैं, बहुत सारे कर्म गिरा देने हैं।

कुछ कर्मबंध रह जाते हैं। बुद्ध का भाई देवदत्त उनके प्राण लेने के पीछे पड़ा था। कई बार उसने (देवदत्त ने) उन्हें मारने की कोशिश की। बुद्ध के शिष्यों ने पूछा कि भगवन् आप हमें आज्ञा दें, हम देवदत्त को सबक सिखा दें। बुद्ध ने कहा कि नहीं, वह जो कर रहा है, उसे कर लेने दो। पिछले जन्मों में मैंने उसे सताया था, वो खाते उन्हीं कर्मों के चल रहे हैं। इस बार उसे मुझे सता लेने दो ताकि वह खाते बंद हों, एकाउंट क्लोज हों, वरना मुझे फिर जन्म लेना पड़ेगा। जितना दुःख मैंने उसे दिया है उतना दुःख वह मुझे देगा। हाँ, इस जन्म में मैं अपनी तरफ़ से कोई नई शुरुआत नहीं करूँगा; क्योंकि

अगर मैं फिर शुरू कर दूं तो फिर नए कर्मबंधों का सिलसिला शुरू हो जाएगा। सिर्फ़ पुराना हिसाब–किताब पूरा हो जाने दो। ऐसे लोग जीवन के सारे दुःखों को बड़ी सहजता से स्वीकार लेते हैं। यह जानते हुए कि पुराना हिसाब–किताब पूरा हो रहा है। कहीं कुछ हमने किया था, उसका बदला मिलना बाक़ी था, वह मिल जाना ज़रूरी है, तब वे प्रसन्न होते हैं दुःख पाकर। क्योंकि वे जानते हैं कि चलो एक कर्मबंध का हिसाब पूरा हुआ और मुक्ति मिली, इस बंधन से भी छूटे!

महावीर को लोगों ने बहुत सताया, बहुत दुःख दिया; लेकिन महावीर के मन में किसी के प्रति क्रोध नहीं है। कारण वे जानते हैं कि इस व्यक्ति ने परोपकार ही किया मेरे ऊपर। इसने आके पुराना सिलसिला समाप्त कर दिया। अगर ये सिलसिला पूरा नहीं होगा तो मुझे फिर जन्म लेना पड़ेगा–इस अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए।

वे लोग जिन्होंने पिछले जन्म में असंप्रज्ञात समाधि जान ली, उनका यह जन्म बड़े सहज रूप से समाधि की प्राप्ति से ही होता है। निश्चित रूप से वे लोग बचपन से ही बहुत भिन्न होते हैं। ओशो ने अपने एक प्रवचन में कहा है कि मैं क़रीब–क़रीब संबुद्ध एन्लाइटंड ही पैदा हुआ था। क़रीब–क़रीब। कुछ छोटी–सी, पतली–सी, बारीक–सी दीवार रह गई थी। एक झीना–सा पर्दा; बस वो पर्दा विदा हुआ और परम ज्ञान उपलब्ध हो गया। लेकिन वो झीना–सा पर्दा कई बार जानबूझकर भी लाया जाता है। क्योंकि ऐसे लोग सदगुरु बन सकते हैं और दुनिया के बड़े काम आ सकते हैं।

जैन शास्त्रों में तीर्थंकर बंध नाम का एक शब्द प्रयोग में लाया जाता है। तीर्थंकर बंधः ऐसे लोग एक बंधन जानबूझकर बचा लेते हैं– करुणा का भाव– है तो वह भी वासना ही। करुणा; दूसरे की मदद करने का भाव। यह भी तो एक कामना है। यह भी तो एक वासना है। यह भी तो एक तृष्णा है कि मैं दूसरों को मदद पहुँचाऊँ। ऐसे लोग इस बीज को बचा लेते हैं। फलस्वरूप वे थोड़ी–सी मूर्छा लेकर पैदा होंगे। बहुत हल्की–सी, भीनी–सी परत, थोड़े दिनों में ही वह टूट जाएगी, तब वे परम जागरण को उपलब्ध हो जाएंगे; लेकिन ऐसा बारंबार नहीं हो सकता। एक बार निर्बीज अवस्था उपलब्ध हो गई फिर वापिस लौटना नहीं होता। इसलिए कोई व्यक्ति एक जन्म में ही सतगुरु हो पाता है। या इसको बहुत कोशिश करके तीर्थंकर बंध को बचा–बचा के वो चले, तो ज़्यादा से ज़्यादा तीन जन्म तक आकर सतगुरु का कार्य कर सकता है। इससे ज़्यादा संभव नहीं। क्योंकि फिर उसकी साक्षी की अग्नि में बीज दग्ध हो ही जाते हैं, नहीं बचाया जा सकता। करुणाभाव भी धीरे–धीरे... क्षीण होता जाता है। अंततः वह भी समाप्त हो जाता है। तब अफीमची रामू कह सकता है कि मालिक अब आप भी गए।

धन्यवाद। जय ओशो।।

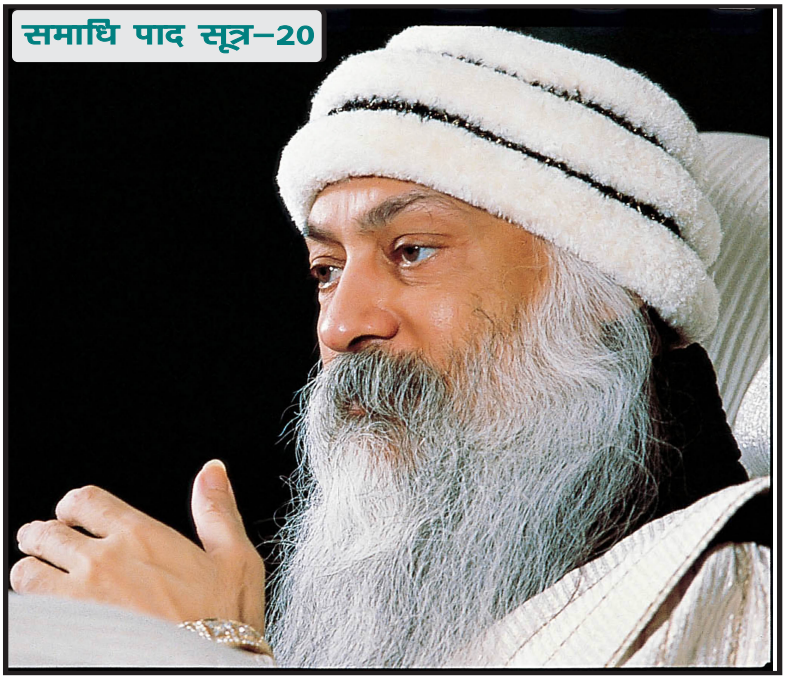

समाधि प्राप्ति के अन्य उपाय

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।। 20 ।।

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्

अन्य पाते असंप्रज्ञात, एकाग्रता व श्रद्धा से;
सम्यकप्रयत्न से, स्मृति व प्रज्ञा से।

पतंजलि अंतर्जगत के आइंस्टाईन जैसे हैं। एक–एक क़दम, धीरे–धीरे भीतर की यात्रा पर ले चलते हैं साधक को। बड़ा साफ–सुथरा रास्ता उन्होंने बनाया। पहले कहा संप्रज्ञात समाधि उन्हें उपलब्ध होती है जो वितर्क, विचार, अहंकार और अस्मिता रूपी

मानसिक क्रियाओं सहित समाधि में प्रवेश करते हैं। असंप्रज्ञात समाधि उन्हें उपलब्ध होती है जिनकी सारी मानसिक क्रियाएं ठहर जाती हैं। फिर वितर्क भी नहीं, विचार भी नहीं, अहंकार भी नहीं, अस्मिता भी नहीं। पिछले जन्म में जिन्होंने समाधि को जाना है; इस जन्म में वे विदेह अथवा प्रकृतिलय कहलाते हैं।

कृष्णमूर्ति का उदाहरण मैंने आपको दिया था; छोटे बच्चे थे, नदी में स्नान करते, कोई उनपर कीचड़ फेंक रहा और वे कोई प्रतिक्रिया न करते। किसी बच्चे ने उनको पानी में धक्का दे दिया; वो पानी में चले गए। कोई रिज़िस्टंस नहीं। स्वीकार भाव, विदेह भाव में हैं; उन्हें अपनी देह का बोध ही नहीं हैं।

राजा जनक को विदेह कहा जाता है। उनकी बेटी सीता को इसीलिए विदेही कहा जाता है। कृष्णमूर्ति उसी अवस्था में पैदा हुए; पिछले जन्म से ही समाधि की पूंजी लेकर आए। पतंजलि कहते हैं– ऐसे लोगों को असंप्रज्ञात समाधि इस जीवन में बड़ी सहजता से अपने आप ही मिल जाती है। लेकिन बाक़ी लोगों को फिर कैसे मिलेगी?

पतंजलि पाँच बातें कहते हैं कि श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा। ये पाँच मानसिक क्रियाएं नहीं हैं। स्मरण रखना! इनमें अगर हम डूबे तो समस्त मानसिक क्रियाओं से मुक्ति मिल जाएगी।

एक–एक बात को ग़ौर से समझना– बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं ये पाँच शर्तें। पहली है श्रद्धा। श्रद्धा अंधविश्वास नहीं है। श्रद्धा का अर्थ है एक भरोसा, मेरे भीतर जो संभावना है वह वास्तविकता बन सकेगी। जैसे कोई बीज वृक्ष को देखकर आत्मश्रद्धा से भर जाए कि मैं भी एक दिन वृक्ष बन सकूंगा। मेरी भी शाखाएं निकलेंगी, पत्ते आएंगे, फल–फूल होंगे, सुगंध उड़ेगी– ये है श्रद्धा! श्रद्धा का अर्थ अंधविश्वास नहीं। जन्म से कोई हिंदू है, कोई ईसाई है, कोई मुसलमान है– ये अंधविश्वास हैं, ब्लाइंड बिलीफ़्स हैं। धर्म का जन्म से कोई संबंध नहीं होता। श्रद्धा तो घटित होती है किसी सदगुरु के निकट। जैसे वृक्ष को देखकर बीज के भीतर आत्मश्रद्धा जागती है, ठीक उसी प्रकार किसी सदगुरु की उपस्थिति में शिष्य के भीतर श्रद्धा का आविर्भाव होता है। उसे लगता है कि मैं भी पा सकूंगा, मैं भी पहुँच सकूंगा, मैं भी मंज़िल तक यात्रा कर सकूंगा। कोई जीवित सदगुरु चाहिये श्रद्धा है प्रेम जैसी और विश्वास है विवाह जैसा।

विश्वास से बचना; वो झूठा है। सब विश्वास अंधविश्वास होते हैं। श्रद्धा तुम्हें विकसित करेगी, तुम्हें फैलाएगी। लेकिन श्रद्धा के अपने ख़तरे हैं; जैसे प्रेम के ख़तरे हैं। विवाह सुरक्षित है। ठीक वैसे ही जन्म से कोई हिंदू हो गया, जैन हो गया, बौद्ध हो गया; कितना सुरक्षित! लेकिन जब तुम किसी गुरु के प्रेम में पड़ोगे, श्रद्धा में पड़ोगे तब समाज और तुम्हारा परिवार; बल्कि सारी व्यवस्था तुम्हारे खिलाफ हो जाएगी। बड़ी

अड़चन खड़ी हो जाएगी। समाज हमेशा से परंपरावादी रहा है। वह प्रेम के भी खिलाफ है, श्रद्धा के भी खिलाफ है और भक्ति के भी खिलाफ है। ये प्रेम के ही विविध रूप हैं। अतः श्रद्धा मानसिक क्रिया नहीं है; बल्कि मानसिक क्रियाओं से मुक्ति दिला देगी। यह एक फीलिंग है, एक भरोसा अपने आप पर कि– मेरी पोटेंशियैलटी– रियैलटी बन सकेगी।

दूसरा शब्द है वीर्य। वीर्य का अर्थ सिर्फ़ प्रयत्न ही नहीं होता, सिर्फ प्रयास ही नहीं होता, समग्र प्रयास, तुम्हारी पूरी वाइटल एनर्जी, तुम्हारी पूरी जैविक ऊर्जा एक कार्य में संलग्न हो जाए... उसे कहेंगे वीर्य। यह भी मन के पार की दशा है; जिस काम को करो पूर्णता के साथ, समग्रता के साथ करो। प्रयास रूखा–सूखा शब्द है। वह प्रयास ऐसा हो कि बिल्कुल तनावरहित एवं टोटैलिटी के साथ हो। किसी छोटे बच्चे को खेलते हुए देखो... जब वो खेल रहा है, उसे कोई एकाग्रता साधनी नहीं पड़ती। वह संपूर्ण रूप से खेल में मौजूद होता है। अतीत को भूल गया। भविष्य की कोई चिंता नहीं है। वर्तमान के इस क्षण में खेलते हुए, दौड़ते हुए, भागते हुए वह पूरी तरह मौजूद है! ऐसे हों तुम्हारे प्रयास! टोटैलिटी के साथ!

मानसिक क्रिया हमेशा खंडित होती है, विभाजित होती है। क्योंकि मन हमेशा खंड–खंड में सोचता है, स्वविरोधी सैल्फकॉन्ट्राडिक्टरी आवाज़ें मन में होती हैं। मन का एक हिस्सा कहता है कुछ करो; मन का दूसरा हिस्सा कहता है, नहीं, इसका विपरीत करो। बड़ी मुश्किल होती है। संपूर्ण प्रयास मन के बाहर की घटना है। इसीलिए यह असंप्रज्ञात समाधि में ले जाएगा।

तीसरी शर्त असंप्रज्ञात समाधि पाने के लिए पतंजलि कहते हैं– वह है स्मृति। स्मृति का अर्थ सिर्फ़ याददाश्त नहीं होता; स्मृति का अर्थ है कि हमारी चेतना इस भाँति की हो– ऐसा तीर जिसके दोनों तरफ़ फलक हो डबल एरोड। इस संबंध में ओशो ने सूत्र को समझाते हुए कहा है।

दूसरे जो असंप्रज्ञात समाधि को उपलब्ध होते हैं, वे श्रद्धा, विश्वास, प्रयत्न, वीर्य (ऊर्जा), स्मृति के द्वारा उपलब्ध होते हैं। यह स्मृति शब्द जो है, यह है स्मरण– जिसे गुरजिएफ कहते हैं, आत्मस्मरण। यह है स्मृति।

तुम अपने को स्मरण नहीं करते। हो सकता है तुम लाखों चीज़ों का स्मरण करो, लेकिन तुम निरंतर भूलते चले जाते हो स्वयं को, जो तुम हो। गुरजिएफ के पास एक विधि थी। उसने इसे पाया पतंजलि से। वस्तुतः सारी विधियां पतंजलि से चली आती हैं। वे विशेषज्ञ थे विधियों के। स्मृति है स्मरण– जो कुछ तुम करो उसमें स्व–स्मरण बनाए रहना। तुम चल रहे हो– गहरे में स्मरण रखना कि 'मैं चल रहा हूं' कि 'मैं हूं'।

चलने में ही खो मत जाना। चलना भी है–एक गति, एक क्रिया; और आपका वह जो आंतरिक केंद्र है; मात्र सजग, देखता हुआ, साक्षी।

लेकिन मन में दोहराओ मत कि मैं चल रहा हूं। अगर तुम दोहराते हो, तो वह स्मरण नहीं है। तुम्हें निःशब्द रूप से जागरूक होना है कि ' मैं चल रहा हूं, मैं खा रहा हूं, मैं सुन रहा हूं।' जो कुछ करते हो तुम, उस भीतर के 'मैं' को भूलना नहीं चाहिए। यह बना रहना चाहिए। यह अहंबोध नहीं है। यह आत्मबोध है। मैं–बोध अहंकार है; आत्मा का बोध है अस्मिता– शुद्धता, सिर्फ मैं हूं... इसका होश।

साधारणतः तुम्हारी चेतना किसी विषय–वस्तु की ओर लक्षित हुई रहती है। तुम मेरी ओर देखते हो; तुम्हारी संपूर्ण चेतना मेरी ओर बह रही है एक तीर की भांति। तो तुम मेरी ओर लक्षित हो। आत्म–स्मरण का अर्थ है तुम्हारे पास द्विलक्षित तीर होगा। इसका एक हिस्सा मेरी तरफ इंगित करता हो, दूसरा तुम्हारी ओर। द्विलक्षित तीर है स्मृति, आत्मस्मरण...।

यह बहुत कठिन है। क्योंकि विषय–वस्तु को स्मरण रखना और स्वयं को भूलना आसान होता है। विपरीत भी आसान है– स्वयं को स्मरण रखना और विषय को भूल जाना। दोनों आसान हैं। इसलिए वे जो बाजार में होते हैं, संसार में होते हैं, और वे जो मंदिरों–मठों में होते हैं, वे एक ही हैं। दोनों एकलक्षित हैं। बाजार में वे वस्तुओं को, विषयों को देख रहे होते हैं। मठों में वे अपने को देख रहे होते हैं।

स्मृति न तो बाजार में है, न ही संसार के बाहर वाले मठों में। स्मृति एक घटना है आत्म–स्मरण की जब 'स्व' और 'पर' दोनों एक साथ चैतन्य में होते हैं। यह संसार की सर्वाधिक कठिन बात है। अगर तुम इसे क्षणभर को, एक आंशिक क्षण को भी प्राप्त कर सको, तो तुम्हें तुरंत सटोरी (संबोधि) सडन एनलाइटनमैंट की झलक प्राप्त होगी। तत्काल तुम शरीर से कहीं ओर बाहर जा चुके होओगे।

ओशो के अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द था सम्मा सती, सम्यक स्मृति, सैल्फ–रिमेंबरैंस, राइट माइंडफुलनैस, तो सम्यक–स्मृति का अर्थ हुआ स्वयं का स्मरण रखते हुए किन्हीं भी कार्यों में लगना। बाहर दृश्य है, भीतर है द्रष्टा। हमारी चेतना ऐसी हो कि दृश्य के साथ–साथ द्रष्टा का ख़्याल बना रहे। संगीत सुन रहे हैं, बाहर है संगीतकार भीतर है श्रोता, दोनों की तरफ़ पचास–पचास प्रतिशत ऊर्जा हो– वह है सम्मा सती, स्मृति।

चौथी बात पतंजलि कहते हैं समाधि, यहाँ समाधि से तात्पर्य है समाधान वाली मन की स्थिति। सामान्यतः हमारा मन प्रश्न में उलझा होता है, संदेहों से भरा होता है। एक प्रश्न का उत्तर मिल जाए, तो उस उत्तर में से और दस नए प्रश्न खड़े कर लेता है।

ऐसा मन समाधि में न डूब सकेगा। एक ऐसी अवस्था जहाँ हम समाधान की तरह जीवन को देखते हैं। प्रश्न की तरह नहीं, पहेली की तरह नहीं, एक रहस्य की तरह। लाइफ़ इज़ ए मिस्ट्री, नॉट ए पज़ल टु बि सोल्व्ड। अपने दृष्टिकोण को थोड़ा बदलना। अगर तुम पहेली की तरह जीवन को देख रहे हो, तो असंप्रज्ञात समाधि न मिल सकेगी। समाधानपूर्वक, प्रश्नरहित, समस्यारहित दृष्टिकोण से देखो।

अंतिम शब्द है प्रज्ञा। प्रज्ञा का अर्थ सिर्फ़ विवेक नहीं होता। प्रज्ञा विवेक से भी ऊँची बात है। प्रज्ञा का अर्थ है बुद्धि पूरी तरह अपने आप में स्थित हो गई। हम बुद्धि से बुद्धि का काम ही नहीं लेते, हम पच्चीसों काम लेते हैं बुद्धि से; लेकिन बुद्धि को स्वयं में स्थिर नहीं होने देते। प्रज्ञा तब पैदा होती है जब बुद्धि पूरी तरह क्रियारहित, अक्रिय रूप से स्वयं में स्थित हो जाती है तब हम स्थितप्रज्ञ होते हैं– उसका नाम है विज़्डम। विज़्डम मानसिक क्रिया नहीं है; बल्कि मानसिक क्रियाओं के रुक जाने से, ठहर जाने से हम प्रज्ञावान होते हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में, उसकी पत्नी कह रही थी कि तुम्हारी तनख्वाह बहुत कम है। ऑफिस में अपने बॉस से कहो कि तनख्वाह बढ़ाए। उन्हें समस्यायें बतलाना कि कितनी समस्यायें हैं तुम्हारे पास। बताना की चार–चार पत्नियां हैं और पंद्रह–सोलह बच्चे हैं। बच्चों की शिक्षा का प्रबंध करना है। दो पत्नियां प्रैगनंट हैं, दो बीमार हैं, सास भी साथ में ही रहती है और पिता जी को लकवा लग गया है। बड़ी जिम्मेदारियां हैं। मकान बनवाना है क्योंकि अपना मकान नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा ठीक! जाके कहता हूँ। शाम को नसरुद्दीन ऑफिस से बड़ा प्रसन्न लौटा! पत्नी ने पूछा तनख्वाह बढ़ी? नसरुद्दीन ने कहा– नहीं, तनख्वाह नहीं बढ़ी। बॉस ने कहा इस्तीफा दो और घर जाओ। नौकरी से छुट्टी कर दी। जब तुम्हारे पास इतना काम है तो ऑफिस का काम कब करोगे? तुम्हारा चित्त तो वहाँ लगा रहेगा। सास भी तुम्हारे घर आकर रह रही है, चार पत्नियां हैं तो चार सासें होंगी और ऊपर से सोलह बच्चे– पक्के मुसलमान हो! तुम घर ही जाओ, ऑफिस का काम रहने दें।

हम ही बुद्धि से बुद्धि का काम नहीं ले रहे। इस बुद्धि को हमने कहीं न कहीं लगा दिया है– धन कमाने में, कहीं टेलिविज़न देखने में, कहीं फिल्म देखने में। इस बुद्धि को हमने पच्चीसों कामों में उलझा दिया है। बुद्धि को अपने आप में स्थिर होने दो। तब प्रज्ञा का जन्म होता है।

अतः ये पाँच बातें– श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा– इनके द्वारा अन्य लोग जोकि विदेह, प्रकृतिलय नहीं हैं, जिन्होंने पिछले जन्म में उपलब्धि नहीं की थी, वे लोग इन पाँच तत्वों के द्वारा इस जन्म में असंप्रज्ञात समाधि में जा सकते हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–21

सच्ची लगन से प्रभु मिलन

तीव्रसंवेगानामासन्नः।। 21 ।।

तीव्र संवेगानाम् आसन्नः

संवेदनशील व्यक्ति ही सफल हो पाते हैं।
त्वरावान सच्चे साधक मंज़िल को पाते हैं।

महर्षि पतंजलि कहते हैं– समाधि के आसन्न अर्थात् समीप वही हैं जिनके प्रयास प्रगाढ़, तीव्र हैं, जो सच्ची लगन से परमात्मा की तरफ़ बढ़ रहे हैं और निश्चित ही एक दिन वे अपनी मंज़िल तक पहुँच जाते हैं। यहाँ संवेग शब्द के दो अर्थों को समझना– एक तो सामान्यतः भौतिक शास्त्र में संवेग शब्द का प्रयोग किया जाता है, मोमैंटम के रूप में... और दूसरा एक साधक जो निरंतर प्रयास कर रहा है धीरे–धीरे... वर्षों वर्षों में उसके प्रयास से एक मोमैंटम एक संवेग निर्मित हो रहा है। यह संवेग सहयोगी होगा यात्रा को आगे बढ़ाने में।

मैंने सुना है एक मज़ाक़ कि एक बड़ी–बड़ी मूछोंवाला युवक साइकिल चला रहा था और चिल्लाता जा रहा था कि मेरी साइकिल के ब्रेक खराब हैं, संभल के ज़रा दूर हो जाएं। एक बुढ़िया जिसको सुनाई नहीं देता था वो सड़क पार कर रही थी और संयोग की बात कि साइकिल जाकर उसी बुढ़िया से टकराई। वह बुढ़िया बहुत नाराज़ हुई और उसने कहा कि बेटा इतनी बड़ी–बड़ी मूँछें हैं तुम्हारी और साइकिल नहीं रोक पाते! उस युवक ने कहा कि अम्मा मूँछों में क्या ब्रेक लगे हैं।

निश्चित रूप से साइकिल का एक मोमैंटम है। साइकिल चलती जा रही है... चलती जा रही है... बिना ब्रेक के अचानक न रुक सकेगी। जो साधक निरंतर धीरे–धीरे ही सही, थोड़ी–थोड़ी साधना भी कर रहे हैं उनके जीवन में एक संवेग निर्मित हो जाता है और यह संवेग उनकी यात्रा को सफलता की मंज़िल तक पहुंचाता है। संवेग का दूसरा अर्थ है प्रयास की तीव्रता, प्रगाढ़ता और... सच्चाई। क्या वास्तव में हम अपनी मंज़िल पाने को उत्सुक हैं, कितने प्यासे हैं? अगर कोई व्यक्ति प्यासा नहीं है, तो सरोवर के निकट पहुँचकर भी वो पानी को नहीं पी पाएगा। इस संबंध में सुनो ओशो क्या कहते हैं–

पतंजलि कहते हैं– सफलता उनके निकटतम होती है जिनके प्रयास तीव्र, प्रगाढ़ और सच्चे होते हैं। प्रयास की मात्रा मृदु, मध्य और उच्च होने के अनुसार सफलता की संभावना भिन्न होती है।

'सफलता उनके निकटतम होती है जिनके प्रयास तीव्र, प्रगाढ़ और सच्चे होते हैं।' तुम्हारी समग्रता की आवश्यकता होती है। ध्यान रखना, सच्चाई वह गुण है जो तब घटता है जब तुम किसी चीज़ में समग्र रूप से होते हो। लेकिन लोगों की सच्चे होने की, वास्तविक होने की धारणा करीब–करीब हमेशा गलत होती है। गंभीर होना प्रामाणिक होना नहीं है। प्रामाणिकता, सच्चाई, एक वह गुण है जो तब घटित होता है जब तुम किसी चीज़ में समग्र रूप से होते हो। अपने खिलौने के साथ खेल रहा बच्चा प्रामाणिक होता है। वह समग्र रूप से इसी में होता है। निमग्न! कुछ पीछे छूटा नहीं रहता, कुछ भी रोके हुए नहीं। वह वस्तुतः वहां होता ही नहीं। केवल खेल चलता चला जाता है...।

यदि तुम कोई चीज़ रोके हुए नहीं रहते, तो कहां होते हो तुम? तुम कार्य के साथ बिल्कुल एक हो गए होते हो। कोई कर्त्ता नहीं रहा वहां। जब कोई कर्त्ता नहीं रहता, तो प्रामाणिक होता है। कैसे हो सकते हो तुम गंभीर?

गंभीरता संबंध रखती है कर्त्ता से। तो मसजिदों में, मंदिरों में, चर्चों में तुम दो प्रकार के व्यक्ति पाओगे–एक तो वे जो वास्तविक हैं और दूसरे वे जो गंभीर हैं। गंभीर लोगों के बड़े नीरस चेहरे होंगे जैसे कि वे कोई बड़ा महान कृत्य कर रहे हों, कोई पवित्र बात, कोई आध्यात्मिक बात कर रहे हों। जैसे कि तुम सारे संसार को अनुगृहीत कर रहे हो क्योंकि तुम प्रार्थना कर रहे हो! यह भी अहंकार है। ज़रा धार्मिक व्यक्तियों की ओर देखना– तथाकथित धार्मिक, नाममात्र के धार्मिक। वे ऐसे चलते हैं जैसे कि वे सारे संसार को अनुगृहीत कर रहे हैं। वे पृथ्वी का सार–तत्त्व हैं जैसे। यदि वे मिट जाएं तो सारा अस्तित्व मिट जाएगा। वे ही इसे संभाले हुए हैं। उन्हीं के कारण, उनकी प्रार्थनाओं के कारण ही तो जीवन अस्तित्व रखता है... तुम उन्हें गंभीर पाओगे।

कर्त्ताभाव से गंभीरता पैदा होती है। तीव्र संवेग का अर्थ यह नहीं है कि कोई व्यक्ति गंभीर हो; बल्कि वह ईमानदार हो। गंभीरता बाधक है साधना में। गंभीरता से सदा बचना। अक्सर देखता हूँ साधुओं को, योगियों को; साधना करते–करते बहुत गंभीर हो जाते हैं। यह गंभीरता अहंकार का ही खेल है और यह अहंकार ही तो बाधक है भीतर जाने में। ओशो कहते हैं तीन प्रकार के खोजी होते हैं...

पहले कुतूहली, दूसरे जिज्ञासु और तीसरे मुमुक्षु। कुतूहलवाले का अर्थ है जस्ट क्युरियस बस यूँ ही जानने चला आया एक दर्शक ही भाँति, एक तमाशबीन बनके। उसे कोई सच्ची लगन नहीं है, कोई गहरी प्यास नहीं हैं और न ही वो साधना के लिए कोई मेहनत करने को तैयार है, कोई श्रम करने की उसकी तैयारी नहीं है। बस यूँ ही देखें

क्या होता है? नहीं, कुतूहल के द्वारा इस जीवन के सत्य को नहीं जाना जा सकता। सतत प्रयास करने होते हैं और एक ही दिशा मे लगनपूर्वक चलना होता है।

सूफ़ी संत जलालुद्दीन रोमी के खेत के पास एक पागल का खेत था। रोमी अक्सर अपने शिष्यों को उस पागल के खेत दिखाने ले जाता था। उस पागल ने अपने खेत में गड्ढे ही गड्ढे कर रखे थे। जहाँ देखो जगह–जगह गड्ढे ही गड्ढे। लोग पूछते कि इतने सारे गड्ढे करके इसने तो अपना पूरा खेत बर्बाद कर लिया। जलालुद्दीन रोमी ने बताया कि ये आदमी कुआं खोदना चाहता है; तो कहीं दो चार फुट ज़मीन खोदी फिर उसको लगता है कि अभी तक पानी नहीं आया फिर बगल में दूसरी जगह खोदने लगा। कुआं खोदने के इस प्रयास में उसने पूरे खेत को नष्ट कर लिया है। कुंआ भी नहीं खुदा, पानी भी नहीं मिला, सारी ज़मीन बर्बाद हो गई।

कुतूहली आदमी ऐसा ही होता है। जगह–जगह गड्ढे खोदता है। काश! एक ही जगह गहराई तक हम खोदते, तो जल–स्रोत तक पहुँच जाते। पानी मिल जाता, प्यास बुझ जाती। इसलिए कुतूहली आदमी कभी भी परमात्मा को नहीं पा सकता; क्योंकि उसका प्रयास बिखरा हुआ होता है। दो–चार दिन कुछ थोड़ी–सी साधना की, फिर छोड़ दी। फिर महीने दो महीने बाद याद आया... अरे! प्रार्थना कर लें। दो–चार दिन प्रार्थना की, फिर भूल–भाल गए, किसी काम में उलझ गए। फिर दो–चार महीने बाद याद आया कि ध्यान करना चाहिए, फिर थोड़ा–सा ध्यान कर लिया। इस प्रकार सारी ज़िंदगी का खेत गड्ढों से भर जाएगा। किन्तु जीवन के परम ख़ज़ाने तक पहुंचना न हो सकेगा। तो कुतूहली मंज़िल को कभी नहीं पाते।

दूसरे हैं जिज्ञासु। जिज्ञासु निश्चित रूप से एक ही समस्या पर कार्य करते हैं, लेकिन उनका प्रयास बौद्धिक होता है, वे ज़िंदगी को पहेली की भाँति देखते हैं और पहेली को सुलझाने की कोशिश करते हैं। यह कोशिश भी काम नहीं आती। उनकी सिंसैरिटि कुतूहलवाले व्यक्ति से ज़्यादा है। लेकिन इतना भी पर्याप्त नहीं, थोड़ी और गहराई चाहिए। यह बौद्धिक व्यक्ति पहेली को सुलझाते–सुलझाते, जीवन की समस्याओं के हल खोजते–खोजते दार्शनिक तो हो जाएगा, सिद्धांतवादी हो जाएगा, किताबें लिखने में कुशल हो जाएगा, भाषण देने में प्रवीण हो जाएगा; किन्तु जीवन की समस्या का समाधान न खोज पाएगा। वो समाधान तो मिलता है समाधि से, योग से; बौद्धिक व्यायाम से नहीं। इसलिए जिज्ञासु आदमी भी बुद्धि और अहंकार में उलझकर रह जाता है।

तीसरा है मुमुक्षु। मुमुक्षु का अर्थ जिसे मोक्ष की आकांक्षा उत्पन्न हो गई। अब जो जीवन–मरण के जाल से मुक्त होना चाहता है; जो इच्छाओं से ही मुक्त होने की इच्छा से भर गया। अस्तित्व के इस आवागमन के चक्कर से बाहर जाने की जिसे सूझ उत्पन्न

हो गई– वह है मुमुक्षु। अब उसके लिए खोज सिर्फ एक बौद्धिक बात नहीं है, बल्कि जीवन–मरण की समस्या है; उसने सबकुछ दाँव पे लगा दिया है। मुमुक्षु भी तीन प्रकार के होते हैं। पहली कोटि है उन लोगों की जो मेहनत तो करते हैं, लेकिन उनकी प्राप्ति निषेधात्मक होती है; नेगटिव एचिवमंटस होती हैं। एक सामान्य आदमी क्रोधी है, लोभी है, कामी है, द्वेष और ईर्ष्या से भरा है।

यह जो पहली कोटि का मुमुक्षु है निश्चित रूप से इसके जीवन से लोभ विदा हो जाएगा; लेकिन दान पैदा नहीं होगा। काम विदा हो जाएगा; लेकिन ब्रह्मचर्य नहीं फलेगा। इसके जीवन से क्रोध और हिंसा चली जाएगी; लेकिन दया और करुणा नहीं जन्मेगी। इसकी उपलब्धि नेगटिव जिज्ञासु से ज़्यादा है, वह ठीक है; लेकिन यह बहुत ऊँची बात नहीं है।

दूसरी कोटि का मुमुक्षु है; जिसके जीवन में विधायक उपलब्धि आनी शुरू हुई, अब वो शांत होना शुरू हुआ, संवेदनशील होना शुरू हुआ, स्थिर होना शुरू हुआ, अपने में स्थित होना उसने सीखा; ऐसा व्यक्ति मौन, शांत। उसके जीवन की सारी अराजकता चली गई। जीवन में एक प्रकार का राज, एक ऑर्डर, एक डिसिप्लिन एक अनुशासन पैदा हुआ। इसकी उपलब्धि विधायक है। अब वो केवल अक्रोध में ही नहीं है, दयाभाव से भी भर गया है; वह केवल अहिंसक ही नहीं है, करुणा भी उसके भीतर जन्म रही है।

अब उसके बाद तीसरी और अंतिम कोटि है मुमुक्षु की; जहाँ पर उसके समग्र प्रयास जीवन में आनंद और उत्सव लाते हैं। दूसरी कोटि का मुमुक्षु शांत होता है; तीसरी कोटि का मुमुक्षु आनंदित होता है, उत्सवपूर्ण होता है। मीरा नाचती है इकतारा उठा के; चैतन्य महाप्रभु डफली बजा के नाचते हैं। ये तीसरी कोटि के मुमुक्षु हैं इन्होंने पा लिया; न केवल पाया उसे बांटना भी शुरू कर दिया। तो इन तीन बातों को समझना और अपने प्रयासों को तीव्र और तीव्रतर बनाना। एक गज़ल मैंने सुनी है–

प्यार का पहला ख़त लिखने में वक्त तो लगता है।
नए परिंदों को उड़ने में वक्त तो लगता है।

निश्चित ही भीतर की यह ध्यान की, योग की अंतर्यात्रा समय तो लेती है। यह प्यार का पहला ख़त; भक्त भगवान को जो पाती लिखता है; निश्चित रूप से समय लगता है।

जिस्म की बात नहीं है, अपने दिल तक जाना है,
लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है।

अपने ही भीतर जाना है, अपने ही प्राणों के केन्द्र में पहुंचना है, दिशा का परिवर्तन करना है, वो जो हमारे जीवन की बहिर्मुखी 'धारा' है वह पलटे और 'राधा' बने।

लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है।

यह लम्बाई इस बात पर निर्भर करेगी कि हमारे प्रयास कितने तीव्र हैं। पतंजलि इस सूत्र में उसी की बात कर रहे हैं। जिनके प्रयास तीव्र हैं वे शीघ्र मंज़िल तक पहुँच जाएंगे। जो धीरे–धीरे चलेंगे उन्हें बहुत समय लगेगा।

मैंने सुना है, एक सूफ़ी फ़क़ीर बायजीद के बारे में। बैठा था एक पेड़ के नीचे किसी राहगीर ने उससे पूछा कि फलाँ–फलाँ शहर यहाँ से कितनी देर में पहुँच पाएंगे? बायजीद ने कोई उत्तर न दिया। चुप रह गया। राहगीर ने दुबारा पूछा, बायजीद चुप ही रहा। उस राहगीर ने सोचा कि शायद यह बहरा है या विक्षिप्त है। पता नहीं मेरी बात को सुन ही नहीं पाया या जवाब नहीं देता। वह राहगीर अपने रास्ते चल पड़ा। बायजीद उसके पीछे–पीछे चलने लगा। जब क़रीब एक मील दूर तक पहुँच गए तब बायजीद ने कहा सुन भाई! तुमको शहर पहुंचने में दो घंटे लगेंगे। उस राहगीर ने कहा तुम्हारा दिमाग ठीक है? तुम एक मील मेरे पीछे–पीछे आए, वहीं जवाब क्यों न दिया? बायजीद ने कहा, पहले ये तो देख लूं तुम्हारे चलने की गति कितनी है, तुम्हारा वेग कितना है? समय दूरी पर निर्भर नहीं करता, समय तुम्हारी गति पर निर्भर करता है। तुम बैलगाड़ी की स्पीड से चलोगे, तो वहां पहुंचने में चार दिन लगेंगे। किसी जैट विमान से जाओगे हो सकता है चालीस मिनट में पहुँच जाओ। बायजीद ने कहा पहले तुम्हारी चलने की स्पीड तो देख लूं। लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है, कितना वक्त लगेगा तुम्हारे संवेग पर निर्भर है–

गांठ अगर पड़ जाए तो फिर रिश्ते हों या डोर
लाख करें कोशिश खुलने में वक्त तो लगता है।
हमने इलाजे ज़ख़्मे–दिल को ढूंढ़ लिया लेकिन
गहरे ज़ख़्मों को भरने में वक्त तो लगता है।

अहंकार की गांठ है तुम्हीं ने बांधी है खोल लो। चेतना को बहिर्गामी होने की आदत है; बस इसको पलटना होगा। इलाज क्या है? योग अर्थात साक्षी में स्थित होना; भीतर की तरफ़ मुड़ना।

ढूंढ़ रहा कोई काशी में कोई काबा में;
जीवन में प्रभु को पाने में वक्त तो लगता है।

बाहर मंदिरों में, मस्जिदों में, तीर्थ स्थानों में मत ढूँढ़ो। अपने भीतर ढूंढ़ो। परमात्मा भीतर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। वह तुम ही हो– अपने को पाओ, अपने को जानो।

धन्यवाद। जय ओशो।।

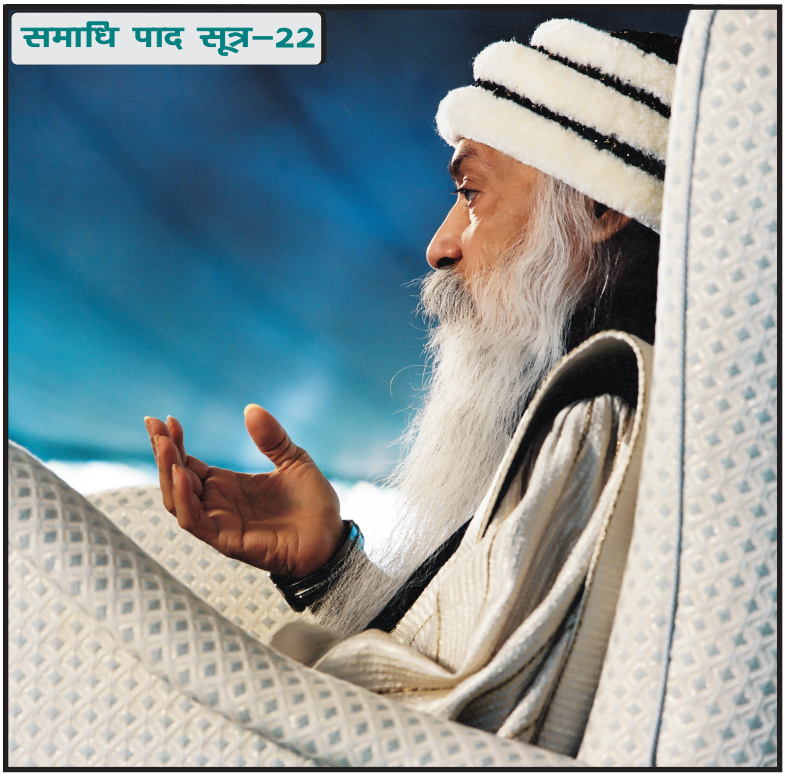

समाधि के मापदंड

मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः।। 22 ।।

मृदु मध्य अधिमात्रत्वात् ततः अपि विशेषः

ज्यादा, कम या मध्यम, कोशिश होती जैसी;
शीघ्र या विलंब से, मिलती है समाधि वैसी।

पतंजलि धीरे–धीरे, एक–एक क़दम; एक वैज्ञानिक दृष्टि के साथ आगे बढ़ रहे हैं। कहते हैं– प्रयास या तो मृदु हो सकते हैं, या मध्यम हो सकते हैं, या अधिमात्र हो सकते हैं। प्रयास में जितनी तीव्रता होगी उतनी ही शीघ्र सफलता की संभावना है।

ज़्यादा कम या मध्यम कोशिश होती जैसी,
शीघ्र या विलंब से मिलती है समाधि वैसी।

इन तीन प्रकार के प्रयासों को समझना। एक तो हैं आलसी लोग जो प्रयास तो करते हैं; लेकिन– बड़ा कुनकुना, बड़ा धीमा। कोई विशेष रस, ऊर्जा और उत्साह उसमें नहीं होता।

मैंने सुना है आलसी मुल्ला नसरुद्दीन हर महीने लॉटरी की टिकट खरीदता था। आलसी लोग ही खरीदते हैं, कर्मठ लोग व्यापार करते हैं, नौकरी करते हैं, धन कमाने का कोई और उपाय करते हैं। आलसी था, इसलिए लॉटरी की टिकट खरीदता था। संयोग की बात एक बार दस लाख की लॉटरी फंस ही गई। बड़ा प्रसन्न होकर लॉटरी एजंट के पास गया। लॉटरी एजंट ने कहा कि एक लाख रुपए आप अभी ले जाइए। बाकी के नौ लाख रुपए लेने के लिए आपको प्रतिदिन शाम को आना पड़ेगा। तो अगले नौ दिनों में हम आपको बाक़ी के नौ लाख रुपए चुका देंगे। नसरुद्दीन को बहुत गुस्सा आया। उसने कहा आप मुझे चैन से, आराम से न जीने देंगे। क्या रोज़–रोज़ मैं एक लाख रुपया लेने आऊँ? मुझे नहीं चाहिए, भाड़ में जाए ये इनाम! मुझे मेरे टिकट के पाँच रुपए वापिस कर दो।

प्रयास तो कर रहे हैं धन कमाने का; लेकिन आलस्य बहुत ज़्यादा है। पतंजलि कहते हैं– ऐसे लोग समाधि की यात्रा पर भी इतने धीमे कुनकुने चले, तो मंज़िल तक कभी पहुँच न पाएंगे। मंज़िल इनके निकट भी आ जाए, तब भी ये चूक जाएंगे। इनकी लॉटरी भी निकल आए; फिर भी इनको इनाम नहीं मिल पाएगा।

दूसरी कोटि के लोग हैं जिनको वे कहते हैं– मध्यम। मध्यम वर्ग का व्यक्ति प्रयास करता है, पाने की कोशिश करता है; लेकिन अधूरा–अधूरा; पूरे भाव से नहीं कर पाता। पचास प्रतिशत शक्ति ही लगाता है।

मैंने सुना है सरदार विचित्तर सिंह और चंदूलाल दोनों दोस्त बाज़ार में जा रहे थे। अचानक ज़ोर की हवाएं चलीं और वर्षा होने लगी। चंदूलाल ने अपना छाता खोल लिया और सरदार विचित्तर सिंह से कहा कि आप भीग क्यों रहे हैं? आपके पास भी तो छाता है। खोलते क्यों नहीं? विचित्तर सिंह बोला– अरे! मेरे छाते में छेद ही छेद हैं, और दूसरी बात वो खुलता भी नहीं, खराब हो चुका है। चंदूलाल ने पूछा– जब ऐसा छाता है, तो उसे लेकर ही क्यों आये? विचित्तर सिंह ने कहा– मुझे क्या पता था कि आज बारिश होगी! छाता भी लाए हैं– आधे–अधूरे मन से। ये मध्यम–वर्ग के लोग हैं; इनके प्रयास भी मंज़िल तक नहीं जा सकते।

तीसरे प्रकार के लोग हैं जो वास्तव में तल्लीनतापूर्वक प्रयास करते हैं।

मैंने सुना है, एक महान उपन्यासकार ने अपने मित्र को बताया कि जानते हो! दो ढाई साल तक लगातार लगनपूर्वक, तल्लीनतापूर्वक, भूख–प्यास भूलकर जब उपन्यास लिखता हूँ; तब जाकर कहीं एक उपन्यास पूरा हो पाता है। एक उपन्यास

लिखने में ढाई–तीन साल लग जाते हैं। उसके दोस्त ने कहा तुम भी कैसे पागल हो! अरे! पंद्रह–बीस रुपए में तो लिखा–लिखाया उपन्यास बाज़ार में मिल जाता है। तल्लीनता चाहिए, अपने पूरे जीवन को समर्पित करने का भाव चाहिए। इतनी प्रगाढ़ता हो, तो ही कुछ हो पाता है। लिखी–लिखायी तो गीता प्रैस गोरखपुर की किताबें बहुत सस्ती कीमत पर मिल जाती हैं; लेकिन उनसे तुम्हारे जीवन में परमात्मा न मिलेगा। तुम्हें स्वयं अपना जीवन लिखना पड़ेगा। तुम्हें खुद अपनी साधना करनी पड़ेगी। उधार काम न चलेगा। दूसरों से प्राप्त ज्ञान तुम्हारा ज्ञान नहीं है। तुम्हें अपना आत्मज्ञान खोजना होगा। तीसरे प्रकार का साधक बनना होगा– अपना जीवन दाँव पर लगाने को तैयार!

मैंने सुना है, एक पानी का जहाज़ डूब गया। संयोग की बात उसमें से तीन लोग एक छोटे–से द्वीप पर जा लगे। वह द्वीप उनके देश से क़रीब चार मील दूर था। एक व्यक्ति ने सोचा कि चलो मैं तैर के निकल जाता हूँ। चार मील तैरना कोई ख़ास कठिन नहीं। वह गया, एक मील दूर तक गया, फिर वापिस लौट आया; क्योंकि बहुत थक गया था। आगे तीन मील तैरने की उसकी हिम्मत न पड़ी। दूसरा व्यक्ति भी गया वो क़रीब डेढ़ मील दूर तक गया, फिर उसको लगा कि बहुत थक गया हूँ; अब और तैरा, तो डूब जाऊँगा। चार मील का फासला लम्बा है; अभी डेढ़ मील हुए हैं, ढाई मील बाक़ी हैं, बच न पाऊँगा। वापिस वो भी फिर अपने द्वीप पर लौट आया। तीसरे थे सरदार विचित्तर सिंह, जाने–माने कुशल तैराक। उन्होंने कहा कि मैं तो निश्चित रूप से पहुँच जाऊँगा। क़रीब–क़रीब तीन मील तक वो तैर गए, तब इनको लगा कि अब सांस फूलने लगी और कहीं डूब न जाऊँ; इस डर से वो वापिस फिर उसी द्वीप पर आ गए। तीन मील जाना, तीन मील आना– छह मील हो गया। उससे कम में तो मंज़िल तक पहुँच सकते थे; समझ चाहिए थी। केवल संकल्प ही नहीं, केवल साहस ही नहीं, केवल श्रम ही नहीं; समझ भी चाहिए और दिशाबोध भी चाहिए। तभी कोई साधक अपनी मंज़िल तक पहुँच पाता है।

ओशो कहते हैं–सच्चाई व सिंसैरिटी वह गुण है जो समग्रता से उत्पन्न होता है; टोटैलिटी से। जब कोई एक काम करने चले, तो फिर पूर्णता से उसे करो। अब इस दिशा में तैरने की सोची है, तो फिर उसी दिशा में तैरो। फिर पलटो मत। लौट–लौट कर पीछे न देखो। सामने की तरफ़ देखो। अपनी मंज़िल पर नज़र हो। गंभीरता से नहीं, अहंकार से नहीं, समग्रतापूर्वक श्रम करो।

याद रखना! जो लोग किसी काम को कर्त्तव्य समझकर करते हैं उनको हमेशा बोझिलता महसूस होती है। उनको लगता है कि अरे! हम कितना कर रहे हैं... कुछ

परिणाम नहीं हो रहा और जो लोग वास्तव में प्रेमपूर्वक, श्रद्धापूर्वक कुछ कार्य करते हैं; उन्हें सदा ऐसा लगता है कि मैं तो कुछ कर ही नहीं पा रहा। मेरे पास दोनों प्रकार के साधक आते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि हम कितनी मेहनत कर रहे हैं कोई परिणाम नहीं हो रहा; ये वे लोग हैं जिन्हें परमात्मा से लगाव नहीं है, प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है। ये कर्त्तव्य समझकर साधना कर रहे हैं। इनकी पूजा–प्रार्थना सब झूठी है। ये ड्यूटी निभा रहे हैं। सच्चा साधक जो परमात्मा के प्रेम में है; वो तो कहेगा कि मैं तो कुछ कर ही नहीं पा रहा हूँ। मेरी क्षमता ही कितनी है! ऐसा नहीं कि वो कर नहीं रहा है; वो पूर्णता से कर रहा है। लेकिन उसे सदा लगेगा कि मेरा किया तो बहुत कम है और जब भी परमात्मा मिलेगा वह साधक यही कहेगा कि उसकी कृपा से मिला; मेरे प्रयास से नहीं मिला। मेरे प्रयास की, मेरी कोशिश की कीमत ही क्या! ये उसकी कृपा, उसकी अनुकंपा है।

सच्चाई, सिंसैरिटी, लगनशीलता– जीवन में कैसे पैदा हो? किसी भी कार्य को पूर्णता से करना सीखो। ओर ऐसा नहीं कि साधना में ही पूर्णता आ जाएगी। ज़िंदगी के छोटे–छोटे कामों को पूर्णता से करना सीखो। देखते हो छोटे बच्चे को; खेल रहा है, उछल–कूद मचा रहा है, यहाँ–वहाँ भाग रहा है, चीख रहा, चिल्ला रहा, गीत गा रहा; उसमें पूर्णता है–समग्रता टोटैलिटी।

टोटैलिटी के इस गुण को, समग्रता के इस गुण को अपने भीतर पैदा करना होगा। सवाल यह नहीं कि तुम क्या करते हो।

कई लोग मुझे आकर बताते हैं कि हम फलाँ गुरु के पास गए थे, उन्होंने यह साधना बताई, जो हमने की; लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। फिर दूसरे गुरु के पास गए। फिर हमने इस संप्रदाय की किताबें पढ़ीं; वो साधना भी की, लेकिन कुछ हुआ नहीं। मैं कहता हूँ कि कृपया मेरे पास से भी चले जाएं, वरन फिर तुम किसी को जाकर बताओगे कि मेरे पास भी आए थे। और मैंने जो साधना बताई थी वो तुमने की; लेकिन कुछ हुआ नहीं। कुछ होने वाला नहीं, क्योंकि तुम आधे–अधूरे मन से कुछ कर रहे हो। तुम्हारी समग्रता चाहिए। सवाल यह नहीं कि कौन–सी विधि, कौन–सी साधना–पद्धति, कौन–सा योग... सवाल ये है कि क्या तुम टोटैलिटी से कर रहे हो? तभी कोई विधि काम कर पाएगी। अगर तुम आधे–अधूरे मन से करते हो और इंतज़ार करते हो कि ये हो जाए, वो हो जाए; तो कुछ भी न हो पाएगा। अतः विधि इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना की तुम्हारा प्रेमभाव, जितना कि तुम्हारी प्रगाढ़ लगनशीलता और सच्चे प्रयास।

प्रगाढ़ता की झलक तो तुमने कामवासना में पायी ही होगी। कामवासना बड़ी प्रगाढ़ होती है; इन्टैंस। लेकिन सच्ची नहीं होती, क्योंकि उसमें प्रेमभाव नहीं है। प्रेम

सच्चा होता है। सच्चाई के पीछे–पीछे प्रगाढ़ता अपने आप आती है। योग की साधना, प्रार्थना भी प्रेम की भाँति है। सुनो ओशो क्या कहते हैं–

प्रार्थना प्रेम की भाँति है। वस्तुतः इस योग शब्द का अर्थ है ही मिलन, घनिष्टता, दो का मिलन। और यह इतना गहन, प्रगाढ़ और सच्चा मिलन है कि दो मिट जाते हैं। सीमाएं धुंधला जाती हैं और केवल एक का अस्तित्व बना रहता है। यह बात किसी दूसरी तरह से हो नहीं सकती। यदि तुम वास्तविक और प्रगाढ़ नहीं हो, तो अपनी समग्र सत्ता को जुटाओ। केवल तभी परम सत्य की संभावना होती है। तुम्हें संपूर्ण रूप से स्वयं का जोखिम उठाना होता है; इससे कम चलेगा नहीं।

'प्रयास की मात्रा के अनुसार सफलता की संभावना विभिन्न होती है।'

यह एक मार्ग है– संकल्पशक्ति का मार्ग। पतंजलि मूल रूप से संकल्प के मार्ग से संबंध रखते हैं।

संकल्प के इस मार्ग पर एक–एक क़दम समग्रतापूर्वक चले चलना, तीन–चार चीज़ों का ख़्याल रखना; एक तुम्हारा समग्र प्रयास, दूसरी बात प्रार्थना का भाव, तीसरा प्रतीक्षा का भाव– ये तीन चीज़ें बन जाएं एक साथ, तो पात्रता निर्मित होती है। और बिना पात्रता के इस जगत में कुछ भी नहीं मिलता। तुम्हें उतना ही मिल सकता है; जिसके तुम हक़दार हो, जितना बड़ा तुम्हारा पात्र है, जितनी बड़ी तुम्हारी झोली है, उतना ही बड़ा ख़ज़ाना मिल सकेगा।

परमात्मा तो सबकुछ देने को तैयार है। तुम्हारी अंजुली कितनी बड़ी है उसपर निर्भर करेगा। सागर तो पूरा का पूरा मौजूद है; लेकिन तुम्हारी चम्मच कितनी बड़ी है, तुम कितना निकाल पाओगे? अस्तित्व की तरफ़ से कोई रुकावट नहीं है। कोई बंधन नहीं है, लेकिन... हमारी पात्रता, और... हमारी पात्रता किन चीज़ों पर निर्भर करती है? प्रयास दीवानगी वाला, पागलपन वाला; प्रभु के लिए पागल हो जाओ, उससे कम पर न मिलेगा। देखते हो मीरा दीवानी को, देखते हो चैतन्य महाप्रभु को; अपना पूरा जीवन दाँव पे लगा देते हैं– ऐसी दीवानगी चाहिए! दीवानगी के साथ–साथ प्रार्थनाभाव चाहिए। और प्रार्थनाभाव के साथ–साथ प्रतीक्षा। तुमने आज श्रम किया है अभी तुरंत ही परिणाम नहीं आ जाएगा। आज बीज बोए हैं अभी तुरंत ही वृक्ष पैदा नहीं हो जाएगा। आएगी ऋतु बसंत की तब फूल खिलेंगे, सुगंध उड़ेगी; उसका इंतज़ार करना भी सीखना। पतंजलि के सूत्र बड़े अद्भुत हैं–

ज़्यादा, कम या मध्यम कोशिश होती जैसी
शीघ्र या विलंब से मिलती है समाधि वैसी।

धन्यवाद। जय ओशो।।

ओंकार है समाधि का द्वार

ईश्वरप्रणिधानाद्वा।। 23 ।।

ईश्वर प्रणिधानात् वा

ओंकार ईश्वर है, ईश्वर ओंकार है;
ओंकार में लयता, समाधि का द्वार है।

अध्यात्म के दो मार्ग हैं– एक संकल्प का मार्ग; दूसरा समर्पण का। पूर्व सूत्रों में पतंजलि संकल्प के मार्ग की चर्चा कर रहे थे। समग्र प्रयास; संवेग के साथ, प्रगाढ़ता के साथ, सिंसैरिटी के साथ– पूर्ण प्रयास। उसमें एक ख़तरा है। प्रयास के साथ कर्ताभाव और अहंकार पैदा हो जाता है और वह अहंकार ही बाधा बन जाता है।

इसलिए आज के सूत्र में पतंजलि दूसरी बात की तरफ़ इशारा करते हैं– ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव! केवल संकल्प ही पर्याप्त नहीं है, समर्पण भी चाहिए, वरन इस अहंकार को कैसे विसर्जित करोगे? मुख्य रूप से पतंजलि जिस योगमार्ग की

प्रस्तावना कर रहे हैं– वह संकल्प का मार्ग है, योद्धा का मार्ग है, स्वयं को जीतने का। लेकिन ख़तरा है! उसके साथ यदि अहंकार जन्म गया, तो सारी मेहनत बेकार चली जाएगी।

इसलिए वे कहते हैं ईश्वर प्रणिधान– ईश्वर के प्रति समर्पणभाव। जो प्रयास तुमने किया उससे अहंकार निर्मित न हो; इस बात के प्रति निरंतर सचेत रहना। और यदि अहंकार निर्मित हो गया, तुरंत उसे ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना। ओशो इसे समझाते हैं–

संकल्प के मार्ग पर व्यक्ति को अहंकार के प्रति बहुत–बहुत सजग होना होता है, क्योंकि अहंकार तो अवश्य ही चला आएगा। यदि तुम अहंकार पर ध्यान दे सको, यदि तुम अहंकार संचित न करो, तो समर्पण की कोई ज़रूरत नहीं। क्योंकि यदि अहंकार नहीं रहता, तो समर्पण करने को कुछ है नहीं। इसे बहुत–बहुत गहरे रूप से समझ लेना है। और जब तुम समझने की कोशिश कर रहे हो– पतंजलि को समझने की– तो यह एक बुनियादी बात है।

यदि तुम बहुत वर्षों तक सतत प्रयास करते हो, तो अहंकार खड़ा होगा ही। तुम्हें जागरूक होना होता है, तुम्हें काम करना है, तुम्हें सारे प्रयत्न करने हैं, लेकिन अहंकार इकट्ठा मत करो। फिर कोई ज़रूरत नहीं रहती समर्पण करने की। तुम समर्पण किए बिना लक्ष्य साध सकते हो। तब कोई ज़रूरत नहीं क्योंकि बीमारी रही नहीं।

यदि अहंकार होता है, तो समर्पण करने की आवश्यकता उठ खड़ी होती है।

इसलिए पतंजलि प्रगाढ़ता, सच्चाई, समग्र प्रयास पर बोलने के पश्चात अकस्मात वे कहते हैं– **'ईश्वरप्रणिधानाद्वा– सफलता उन्हें भी उपलब्ध होती है जो ईश्वर के प्रति समर्पित होते हैं।'**

यदि तुम अनुभव करते हो कि तुम निरंतर असफल हो रहे हो, तो ध्यान रखना कि असफलता परमात्मा के कारण नहीं है। असफलता घट रही है तुम्हारे अहंकार के कारण। वहां जहां से बाण फेंका जा रहा है, तुम्हारे अस्तित्व का स्रोत, वहां कुछ घट रहा है– एक भटकन। अहंकार वहां एकत्रित हो रहा है। तब केवल एक संभावना रहती है– इसे समर्पित कर देना। तुम इसमें इतने समग्र रूप से असफल हो चुके हो, कई ढंग से। तुमने यह किया, वह किया, तुमने कुछ न कुछ करने की कोशिश की, और तुम असफल और असफल हुए...। जब निराशा गहनतम हो जाती है और तुम नहीं समझ सकते कि क्या करना है, तो पतंजलि कहते हैं, 'अब ईश्वर को समर्पित हो जाओ।'

लेकिन ईश्वर है क्या, कहाँ है ईश्वर, हम किसके प्रति समर्पित हो जाएं? ईश्वर हमारे भीतर गूँज रहा ओंकार का स्वर है, उस प्रणव के प्रति समर्पण का भाव। वह

अहंकार से मुक्ति दिलाता है। मैं सुन रहा था एक गीत–

यूँ अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आई,
जैसे पर्वत का जिगर चीर के झरना फूटे।
यह ज़मीनों की मुहब्बत में तड़पकर नागाह,
आसमानों से कोई शोख सितारा टूटे।
शहद–सा घुल गया तलखावा–ए–तनहाई में,
रंग–सा फैल गया दिल के सियाह खाने में
देर तक यूँ तेरी मस्ताना सदाएँ गूँजीं,
जैसे फूल चमकने लगे वीरानों में
यूँ अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आई...।'

यह आवाज़ कहीं और से नहीं... हमारी ही अंतरात्मा से आती है। परमात्मा यानी प्रणव का नाद– अनाहत नाद। पतंजलि के इस सूत्र का दूसरा अर्थ है प्रणव में डूबना। ओंकार ईश्वर है, ईश्वर ओंकार है। ओंकार में लयता समाधि का द्वार है। यह सर्वाधिक सुगम मार्ग है। और सारे मार्ग कठिन हैं। ओंकार में डूबना सर्वाधिक सरल है; इसीलिए ओशोधारा में ध्यान समाधि के अंतिम तीन दिनों में समाधि प्रज्ञा के दौरान हम ओंकार का ज्ञान प्राप्त करते हैं; फिर ईश्वर में डूबना बड़ा आसान हो जाता है। सुरति समाधि के छह दिनों में अधिकांश साधक लय होना सीख जाते हैं। समाधि फलना शुरू हो जाती है। इससे ज़्यादा सरल शॉर्टकट कोई दूसरा नहीं है। ओंकार में डूबना... जब भी मौक़ा मिले उसके सुमिरन में डूबना...।

'भजले प्राणी प्रभु का नाम, सुमिरन रहे ओम का नाम।' इसे अपने जीवन का सूत्र बना लो।

ओंकार जपते–जपते जब भाव में डुबकी लगती,
तब एक हाथ की ताली अंतर्ध्वनि सुनाई पड़ती।
स्रोत रहित संगीत का जाम पीते रहो सुबहो–शाम,
कहो रहीम चाहे रहमान अल्लाह, ख़ुदा, गॉड या राम।
बंसी बजा रहा घनश्याम, स्वर ही है ईश्वर का धाम,
जग में करो कोई भी काम, सुमिरन रहे ओम का नाम।

धीरे–धीरे समाधि गहरी होने लगती है। सुमिरन सधते–सधते भीतर संतत्व जन्मने लगता है...।

ओम है अंतर्घट का वासी क्या जाना अब काबा काशी
खुद के भीतर होश जगाओ आत्मतीर्थ में स्वयं नहाओ
चंचल मन को मिले लगाम भजलो प्यारे ओम का नाम।

मन की इस चंचलता को रोकने के कई उपाय संतों ने खोजे। सबसे सरल उपाय है... ओंकार श्रवण में तल्लीनता...।

चंचल मन को मिले लगाम भजलो प्यारे ओम का नाम।
ईश्वर–प्रणिधान से शीघ्र समाधि फलती है
बाधाएं मिट जाती सब महाचेतना जगती है
तब अनहद में कर विश्राम, सुमिरन रहे ओम का नाम।
शब्द को सुनकर लगे समाधि
दूर होएं सब मन की व्याधि
महा औषधि है ओंकार नष्ट हो पल में अहंकार
कोटि–कोटि इसे प्रणाम, सुमिरन रहे ओम का नाम।
प्रणव है परम पिता का नाम इसी से सृष्टि का अंजाम
भर–भरकर ओशोधारा से पीते रहो समाधि जाम
समय निकालो सुबहो–शाम, सुमिरन रहे ओम का नाम

प्यारे मित्रो! याद रखना! पतंजलि का यह आज का सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। संकल्प के मार्ग पर अहंकार की संभावना... अमृत में ज़हर घोल देती है। सारी मेहनत व्यर्थ चली जाती है। जन्मों–जन्मों तक योगी श्रम करते हैं और अंत में उनका अहंकार सबकुछ नष्ट कर देता है। लेकिन अगर ईश्वर के प्रति समर्पणभाव, ओंकार में डुबकी, इसका ख़्याल बना रहे, सुरति और सुमिरन सध जाए; तब कोई बाधा नहीं है। ओंकार के सुमिरन से सारी बाधाएं दूर हो जाती हैं।

आगे आने वाले सूत्रों में पतंजलि इस संबंध में और विस्तार से चर्चा करेंगे। आज का सूत्र याद रखना–

ओंकार ईश्वर है, ईश्वर ओंकार है; ओंकार में लयता समाधि का द्वार है।

ईश्वर के प्रति जब समर्पणभाव से भरो, तो याद रखना! अच्छा–बुरा सब समर्पित कर देना; फिर कुछ भी न बचाना। अक्सर हम सोचते हैं कि अच्छा–अच्छा तो समर्पित कर दें, बुरा–बुरा बचा लें। नहीं, फिर पूरा ही छोड़ देना।

किसी शायर ने लिखा है–

ये कायनात अगर तेरे बस का रोग नहीं तो कायनात बनाई थी किसलिए तूने
इसे बसा के अगर यूँ उजाड़ देना था तो अंजुमन ये सजाई थी किसलिए तूने?
ये आदमी के गुनाह की सज़ा सही लेकिन इसे गुनाह का एहसास क्यों दिया तूने?
बना के बरतरो–आला तमाम चीज़ों से बशर को माइले–पैकार क्यों किया तूने?
ख़ता मुआफ बशर का कोई कसूर नहीं तेरे इताब ने नाहक बशर को घेरा है
सबूते–जुर्म नहीं है तो फिर सजा कैसी गुनाह ये तूने किया है कसूर तेरा है।

यह पद सुंदर है। ये वचन प्रीतिकर हैं। 'अगर गुनाह तूने किया है तो सज़ा भी तेरी है।' अगर इस सृष्टि के मालिक ने सारा जगत बनाया, तो फिर भला–बुरा सबकुछ उसी का है। सबकुछ छोड़ देना... शुभ हो, सुंदर हो, अशुभ हो, असुंदर हो, आनंद की वर्षा हो कि दुःख के गड्ढे हों। तब याद रखना! ये सब उसका खेल है... फिर पूरा का पूरा समर्पण... फिर ऐसा नहीं सोचना कि इसमें से कुछ बचा लूं, कुछ छोड़ दूं। फिर पाप भी उसके, पुण्य भी।

अच्छा भी उसका, बुरा भी उसका। राम भी उसके रावण भी उसके।

जीवन को बचानेवाला भी वही, मिटानेवाला भी वही। जब समर्पण तो फिर पूरा ही समर्पण; ऐसी भावदशा का नाम भक्ति है। भक्ति से भी आदमी वहीं पहुँच जाता है जहाँ योगी पहुंचते हैं। योगी का मार्ग लम्बा है; भक्ति का मार्ग सरल और सुगम है।

एक बात और याद दिलाऊँ कि इन दोनों– भक्त और योगी– का अर्थ एक ही है। आपने सुना होगा वियोगी शब्द– योगी का उल्टा वियोगी। योगी का अर्थ है जो जुड़ गया, संयुक्त हो गया, परमात्मा से मिल गया। वियोगी अर्थात जो विरह में है। योगी यानी मिलन में, वियोगी यानी विरह में।

भक्त का उल्टा क्या है? भक्त का उल्टा है विभक्त, विभक्त यानी टूटा हुआ, खण्डित। वही बात है विरह। इसलिए भक्त का अर्थ हुआ जिसके भीतर से विभाजन मिट गया, अब जो विभक्त न रहा, खंड–खंड न रहा; अंश जो था वो पूर्ण के साथ एक हो गया।

अतः परम स्थिति में तो योगी और भक्त एक ही हैं। लेकिन आंरभिक बिंदु उनके भिन्न–भिन्न हैं। अंततः योगी को भी भक्त हो जाना पड़ता है। वे जो संकल्प के मार्ग से चले हैं, अंत में वे भी ईश्वर–प्रणिधान(ईश्वर के प्रति समर्पण) से ही मंज़िल को पाते हैं। लेकिन कुछ लोग हैं जो शुरुआत से ही समर्पण नहीं कर सकते... ठीक! शुरुआत में वे संकल्प से चलें। अगर तुम भक्त हो सको तो सौभाग्यशाली हो, फिर तुम्हें संकल्प के मार्ग से गुज़रने की ज़रूरत नहीं। लेकिन इसमें बेईमानी न करना।

अगर तुम्हारे हृदय की भावदशा ऐसी है कि तुम समर्पण में जी सको फिर तुम्हें और अन्य कोई साधना करने की ज़रूरत नहीं। तुम महासौभाग्यशाली हो! क्योंकि अंततः हर योगी को भी भक्त हो ही जाना पड़ता है।

आज के सूत्रों पर खूब–खूब चिंतन मनन करना। ईश्वर–प्रणिधान के दोनों अर्थ– ईश्वर के प्रति समर्पणभाव और ओंकार में डुबकी।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–24

कौन व्यक्ति है ईश्वर

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।। 24 ।।

क्लेश कर्म विपाक आशयैः अपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः

कहते जिसे ईश्वर वह, परम पुरुष चेतन है;
दुख, कर्म, कामना से, मुक्त परम जीवन है।

सामान्य तौर पर ईश्वर के संबंध में हमारी धारणा है 'व्यक्तिवाची'। स्वर्ग में कहीं कोई व्यक्ति सिंहासन पर बैठा है, उसे हम भगवान कहते हैं। पतंजलि उसे भगवान नहीं कहते, क्योंकि वह तो बहुत बचकानी धारणा है चाइल्डिश कन्सैप्शन। पतंजलि किसे ईश्वर कहते हैं? चेतना की वैयक्तिक इकाई को। उसकी कोई पर्सनैलिटी नहीं है, उसका कोई अहंकार नहीं है, उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है; लेकिन उसकी इंडिविजुवैलिटि है, उसकी निजता है। वह चैतन्यता से ओतप्रोत है। पतंजलि के हिसाब से प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का बीज अपने भीतर लिए आया है। वह सर्वज्ञता का बीज जब पूरा विकसित हो जाता है, तब वह पुरुष विशेष ही ईश्वर है। पतंजलि कहते हैं–

'क्लेश कर्म विपाक आश्यः अपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'

वह पुरुष विशेष जो कर्म से, कामनाओं से और कर्मों के परिणामों से अर्थात फलाकांक्षा से मुक्त है। ऐसा विशिष्ट चैतन्य व्यक्ति ही ईश्वर है।

इन तीन बातों को समझना! सबसे पहली है कामना। कामना के द्वारा कर्म पैदा होते हैं और कर्म के द्वारा फिर दुःख पैदा होते हैं। कामना का अर्थ है कि हम वह चाहते हैं जो हमें उपलब्ध नहीं है। हम वह होना चाहते हैं जो हम अभी नहीं हैं। गोल ओरिएंटेड– भविष्य में कोई लक्ष्य है हमारा– हम कुछ होना चाहते हैं, हम कुछ पाना चाहते हैं, यह है कामना। कामना का कुछ हिस्सा पूरा होगा, कुछ पूरा नहीं होगा। संयोग की बात अस्तित्व में कुछ ऐसी घटनाएँ घटेंगी जो हमारे मन के अनुकूल होंगी और कुछ होंगी प्रतिकूल। सफलताएँ–असफलताएँ दोनों मिलेंगी। जब हम असफल होंगे तब हम दुःखी होंगे और जब सफल होंगे तब हमारी कामना और विस्तीर्ण... हो जाएगी। उससे भी कोई सुख न मिलेगा। कोई व्यक्ति चाहता है कि उसे पाँच लाख रुपए मिल जाएं, तो वह सुखी हो जाए। वह कर्म करेगा, मेहनत करेगा। कामना से कर्म पैदा होंगे। कर्म से हो सकता है कि उसे सफलता मिल जाए; पाँच लाख रुपए मिल जाएं। लेकिन जब तक पाँच लाख मिलेंगे, तो उसकी कामना फिर दस लाख की हो जाएगी। अतः कामना पूरी हो जाए तब भी दुःख मिलता है और कामना पूरी न हो तब तो दुःख मिलता ही है। इस

प्रकार कामना का आत्यंतिक परिणाम सदा ही दुःख है।

बीच में हैं कर्म। कामना, कर्म और दुःख क्रमशः इन तीनों का जोड़ है। अगर इस दुःख से मुक्त होना है, तो कामना से मुक्त होना होगा। गीता में कृष्ण कहते हैं– फलासक्ति रहित होकर रहो। फल की अपेक्षा न हो, एक्सपैक्टेशन न हो– जो इन तीनों से अस्पर्शित हो जाते हैं। जल में कमलवत जो लोग हो जाते हैं; वही ईश्वर हैं, वही भगवान हैं। जिसने ऐसी भगवत्ता को जाना, जो निष्काम हुआ; वह पुरुष विशेष ही ईश्वर है।

मैंने सुना है, एक बार मुल्ला नसरुद्दीन कोई तीन हफ़्ते से बहुत प्रसन्न था। फिर अचानक एक दिन लोगों ने देखा– बहुत उदास! बहुत दुःखी! किसी ने पूछा– मुल्ला क्या हुआ? पिछले कुछ दिनों से तो तुम बहुत खुश नज़र आ रहे थे! मुल्ला ने कहा कि क्या बताऊँ! तीन हफ़्ते पहले मेरे दादा जी की मृत्यु हो गई और मेरे नाम वसीयत में बीस लाख रुपए छोड़ गए। दो हफ़्ते पहले मेरी नानी चल बसीं और अपना मकान और कार दोनों ही मुझे दे गईं। पिछले हफ़्ते मेरे दूर के एक रिश्तेदार मरे, उनकी कोई औलाद नहीं थी; और अपनी सारी जायदाद मेरे नाम कर गए। सात दिन बीत गए। पूरा एक हफ़्ता गुज़र गया, कुछ भी नहीं हुआ! इसलिए दुःखी हूँ। ईश्वर से प्रार्थना कर रहा हूँ कि या अल्लाह! तेरी मर्ज़ी पूरी हो! अगर तू मेरे खानदान को नष्ट करने पर तुला है, तो कर ही दे। या पर्वरदिगार... काम को बीच में अधूरा न छोड़।

कामना दुःख लाएगी। बीच में थोड़ी–सी प्रसन्नता हो सकती है; लेकिन वह अस्थायी है, अंततः फिर दुःख में ले जाएगी। जो हमें मिल गया वो हमें दिखाई नहीं देता। हमारी नज़र तुरंत उसपर चली जाती है जो हमें नहीं मिला। आपने यह सुप्रसिद्ध शेर सुना होगा–

'दुनिया जिसे कहते हैं जादू का खिलौना है,
मिल जाए तो मिट्टी है खो जाए तो सोना है।'

कामना पूरी हो जाए तो भी हाथ में मिट्टी ही आती है। असल में मिट्टी की परिभाषा वह है जो आपके पास है और सोने की परिभाषा वह जो आपको अभी मिला नहीं; सिर्फ़ कल्पना है, एक सपना है...। वो भी जिस दिन हाथ में आ जाएगा, मिट्टी हो जाएगा। ये दुनिया बस एक जादू का खिलौना है। जिस व्यक्ति ने जागरूक होकर, साक्षीभाव में स्थित होकर इसे देखा, वह काम से मुक्त हो जाता है और काम के साथ ही फल की आकांक्षा और उसके दुःख विसर्जित हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति अपनी दिव्यता में स्थित हो जाता है। भीतर की भगवत्ता को जान लेता है। क्योंकि वह ऊर्जा, वह जीवन की शक्ति जो बहिर्मुखी वासनाओं में जा रही थी, वह प्रतिक्रमण करके स्वयं पर लौट आती है और स्वयं में स्थित होकर अपने भगवत स्वरूप को वह व्यक्ति पहचान लेता है। पतंजलि उसे ही ईश्वर कहते हैं। सुनो, ओशो इसे किस प्रकार समझाते हैं–

ईश्वर सर्वोत्कृष्ट है। वह दिव्य चेतना की वैयक्तिक इकाई है। वह जीवन के दुखों से तथा कर्म और उसके परिणामों से अछूता है।

ईश्वर चैतन्य की अवस्था है। वह वस्तुतः कोई व्यक्ति नहीं, लेकिन वह निजता, अस्मिता है। अतः तुम्हें व्यक्तित्व और निजता के बीच के अंतर को समझना होगा। व्यक्तित्व है बाह्य सतह। जैसे तुम दूसरों को दिखते हो वह तुम्हारा व्यक्तित्व होता है। तुम कहते हो, 'एक अच्छा व्यक्तित्व, एक सुंदर व्यक्तित्व, एक कुरूप व्यक्तित्व।' तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारे बारे में दूसरों की राय है, निर्णय है। यदि तुम इस धरती पर अकेले रह जाओ, तो क्या तुम्हारा कोई व्यक्तित्व रह जाएगा? कोई व्यक्तित्व नहीं रहेगा। क्योंकि कौन कहेगा कि तुम सुंदर हो, और कौन कहेगा कि तुम मूर्ख हो, और कौन कहेगा तुम लोगों के महान नेता हो? कोई होगा ही नहीं तुम्हारे बारे में कुछ कहने को। कोई राय न हो, तो तुम्हारे पास कोई व्यक्तित्व न होगा।

हर क्षण तुम डरे हुए हो कि कोई तुम्हारा व्यक्तित्व न कुचल दे। तब सारा संसार एक चिंता बन जाता है। ईश्वर की निजता है, पर व्यक्तित्व नहीं। जो कुछ वह है, वही वह दिखाता है। जो कुछ वह भीतर है, वही वह बाहर है। वस्तुतः उसके लिए भीतर और बाहर तिरोहित हो गए हैं। 'ईश्वर सर्वोत्कृष्ट है।' अंग्रेजी में इसे ऐसे कहा जाता है, 'गॉड इज द सुप्रीम रूलर।' इसलिए मैं कहता हूं कि पतंजलि के विषय में गलतफहमी बनी हुई है। संस्कृत में वे ईश्वर को कहते हैं– 'पुरुष विशेष'–सर्वोत्कृष्ट निज सत्ता। कोई रूलर, कोई शासक नहीं। मैं 'ईश्वर' को 'द सुप्रीम' ही कहना चाहूंगा। वह दिव्य चेतना की वैयक्तिक इकाई है। ध्यान रहे, वैयक्तिक इकाई है, सर्वमान्य नहीं है; क्योंकि पतंजलि कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है।

'वह जीवन के दुखों से तथा कर्म और उसके परिणामों से अछूता है।'

क्यों? क्योंकि जितने ज़्यादा तुम वैयक्तिक होते हो, जीवन उतनी ज़्यादा विभिन्न गुणवत्ता पा लेता है। एक नया आयाम खुल जाता है– उत्सव का आयाम। जितना अधिक तुम संबंध रखते हो व्यक्तित्व के साथ और बाहर के साथ, बाहरी परतों के साथ, ऊपरी सतह के साथ, उतना अधिक तुम्हारे जीवन का आयाम बन जाता है एक कर्म। तुम परिणाम के विषय में चिंतित होते हो, इस बारे में कि तुम्हें लक्ष्य मिलेगा या नहीं। हमेशा चिंतित ही रहते हो कि चीज़ें तुम्हें मदद देने वाली हैं या नहीं? यह चिंता कि कल क्या होगा?

जो व्यक्ति अपने साक्षी में स्थित हो गया उसके लिए भविष्य मिट जाता है; क्योंकि कामनाएं मिट जातीं हैं। वास्तव में कामनाएं ही भविष्य की निर्मात्री हैं।

मैंने सुना है, सेठ चंदूलाल अपनी पत्नी से बहुत त्रस्त हो गए और वकील के पास पहुँचकर बोले– देखिये, वकील साहब! मैं अपनी पत्नी कामना देवी से तलाक लेना

चाहता हूँ। कितना खर्च होगा? वकील ने कहा कि कम से कम पच्चीस हज़ार रुपए लगेंगे और साल भर से ऊपर केस चलेगा। सेठ चंदूलाल ने कहा हद हो गई पच्चीस हज़ार रुपए? अरे जब मैं शादी करने गया था पंडित जी ने एक सौ पच्चीस रुपए में तो शादी करा दी थी। आप पच्चीस हज़ार तलाक के मांग रहे हैं? वकील ने कहा सस्ते काम का फल देख लिया ना! कामना देवी से शादी करना बहुत आसान है; बिना सवा सौ रुपए के भी हो जाएगी। लेकिन छुटकारा बहुत मुश्किल है! कामना से ग्रस्त हो जाना कितना सरल है, परंतु कामना से छूटने के लिए बड़ी साधना की ज़रूरत है। योग, भक्ति, सांख्य, ज्ञान, तंत्र ये सब उसी के मार्ग हैं– कामना से मुक्ति के मार्ग।

कामना से मुक्त होते हीं... कामना का बेटा है कर्म और कर्म का बेटा है दुःख। ये तीन पीढ़ियां हैं। सेठ चंदूलाल की पत्नी कामना, उनका बेटा कर्म, और उनका पोता दुःख। कामना से मुक्त हो जाओ... अगली दो पीढ़ियों से अपने आप छुटकारा हो जाएगा। लेकिन बड़ी कठिन बात है!

सुना है, एक लड़का अपने विवाह के लिए लड़की देखने गया। लड़कीवालों ने तारीफों के पुल बांध दिए। हमारी बेटी की आवाज़ कोयल जैसी है, उसकी गर्दन मोरनी जैसी है, चाल हिरणी जैसी, चोटी नागिन जैसी और आँखें मछली जैसी हैं। लड़के ने पूछा कि आपकी बेटी में इंसानों के भी गुण हैं कि नहीं? जैसे इंसानों के गुण होते हैं वैसे हीं मैं ईश्वर के गुण आपको गिना रहा हूँ। पतंजलि के अनुसार तीन बातें– कामना, क्लेश और फलाकांक्षा। इनसे मुक्त होकर मनुष्य जल में कमलवत् जीता है। संसार छोड़कर भाग नहीं जाता। संसार में हीं रहता है, लेकिन संसार उसे छूता नहीं। वह संसार में रहता है, संसार उसके भीतर नहीं रहता। वह बाज़ार में रहता है, बाज़ार उसके मन के भीतर नहीं रहता। इस भेद को स्मरण रखना।

ओशो की दृष्टि में पुराना त्यागवादी, पलायनवादी, घर–परिवार–समाज को छोड़कर भागने वाला संन्यास ग़लत है। पतंजलि की दृष्टि में भी ग़लत है, कृष्ण की दृष्टि में भी ग़लत है। कहीं भागने की ज़रूरत नहीं... जागने की ज़रूरत है! इसी संसार में रहो, कामना से मुक्त होकर रहो और कामना से मुक्ति कैसे मिलेगी? जागरूक होकर निरीक्षण करो कि इस कामना से तुम्हें मिला क्या? धीरे–धीरे तुम अपने साक्षी में रमने लगोगे और दुःख से मुक्त हो जाओगे– जल में कमलवत। कमल कीचड़ में रहता है, लेकिन कीचड़ उसे छूता नहीं। वह अवस्था हीं ईश्वरत्व की अवस्था है। ऐसे व्यक्ति को हीं हम भगवान कहते हैं, अवतार कहते हैं, तीर्थंकर कहते हैं, पैगंबर कहते हैं। उसमें केवल मानवीय गुण हीं नहीं रहे... उसमें दिव्य गुण आ गए। भागवत गुण आ गए। वह भागवत स्वरूप हीं हो गया।

धन्यवाद। जय ओशो।।

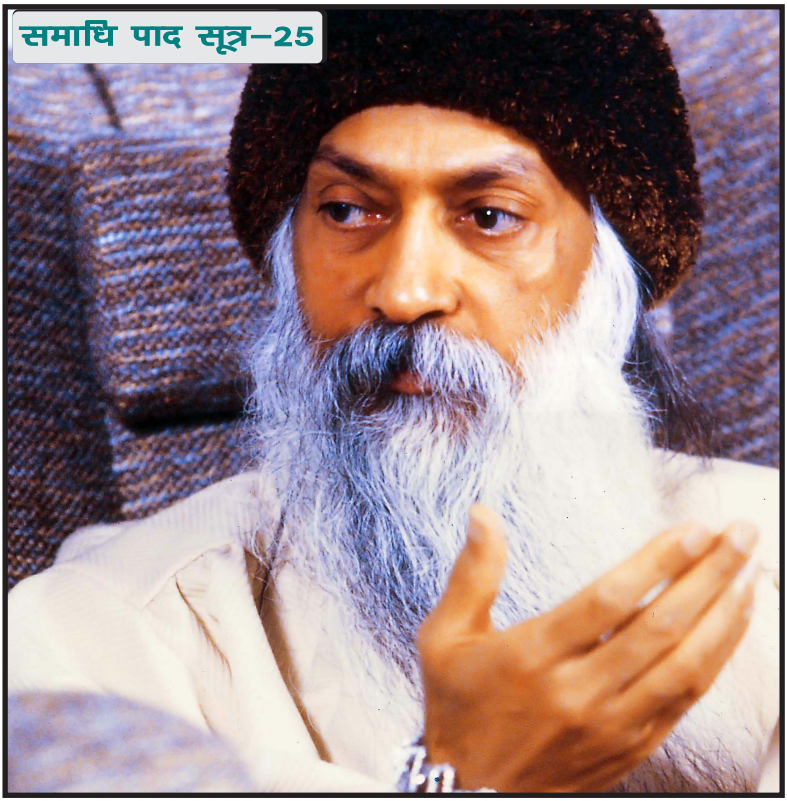

सर्वज्ञता का बीज कहां है

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।। 25 ।।

तत्रा निः अतिशयं सर्वज्ञ बीजम्

आत्मा में सर्वज्ञ बीज रूप है बसा
ईश्वर में आत्मा का परम फूल है खिला।

आज का पतंजलि का सूत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है! कहते हैं–

हर व्यक्ति की चेतना में परमात्मा का बीज मौजूद है। हम सब बीज लेकर ही पैदा हुए है। हमारी संभावना है परमात्मा हो जाने की... प्रत्येक प्राणी की संभावना है ईश्वरत्व को, भगवत्ता को जानने की– वह बीज हममें छुपा है! यह हम पर निर्भर है कि हम कितना

समय लेंगे... कि इस बीज को गलने देंगे, अंकुरित होने देंगे, वृक्ष बनने देंगे, फूल बनने देंगे, सुबास बनकर उड़ने देंगे– समय लग सकता है– किन्तु बीज अपने भीतर वृक्ष का ब्लूप्रिन्ट छुपाए हुए है।

जैसे पानी का एक अणु (एच टू ओ) सागर का पूरा ज्ञान अपने में समाए हुए है। विराट महासागर में जो है, वह पानी के हर कण में है। इस सारे ब्रह्माण्ड में जो है, वो जगत के कण–कण में, रेत के छोटे–से कण में भी मौजूद है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु और परमाणु की जो रचना है वही सारे ब्रह्माण्ड की रचना है। एक विराट वटवृक्ष (बरगद) को देखो... क्या भरोसा आता है कि इस विराट वृक्ष का बीज एक छोटा–सा अदृश्य बीज होगा? लेकिन वह अदृश्य बीज जब वि..रा..ट रूप धारण कर लेता है तब वह और अनंत–अनंत बीजों को जन्म देने में समर्थ होता है।

इसलिए महावीर ने कहा– आत्मा ही परमात्मा है। एक अर्थ में ठीक ही तो है; जैसे बीज ही वृक्ष है, पानी का वह अणु एच टू ओ ही सागर है, तो फिर आत्मा ही परमात्मा है। याद रखना! यह स्टेटमैंट, यह वक्तव्य गुणात्मक है। एच टू ओ के अणु में सागर के सारे गुण मौजूद हैं। आत्मा में परमात्मा के सारे गुण मौजूद हैं।

प्रकृति का यह सारा खेल यूँ ही चल रहा है। यदि आपको शरीर विज्ञान फिज़ियोलोजी का थोड़ा ज्ञान हो तो आपको मालूम होगा कि हर बेटी अपने माँ के गर्भ से जब पैदा होती है तब उस बेटी के ओवरी में, उसके अंडाशय में वे सारे बीज मौजूद होते हैं, वे सारे अंडे मौजूद होते हैं जो बड़े होने पर, युवावस्था आने पर परिपक्व होंगे और वह अपने बच्चों को जन्म देगी। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि हर नवजात बच्ची अपने भीतर भविष्य में होनेवाले बच्चों के बीज लेकर ही आई है। ओवम में एक भी नया अंडा कभी दुबारा नहीं बनता और इसका मतलब हुआ कि इस बच्ची की माँ अपने जन्म के समय इस बच्ची का बीज लेकर आई थी। और इस बच्ची के भीतर जो बीज हैं उन सबकी संभावना लेकर आई थी। अर्थात इसकी माँ की माँ– नानी– वहीं से यह परंपरा चली आ रही थी।

अगर इसे हम पूरा पीछे तक खींचें तो अस्तित्व की जब शुरुआत हुई थी, तभी से वो सारे बीज मौजूद थे। हम और आप आज जो सूरज बनने के दस अरब साल बाद इस धरती पर मौजूद हैं कहीं हमारा बीज अतिसूक्ष्म रूप में मौजूद था आज से दस अरब साल पहले भी। ये तो सूरज की उम्र है। अस्तित्व और भी पुराना है और इस प्रकार से हम सब अत्यंत पुराने हैं। उतने ही पुराने हैं जितना पुराना यह अस्तित्व है। जिस दिन अस्तित्व की शुरुआत हुई थी उस दिन हमारा होना भी तय हो गया था। माना की हम खरबों–खरबों वर्षों बाद आए, लेकिन हमारा बीज उस समय मौजूद था।

हर आत्मा में सर्वज्ञता का बीज है। इस शब्द 'सर्वज्ञता' को थोड़ा समझना। इससे बड़ा भ्रम पैदा होता है; ऐसा लगता है सर्वज्ञ का अर्थ है– सबकुछ जाननेवाला। एक शब्द है हमारे पास विशेषज्ञ; सर्वज्ञ का ठीक उल्टा। विशेषज्ञ का अर्थ होता है कम से कम वस्तु के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा ज्ञान। पुराने जमाने में डॉक्टर हुआ करता था– पूरे शरीर का डॉक्टर– फिर धीरे–धीरे विशेषज्ञ पैदा हुए; आँख का विशेषज्ञ, कान का विशेषज्ञ, हृदय का विशेषज्ञ। धीरे–धीरे जब और विज्ञान विकसित होगा; बाईं आँख का डॉक्टर अलग और दाईं आँख का डॉक्टर अलग होगा; चिकित्सक अलग हो जाएगा। बाएं हाथ का डॉक्टर अलग और दाएं हाथ का डॉक्टर अलग हो जाएगा। धीरे–धीरे हाथ का नहीं; अंगूठे का डॉक्टर अलग, अंगुली का डॉक्टर अलग हो जाएगा। विशेषज्ञ का अर्थ है टु नो मोर एंड मोर अबाउट लैस एंड लैस। विज्ञान की सारी खोज सूक्ष्मता की खोज है कम से कम के बारे अधिक से अधिक जानकारी और धर्म की खोज इसके ठीक विपरीत है; टु नो लैस एंड लैस अबाउट मोर एंड मोर।

कम–से–कम के बारे में अधिक–से–अधिक जानकारी का नाम विज्ञान और अधिक–से–अधिक के बारे में कम–से–कम जानकारी का नाम धर्म। इन दोनों का तार्किक निष्कर्ष कहां जाएगा? विज्ञान जिस दिन अपने शिखर पर पहुंचेगा, विशेषज्ञता बढ़ते–बढ़ते अपने क्लाइमैक्स पर पहुंचेगी... टु नो मोर एंड मोर अबाउट लैस एंड लैस– का लॉजिकल कन्क्लूज़न होगा– टु नो एवरिथिंग अबाउट नथिंग।

अभी कुछ दिन पहले मैं फ़िज़िक्स की एक किताब पढ़ रहा था उसका शीर्षक था 'समथिंग कॉल्ड नथिंग'। निश्चित रूप से धर्म की गति इससे बिल्कुल भिन्न है। धर्म की गति है? टु नो नथिंग अबाउट एवरिथिंग... अंततः परम ज्ञान परम अज्ञान के जैसा हो जाता है और इसलिए धार्मिक व्यक्ति को हम रहस्यविद कहते हैं मिस्टिक। तो सर्वज्ञता का अर्थ है सबकुछ के बारे में कुछ नहीं जानना। इस बात को खूब अच्छे से समझना। बुद्ध ने महावीर का बहुत मज़ाक़ उड़ाया है। महावीर के अनुयायी महावीर को सर्वज्ञ कहा करते थे। बुद्ध ने मज़ाक़ उड़ाया है कि मैंने एक सर्वज्ञ को ऐसे घर के सामने खड़े होकर भीख मांगते देखा है जिस घर में वर्षों से कोई रहता ही नहीं है। ग़ज़ब के सर्वज्ञ हैं इनको ये भी नहीं पता कि इस मकान में कोई नहीं रहता और मैंने सर्वज्ञ को एक दिन सुबह–सुबह कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ते देखा है। जब कुत्ता भौंका तब उन्हें पता चला कि अरे! यहाँ अधेरे में कुत्ता बैठा था... कैसे सर्वज्ञ हैं? नहीं, सर्वज्ञ का यह अर्थ नहीं होता कि उसे साइकिल का पंक्चर भी सुधारना आता होगा कि उसे सर्दी–जुकाम का इलाज करना आता होगा। सर्वज्ञ का अर्थ है आत्मज्ञ, जिसने स्वयं को जाना और जानने से तात्पर्य है... स्वयं को जानकर उसने सारे ब्रह्माण्ड के बारे में सबकुछ जान लिया।

लेकिन उसका सबकुछ जानना परम अज्ञान जैसा है।

विशेषज्ञ के बारे में एक चुटकुला मैंने सुना है कि एक शिक्षिका अपने स्कूल में बच्चों को सिखा रही थी... वो हाथी की कहानी आपने सुनी होगी! पाँच अंधे हाथी को टटोलने गए... किसी ने उसकी पूंछ को जानकर कहा कि रस्सी जैसा है। किसी ने पैर को छूकर कहा कि यह तो खंभे जैसा है। पाँच अलग-अलग स्टेटमैंट उन्होंने दिए। शिक्षिका ने यह बोध कथा सुनाकर बच्चों से पूछा कि बताओ बच्चो वे लोग कौन थे? एक बच्चे ने हाथ ऊपर उठाकर कहा मैं बताऊँ... वो पाँच विशेषज्ञ थे। विशेषज्ञ अंधा होता है। उसे विराट के बारे में कुछ नहीं पता। वह केवल एक छोटे-से अंश को जानता है और अंश को ही वह पूर्ण मान लेता है। वास्तव में ही विशेषज्ञ अंधे होते हैं। तो फिर आँखवाला कौन होगा, सर्वज्ञ कौन होगा? निश्चित रूप से वह विराट को जाननेवाला होगा। लेकिन उसका ज्ञान कोई सूचना नहीं होगा। सुनो, ओशो इस बारे में क्या कहते हैं-

ईश्वर में बीज अपने उच्चतम विस्तार में विकसित होता है।

तुम बीज हो और परमात्मा प्रस्फुटित अभिव्यक्ति है। तुम बीज हो और परमात्मा वास्तविकता है। तुम हो संभावना, वह वास्तविक है। परमात्मा तुम्हारी नियति है, और तुम कई जन्मों से अपनी नियति पास रखे हुए हो बिना उसकी ओर देखे। क्योंकि तुम्हारी आँखें कहीं भविष्य में लगी होती हैं; वे वर्तमान को नहीं देखतीं। यदि तुम देखने को राजी हो तो यहीं, अभी, हर चीज़ वैसी ही है जैसी होनी चाहिए। किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, अस्तित्व संपूर्ण है हर क्षण। यह कभी अपूर्ण हुआ ही नहीं; यह हो सकता नहीं। यदि यह अपूर्ण होता, तो यह संपूर्ण कैसे हो सकेगा? फिर कौन इसे संपूर्ण बनाएगा?

अस्तित्व संपूर्ण है, कुछ करने की ज़रा भी कोई ज़रूरत नहीं है। यदि तुम इसे समझ लो, तो समर्पण पर्याप्त है। किसी प्रयास, किसी प्राणायाम, भस्त्रिका, किसी शीर्षासन, या ध्यान, या कोई विधि- किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। यदि तुम इसे समझ लो कि अस्तित्व जैसा है... बस पूर्ण है। भीतर देख लो, बाहर देख लो, हर चीज़ इतनी पूर्ण है कि उत्सव मनाने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया जा सकता। वह व्यक्ति जो समर्पण करता है, उत्सव मनाना आरंभ कर देता है।

भीतर का ज्ञान सर्वज्ञता है और उसमें कभी कोई कमी नहीं होती। वह सदा पूर्ण ही होता है।

कल ही एक गीत मैं पढ़ रहा था। बड़ा प्यारा लगा! किसी कवि ने लिखा है-

बीज था, बीज हूं, कंकड़–सा दिखनेवाला नाचीज़ हूं।
पड़ा निष्पंद अचल, किंतु दिल में कोई अभीप्सा रही थी मचल।
झाड़ों को, लताओं को देख आश्चर्यचकित होता।
उनकी विराटता से रोमांचित होता।
तभी कोई बोला मुझसे तुम मेरे स्वजातीय अनुज हो।
एक दिन जो मैं था, वही तुम हो।
मैंने पूछा अरे! यह किसने किससे कहा?
तो दुलार से मुझे उत्तर मिला।
हां, सच ही तुम हमारे वंशज हो।
मैंने अविश्वासपूर्वक पूछा।
आह! क्या यह सत्य है, तुम मेरे पूर्वज हो?
क्या मैं भी इतना विशाल वृक्ष हो सकता हूं कभी?
आवाज आई... हां, यहीं और अभी।
अब सुनकर यह अज्ञात पुकार, हर्षित हैं हृदय के तार–तार।
यह तड़प, यह वेदना, यह सरसराती–सी चेतना।
यह घुटन या मरण अथवा कहूं इसे नवजीवन।
यह सब क्या है? किसकी दया है?
किसने दिलाई मुझे अपनी याद?
किसको दूं धन्यवाद इस संभावना बोध के लिए।
अज्ञात की शोध के लिए, नवयात्रा योग के लिए।
तुम्हें ही ऐ वृक्ष! तुम्हें ही। धन्यवाद! धन्यवाद! धन्यवाद!

जैसे किसी वृक्ष को देखकर किसी बीज को स्मरण आ जाए कि यह मेरी भी संभावना है। ठीक ऐसे ही इस जगत में सद्गुरु को देखकर, जोकि ईश्वर के साक्षात रूप हैं, हमें भी याद आ जाती है कि हम भी यही हो सकते हैं। ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज पूरा खिल जाता है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं–

प्रभु में सर्वज्ञता का बीज पूरा खिलता है।
पूर्ण में से पूर्ण निकले पीछे पूर्ण बचता है।।

संपूर्णता, मल्टीडायमेंशनल ढंग से, बहुआयामी ढंग से अपनी पूरी खिलावट में मौजूद हो जाती है। ऐसे व्यक्ति को ही हम ईश्वर कहते हैं, भगवान या अवतार कहते हैं। वह हम सबकी संभावना है। यदि हम चूके तो एक छोटे–से कंकड़ जैसे बीजमात्र रह जाएंगे। उस संभावना की पुकार को सुनो। चलो पतंजलि के साथ!

अथ योग अनुशासनम्। धन्यवाद। जय ओशो।।

गुरु देह में ईश्वर

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।। 26 ।।

पूर्वेषाम् अपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात्

गुरु–देह में ईश्वर हीं, सद्गुरु बनकर आता है
सब गुरुओं का गुरु सदा, शाश्वत परमात्मा है।

आज के सूत्र में पतंजलि चर्चा करते हैं ईश्वर की, जिसमें सर्वज्ञता का बीज अपनी पूर्णता में खिल गया है। ऐसा पुरुष, विदेही चैतन्य के रूप में समयातीत हो जाता है।

समयातीत होता है। हम जिन्हें भगवान कहते हैं, अवतार कहते हैं, तीर्थंकर कहते हैं... जब वे देह से मुक्त हो जाते हैं तब वे समय की सीमा के पार चले जाते हैं। और तब वे गुरुओं के गुरु हो जाते हैं। तीन प्रकार के गुरु हैं, इन्हें समझना।

पहले हैं विद्यार्थियों के शिक्षक वे जो स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय में सिखा रहे हैं, वे धर्मगुरु जो शास्त्र का ज्ञान अपने शिष्यों को दे रहे हैं... वह स्टुडैंट–टीचर रिलेशनशिप है। वे ज्ञान का हस्तांतरण कर रहे हैं, विचारों का आदान–प्रदान कर रहे हैं। विद्यार्थी जानता नहीं... शिक्षक जानता है और वह उसे विचार सिखा रहा है। पिछली पीढ़ियों ने जो जाना वह उसको हस्तांतरित कर रहा है।

दूसरी कैटेगिरी है, दूसरी कोटि है गुरु–शिष्य की। गुरु ने अपने भीतर सर्वज्ञता को जाना है, वह कोई विशेषज्ञ नहीं है, वह किसी विषय के बारे में नहीं जानता, उसने स्वयं को जाना है और वह अपना आत्मज्ञान शेयर करना चाहता है शिष्य के साथ। विद्यार्थी के साथ गुरु काम न कर पाएगा। क्योंकि विद्यार्थी तो विषयों का ज्ञान मांगने आया है, वह विशेषज्ञ होना चाहता है, परंतु गुरु है सर्वज्ञ। इस भेद को समझना। शिक्षक विचार सिखाएगा; गुरु निर्विचार होना सिखाएगा। शिक्षक संसार के बारे में तथाकथित ज्ञान देगा; गुरु सिखाएगा स्वयं के बारे में। सब प्रकार के विचार, ज्ञान, धारणाएँ और विश्वास वह छीन लेगा; ताकि तुम नितांत अकेले हो जाओ और उस महाशून्यता में स्वयं को जानो। गुरु का कार्य शिक्षक के कार्य से विपरीत है।

फिर तीसरी कोटि है परमगुरु की... अंग्रेजी में कहें 'द मास्टर ऑफ द मास्टर्स'। वह ज़मीन पर मौजूद सदगुरुओं को निर्देश देता है। वह स्वयं तो समय की सीमा के बाहर चला गया, वह स्वयं देहातीत हो गया। शरीर से मुक्त होने के पश्चात् वह स्थान और समय के बाहर हो गया, परमात्मा स्वरूप हो गया, ओंकार स्वरूप हो गया। ऐसे लोग फिर क्या करते हैं? उनकी चैतन्यता तो मौजूद है, व्यापक होकर मौजूद है, अब वह किसी स्थान मे बंद नहीं, किसी शरीर के कारागृह में नहीं, अब समय भी इनके लिए मायने नहीं रखता...। ऐसी दिव्य चेतनाएं, ईश्वर स्वरूप होकर, ओंकार स्वरूप होकर पृथ्वी पर मौजूद सदगुरुओं को मार्गदर्शन देती हैं, इसीलिए तो पृथ्वी पर जो सदगुरु मौजूद हैं उन्हें हम साक्षात 'ब्रह्म' कहते हैं– शरीरधारी ब्रह्म। एक ब्रह्म वे हैं जो अशरीरी हो गए; वे परोक्ष ब्रह्म हैं और साक्षात ब्रह्म पृथ्वी पर मौजूद सदगुरु हैं।

इस प्रकार शिक्षकों की इन तीन कैटेगरीज़ को समझना। पहली विद्यार्थी–शिक्षक टीचर एंड स्टुडैंट, दूसरी गुरु–शिष्य मास्टर एंड डिसाइपल और तीसरी गुरु–परमगुरु 'द मास्टर एंड द मास्टर ऑफ द मास्टर्स '।

शिक्षक स्वयं नहीं जानता, केवल विचारों का संग्रह उसके पास है, किताबों से उसने सीखा है। हो सकता है उसके स्वयं के जीवन में वे बातें न हों... हो सकता है कोई पंडित समझा रहा हो कि क्रोध न करो, क्रोध बुरा है और वह स्वयं क्रोधमय जीवन ही जीता हो। हो सकता कोई शिक्षक सिखा रहा हो कि झूठ नहीं बोलना चाहिए, लेकिन वह स्वयं झूठ बोलता हो...।

मैंने सुना है, एक शिक्षक ने एक विद्यार्थी की परीक्षा कॉपी में कुछ कॉमैंट लिखा। उस विद्यार्थी से पढ़ते न बना, उसने अपने घर जाकर अपने पिता को दिखाया। उस विद्यार्थी ने पिता को कहा कि शिक्षक महोदय ने मेरी कॉपी पर एक कॉमैंट लिखा है कृपया आप पढ़कर बताएं... पिता से भी पढ़ते न बना... फिर उस विद्यार्थी ने अपने भाइयों से पूछा, पड़ोसियों से पूछा, लेकिन सबकी समझ से बाहर! उसके पिता ने कहा कि तुम शिक्षक से ही जाकर पूछ लो। शिक्षक से पूछा तो शिक्षक ने कहा– नालायक! यही तो लिखा है कि सुंदर लिखाई लिखा करें जिसे सब लोग पढ़ सकें। शिक्षा तो बड़ी अच्छी है, नसीहत तो उत्तम है– सुंदर लिखाई लिखो– लेकिन कोई ज़रूरी नहीं कि स्वयं शिक्षक सुंदर लिखाई लिख रहा हो।

आप एक डॉक्टर के पास इलाज कराने जाते हैं... डॉक्टर आपसे कहता है कि बीड़ी सिगरेट न पियो, तंबाकू न खाओ, शराब न पियो। हो सकता है ये डॉक्टर स्वयं सिगरेट पीता हो या स्वयं शराब पीता हो। डॉक्टरों में कम से कम नब्बे प्रतिशत डॉक्टर सिगरेट पीते हैं, शराब पीते हैं। भली–भाँति जानते हैं कि नुक़सानदायक है– मरीज़ को

मना करते हैं– लेकिन खुद नहीं रुक पाते! उनका ज्ञान सिर्फ़ एक सूचना है, वास्तविक ज्ञान नहीं है। गुरु इससे बिलकुल भिन्न प्रकार का व्यक्ति है, उसने स्वयं को जाना है। जिसने स्वयं को नहीं जाना वह सदगुरु नहीं है।

मैंने सुना है, दस मंज़िला इमारत की छत पर एक दार्शनिक किस्म के सज्जन खड़े हुए टहल रहे थे। नीचे सड़क पर से किसी ने आवाज़ लगाई कि सेठ चंदूलाल जी! दुर्घटना में अचानक आपकी प्यारी पोती चल बसी। उन सज्जन ने आव देखा न ताव... पोती के मरने के दु:ख में अचानक वो छत से कूद पड़े आत्महत्या करने के लिए... दसवीं मंज़िल से गिरते–गिरते जब वे पाँचवीं मंज़िल पर आए, तब उन्हें ख़्याल आया कि अरे मेरी तो कोई पोती ही नहीं है। जब और नीचे गिरे... तीसरी मंज़िल तक आए तब उनको याद आया कि मेरी तो शादी ही नहीं हुई... और जब बिल्कुल ज़मीन पर गिरने वाले थे तब उन्हें स्मरण आया कि मेरा नाम भी चंदूलाल नहीं... मैं तो मुल्ला नसरुद्दीन हूँ।

जो स्वयं को ही नहीं जानते वे सदगुरु नहीं हो सकते और ये नाम चंदूलाल हो या नसरुद्दीन कि ए. बी. सी. डी. कुछ भी... ये हमारा वास्तविक होना नहीं है। यह शरीर मैं नहीं हूँ... यह मन मैं नहीं हूँ... मैं केवल चैतन्यमात्र हूँ, शून्य निराकार हूँ, मैं ओंकार स्वरूप हूँ– ऐसा जिसने जाना वह सदगुरु। फिर इस सदगुरु को मदद पहुंचानेवाले, निर्देश देने वाले परमगुरु हैं जो समय और स्थान की सीमा के पार हैं। ख़्याल रखना शरीर की गति स्थान में होती है स्पेस में, और मन की गति होती है समय में। आप एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, एक घर से उठकर दूसरे घर में जा सकते हैं; देह की गति, पदार्थ की गति स्पेस में है और मन की गति भूत एवं भविष्य में है। वे समय के हिस्से हैं। आप अतीत की किसी याद में डूब गए या भविष्य की कोई कल्पना करने लगे... यह मन की गति है, विचारों की गति है।

वे लोग जो जीते जी सदगुरु थे... जब उनका महापरिनिर्वाण हो जाता है तब उनकी फिर कौन–सी गति होगी? न उनके पास देह बची, न उनके पास मन बचा, वे सब प्रकार की गतियों के पार हो गए। चाहो तो तुम उसे कहो अगति, स्थितप्रज्ञता या कहो परम गति। अब उनके ऊपर कोई सीमाएं लागू नहीं होतीं और इसलिए वे सर्वव्यापी हो गए। ऑम्निप्रैजंट ओम की तरह प्रैजंट। वे परमात्मा स्वरूप हो गए...।

जो देह से विमुक्त हो ब्रह्मलीन होते हैं
वे गुरुओं के परमगुरु समयातीत होते हैं।

फिर वे गुरुओं के गुरु हो जाते हैं। ओशो ने स्वयं वर्णन किया है–

पहली कोटि– विद्यार्थियों का शिक्षक, दूसरी– शिष्यों का गुरु होता है, और

फिर तीसरी– गुरुओं का गुरु होता है।

पतंजलि कहते हैं कि जब गुरु भगवान हो जाता है– और भगवान होने का अर्थ होता है समय के बाहर होना; वह हो जाना जिसके लिए समय अस्तित्व नहीं रखता है; जिसके लिए समय कुछ है नहीं; वह हो जाना जो समयातीतता को समझ चुका है; अनंतता को समझ चुका है, जो केवल बदला ही नहीं और जो केवल भगवान ही नहीं हुआ, जो केवल परिवर्तित और जाग्रत ही नहीं हुआ, बल्कि जो समय के बाहर जा चुका होता है, वह गुरुओं का गुरु हो जाता है। अब वह भगवान हो चुका होता है...।

तो करता क्या होगा वह गुरुओं का गुरु? यह अवस्था केवल तभी आती है जब गुरु देह छोड़ता है, उसके पहले कभी नहीं। देह में तुम जाग्रत हो सकते हो, देह में रहकर तुम जाग्रत हो सकते हो कि समय नहीं है। लेकिन देह के पास जैविक घड़ी है। वह भूख अनुभव करता है, और समय के अंतराल के बाद फिर अनुभव करता है भूख– परितृप्ति और भूख; नींद, रोग, स्वास्थ्य। रात में देह को निद्रा में चले जाना होता है, सुबह इसे जगना होता है। देह की जैविक घड़ी होती है। अतः तीसरे प्रकार का गुरु केवल तभी घटता है जब गुरु सदा के लिए देह छोड़ देता है; जब उसे फिर से देह में नहीं लौटना होता।

बुद्ध के पास दो शब्द हैं। पहला है निर्वाण– संबोधि। जब बुद्ध संबोधि को उपलब्ध हुए, तो भी देह में बने रहे। यह थी संबोधि–निर्वाण। फिर चालीस वर्ष के पश्चात उन्होंने देह छोड़ दी। इसे वे कहते हैं परम निर्वाण–'महापरिनिर्वाण'। फिर वे हो गए गुरुओं के गुरु और वे बने रहे हैं गुरुओं के गुरु।

प्रत्येक गुरु जब स्थायी रूप से देह छोड़ देता है, जब उसे फिर नहीं लौटना होता, तब वह गुरुओं का गुरु हो जाता है। मोहम्मद, जीज़स, महावीर, बुद्ध, पतंजलि, वे प्रत्येक, गुरुओं के गुरु हुए। और वे निरंतर रूप से गुरुओं को निर्देशित करते रहे हैं न कि शिष्यों को। जब कोई पतंजलि के मार्ग पर जाता हुआ गुरु हो जाता है, तो फौरन पतंजलि के साथ एक संपर्क सध जाता है। उनकी आत्मा असीम में तैरती रहती है उस वैयक्तिक चेतना के साथ, जिसे की भगवान कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति पतंजलि के मार्ग का अनुसरण करता हुआ गुरु हो जाता है, संबोधि को उपलब्ध हो जाता है, तो तुरंत उस आदिगुरु के साथ जो कि अब भगवान है, एक संबंध स्थापित हो जाता है।

वे सतगुरु जो देहमुक्त हो गए हैं, उनसे निरंतर मदद मिलती रहती है। किसी ने ओशो से पूछा– आपको किन परम गुरुओं से मदद मिलती है? किनसे निर्देश मिलते हैं? ओशो ने कहा– निर्देश किसी से भी नहीं मिलते, क्योंकि मैं किसी परंपरा का हिस्सा नहीं हूँ। हाँ, मदद ज़रूर मिलती है; सभी परम गुरुओं से मुझे मदद मिलती है, किंतु निर्देश नहीं। क्योंकि मैं किसी परंपरा का हिस्सा नहीं हूँ। मैं एक नई परंपरा की

शुरुआत हूँ। महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं... एक लम्बी परंपरा के अंतिम शिखर हैं। निश्चित रूप से उन्हें बाक़ी के तेईस गुरुओं से मदद मिल रही है। जीज़स क्राईस्ट यहूदी परंपरा के हिस्से हैं। पुराने यहूदी परम गुरुओं से उन्हें मदद मिलती रही, निर्देश मिलते रहे। सिखों में दस गुरु हुए। पुराने गुरुओं से उन्हें निरंतर निर्देश मिलते रहे।

ओशो ने कहा– मुझे निर्देश तो नहीं मिलते; क्योंकि मैं किसी परंपरा से कभी जुड़ा नहीं; लेकिन मैं सब परंपराओं में गया हूँ। विभिन्न जन्मों में मैं भाँति–भाँति के सदगुरुओं से जुड़ा हूँ। लेकिन मैंने किसी का निर्देश नहीं माना। मैं चला अपने ही विवेक से हूँ। मेरी मैत्री सबसे है, सबसे मुझे मदद मिलती है, सबका सहयोग मुझे प्राप्त है; लेकिन निर्देश प्राप्त नहीं होते... मैं एक नई परंपरा का प्रारंभ हूँ।

प्यारे मित्रो! हम सब कितने सौभाग्यशाली हैं! ओशो के साथ हम नई परंपरा के हिस्से बनते हैं। हाँ, आज ओशोधारा में हमारे लिए ओशो की मदद मौजूद है। शाम को वाइट रोब ब्रदरहुड में ओशो कीर्तन संध्या में जब हम उत्सव मनाते हैं, विशेषकर ओंकार के ज्ञान के पश्चात्– क्योंकि अब ओशो ओंकार रूवरूप हैं– जब हम ओंकार की साधना करते हैं, उत्सव मनाते हैं, उनके स्मरण से भरते हैं... अनायास हमारे हृदय के तार उनके साथ जुड़ जाते हैं और उनकी मदद हम सबको उपलब्ध हो जाती है। जब किसी गुरु की मदद किसी परंपरा को उपलब्ध होती है तब तक वो परंपरा जीवन्त होती है। इसीलिए हम ओशोधारा को ओशो की जीवन्त धारा कहते हैं। आज महावीर की परंपरा जीवन्त परंपरा नहीं है। बहुत–सी परंपराएँ विलीन हो गईं, क्योंकि वे शिष्य नहीं रहे, उनके पास वह कला नहीं रही कि वह अपने गुरुओं से मदद प्राप्त कर सकें। वह परंपरा धीरे–धीरे विलुप्त हो जाती है, क्षीण हो जाती है। आज यहूदी और जैन जीवन्त परंपराएं नहीं हैं। हम सौभाग्यशाली हैं कि हम ओशो की जीवन्त धारा में है।

बहुत–बहुत धन्यवाद। जय ओशो।।

ओंकार ही ईश्वर

तस्य वाचकः प्रणवः।। 27 ।।

ओम का वेदों में गुणगान, यह अक्षर है ब्रह्म समान
यही है जीवन यही है प्राण, इसमें बसते हैं भगवान।

उसका बोधक शब्द प्रणव है, अर्थात वह ओम् के नाम से जाना जाता है।

पतंजलि के आज के सूत्र अत्यंत सारगर्भित हैं। पतंजलि कहते हैं– उसका बोधक नाम प्रणव है अर्थात ईश्वर ओंकार के नाम से जाना जाता है। प्रणव यानी ध्वनि, आवाज़। जापान के झेन फ़क़ीर कहते हैं– द साउंड ऑफ वन हैंड क्लैपिंग. एक हाथ की ताली। बड़ी अजीब बात है! एक हाथ की ताली कैसे होगी? दुनिया में जितनी भी आवाज़ें हैं सब चोट से पैदा होती हैं। दो तालियों से पैदा होती हैं। हवा चलती है... वृक्षों में पत्ते खड़खड़ाते हैं, दो तालियां हो गईं। एक ताली पत्ते... दूसरी ताली हवा। मैं बोल रहा हूँ। मेरे स्वर यंत्र में वोकल कॉर्ड से हवा टकरा रही है, मेरी जीभ तालू से टकरा रही है, होंठ होंठ से टकरा रहे हैं, आवाज़ पैदा हो रही है। नदी बहती है, झरना गिरता है, आवाज़ पैदा होती है। कैसे? पत्थर से पानी टकरा रहा है, इसलिए। जहाँ भी जगत में आवाज़ है... वहाँ टक्कर है, चोट है। लेकिन संत कहते हैं कि एक आवाज़ ऐसी है जो बिना चोट के पैदा होती है– वह है परमात्मा की ध्वनि। उसका कोई स्रोत नहीं है... वह स्रोतहीन आवाज़ 'द सोर्सलैस साउंड' बस वह स्वयं में अपने आप ही हो रही है।

पतंजलि कहते हैं वही ध्वनि ईश्वर है। संतों ने उसे सतनाम कहा है। क्यों? ईश्वर को दिये अन्य सभी नाम तो हमारी भाषा के हैं– हम कहें राम, कृष्ण या विष्णु या शंकर या हम कहें गॉड कि अल्लाह कि रहीम कि रहमान– ये सब नाम तो हमारे दिए हुए हैं, हमारी भाषा के नाम हैं, ये उसके सच्चे नाम नहीं हैं। जब धरती पर मनुष्य जाति नहीं थी, तब भी तो परमात्मा था, तब उसका क्या नाम था? निश्चित रूप से तब तो हमारी भाषाएँ भी नहीं थीं। तब तो वह बिना नाम का रहा होगा। नहीं, तब भी उसका एक नाम था। वह है सतनाम... गुरु नानक देव जी कहते हैं, 'एक ओंकार सतनाम।' वह एक ओंकार ही उसका सच्चा नाम है।

सत्य ओर सत में भी भेद समझना। सत्य यानी फैक्ट, यथार्थ... तथ्य। हम कहते हैं आठ और तीन मिलकर ग्यारह होते हैं, दो और दो मिलकर चार होते हैं– इसमें यथार्थ तो है, फैक्ट तो है– लेकिन यह सत नहीं है। यह सत्य है कि गणित के हिसाब से दो और दो मिलकर चार होते हैं, क्योंकि ये संख्याएं हमारी मान्यताएं ही सही... हम दस तक की गिनती मानते हैं, दो और दो मिलकर चार होते हैं; लेकिन ये कोई ज़रूरी नहीं कि हम दस तक के अंक मानें... तीन अंकों से भी काम चल जाएगा। एक, दो, तीन फिर उसके बाद आ जाएगा ग्यारह, बारह, तेरह... तब दो और दो मिलकर ग्यारह हो जाएंगे। चार नहीं होंगे। चार जैसी कोई चीज़ ही नहीं होगी। गणित मान्यता की बात है। दो और दो मिलकर चार होना सत्य तो है; लेकिन यह सत नहीं है।

सत का अर्थ है जिसकी सत्ता है जो एग्ज़िसटैंशल है। वह ओंकार एग्ज़िसटैंशल है। वह वास्तव में है... वो कोई मान्यता अथवा विश्वास का सवाल नहीं, वह किसी

धारणा का हिस्सा नहीं है, वह सचमुच में है। इसलिए 'एक ओंकार सतनाम'– ओंकार उसका सच्चा नाम है।

संत जानबूझकर उसको 'नाम' कहके भी पुकारते हैं, क्योंकि सीधे–सीधे ईश्वर कहना या ओंकार कहना शोभा नहीं देता। परोक्ष रूप से कहते हैं। भारत में परंपरा रही है कि पत्नियां अपने पति का नाम नहीं लेतीं, शोभा नहीं देता, बड़ा सीधा–सीधा हो जाता है। अपने पिता का नाम हम सीधे–सीधे नहीं लेते, परोक्ष रूप से कहते हैं, सीधा नाम लेना उचित नहीं लगता... अशोभनीय–सा लगता है। परमात्मा का नाम लेना... ओंकार कहना बड़ा सीधा हो जाता है। इसलिए मध्य युग के संतों ने उसे नाम कहा है और यह भी कहा है कि तुझसे बड़ा तेरा नाम...।

पतंजलि उसी तरफ़ इशारा कर रहे हैं 'तस्य वाचकः प्रणवः।' उसका बोधक नाम प्रणव है, ओंकार है। मुझे याद आता है शांडिल्य सूत्र पर बोलते हुए 'अथातो भक्ति जिज्ञासा' नामक प्रवचनमाला के आंरभिक दस मिनटों में ही ओशो समझाते हैं ओंकार को और कहते हैं, ओंकार से प्रीति का नाम भक्ति है। जिसने शांडिल्य का यह पहला सूत्र समझ लिया 'ओम अथातो भक्ति जिज्ञासा' उसने भक्ति का पूरा शास्त्र समझ लिया। और जिसने ओंकार को न समझा वो कुछ भी न समझ पाएगा। आगे ओशो चालीस प्रवचन देते हैं, किन्तु बार–बार लौटकर कहते हैं कि पहले सूत्र का स्मरण रखना! ओंकार से प्रीति का नाम है भक्ति। परमात्मा के प्रेम में डूबो अर्थात् ओंकार की ध्वनि में डूबो। वही पराभक्ति है। ठीक इसी प्रकार गुरु नानक देव जी के जपजी साहब पर प्रवचन देते हुए 'एक ओंकार सतनाम' नामक प्रवचन के प्रारंभ में ही ओशो कहते हैं कि उस एक ओंकार को जिसने जान लिया, सतनाम को जिसने पहचान लिया, उसकी बात पूरी हो गई। शेष जपजी साहब उसे पढ़ने की ज़रूरत नहीं।

नानक ने पहले ही वचन में धर्म का सार संक्षेप में कह दिया। बाक़ी तो सिर्फ़ विस्तार है। जो नहीं समझ पाए इस एक शब्द ओंकार को, उनके लिए नानक विस्तार से भी कहेंगे। लेकिन याद रखना! करुणावश कहेंगे। असली बात तो एक पंक्ति में ही आ गई 'एक ओंकार सतनाम'। यह पढ़कर मुझे याद आया कि ओशो ने अपनी प्रथम किताब के प्रथम प्रवचन में क्या कहा था। जब मैंने ओशो की किताब 'मिटटी के दीये' पढ़ी और उसमें पहले ही पेज पर जो पहली ही बोध कथा है वह ओंकार से ही संबंधित है। मैं यह जानकर बहुत चकित हुआ।

ओशो कहते हैं कि मैंने सुना है कि कहीं परमात्मा के मंदिरों का एक नगर था। वह जलमग्न हो गया। सागर में डूब गया। किन्तु आज भी उस सागर तट पर मंदिर की घंटियों की आवाज़ सुनी जा सकती है। शायद यहाँ–वहाँ तैरती हुई मछलियां घंटियों से

टकरा जाती होगीं। या पानी की लहरें घंटियों को हिला देती होंगी। कारण जो भी हो मैंने सुना है वहाँ अभी भी प्रभु के मंदिर की घंटियों की आवाज़ सुनाई पड़ती है। मैं उस सागर तट की खोज में निकला। बरसों लग गए। बामुश्किल अंततः मैंने वह सागर तट खोज ही लिया। किन्तु यह क्या! न तो वहाँ कोई मंदिर दिखाई पड़ते थे, न कोई ध्वनि सुनाई पड़ती थी। मैंने बहुत कोशिश की ज़मीन से कान लगा–लगाकर मैंने सुनने की कोशिश की लेकिन कोई आवाज़ सुनाई न पड़ी। सिवाय पानी की लहरों के थपेड़ों की आवाज़, चट्टानों से लहरों के टकराने की आवाज़ के अतिरिक्त कोई और शोर वहाँ न था। धीरे–धीरे मेरी कोशिश असफल होने लगी और मैं वापिस लौटने की सोचने लगा। किन्तु यह क्या मैं तो वापिस लौटने का मार्ग ही भूल गया था। मैं वहीं रहने लगा। फिर तो शनैः शनैः मैं यह भी भूल गया मैं किसलिए यहाँ आया था। अब तो मैं यहीं सागर तट पर ही निवास करने लगा। वर्षों बीत गए... एक आधी रात मेरी नींद खुली और अचानक मैंने सुना परमात्मा के मंदिर की घंटियों की आवाज़ गूँज रही है... तब से मेरा सारा जीवन बदल गया। अब मैं वही व्यक्ति नहीं हूँ जो मैं पहले था। वह संगीत मेरे भीतर निरंतर निनादित हो रहा है।

यह कहानी लिखकर ओशो आगे कहते हैं, प्यारे मित्रो! क्या तुम भी उस सागर तट पर चलकर प्रभु की ध्वनि सुनना चाहते हो? तो चलो वह सागर तट कहीं दूर नहीं तुम्हारे ही भीतर है। अपने ही हृदय के भीतर उतरना है; किन्तु शुरुआत में तो केवल विचारों का कोलाहल, भावनाओं का शोरगुल ही सुनाई देगा। लेकिन धीरज रखना! भीतर टिके रहना, जमे रहना धैर्यपूर्वक सुनते जाना... सुनते जाना... एक दिन सुनते–सुनते प्रभु की ध्वनि सुनाई देने लगती है। हिंदुओं ने अपने मंदिरों में दरवाजे पर घंटे लटका रखे हैं; वो प्रतीकात्मक है, सिंबोलिक है कि ध्वनि ही प्रभु में प्रवेश का मार्ग है। जिसे भी परमात्मा को पाना है उसे ओंकार की ध्वनि से गुज़रना होगा। सुनो ओशो क्या कहते हैं–

इसे ओम् के रूप में जाना जाता है।

यह परमात्मा, यह संपूर्ण विकास, ओम् के रूप में जाना जाता है। ओम् सर्वव्यापक नाद का प्रतीक है। स्वयं में तुम सुनते हो विचारों को, शब्दों को, लेकिन अपने अस्तित्व की ध्वनि को, नाद को कभी नहीं सुनते। जब कहीं कोई इच्छा नहीं होती, आवश्यकता नहीं होती, जब शरीर गिर चुका होता है, जब मन तिरोहित हो जाता है, तो क्या घटेगा? तब स्वयं ब्रह्मांड का वास्तविक नाद सुनाई पड़ता है, जो है ओम्।

संसार भर में इस ओम् का अनुभव किया गया है। मुसलमान, ईसाई, यहूदी इसे

कहते हैं आमीन। यह है ओम्। जरथुस्त्र के अनुयायी, पारसी इसे कहते हैं, 'आहुरमाजदा'– वह अ और म से है ओम्– आहुर है अ से और माजदा है म से। यह होता है ओम्। उन्होंने इसे देवता बना लिया है।

वह नाद सर्वव्यापी है। जब तुम थम जाते हो तब तुम इसे सुन सकते हो। अभी तो तुम इतनी ज़्यादा बातचीत कर रहे हो, भीतर इतने ज़्यादा बड़बड़ा रहे हो कि तुम इसे सुन नहीं सकते। यह है मौन–ध्वनि। यह इतनी मौन होती है कि जब तक तुम पूरी तरह नहीं रुक जाते, तुम इसे सुन नहीं पाओगे। हिंदुओं ने अपने देवताओं को प्रतीकात्मक नामों से बुलाया है–ओम्। पतंजलि कहते हैं, 'वह ओम के रूप में जाना जाता है।' और यदि तुम गुरु को खोजना चाहते को, गुरुओं के गुरु को, तो तुम्हें ओम् की ध्वनि से अधिकाधिक तालमेल बिठाना होगा। एक छोटा–सा गीत आपसे कहूँ कृ

मंदिर, मस्जिद, चर्च छोड़ के, मन के अंदर खोज–खोज के
ब्रह्मनाद जो सुनता प्रतिक्षण, वहीं ब्रह्मज्ञाता है ब्राह्मण
भीतर अपने करो विश्राम, सुमिरन रहे ओम् का नाम।
ओम् ही शिव है ओम् ही शक्ति, ओम् अनुरक्ति है भक्ति
ज्ञानी, योगी, तपस्वी, त्यागी, सभी ओम् के हैं अनुरागी
सब करते बारंबार प्रणाम, भजलो प्यारे ओम का नाम।
सबसे पहले स्वयं में रमो, शून्य में स्थिर होकर जमो
फिर छोड़ो सुधि तन–मन की, और सुनो धुन कीर्तन की
जो भीतर गूँज रही अविराम, सुमिरन रहे ओम का नाम।
बहिर्मुखी है दुनिया सारी, अंतर्मुक्ता हरि को प्यारी
धारा पलट हुई जब राधा, रचा रास मिट गई सब बाधा
मिल गए वेणु बजाते श्याम, भजलो प्यारे ओम का नाम।
ओम है ब्रह्मा विष्णु महेश, ओम के बाहर कुछ भी न शेष
सुनता शिष्य, सुनाए गुरु, ओम के साक्षात रूप सदगुरु
इसी से जन्मे धर्म तमाम, सुमिरन रहे ओम का नाम।
ओम का वेदों में गुणगान, यह अक्षर है ब्रह्म समान
यही है जीवन यही है प्राण, इसमें बसते हैं भगवान
ओम को सुमिरो आठों याम, भजलो प्यारे ओम का नाम।

पतंजलि कहते हैं, 'तस्य वाचकः प्रणवः।' ओंकार उसका नाम है। इस ओंकार में डूबना ही अध्यात्म की साधना है।

हरि ओम् तत्सत्। धन्यवाद। जय ओशो।।

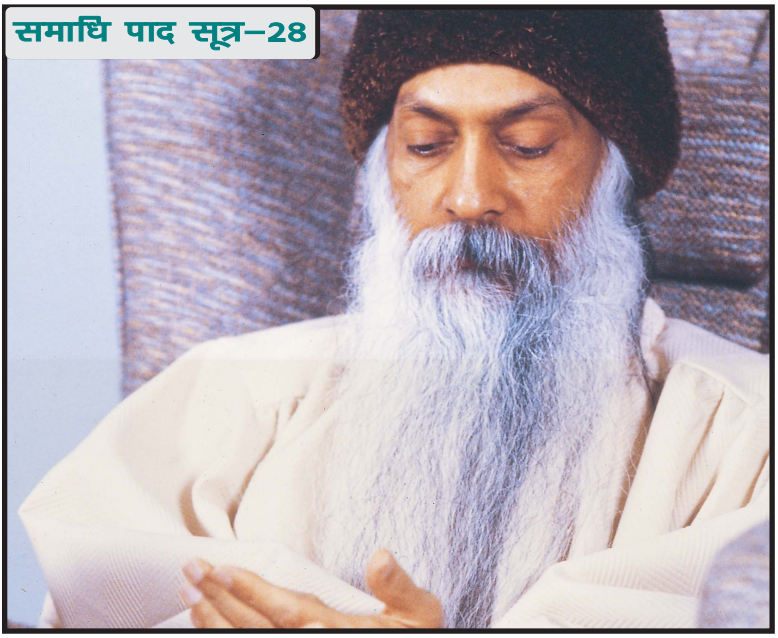

प्रणव की भावना में डूबो

तज्जपस्तदर्थभावनम्।। 28 ।।

तत् जपः तदर्थ भावनम्

पहले जानो ओम है क्या एक ओंकार सतनाम;
भाव सहित उसमें डूबो ओम है प्यारा गोविंद नाम।

उस प्रणव का जप करो व उसके अर्थ की भावना में डूबो।

आओ, पतंजलि के साथ अगला क़दम उठाएं। पहले पतंजलि ने बताया कि परमात्मा का स्वरूप ओंकार है। अब वे उसमें डूबने की विधि बताते हैं। साधना का मार्ग समझाते हैं। कहते हैं– 'तस्य वाचकः प्रणवः।' 'तत् जपः तदर्थ भावनम्।' उस प्रणव की भावना में डूबो।

पहले जानो ओम है क्या एक ओंकार सतनाम;
भाव सहित उसमें डूबो ओम है प्यारा गोविंद नाम
ध्वनि ओम की अतिपावन, महामंत्र का सुर मनभावन
यह शाश्वत संगीत है अनुपम, यही सृष्टि का शब्द प्रथम

मध्य अंत सर्वत्र है राम, भजलो प्यारे ओम का नाम।
ओम कहो कि ओंकार कहो, हृदय में बारंबार गहो
शब्द की महिमा अपरंपार, ओम करेगा बेड़ा पार
जीतोगे जीवन संग्राम, सुमिरन रहे ओम का नाम।
हे मनुज जन्म पाने वालो, जीवन को धन्य बना डालो
नाहक इधर–उधर न दौड़ो, अंतर्धुन से नाता जोड़ो
निश्चित है शुभ परिणाम, भजलो प्यारे ओम का नाम।
असली राम नाम है ओम, रमा है इसमें सारा व्योम
यही रहस्य ऋषियों ने जाना, मौन मुनियों ने पहचाना
शब्द परम आनंद का धाम, सुमिरन रहे ओम का नाम।

नहीं छोड़ना है परिवार, रहना है अपने घर बार। याद रखना! पतंजलि त्यागवादी नहीं हैं...।

नहीं छोड़ना है परिवार, रहना है अपने घर बार;
बाहर करना सम्यक काम, रखो याद अंदर सतनाम
दिन–रात सुबहो–शाम, भजलो प्यारे ओम का नाम
पहले जानो ओम है क्या, एक ओंकार सतनाम;
भाव सहित उसमें डूबो, ओम है प्यारा गोविंद नाम।

पतंजलि कहते हैं– भाव सहित उसमें डूबो। बिना भाव के अगर सिर्फ़ ओम, ओम, ओम, ओम... तुमने जपा, तो वह रैपटिशन होगा। शायद नींद अच्छी आ जाए... क्योंकि एक ही शब्द को दोहराते रहने से बोरडम नीरसता पैदा हो जाती है, मन सो जाता है; लेकिन वह ध्यान नहीं होगा, वह समाधि नहीं होगी। हम चेतन मन से अचेतन मन में गिर जाएंगे। मनोवैज्ञानिक मन के केवल दो विभाजन करते हैं– कॉन्शस माइंड एंड अनकॉन्शस माइंड। चेतन मन और अचेतन मन। तीसरी बात उन्हें नहीं पता– भारत के ऋषियों ने खोजी है– परम चैतन्यता सुपरकॉन्शस माइंड। ओंकार के भाव में डूबकर उस अतिचेतन में जाना है... महाचेतन में जाना है, अचेतन में नहीं। महेश योगी के भावातीत ज्ञान के संबंध में बोलते हुए ओशो ने समझाया है–

ओम् को दोहराओ और इस पर ध्यान करो।

पतंजलि इतने वैज्ञानिक ढंग से अवस्थित हैं कि वे एक भी आवश्यक शब्द नहीं छोड़ेंगे, और न ही वे कोई अतिरिक्त शब्द प्रयुक्त करेंगे। 'दोहराओ और ध्यान करो'– जब कभी वे कहते हैं, 'ओम् को दोहराओ', वे सदा जोड़ देते हैं 'ध्यान करो'। भेद को समझ लेना है। 'दोहराओ और ध्यान करो ओम् पर।'

ओम् को दोहराना और उसपर ध्यान करना समस्त बाधाओं का विलीनीकरण

और एक नवचेतना का जागरण लाता है। यदि तुम दोहराओ और ध्यान न करो, तो वह हो जाएगा महर्षि महेश योगी का भावातीत ध्यान, ट्रॉसैंडेंटल मैडिटेशन– टी. एम.। यदि तुम दोहराते हो और ध्यान नहीं करते, तो यह बात एक हिप्नॉटिक चाल हो जाती है। तब तुम्हें नींद आ जाती है। यह अच्छा है, क्योंकि निद्रा में उतर जाना सुंदर होता है। यह बात स्वस्थ है। तुम अधिक शांत होकर निकलोगे इसमें से। तुम कहीं अधिक स्वस्थ अनुभव करोगे... अधिक ऊर्जा, अधिक जोश अनुभव करोगे, लेकिन यह ध्यान नहीं।

दोहराओ और ध्यान करो। दोहराओ ओम्, ओम्, ओम्... और इस दोहराव से अलग खड़े रहो। 'ओम्, ओम्, ओम्'– यह ध्वनि तुम्हारे चारों ओर है और तुम सचेत हो, ध्यान दे रहे हो, साक्षी बने हुए हो। यह ध्यान करना होता है। ध्वनि को अपने भीतर निर्मित कर लो और फिर भी शिखर पर खड़े द्रष्टा बने रहो। घाटी में ध्वनि सरक रही है–'ओम्, ओम्, ओम्'– और तुम ऊपर खड़े हुए हो, देख रहे हो, साक्षी बने हुए हो। यदि तुम साक्षी नहीं होते हो, तो तुम सो जाओगे। यह सम्मोहक निद्रा होगी। और पश्चिम में भावातीत ध्यान (टी एम) लोगों को आकर्षित कर रहा है, क्योंकि उन्होंने ठीक से सोने की क्षमता गंवा दी है...और भावातीत ध्यान उन्हें सुला देता है।

पश्चिम में अनिद्रा की बीमारी फैल गई है और इसलिए टी एम का इतना प्रभाव है। लेकिन वह कोई ध्यान नहीं है। वह एक प्रकार की सम्मोहन योगनिद्रा है। जाना है परमचेतन में... अचेतन में नहीं, लोग तो पहले ही अचेतन में जी रहे हैं।

मैंने सुना है सरदार विचित्तर सिंह से किसी ने पूछा कि भाई साहब आपकी घड़ी में क्या समय हुआ है... विचित्तर सिंह बोले– साढ़े ग्यारह। उसने पूछा– क्या आपकी घड़ी रेडियो से मिली है? विचित्तर सिंह ने कहा कि नहीं, ये घड़ी मुझे ससुराल से मिली है। लोग वैसे ही अचेतन में जी रहे हैं। कुछ का कुछ सुनते हैं। पुलिस इंस्पैक्टर ने सिपाही को डांटते हुए कहा कि तुम ड्यूटी पर थे और रात को खटर–पटर हो रही थी। तुम्हें पता था कि चोर घर के अंदर घुसे हैं। फिर तुमने उन्हें जाकर पकड़ा क्यों नहीं? सिपाही ने कहा– हुजूर, मैंने कोशिश की थी, किन्तु जिस घर में चोर घुसा था उसके दरवाजे पर ही लिखा हुआ था कि बिना अनुमति के प्रवेश करना सख्त मना है।

हम ऐसे ही अचेतन में जी रहे हैं... जाना है सुपरकॉन्शासनैस में। शिवसूत्र नामक प्रवचनमाला में ओशो ने इसकी पूरी विधि समझायी है। पहले कंठ से उच्चार शुरू करो... शरीर से कहो ओम, ओम, ओम... अच्छा हो किसी मंदिर में किसी गुंबद के नीचे इस उच्चार को करें, ध्वनि की तरंगें वापिस लौट–लौट के तुम पर गिरेंगी। दस मिनट करने के बाद फिर स्थिर शांत होकर बैठ जाना। रीढ़ और गर्दन सीधी रख के अधखुली आँखें रखके और मन ही मन ओम का जाप करना। पहले गुंबद से टकरा के

तरंगें तुम्हारे शरीर पर गिर रही थीं; अब तुम्हारा शरीर मंदिर बन जाए... भीतर मन के द्वारा उच्चारित ध्वनि शरीर की दीवारों से टकरा के मन पे वापिस गिरे... बड़ा गहरा स्नान हो जाएगा।

परंतु याद रखना! यह अभी नकली ओम है। असली ओम नहीं है। तब और भीतर जाना... भाव के तल पर, मन से भी गहरा तुम्हारा हृदय है। वहाँ केवल ओम की भावना में डूबना। अब ओम, ओम, ओम... ऐसा मन भी न कहे, बस ओम का भाव ही रह जाए 'तत् जपः तदर्थ भावनम' केवल उसके भाव में डूबना और पाँच मिनट के बाद इसे भी छोड़ देना। अब केवल साक्षी हो जाना। सुनना... क्या कोई ध्वनि सुनाई पड़ रही है...?

और तुम आश्चर्यचकित होओगे जब तुम्हें पहली बार ब्रह्म का नाद सुनाई पड़ेगा। 'तस्य वाचकः प्रणवः।' पतंजलि का यह सूत्र समझ में आएगा कि ओंकार की ध्वनि इस अस्तित्व की ध्वनि है जो सर्वत्र गूँज रही है। भीतर भी... बाहर भी... तब तुम आह्लादित हो जाओगे, नाच उठोगे, झूम उठोगे... तुम्हारे जीवन में आनंद का अवतरण होगा।

ये है ध्यान की पूरी विधि! पहले शरीर से उच्चारण, फिर मन से, फिर उसके भाव में डूबना और अंततः केवल साक्षी होकर सुपरकॉन्शासनैस की स्टेट में ओंकार को सुनना। ओंकार में तल्लीनता आती है अगले स्टैप में.. सुरति समाधि में! एक बार ओंकार को तुमने जान लिया, यह गोविंद का नाम जान लिया; फिर उसमें डूबना, उसमें तल्लीन हो जाना और अंततः उसमें विलीन हो जाना... खो जाना। उपनिषद के ऋषि कहते हैं– ब्रह्म को जाननेवाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है। एक दिन वह अभूतपूर्व घटना घटती है...। तुम ओंकार को जानते–जानते एक दिन ओंकार ही हो जाओगे।

कठोपनिषद की वह कहानी, यमराज और नचिकेता की कहानी तो तुमने सुनी होगी। बचपन में हम सभी ने सुनी है। नचिकेता छोटा बालक! उसका पिता बूढ़ी गायों को दान दे रहा था। नचिकेता ने कहा– इनको दान क्यों दे रहे हैं? पिता ने गुस्से में आकर कहा– मैं अपना सर्वस्व दान दे रहा हूँ। नचिकेता ने कहा– मैं भी तो आप का ही हूँ। क्या आप मुझे भी दान में दे दोगे? गुस्से में बाप ने कहा– जी हाँ, जा तुझे यमराज को दान देता हूँ।

मृत्यु के देवता के पास पहुँच गया नचिकेता– यम के द्वार पर तीन दिन भूखा–प्यासा बैठा इंतज़ार कर रहा था। यम की पत्नी ने कहा कि बेटा कुछ खा ले, पी ले। उसने कहा, नहीं। मैं जिस काम के लिया आया हूँ वो काम तो पहले हो जाए। तीन दिन बाद यमराज कहीं बाहर से लौटे। इस छोटे बच्चे की लगनशीलता को देखकर बहुत

प्रभावित एवं प्रसन्न हुए और कहा की मैं खुश हूँ– बोल! तुझे क्या वरदान चाहिए? सारी दुनिया का साम्राज्य चाहिए तो वो भी दे दूंगा। नचिकेता ने पूछा– क्या उसे पाकर मेरी जीवन में तृप्ति हो जाएगी? यम झूठ न बोल सके। उन्होंने कहा, नहीं बेटा, तृप्ति तो नहीं होगी; बल्कि और मुसीबत हो जाएगी। सारी दुनिया की मुसीबतें तेरी मुसीबतें हो जाएंगी। तुझको ही सुलझाना पड़ेगा। नचिकेता ने कहा आप मुझे वरदान दे रहे हैं की अभिशाप? यम ने कहा कि तू लंबी उम्र मांग ले। हजारों साल जीना, दस हजार साल, एक लाख साल... जितना तू चाहे उतना जीना...।

नचिकेता ने पूछा– क्या फिर मेरी कभी मृत्यु न होगी? यम ने कहा, मृत्यु तो होगी, मरना तो पड़ेगा। नचिकेता ने कहा, फिर इसका फायदा क्या? यम ने कहा, फायदा तो कुछ नहीं, जो कष्ट तुम 70, 80 साल भोगते वो दस लाख साल भोगने पड़ेंगे। नचिकेता ने कहा, फिर मुझे वही दो, जो वास्तव में देने योग्य है। यह कहानी आपने भी सुनी होगी। मैं आपसे पूछता हूँ, क्या आपको स्मरण है कि यमराज ने फिर क्या दान दिया? शायद ही किसी को याद हो! हमारा मन बड़ा ही अजीब है। गौण कहानी याद रह जाती है और मुख्य बिंदु हम भूल जाते हैं। यमराज ने नचिकेता से कहा, फिर सुन! तुझे असली बात बताता हूँ जिसे पाकर जीवन में परम संतोष, परम आनंद घटित होता है। जीवन में तृप्ति और परितोष घटित होता है। जिसे पाने के लिये ऋषि–मुनि तपस्या करते हैं, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करते हैं, वेद जिसका बारंबार गुणगान करते हैं, उस परम गोपनीय रहस्य को तुझे एक शब्द में कहता हूँ, एक अक्षर में कहता हूँ। वह अक्षर है ओम्। इसको जानकर, इसके भाव में डूबकर व्यक्ति ओंकार स्वरूप ही हो जाता है और तब उसकी सारी कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं– इसी में है परमानंद।

कठोपनिषद की इस कथा का पूर्वार्द्ध तो आपको पता होगा, शायद उत्तरार्द्ध भूल गए होंगे। असली काम की बात भूल गए। सच तो यह है कि न कोई नचिकेता हुआ न कोई यमराज। यह कहानी तो सिर्फ ये बताने के लिए है कि ओम का ज्ञान सारी पृथ्वी के साम्राज्य पाने से बढ़कर है... ओम में डुबकी लाखों साल की उम्र से ज़्यादा मूल्यवान है... हमारा मन बड़ा विचित्र है! कहानी किस्सा याद रह जाता है, असली महत्त्वपूर्ण बात हम भूल जाते हैं।

प्यारे मित्रो! आप सबसे निवेदन करता हूँ, पतंजलि के ये योग सूत्र सुनते हुए असली बात को भूल न जाना 'तस्य वाचकः प्रणवः।' 'तत् जपः तदर्थ भावनम।' उस ईश्वर का बोधक, प्रणव की ध्वनि है और उसे पाने के लिए उसके अर्थ के भाव में डूबो।

धन्यवाद। जय ओशो।।

ओंकार सुमिरन की महत्ता

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।। 29 ।।

ततः प्रत्यक्चेतना अधिगमः अपि अन्तराय अभावः च

ओंकार के सुमिरन से, शीघ्र समाधि फलती है।
बाधाएं मिट जातीं सब, महाचेतना जगती है।

आज के सूत्र में पतंजलि समाधि की विधि बताते हैं। ओंकार के सुमिरन से शीघ्र समाधि फलती है, बाधाएं मिट जाती हैं सब, महाचेतना जगती है। ओंकार का स्मरणमात्र समाधि में ले जाने वाला है।

मुझे याद आता है आत्मपूजा उपनिषद का प्रथम वचन। यह उपनिषद बड़ा अद्भुत है। सारे उपनिषदों में सबसे छोटा! कुल सत्रह पंक्तियां हैं। सैवंटिन लाइंस ओनलि। धर्म का सारा सारसूत्र इन सत्रह पंक्तियों में समाया हुआ है। जानते हैं आत्मपूजा उपनिषद की पहली पंक्ति क्या है? पहली पंक्ति है– वह ओम है, उसका स्मरण ध्यान है। परमात्मा शब्द का भी प्रयोग नहीं करते! बस कहते हैं...वह। दैट इज़ ओम एंड टु रिमैंबर इट इज़ मैडिटेशन।

ठीक वही बात पतंजलि कह रहे हैं– ओंकार के दोहराने से, ओंकार पर ध्यान करने से समाधि फलती है... नवचेतना का, महाचेतना का जागरण होता है। याद रखना! सिर्फ़ दोहराने से नहीं, दोहराने और ध्यान करने से। सामान्यतः हमारा ध्यान बहिर्मुखी है। बाहर के जगत की वस्तुओं की तरफ़ है। नब्बे प्रतिशत हमारी चेतना बहिर्मुखी एक्सट्रोवर्ट कॉन्शसनैस है, नौ प्रतिशत हमारे शरीर, मन और भाव की तरफ़ उन्मुख है और केवल एक प्रतिशत अपनी आत्मा की तरफ़, अपनी चेतना की तरफ़ उन्मुख है। इस स्थिति को पलटना होगा।

हमारे ज्ञान का विषय जितना स्थूल हो, हम भी उतने ही स्थूल हो जाते हैं। हमारी चेतना का विषय जितना सूक्ष्म हो, चेतना भी उतनी ही प्रगाढ़ और सूक्ष्म हो जाती है। यदि समाधि को यानी सुपरकांशसनैस को जन्म देना है तो हमें अपनी चेतना ऐसे विषय पर लगानी होगी जो स्वयं ही अतिसूक्ष्म है। ओंकार की ध्वनि से ज़्यादा सूक्ष्म और कुछ भी नहीं। ध्वनिरहित ध्वनि द साउंडलैस साउंड है... वह शून्य का संगीत। वास्तव में उसमें कोई आवाज़ नहीं है। वह आवाज़विहीन आवाज़ है। इतने सूक्ष्म विषय पर जब हम

ध्यान करेंगे, तो हमारी चेतना भी उतनी ही विराट और सूक्ष्म, पैनी पैनिट्रेटिंग होती चली जाएगी। इसलिए ओंकार का ध्यान सर्वाधिक सूक्ष्म ध्यानों में से एक है। मूर्ति पर ध्यान करने से यह बात न बनेगी, शास्त्रों का अध्ययन करने से, विचारों और सिद्धांतो पर ध्यान देने से बात न बनेगी; यहाँ तक की भक्तिभाव से भी बात न बनेगी। भाव से भी ज़्यादा सूक्ष्म है– ओंकार की ध्वनि। यहाँ कर्त्ताभाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है। हम कुछ करते नहीं; सिर्फ़ सुनते हैं। यह सुनना कोई क्रिया नहीं है; सुनना निष्क्रिय, यानी अक्रिय अवस्था में होता है। हम कुछ भी न करें तो भी हमें सुनाई पड़ता है। यहाँ तक की रात गहरी नींद में भी हमें सुनाई पड़ता है। आप सब लोग यहाँ सो रहे हो और मैं किसी एक व्यक्ति का नाम लेकर आवाज़ लगाऊँ, तो वह व्यक्ति उठकर बैठ जाएगा। वह कहेगा कि क्यों मुझे उठाया? क्या बात है? इसका अर्थ यह हुआ कि उस व्यक्ति को नींद में भी सुनाई पड़ रहा था। सुनने के लिए सक्रियता की ज़रूरत नहीं है। अन्य सभी साधना की विधियों में सक्रियता चाहिए। सक्रियता से अहंकार– अहंकार अर्थात कर्त्ताभाव– उत्पन्न होता है और अहंकार के आते ही सारी बाधाएं आ जाती हैं।

पतंजलि कहते हैं– यदि बाधाओं का विलीनीकरण करना है, तो ओंकार में डूबो, पूर्णतः निष्क्रिय साक्षीभाव में रमो और ओम की ध्वनि को सुनो। इस बात को खूब अच्छे से समझ लेना कि सारी बाधाओं की जड़ अहंकार है और अहंकार उत्पन्न होता है मूर्छा में... हमारी अचेतन अवस्था में।

मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन शराबखाने पहुंचा। एक बड़ा–सा ओवरकोट पहने हुए था। एक विचित्र काम उसने किया। एक बोतल शराब मंगाई... आधी बोतल स्वयं पी गया और आधी बोतल अपनी ओवरकोट की जेब में डाल दी। फिर दूसरी बोतल मंगाई... तीसरी, चौथी, पाँचवीं... पाँच बोतलें शराब की, आधी खुद ने पी और आधी–आधी बोतल अपनी ओवरकोट की पॉकेट में डालता गया। लोग देखकर हैरान कि क्या कर रहा है? जब पाँच बोतल पूरी उसने पी लीं तब अचानक उठकर खड़ा हुआ। दुबला–पतला मरियल–सा नसरुद्दीन और छाती फुला के बोला कि है कोई माई का लाल! उठा के पटक दूंगा, कोई भी मेरे सामने आया तो, आज हो जाएं दो–दो हाथ, बड़े से बड़े पहलवान को चुनौती देता हूँ। और तभी उसकी जेब में से एक चूहा बाहर निकला और उसने भी चुनौती दे डाली कि कोई मरी सड़ी गली बिल्ली आ जाए, उसको भी मज़ा चखा दूंगा।

मूर्छित आदमी अहंकारग्रस्त हो जाता है। आदमी ही क्यों... ओवरकोट की पॉकेट में नसरुद्दीन जिस चूहे को लेकर आया था, वो भी बिल्ली को चुनौती देने लगा। जितनी ज़्यादा मूर्छा उतना घना अहंकार। फिर इस अहंकार से ही पैदा होते हैं... काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सर इत्यादि। ये सब अहंकार की ही संतान हैं। अतः

जड़ है अहंकार! बाक़ी सारी बाधाएं उसी की शाखाएं प्रशाखाएं हैं और इस जड़ को पानी कौन देता है? मूर्छा। जितना ज़्यादा जागरण होगा उतनी मूर्छा टूटेगी। मूर्छा टूटने से अहंकार नष्ट होगा और अहंकार नष्ट होने से सारी बाधाएं नष्ट होंगी। ओशो इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं–

दोहराओ और ध्यान करो। ओम् को दोहराना और ओम् पर ध्यान करना सारी बाधाओं का विलीनीकरण कर देता है और एक नई चेतना का जागरण होता है।

नवचेतना ही चौथी चेतना है– वह परम चेतना– तुरीय। लेकिन ध्यान रहे, मात्र दोहराना ठीक नहीं। दोहराना तो बस तुम्हें मदद देता है ध्यान करने में। दोहराव निर्मित करता है विषय को और सबसे अधिक सूक्ष्म विषय होता है ओम् की ध्वनि। और यदि तुम सबसे अधिक सूक्ष्म के प्रति जागरूक हो सकते हो, तो तुम्हारी जागरूकता भी सूक्ष्म हो जाती है।

जब तुम स्थूल वस्तु पर ध्यान देते रहते हो, तुम्हारी जागरूकता स्थूल होती है। जब तुम एक कामवासनायुक्त देह को देखते हो, तो तुम्हारी जागरूकता काम बन जाती है। जब तुम किसी ऐसी चीज़ को देखते हो, उसपर ध्यान देते हो जो लोभ की वस्तु होती है, तो तुम्हारी जागरूकता लोभ बन जाती है। जो कुछ तुम देखते रहते हो, तुम वही हो जाते हो। निरीक्षण करनेवाला निरीक्षित बन जाता है– इसे ख्याल में ले लेना।

कृष्णमूर्ति फिर–फिर जोर देते हैं कि निरीक्षण करनेवाला निरीक्षित बन जाता है। जिस पर तुम ध्यान देते हो तुम वही हो जाते हो। अतः यदि तुम ओम् की ध्वनि पर ध्यान करते हो, वह ध्वनि जो गहनतम ध्वनि है, जो परम संगीत है, जो अनाहत है, वह नाद जो अस्तित्व का ही स्वभाव है, यदि तुम इसके प्रति जागरूक हो जाते हो, तो तुम यही हो जाते हो– तुम परम नाद बन जाते हो। तब दोनों ही, विषय और विषयी मिलते हैं और घुल–मिल जाते हैं, एक हो जाते हैं। यह होती है परम चेतना जहां विषय और विषयी विलीन हो चुके होते हैं; जहां ज्ञाता और ज्ञेय नहीं रहे। केवल एक बना रहता है, विषयी और विषय किसी सेतु से बंध गए हैं। यह एकात्मता योग है।

यह शब्द 'योग' आया है 'युज' धातु से। इसका अर्थ है मिलना, एक साथ जुड़ना। ऐसा घटता है जब विषयी और विषय–वस्तु एक साथ आ जुड़ते हैं। अंग्रेजी शब्द 'योक' भी आता है 'युज' से; उसी मूल धातु से जहां से योग आया। जब विषयी और विषय–वस्तु साथ जुड़ जाते हैं, एक साथ सी दिए जाते हैं, जिससे कि वे फिर अलग नहीं रहते, बंध जाते हैं, अंतराल मिट जाता है। तुम परम चेतना को उपलब्ध होते हो।

यही अर्थ है पतंजलि का जब वे कहते हैं, 'ओम् को दोहराना और ओम् पर ध्यान करना सारी बाधाओं का विलीनीकरण ले आता है और एक नई चेतना का जागरण होता है।'

महाचेतना जग सकती है और बहुत ही सरल विधि से– ओंकार के श्रवण से। काश हम थोड़ी देर के लिए बाहर की आवाजें सुनना बंद कर दें, बाहर के दृश्य देखना बंद कर दें, बाहर की गंध और स्वाद से विमुख हो जाएं... अपनी अंतरात्मा की तरफ़ उन्मुख हो जाएं।

मैंने सुना है मिलिट्री में भर्ती होने के लिए आए एक युवक से ऑफिसर ने पूछा कि मान लो तुम्हारे एक कान में दुश्मन की गोली लग जाए और तुम्हारा कान टूट जाए। तो क्या होगा। उस युवक ने कहा कि मुझे सुनाई पड़ना बंद हो जाएगा। ऑफिसर ने दूसरा सवाल पूछा कि मान लो तुम्हारे दोनों कान कट जाएं। तब क्या होगा? वह युवक बोला मुझे दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा। ऑफिसर ने कहा– मैं तुम्हारी बात समझा नहीं कि कान के कट जाने से दिखाई पड़ना कैसे बंद होगा? उस युवक ने कहा, सर! आपको क्या सीधी–सी बात दिखाई नहीं पड़ती, अगर मेरे दोनों कान कट जाएंगे, तो मेरा चश्मा गिर जाएगा। कानों पर ही तो चश्मा टिका है। देखूंगा कैसे?

काश हम थोड़ी देर के लिए बाहर के जगत को देखना और सुनना बंद कर दें, अपनी इंद्रियों को हम अंतर्मुखी कर लें, तब हम भीतर के परम नाद में डूब जाते हैं। भीतर अत्यंत सूक्ष्म आलोक प्रकट होता है। भीतर एक दिव्य सुगंध है, और दिव्य स्वाद है, भीतर अनाहत संगीत है, अत्यंत सूक्ष्म... क़रीब–क़रीब नहीं के बराबर... उनका होना नहीं होने जैसा है। उस अत्यंत सूक्ष्म... अतिसूक्ष्म के प्रति जागरूक होना हमारी चेतना को महाचेतना बना देता है, दिव्य चेतना बना देता है। इसलिए ओंकार की साधना का इतना अधिक महत्त्व है... इससे ज़्यादा सरल कोई और साधना नहीं हो सकती। यहाँ ओशोधारा में विशेष रूप से हम इसी पर ज़ोर देते हैं। ध्यान–समाधि के छह दिनों में परमात्मा के ओंकार स्वरूप से परिचय होता है और फिर उसके बाद सुरति समाधि के छह दिनों में पतंजलि के इसी सूत्र का हम व्यावहारिक प्रयोग करते हैं–

ओंकार के सुमिरन से शीघ्र समाधि फलती है।
बाधाएं मिट जातीं सब महाचेतना जगती है।

साधना की सारी बाधाएं समाप्त हो जाती हैं, सब व्यवधान तिरोहित हो जाते हैं; सिर्फ़ रह जाता है– ओंकार का नाद... ओर उसे जाननेवाला महाचैतन्य। अंततः वे दोनों भी एक ही हो जाते हैं। द ऑब्ज़र्वर बिकम्ज द ऑब्जर्व्ड. उस ब्रह्म के नाद को जाननेवाला स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है तब उठती है घोषणा–'अहं ब्रह्म अस्मि' की, अनलहक की। वही सहजयोग का लक्ष्य है और इसीलिए पतंजलि को मैं सहज योगी के रूप में यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधिपाद सूत्र–30

मार्ग में चार मुख्य बाधाएँ

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति भ्रांतिदर्शन
अलब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः

व्याधि स्त्यान संशय प्रमाद आलस्य अविरति भ्रांतिदर्शन अलब्ध–भूमिकत्व
अनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपाः ते अन्तरायाः।। 30 ।।

अकर्मण्यता, संशय, आलस, तृष्णा, प्रमाद, व्याधि;
दुर्बलता, चंचलता, भ्रम में, कैसे लगे समाधि?

आज के सूत्र में पतंजलि चर्चा करते हैं कि ध्यान में, समाधि में डूबने में कौन–कौन सी बाधाएं हैं और उन्हें कैसे दूर किया जाए?

सबसे पहली बाधा वे कहते हैं रोग। रोग क्यों पैदा होते हैं? हमारे भीतर जो हमारी बायोएनर्जी है, उसमें डिस्टरबंस पैदा होने से, हमारी जो जीव ऊर्जा है, वह वर्तुलाकार नहीं घूमती, कहीं उसमें व्यवधान पड़ गया, बाधाएं आ गईं, ब्लॉक्स पैदा हो गए; उससे बीमारी उत्पन्न होती है। जब शरीर रुग्ण हो, बीमार हो, तो चेतना देह–केंद्रित हो जाती है, स्व–केंद्रित नहीं हो पाती, समाधि में नहीं डूब पाती। आज से क़रीब पाँच हज़ार साल पहले चीन में एक्युपंक्चर का विज्ञान खोजा गया था। भारत में चक्रों का विज्ञान योगियों ने खोजा था। यदि इन एक्युपंक्चर के बिंदुओं से और सातों चक्रों से हमारी जीवन ऊर्जा ठीक ढंग से प्रवाहित हो, तो रोग दूर हो जाते हैं। ओम के जाप द्वारा यह किया जा सकता है। ओम की ध्वनि तरंगें ऊर्जा के प्रवाह में सहयोग पहुंचाती हैं। सुनो! ओशो किस प्रकार समझाते हैं–

पतंजलि कहते हैं कि ओम् का दोहराया जाना और उस पर ध्यान किया जाना सारी बाधाओं को समाप्त कर देता है। बाधाएं कौन–सी हैं? अब वे प्रत्येक बाधा की व्याख्या करते हैं और बताते हैं कि कैसे वे समाप्त की जा सकती हैं। ओम के नाद को दोहराने के द्वारा और उसपर ध्यान करके। हमें उसपर विचार करना होगा।

'रोग, निर्जीवता, संदेह, प्रमाद, आलस्य, विषयासक्ति, भ्रांति, दुर्बलता और अस्थिरता हैं वे बाधाएं, जो मन में विक्षेप लाती हैं।'

प्रत्येक पर विचार करो– पहले है, रोग। पतंजलि के लिए रोग का अर्थ है

आंतरिक जीव–ऊर्जा का गैर–लयात्मक ढंग।

ओम की ध्वनि तरंगों से, भीतर के सूक्ष्म संगीत से हमारे भीतर की बायोएनर्जी एक रिदम में, एक लय में आ जाती है। सबकुछ लयपूर्ण, संगीतपूर्ण हो जाता है और तब रोग से मुक्ति मिलना आसान हो जाता है।

दूसरी बाधा पतंजलि कहते हैं निर्जीवता, निर्जीवता का अर्थ है ऊर्जाहीनता। हम ऐसे जी रहे हैं... बिलकुल दिवालिया होकर। भोजन से ऊर्जा प्राप्त करते हैं, नींद में ऊर्जा का संरक्षण करते हैं, और दिनभर के काम–धाम, आपा–धापी, मन की भाग–दौड़ में, वासनाओं में अपनी ऊर्जा को नष्ट कर देते हैं। कामवासना हमारी ऊर्जा को नष्ट करने का सबसे बड़ा मार्ग है। दिनभर भोजन से ऊर्जा प्राप्त की, व्यायाम से जगाई और रोज़ वासना में नष्ट कर दी। हम एक प्रकार से निर्जीव के निर्जीव ही रह जाते हैं। वह जीवंतता, वह प्राणशक्ति जो भीतर पैदा होनी चाहिए, इकट्ठी, संरक्षित होनी चाहिए वह नष्ट हुई जा रही है। समाधि के लिए, अंतर्यात्रा के लिए शक्ति की ज़रूरत है, पर हम बिल्कुल शक्तिहीन और दिवालिया हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में, उसकी मृत्यु की घड़ी आ गई थी, बहुत वृद्ध हो गया था। उसने गांव के सारे लोगों को बुला लिया। गांव के सारे पंच और सरपंच मौजूद हैं और नसरुद्दीन ने कहा कि मेरा अंतिम समय आ गया है, मेरी वसीयत लिखो। मेरी संपत्ति का आधा हिस्सा मेरी पत्नी के नाम कर दिया जाए। संपत्ति का चौथा हिस्सा मेरे बेटे को दे दिया जाए। इतना हिस्सा लड़की को, इतना हिस्सा दामाद को, घर के नौकर को भी उसने कुछ हिस्सा दिया। अंत में उसने कहा कि शेष जो बचा वो गांव की मस्जिद में दान दे दिया जाए। सरपंच ने पूछा, नसरुद्दीन! ये तो बताओ तुम्हारे पास कितनी संपत्ति है? नसरुद्दीन ने कहा, क्षमा करें, है तो मेरे पास कुछ भी नहीं, कहीं लोग मज़ाक़ न उड़ायें कि बिना वसीयत लिखाए मर गया, अतः नियमानुसार वसीयत लिखवा रहा हूँ।

नसरुद्दीन व्यंग्य कस रहा है हम सबके ऊपर, क्योंकि हम सबकी हालत यही है। हमारे पास बचता कुछ भी नहीं। सुबह से लेकर शाम तक, रात सोने के समय तक हम इतने थके–मांदे हो चुके होते हैं कि कोई ऊर्जा ही नहीं होती, निर्जीवता हमें घेर लेती है। हम गहन नींद में घिर जाते हैं। समाधि की यात्रा जिसे करनी है, जिसे चेतना के गौरीशंकर पर चढ़ना है, उसे तो अत्यंत प्राणवान, ऊर्जावान होना होगा। ओम् की ध्वनि भीतर जीवन ऊर्जा को चलाती है। ओशो कहते हैं–

शिथिलता, निर्जीवता– सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है– लेकिन यह तिरोहित हो जाती है ओम् के जप द्वारा। ओम् तुम्हारे भीतर निर्मित करता है शिवलिंग को,

अंडाकार ऊर्जा–वृत्त को। अब तुम्हारा बोध सूक्ष्म हो जाता है। तुम इसे देख भी सकते हो। यदि कुछ मास तक ओम् का जप करते हो, ध्यान करते हो, तो तुम इसे अपने भीतर देख पाओगे। तुम्हारी देह तिरोहित हो चुकी होगी, वहां होगी मात्र प्राण–ऊर्जा ही, वह विद्युत घटना ही। और वह आकार होगा शिवलिंग का आकार।

भीतर वर्तुलाकार, अण्डाकार या कह लें कि शिवलिंग के आकार की सिर्फ़ एक विद्युत ऊर्जा रह जाती है। ओम के जाप से भीतर यह जो वर्तुलाकार सर्कल बन जाता है उसके बाहर ऊर्जा का व्यय नहीं होता। सामान्यतः हमारा यह सर्कल टूटा हुआ है और टूटे हुए सर्किट से ऊर्जा का प्रवाह बाहर होता जाता है, क्षरण होता रहता है और हम निर्जीव होते चले जाते हैं।

तीसरी डिस्ट्रैक्शन पतंजलि कहते हैं संशय, संशय का अर्थ सिर्फ़ डाउट ही नहीं होता; संशय का अर्थ होता है अनिर्णय। शंका यानी डाउट, संशय यानी अनिर्णय। इनडिसाइसिव माइंड यहाँ–वहाँ डोलता, मैं ये करूँ कि वो करूँ, कुछ तय ही नहीं कर पाता। ये कैसे दूर होगा ओंकार की ध्वनि से? सुनो, ओशो क्या कहते हैं–

'ओम्' – निनाद और ध्यान– कैसे देगा मदद? यह देता है मदद, क्योंकि एक बार तुम निस्तरंग, मौन हो जाते हो, तो निर्णय लेना ज़्यादा आसान हो जाता है। तब तुम एक भीड़ न रहे, अब कोई अव्यवस्था न रही। पहले की तरह बहुत–सी आवाजें इकट्ठी नहीं बोलतीं कि तुम अपनी आवाज पहचान ही न सको। ओम् का जप करते हुए, उसपर ध्यान करते हुए– आवाजें शांत, मौन हो जाती हैं। अब तुम समझ सकते हो कि सारी आवाजें तुम्हारी नहीं हैं। तुम्हारी माँ बोल रही होती है, तुम्हारे पिता बोल रहे होते हैं, तुम्हारे भाई, तुम्हारे शिक्षक बोल रहे होते हैं। आवाजें तुम्हारी नहीं हैं, उन्हें तुम आसानी से अलग कर सकते हो क्योंकि उन्हें मनायोग से संभालने की ज़रूरत नहीं होती है।

जब ओम् के जप तले तुम शांत हो जाते हो, तो तुम आश्रय पा जाते हो; शांत, मौन, एकजुट हो जाते हो। उस एकजुटता में तुम देख सकते हो कि कौन–सी वास्तविक आवाज है जो तुममें से आ रही है, जो कि प्रामाणिक है।

ओम की ध्वनि के द्वारा भीतर के सारे शोरगुल बंद हो जाते हैं। वो जो बहुत–सी आवाजें चित्त को यहाँ–वहाँ खींच रही हैं, बंद हो जाती हैं। सिर्फ़ एक ही आवाज़ रह जाती है– ईश्वर का स्वर– तब भीतर निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न होती है। भीतर एक संकल्प उत्पन्न होता है।

चौथा ऑब्स्टकल पतंजलि कहते हैं प्रमाद, प्रमाद का अर्थ है केयरलैसनैस संवेदनशून्यता। जो व्यक्ति ओंकार के प्रति जागता है, इतनी सूक्ष्म ध्वनि के प्रति... उसके भीतर गहन जागरूकता और गहन संवेदनशीलता उत्पन्न हो जाती है। फिर वह

प्रमाद में नहीं रह सकता। अप्रमाद उत्पन्न होता है... गहन जागरण घटित होता है।

अगला बिंदु है आलस्य। जीवन में आलस्य क्यों पैदा होता है? क्योंकि जब कोई व्यक्ति देखता है कि वह बारंबार अपने कर्मों में असफल हो रहा है, धीरे-धीरे वह आलसी और तामसी हो जाता है। जब साधक ओंकार की ध्वनि सुनने लगता है... पहली बार... उसे पता चलता है कि मैं सफल हुआ। मैंने अपने भीतर एक सफलता हासिल की। और तब बड़ी ऊर्जा उत्पन्न होती है और आलस्य नष्ट होता है। आलस्य सदा असफलता का परिणाम है। आलस्य यही बता रहा है कि यह व्यक्ति कई बार अपनी ज़िंदगी में असफल हो चुका है। अब इसने नए अभियान पर जाना ही छोड़ दिया। हाथ पर हाथ धरे बैठा है। ओंकार की ध्वनि सुनते ही नया उत्साह उत्पन्न होता है। एक आंतरिक सफलता का एहसास होता है।

अगला बिंदु है विषयासक्ति या बहिर्मुखता। क्यों हम विषयों से आसक्त है? क्यों हम इतने बहिर्मुखी हैं? यह एक्सट्रोवर्ट कांशसनैस इसलिए पैदा होती है कि हमें अपने भीतर का कुछ भी पता नहीं। काश हमें अपने भीतर ओंकार की ध्वनि में रस लग जाए! परमात्मा से प्रीत उमड़ आए! फिर सांसारिक विषयों से हमारा रस अपने आप ही ख़तम हो जाएगा। इस प्रकार ओंकार में डूबना विषयासक्ति को घटाता है। जैसे-जैसे समाधि की गहराई बढ़ती है, संसार के विषय हमारे लिए फीके पड़ने लगते हैं। अपने भीतर ही इतना रस और आनंद झरने लगा... कौन बाहर के विषयों और उनकी वासनाओं में पड़ेगा?

अगला बिंदु पतंजलि कहते हैं भ्रांति। भ्रम की अवस्था। डिलूज़न की अवस्था जहाँ हमें समझ नहीं आता कि क्या सत्य है, क्या झूठ है? और इसका कारण है कि अभी हमने परम सत्य को नहीं जाना। हम सपनों में जी रहे हैं और सपनों में कैसे तय हो सकता है कि क्या सच है और क्या झूठ? वहाँ तो सभी कुछ झूठ है। उपनिषद का एक वचन आपने सुना होगा हरि ओम तत्सत्- हरि यानी ईश्वर, ओम यानी वह ध्वनि रहित ध्वनि और तत् सत् यानी यही है परम सत्य। हरि ओम तत्सत् का अर्थ है ओंकार की ध्वनि ही ईश्वर है। यही परम सत्य है। जिसने अपने भीतर सत्य को जाना, उसके स्वप्न विलीन हुए, वह माया से छूटा। उसके भ्रम और भ्रांतियां नष्ट हुए। सत्य को जानने से असत्य समाप्त होता है।

अगला बिंदु है दुर्बलता। हमारे भीतर साहस की कमी है, शक्ति की कमी है, कुछ करने की हिम्मत नहीं है...।

मैंने सुना है नसरुद्दीन के घर में कुछ डाकू घुस आए। उन्होंने बहुत मारपीट की नसरुद्दीन के साथ और उसके हाथ-पैर बांधकर एक कमरे में खड़ा कर दिया। उसके

चारों तरफ़ चाक से एक गोल लाइन खींच दी। एक गोल घेरा। और कहा कि ख़बरदार जो तुमने इस घेरे के बाहर क़दम रखा, तो तुम्हारी हत्या कर दी जाएगी। फिर वे डाकू पूरे घर में फैल गए। वे जगह–जगह पड़ा सारा सामान, जेवर, धन–संपत्ति सब लूटने लगे। नसरुद्दीन की पत्नी को पकड़कर दूसरे कमरे में ले गए बलात्कार करने के लिए। कोई एक घंटे बाद नसरुद्दीन की पत्नी रोती–धोती आई... डाकू सब सामान उठाके ले गए थे। फटे हुए उसके कपड़े, ख़ून बहता हुआ... नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा कि कायर! तुम यहाँ चुपचाप खड़े रहे और वे लोग मेरे साथ क्या–क्या कर रहे थे; वो घर का एक–एक सामान उठाकर ले गए। नसरुद्दीन ने कहा, ख़बरदार, जो मुझे कायर कहा! जानती हो मैंने क्या किया! मैंने उनकी आज्ञा के ख़िलाफ चार बार इस चाक के घेरे के बाहर क़दम रखा!

नसरुद्दीन बड़ा साहस दिखा रहे हैं अपना। हम भी कभी–कभी साहस करते हैं। चाक के घेरे के बाहर क़दम रखते हैं, फिर जल्दी से भीतर कर लेते हैं...क्यों? दुर्बलता, शक्ति की कमी, साहस की कमी के कारण। ओंकार की ध्वनि में डूबने से बड़ी शक्ति पैदा होती है। आपने एक शब्द सुना होगा– ऑम्निपोटैंट। क्रिश्चंस परमात्मा के लिए तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं– ऑम्निप्रैजंट, ऑम्निपोटंट और ऑम्निशंट। ऑम्निपोटंट का अर्थ है वह जो ओम की तरह शक्तिशाली है, सर्वशक्तिमान। जो ओंकार में डूबा, वह सर्वशक्तिमान से जुड़ा, उसकी दुर्बलता नष्ट हो जाती है।

अंतिम बाधा पतंजलि कहते हैं अस्थिरता, चंचलता। मन यहाँ–वहाँ विभिन्न दिशाओं में भाग रहा है। इस चंचलता से कैसे मुक्ति मिलेगी? चंचलता से मुक्ति तभी मिलेगी जब एक के प्रति हमारा लगाव उत्पन्न हो। जो व्यक्ति उस एक ओंकार सतनाम में डूब गया, उसकी सारी चंचलता नष्ट हुई, उसके भीतर एकाग्रता उत्पन्न हुई। ये हैं बाधाएं... और पतंजलि के अनुसार सिर्फ़ ओंकार में डूबने से... ये सारी बाधाएं विलीन हो जाती हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–31

बाधाओं को दूर कैसे करें

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः।। 31 ।।

दुःख दौर्मनस्य अंगमेजयत्व श्वासप्रश्वासाः विक्षेपसहभुवः

मन में कोई क्षोभ हो, अथवा अंग–कंप की व्याधि।
दुख हो या सांसें असंतुलित, लगती नहीं समाधि।

पतंजलि अध्यात्म–जगत के वैज्ञानिक हैं। एक–एक बिंदु धीरे–धीरे आगे लेते हैं। आज के सूत्र में वे कहते हैं कि चार प्रकार के लक्षण हैं– उन लोगों के जो ध्यानस्थ नहीं हैं, जो साक्षीभाव को नहीं जानते, जो ओंकार में नहीं डूबते। पहला दुःख, दूसरा निराशा, तीसरा कंपन, और चौथा अराजक श्वास। इन चार लक्षणों को समझना।

याद रखना! ये बीमारी नहीं हैं। ये बीमारी के सिंपटम्स हैं, ये लक्षण हैं। जैसे डॉक्टर के पास कोई जाए और कहे कि मुझे भूख नहीं लगती, वजन घटता जा रहा है, शाम को बुखार आता है, दो महीने से खांसी चल रही है, तो डॉक्टर इन लक्षणों का इलाज नहीं करता। उसे सबसे पहले ख़्याल आता है कि ये लक्षण टीबी की बीमारी के हो सकते हैं, वो डायग्नोसिस करेगा और निश्चित होने पर टीबी की दवाई देगा। खांसी रोकने की दवाई नहीं देगा, बुखार उतारने की नहीं देगा, भूख बढ़ाने की नहीं देगा; वो दवाई देगा टीबी के कीटाणुओं को नष्ट करने की।

ठीक इसी प्रकार पतंजलि बड़े वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति हैं। वे कहते हैं– ये जो चार लक्षण हैं–दुःख, निराशा, कंपन अर्थात नरवसनैस और अनियमित श्वास–प्रश्वास यानी ऊबड़–खाबड़ श्वास का आना–जाना। गैर लयात्मक, गैर संगीतबद्ध... ये लक्षण इस बात के द्योतक हैं कि यह व्यक्ति स्वयं में स्थित नहीं है, यह व्यक्ति स्वस्थ नहीं है। हिंदी का यह शब्द 'स्वस्थ' बड़ा अद्भुत है। इसका अर्थ होता है, स्वयं में स्थित होना। वह जो साक्षीभाव में, ओंकार में स्थित हुआ; सच्चे अर्थों में वही स्वस्थ है।

सामान्यतः लोग सोचते हैं कि पहले दुःख दूर हो जाएं, फिर ध्यान करेंगे। कई लोग मेरे पास आते हैं। कहते हैं कि कितने दुःख हैं! निराशा है, पीड़ा है, जीवन में अभी कहाँ ध्यान की फ़ुर्सत! ये तो ऐसे ही है कि कोई बीमार व्यक्ति आकर डॉक्टर से कहे कि फिलहाल तो मुझे बड़ी खांसी आ रही है, भूख नहीं लगती, अभी कैसे दवाई करूँ?

थोड़ा ठीक हो जाऊँ, खांसी–वासी बंद हो जाए, बुखार उतर जाए; फिर आपसे इलाज करवाऊँगा। यह तर्क ही ग़लत है।

दुःख व निराशा इस बात का प्रमाण है कि तुम गैर–ध्यान की अवस्था में जी रहे हो। लोग बड़े डिप्रेशन और निराशा में जी रहे हैं और विशेषकर आज इक्कीसवीं सदी में निराशा की बीमारी बड़ी तीव्र गति से बढ़ी है। उन्नत देशों में लोगों ने बाहरी जगत की सारी सुख–सुविधाएँ इकट्ठी कर लीं और भीतर मन बिल्कुल निराश हो गया। गरीब आदमी तो आशा में जीता था कि एक दिन धन कमा लूंगा, मकान बना लूंगा, बस बेटी की शादी हो जाए कि लड़के की नौकरी लग जाए... फिर बड़े सुख से रहूँगा। धनी आदमी बड़ी निराशा में पहुँच गया। बाहर जो जो सुंदर व्यवस्थाएं हो सकती थीं, उसने कर लीं और दुःख तो मिटा नहीं...बल्कि निराशा और घनी हो गई। ये दुःख और निराशा ध्यान से मिटेंगे, धन इकट्ठा करने से नहीं। बाहर के पद से नहीं, ऊँची कुर्सी पर पहुंचने से न मिटेंगे, ये दुःख और निराशा भीतर परमात्मा को जानने से, ओंकार में डूबने से मिटेंगे।

मैंने सुना है, नसरुद्दीन का विवाह होने वाला था। पुराने जमाने की घटना है। उस समय विवाह के पूर्व लड़की को देखा नहीं जाता था। न तो लड़केवालों ने लड़की को देखा था, न लड़कीवालों ने लड़के को। सगाई की रस्म होने को आई। नसरुद्दीन गया अपने ससुराल जहाँ उसकी होनेवाली पत्नी और उसकी आठ–दस सहेलियां सब सज–धजकर स्वागत के लिए तैयार खड़ी हैं। नसरुद्दीन के पिता को मज़ाक़ करने की सूझी। उसने अपने बेटे से पूछा कि बता इन आठ–दस कन्याओं में से वह लड़की कौन–सी है जिससे तेरा विवाह होने वाला है? नसरुद्दीन ने बिलकुल ठीक इशारा किया। उसने कहा कि इस लड़की से मेरी शादी होने वाली है। बाप भी थोड़ा हैरान हुआ! इसने कैसे पहचाना? नसरुद्दीन ने कहा कि पहचानना बहुत आसान है। उसे देखते ही अभी से मेरे हाथ–पैर कांप रहे हैं। निश्चित रूप से यही मेरी होनेवाली पत्नी होगी। अभी से मुझे डर लग रहा है। ये जो कंपन है, ये भीतर स्वयं मे स्थित न होने से उत्पन्न होता है।

एक निराशावादी के बारे में मैंने सुना है कि जीवन के नेगटिव पक्ष को, नकारात्मक पहलू को ही वह देखता था। एक दिन सुबह अपने एक मित्र के साथ बैठे–बैठे चाय–नाश्ता कर रहा था। मित्र ने कहा कि तुम बड़े निराशावादी हो। तुम हमेशा जीवन के अंधियारे पक्ष को देखते हो। दिन की गिनती नहीं करते, रात का हिसाब लगाते हो। जीवन में सुखद भी है, जीवन में उजाला भी है, थोड़ा उसकी तरफ़ भी ध्यान दो। उससे तुम्हारी निराशा मिटेगी। उस निराशावादी ने कहा कि कैसे? मुझे तो दुःख ही दुःख दिखाई पड़ता है। नेगटिव पक्ष ही दिखाई पड़ता है। अब देखो...

उदाहरण के लिए, मैं इस टोस्ट पर मक्खन लगा रहा हूँ। अगर संयोग से ये टोस्ट ज़मीन पर गिर गया, हमेशा मक्खनवाली साइड नीचे जाएगी ताकि उसमें कूड़ा–कचरा चिपक जाए। और फिर इस ब्रेड को हम खा न पाएं। कभी ऐसा नहीं हो सकता कि मक्खनवाली साइड ऊपर रहे; ताकि हम उसको उठाके, झाड़–पोंछकर फिर से खा सकें। मैं प्रयोग करके बता देता हूँ...। मित्र ने कहा, ठीक है, करो प्रयोग। उसने टोस्ट पर मक्खन लगाया और ऊपर से छोड़ दिया। संयोग की बात कि मक्खनवाली साइड ऊपर रही। उस मित्र ने कहा, देखा! मक्खनवाली साइड ऊपर है। वो निराशावादी बोला, नहीं, तुमने ग़लत साइड में मक्खन लगाया था। निराशावादी हर चीज़ में से निराशा ढूंढ़ लेता है।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल के बारे में कि उनका सेब का बगीचा था। हर साल रोना रोते थे वो... कभी सेब की फसल सड़ गई, कभी कीड़े पड़ गए, कभी ज़्यादा बरसात हो गई, तो कभी सूखा पड़ गया। कहीं कोई इल्लियां लग गईं पेड़ों में। कई बार फसल अच्छी आई मगर बाज़ार में सेब के दाम ही नहीं हैं। सेब की बहुतायत में पैदावार की वजह से बाज़ार में कीमत घट गई। हमेशा यही रोना रहता था कि बड़ी परेशानी है, बड़ी मुश्किल है...। एक बार ऐसा हुआ कि न तो अधिक बरसात हुई न सूखा पड़ा। जलवायु बिल्कुल ठीक रही, मौसम अनुकूल रहा; न कीड़े लगे, न सेब सड़े। पेड़ लदे हुए थे सेबों से और बाज़ार में सेबों के दाम भी बढ़ गए। चंदूलाल सिर झुकाए अपने घर के सामने बैठा था। एक मित्र ने पूछा, चंदूलाल! कम से कम इस साल तो प्रसन्न हो जाओ। परमात्मा ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली। सेब की इतनी अच्छी फसल कभी नहीं आई थी। इस बार तो तुम बहुत धन कमाओगे। चंदूलाल ने कहा कि क्या बात करते हो! हर साल कुछ सड़े–गले फल होते थे, तो गाय–भैंस इत्यादि को खिलाने के काम आ जाते थे। इस साल ये कीमती सेब जानवरों को खिलाने पड़ेंगे। यह सोचकर ही मैं निराश हुआ जा रहा हूँ।... सड़े–गले फल ही नहीं हैं, जानवरों को अच्छे ख़ासे फल खिलाने पड़ेंगे।

यह जो दुःखी आदमी की प्रवृत्ति है हमेशा काँटे गिनने की, फूल की तरफ़ न देखने की, यह पैदा होती है स्वयं के साक्षीभाव में स्थित न होने से।

पतंजलि कहते हैं– ये हैं लक्षण– कँपकँपी, अंगकंप की व्याधि, नरवसनैस, ट्रैमर्स। ये लक्षण हैं कि इस व्यक्ति के भीतर की जीवन–ऊर्जा, इसकी बायोएनर्जी बहुत ज़्यादा विक्षिप्त अवस्था में है। वो जो एक सर्कल बनना चाहिए भीतर जीव ऊर्जा का, वर्तुलाकार ढंग से बहनी चाहिए, वह नहीं बह पा रही है, इसलिए इसके जीवन में इतना कंपन उत्पन्न हो रहा है। सुनो, ओशो क्या कहते हैं–

दुख, निराशा, कंपकंपी और अनियमित श्वसन विक्षेपयुक्त मन के लक्षण हैं।

ये होते हैं लक्षण। दुख का अर्थ ही होता है कि तुम सदा तनाव से भरे होते हो, चिंताग्रस्त होते हो, सदा बँटे–बिखरे होते हो। हमेशा चिंतित मन लिए, हमेशा उदास, निराश–भाव में होते हो। तब सूक्ष्म कंपकंपी होती है देह ऊर्जा में, क्योंकि जब देह ऊर्जा एक वर्तुल में नहीं चल रही होती है; तुममें होता है सूक्ष्म कंपन, कंपकंपी और अनियमित श्वसन। तब तुम्हारा श्वसन लयबद्ध नहीं हो सकता। यह एक अनियमित श्वासोच्छ्वास होता है।

ये लक्षण हैं विक्षेपयुक्त मन के। और इसके विपरीत लक्षण होते हैं उस मन के जो केंद्रीभूत होता है। ओम् का जप तुम्हें केंद्रित बनाएगा। तुम्हारा श्वसन लयबद्ध हो जाएगा। तुम्हारी शारीरिक कंपकंपाहटें तिरोहित हो जाएंगी, तुम घबराए हुए नहीं रहोगे। उदासी का स्थान एक प्रसन्न अनुभूति ले लेगी। एक प्रसन्नता। तुम्हारे चेहरे पर एक सुकोमल आनंदमयता होगी, बिना किसी कारण के ही। तुम बस प्रसन्न होते हो। तुम्हारे होने मात्र से तुम प्रसन्न होते हो; मात्र सांस लेते हुए तुम प्रसन्न होते हो। तुम बहुत कुछ ज़्यादा की मांग नहीं करते। तब संताप, मनोव्यथा की जगह आनंद होगा।

धीरे–धीरे आनंद का भाव छाने लगता है। वह व्यक्ति ध्यानस्थ और समाधिस्थ होने लगता है।

मैंने सुना है, सरदार विचित्तर सिंह को कंपन की बीमारी हो गई थी। घबराहट में हाथ–पैर सदा कंपते ही रहते थे, स्थिर नहीं हो पाते थे। अस्पताल में भर्ती हुए। सुबह–सुबह नाश्ते में ब्रेकफस्ट में टोस्ट के साथ जैली दी गई। जब नर्स जैली लेकर आई, विचित्तर सिंह ने कहा, क्षमा करें! यह नाश्ता मैं न कर सकूंगा। डॉक्टर को बुलाइए। डॉक्टर आया और उसने पूछा कि आप ये नाश्ता क्यों नहीं करते। विचित्तर सिंह ने कहा मुझे वैसे ही कंपन की बीमारी है और ये जैली जो खुद ही कंप रही है इसको खाकर मेरा कंपन और बढ़ जाएगा। कुछ ठोस आहार दो, जो स्थिर हो, मैं खुद ही स्थिर नहीं हूँ। ये जैली खाके तो मेरी अस्थिरता और बढ़ जाएगी।

याद रखना! यह अस्थिरता पैदा होती है भीतर हमारी जो जीवन ऊर्जा है उसके अस्त–व्यस्त होने से। जब हम ओंकार में डूबते हैं, केंद्रीभूत होते हैं सैंटर्ड; तब हम अचानक पाते हैं कि ये चारों लक्षण विदा हो गए। जैसे मैंने कहा था वो टीबी की बीमारी के लक्षण सिर्फ़ एक औषधि से ठीक हो जाएंगे; टीबी के इलाज से। सिंपटम्स का अलग–अलग इलाज नहीं किया जा सकता। दुःख हो कि निराशा, कंपन हो या अनियमित श्वासें... इनका इलाज एक ही है... ओंकार में डूबो, ध्यान में स्थित होओ, तब तुम पाओगे कि ये चारों लक्षण विदा हो गए। ये चित्त के विक्षेप के लक्षण हैं। जब चित्त से मुक्ति होती है, आत्मा में स्थिति होती है, सारे लक्षण विदा हो जाते हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधिपाद सूत्र–32

सब रोगों की एक दवा

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।। 32 ।।

तत् प्रतिषेधार्थम् एकतत्त्व अभ्यासः

एकै साधे सब सधे, मिट जाते सब क्षोभ।
ओंकार में ध्यान से, गिरते सब अवरोध।

आज हम पातंजलियोगप्रदीप का बत्तीसवां सूत्र लेंगे। इसके पूर्व के सूत्रों पर एक नज़र डालें। पतंजलि ने कहा– व्याधि, निर्जीवता, संशय अर्थात् अनिर्णय, प्रमाद, आलस्य, दुर्बलता, अस्थिरता, दुःख, निराशा, कंपन और अराजक श्वसन– ये हैं बाधाओं भरे चित्त के लक्षण। ये तो हुए बीमारी के लक्षण। अब इसका इलाज कैसे हो? आज के सूत्र में एक कुशल चिकित्सक की भाँति पतंजलि उपाय बताते हैं कि कैसे इन बाधाओं से मुक्त हों? कहते हैं, तत् प्रतिषेधार्थम् एकतत्त्व अभ्यासः। कहते हैं, उस एक तत्त्व के अभ्यास से ये सारी बीमारियां दूर हो जातीं हैं। वह एक तत्त्व क्या है?

संतों ने कहा है–

एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाय।

यदि तुमने इन लक्षणों को अलग–अलग मिटाने की कोशिश की, तो कुछ भी न मिट पाएगा। उस एक तत्त्व को साधें... वह तत्त्व है ओंकार। ओंकार के सुमिरन से सारी व्याधियां समाप्त हो जातीं हैं। ओंकार का विस्मरण है व्याधि, ओंकार का स्मरण है समाधि। आज का यह सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है–

एकै साधे सब सधे मिट जाते सब क्षोभ।
ओंकार में ध्यान से गिरते सब अवरोध।।

ओशो कहते हैं, उस एक तत्त्व का अभ्यास करने से ये सारे रोग दूर हो जाते हैं। वह परम सत्य एक ही है। उसे जानने के तीन तरीके हैं। एक विज्ञान का तरीक़ा है, एक धर्म का तरीक़ा है और इन दोनों के मध्य में कला का तरीक़ा है।

विज्ञान बाहर–बाहर से सत्य की खोज करता है और पाता है कि पदार्थ सत्य नहीं है, ऊर्जा सत्य है। आज से सौ, डेढ़ सौ साल पहले तक वैज्ञानिक अपने आप को मटिरियलिस्ट कहा करते थे, पदार्थवादी। बड़ी अद्भुत घटना घटी! पिछले सौ सालों में विज्ञान ने स्वयं ही खोज लिया कि पदार्थ असत्य है। जिसे हम परमाणु कह रहे हैं;

इलैक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन कह रहे हैं; वह तीव्र गति से घूमती हुई ऊर्जा है... बस कुछ और नहीं। ऊर्जा सत्य है, एनर्जी सत्य हो गई; मैटर माया हो गया।

संत तो सदा से यही कह रहे थे कि जगत माया है, सिर्फ़ दिखाई पड़ता है, एपीयरैंस है, वास्तव में है नहीं। अब विज्ञान भी इस बात से राज़ी है कि पदार्थ सत्य नहीं है, आभासमात्र है– ऊर्जा है सत्य। संतों ने अपने भीतर अन्वेषण किया था। विज्ञान की प्रयोगशाला बाहर है, वे पदार्थ का निरीक्षण करते हैं। संत की प्रयोगशाला उसकी स्वयं की अंतरात्मा है, वह अपने भीतर अवलोकन करता है। वहाँ उसने एक परम तत्त्व को पाया था जिसे उसने नाम दिया है– ओंकार, या कहो परमात्मा, या कहो अनाहत–नाद। वह परम सत्य है। ध्वनि के रूप में उसने सत्य को जाना।

विज्ञान की खोज और धर्म की खोज में समन्वय हो सकता है; क्योंकि विज्ञान कहता है कि ध्वनि भी ऊर्जा का एक रूप है। ऊर्जा के कई रूप हैं; प्रकाश भी उसका रूप है, ताप भी उसका रूप है, इलैक्ट्रोमैगनटिज़म उसका रूप है, रेडियो तरंगें उसका रूप हैं। ऊर्जा के विविध रूप हैं; ध्वनि भी उसका एक रूप है।

संत कहते हैं कि ध्वनि परम सत्य है– हरि ओम तत्सत्। ओंकार की वह ध्वनि ही परम सत्य है। ऊर्जा ध्वनि का एक रूप है। यह संसार उसी अनाहत–नाद का एक रूप है। यह कहने के ढंग में ही थोड़ा–सा फर्क है। या हम एक न्यूट्रल पोइंट लें। हम कहें कि वह परम सत्य एक है। भीतर से उसे जानो, तो ओंकार की भाँति जान पड़ता है, जबकि बाहर से उसे जानो तो ऊर्जा की भाँति जान पड़ता है। उस अज्ञेय तत्त्व को हम किस दृष्टिकोण से देखते हैं, किस एंगल से देखते हैं; उसपर निर्भर करेगा। अपनी चेतना के भीतर डूबकर, समाधिस्थ होकर जानोगे, तो वह ओंकार की तरह जान पड़ता है। अगर विज्ञान की लैबोरट्री में खोज करोगे तो वह ऊर्जा की भाँति जान पड़ता है।

कलाकार मध्य में है। न तो वह संत है, न वह वैज्ञानिक है। उसका एक तीसरा ही एंगल है देखने का, उसने भी सत्य को जाना है, उसने रस रूप जाना है। कवि, संगीतकार, कलाकार, अभिनेता, चित्रकार बड़े रसमग्न होते हैं; उन्होंने उस सत्य को रस की भाँति जाना। ऐसा समझो एक मकान है। वैज्ञानिक उस मकान के चारों तरफ़ परिभ्रमण करता है, गोल गोल घूमता है, वह मकान को बाहर से जानता है, भीतर से नहीं जानता। संत आमंत्रित अतिथि की भाँति स्वयं भीतर गया मकान के, उसने मकान को भीतर से देखा... निश्चित रूप से उसका देखना ज़्यादा प्रामाणिक है।

बाहर से मकान के बारे में केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। इसलिए विज्ञान जिन नतीजों पर पहुंचता है, वे अनुमानमात्र हैं। इसीलिए विज्ञान रोज़–रोज़ बदल जाता है। तीन सौ साल पहले वैज्ञानिक कुछ और कहते थे, दो सौ साल पहले

कुछ और कहते थे, सौ साल पहले कुछ और कहने लगे। पचास साल पहले कुछ और कह रहे थे। अभी पच्चीस सालों में और परिवर्तन हुआ। निश्चित रूप से आज जो वे कह रहे हैं वह भी कोई आखिरी सत्य नहीं है। कल फिर नए वैज्ञानिक आएंगे, नए अन्वेषण करेंगे और फिर नए सिद्धांत लाएंगे। पुराने सिद्धांत ग़लत हो जाएंगे। इसका अर्थ हुआ कि वैज्ञानिक केवल अनुमान लगा रहा है बाहर बाहर से, अंतर्सत्य को वह नहीं जानता। अनुमान तो निश्चित रूप से अनुमान ही है। वह कोई सुनिश्चित रूप से बात नहीं कह सकता।

धर्म ने जिस सत्य की खोज की है– ओंकार स्वरूप परमात्मा की– वह हजारों साल में भी नहीं बदली। उपनिषद के ऋषि भी उसकी चर्चा करते हैं, वेदों के ऋषि भी उसका गुणगान करते हैं, भगवान कृष्ण भी उसकी बात करते हैं, भगवान बुद्ध और भगवान महावीर भी उसकी बात करते हैं, गुरु नानक देव जी और दसों सिख गुरु साहिबान उसी की चर्चा करते हैं। कबीर और मीरा उसी के गीत गाते हैं। रविदास और चैतन्य महाप्रभु उसी का बखान करते हैं। ओशो अपनी छह सौ पचास किताबों में उस एक ओंकार स्वरूप परमात्मा का ही जिक्र करते हैं। धर्म का सत्य नहीं बदलता; क्योंकि धार्मिक व्यक्ति ने उस गृह में प्रवेश करके भीतर से जाना है। जो जाना है वह प्रामाणिक है। विज्ञान की तरह वह अनुमान नहीं है। वह प्रत्यक्ष ज्ञान है।

कलाकार ऐसा है; जैसे चोरी से किसी के मकान में घुस गया हो। चोर भी तो आपके मकान को जानता है। लेकिन रात के अंधेरे में खिड़की दरवाजे से या रोशनदान से कूदकर भीतर घुसता है। अंधेरे में कुछ–कुछ तो पता लगा लेता है। लेकिन उसका ज्ञान भी सही ज्ञान नहीं हो सकता। ऋषि और कवि में यही भेद है। ऋषि ने सत्य को उसकी पूर्णता में जाना है; जबकि कवि ने केवल एक झलक पाई है। चोर अनामंत्रित अतिथि है और संत आमंत्रित किया हुआ मेहमान है, ससम्मान बुलाया गया है। चोर खिड़की और रोशनदान में से रात के अंधेरे में कूदकर भीतर आया हुआ है। झलक तो मिली उसे भीतर की, लेकिन बस झलक ही। फिर वह तेज़ी से बाहर भाग गया। इस प्रकार कवियों को, कलाकारों को, संगीतकारों को भी परमात्मा की झलक मिल जाती है और इसलिए उनकी कला में उनके काव्य में, उनके संगीत में भी बड़ा रस है। वह रस परमात्मा का ही रस है। वह ओंकार का ही रस है। लेकिन अगर पूर्णतः उस रस में डूबना हो, तब तो सीधे–सीधे समाधि में ही डूबना पड़ेगा। अपने होश को गहरा साधना पड़ेगा। सुनो यह गीत––

पूरी वर्णमाला तो है अक्षर, है बावन से अलग जो अक्षर
जिसने उसे पढ़ा वह ज्ञानी, शेष सभी पंडित अज्ञानी

शास्त्रों में नहीं मिलते राम, भजलो प्यारे ओम का नाम...

ओम है सब ग्रंथों का ज्ञान, सुनो बंद कर अपने कान
यही तो है प्राणों का प्राण, शब्द आत्मा की पहचान
डूब स्वयं में करो विराम, सुमिरन रहे ओम का नाम।
राम रतन धन अब जानो, स्वर को ही ईश्वर पहचानो
जो गूँज रहा संसार में पूरे, मद्धिम–मद्धिम धीरे–धीरे
सुनो शांत होकर निष्काम, भजलो प्यारे ओम का नाम

ओम है प्रभु का नाम, सब जगह उसका धाम
उपनिषद कहते प्रणव, नानक कहते हैं सतनाम
जीवन की हर सुबहो–शाम, जपते रहो ओम का नाम
इसकी हद नहीं अनहद है, आदि अंत रहित शाश्वत है
कहीं शुरू न कहीं समापन अभी यहीं मौजूद है हरक्षण
समस्त साधना का अंजाम, सुमिरन रहे ओम का नाम
एकै साधे सब सधे मिट जाते सब क्षोभ
ओंकार में ध्यान से गिरते सब अवरोध
सुफल होंगे सारे काम, भजलो प्यारे ओम का नाम

सुनो, इस बारे में ओशो क्या कहते हैं? ओंकार में डूबने की विधि समझाते हैं––

इन बाधाओं को दूर करने के लिए एक तत्व पर ध्यान करना।

विक्षेपयुक्त मन के ये लक्षण हटाए जा सकते हैं एक सिद्धांत पर ध्यान करने द्वारा। वह एक सिद्धांत है प्रणव–ओम्; वह सर्वव्यापी नाद।

ओम् का मंत्र तीन अवस्थाओं में करना होता है। पहले तुम्हें इसे बहुत जोर से दोहराना चाहिए। इसका अर्थ है यह शरीर से आना चाहिए। पहले शरीर से आना चाहिए क्योंकि शरीर ही है मुख्य द्वार। और शरीर को पहले इसमें सराबोर होने दो, डूबने दो।

अतः इसे जोर से दोहराओ। मंदिर में चले जाओ या अपने कमरे में, या कहीं ऐसे स्थान पर जहां तुम जितना जोर से चाहो इसे दोहरा सको। पूरे शरीर का उपयोग करो इसे दोहराने में; अनुभव करो जैसे की हजारों लोग तुम्हें सुन रहे हैं माइक्रोफोन के बिना। तुम्हें बहुत प्रबल होना पड़ता है ताकि सारा शरीर कंप पाए, इसके साथ हिल जाए। कुछ महीनों के लिए, लगभग तीन महीनों के लिए तुम्हें किसी दूसरी चीज़ की फिक्र नहीं

करनी चाहिए। पहली अवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह दे देती है बुनियाद। जोर से जप करो जैसे तुम्हारे शरीर का प्रत्येक अणु यही चिल्ला रहा है और इसी का जप कर रहा है।

पहला चरण है, सारे शरीर को आपूरित करने का, जिससे की सारा शरीर एक नाद शक्ति बन जाता है। जब तुम संतुष्ट अनुभव करते हो तब दूसरा चरण बढ़ाना। इस शक्ति का कभी प्रयोग मत करना क्योंकि यह शक्ति एकत्रित करनी होती है, और प्रयुक्त करनी होती है दूसरे चरण के लिए।

दूसरा चरण है, अपने मुँह को बंद करो और दोहराओ और मन ही मन जप करो ओम् का– पहले शारीरिक रूप से और फिर मानसिक रूप से। अब शरीर का उपयोग बिलकुल नहीं होना चाहिए। गला, जीभ, होंठ हर चीज़ बंद रहनी चाहिए। सारा शरीर बंद होना चाहिए और जप होना चाहिए केवल मन में ही। लेकिन जितना संभव हो उतना जोर से ही। वही प्रबलता रहे जैसी तुम शरीर के साथ प्रयोग कर रहे थे। अब मन को जुड़ने दो इसके साथ। फिर तीन महीने के लिए अब मन को आपूरित होने दो इस नाद से।

तीसरा सोपान मन को आपूरित अनुभव करने के बाद आता है। तुम इसे जान लोगे जब यह घटता है। पूछने की ज़रूरत नहीं है कि कोई इसे कैसे अनुभव करेगा? यह है भोजन करने की भांति। तुम अनुभव करते हो कि 'अब पर्याप्त है।' मन अनुभव कर लेगा जब यह पर्याप्त होता है। तब तुम तीसरे चरण का प्रारंभ कर सकते हो। तीसरे में, न तो शरीर का और न ही मन का उपयोग करना होता है। जैसे शरीर को बंद किया अब तुम मन को बंद कर देते हो।

यह आसान होता है। जब तुम तीन या चार महीनों से जप कर रहे होते हो, तो यह बहुत आसान होता है। तुम शरीर को ही बंद कर दो, और तुम सुनोगे तुम्हारे अपने अंतरतम से तुम तक आते हुए उस नाद को। ओम् होगा वहां जैसे की कोई ओर जप कर रहा है और तुम मात्र सुननेवाले हो। यह होता है तीसरा चरण। और यह तीसरा चरण तुम्हारे समग्र अस्तित्व को बदल देगा। सारी बाधाएं गिर जाएंगी और तुम्हारी सारी अड़चनें तिरोहित हो जाएंगी। अतः यह प्रक्रिया औसत रूप से लगभग नौ महीने ले सकती है यदि तुम अपनी समग्र ऊर्जा इसमें डाल देते हो तो।

यह निर्भर करेगा कि हम कितनी त्वरा और प्रगाढ़ता से इस विधि को करते हैं। नौ महीने हो सकता है। कोई धीमे–धीमे करे तो एक साल हो सकता है। कोई बहुत तीव्रता से करे, तो तीन–चार माह में ही सफलता मिल जाती है। तब हमारा मन शांत और प्रसन्न होकर आनंद में डूब जाता है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–33

आनंद के लिए चार बातें

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।। 33 ।।

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाणां, सुख, दुःख, पुण्य, अपुण्य, विषयाणां भावनातः चित्त प्रसादनम्

सुखी से मैत्री, दुखी पे करुणा, सज्जन से खुश होना; मन की शांति चाहिए तो, दुर्जन का संग न करना।

आज के सूत्र नंबर तैंतीस में पतंजलि बड़े अद्भुत इशारे कर रहे हैं। गौर से समझना। जिस व्यक्ति को शांत और प्रसन्न होना है, आनंद में डूबना है; उन्हें इन चार बातों का ध्यान रखना होगा। पहला सुखी के प्रति मैत्रीभाव। दूसरा दुखी के प्रति करुणाभाव। तीसरा पुण्यात्मा के प्रति प्रसन्नता, मुदिता का भाव और चौथा पापी के प्रति उपेक्षा का भाव।

सामान्यतः हम इसका ठीक उलटा करते हैं। सुखी से हम मैत्रीभाव नहीं करते; बल्कि सुखी के प्रति हम ईर्ष्या से भरे होते हैं। हम भीतर ही भीतर जलते हैं। यह बात हमें अशांति में ले जाती है। ईर्ष्या का भाव अशांति को जन्म देता है। दुखी के प्रति हम करुणा से नहीं भरे होते; बल्कि सहानुभूति से भरे होते हैं। सहानुभूति और करुणा के भेद को समझना। सहानुभूति में, सिंपथी में कहीं भीतर प्रसन्नता मौजूद है। दूसरा व्यक्ति कष्ट की स्थिति में है और हम उस दुर्गति में नहीं हैं। हम कहीं भीतर खुशी महसूस कर रहे हैं। हम दूसरे को जब सिंपथी दिखाते हैं, तो दूसरा व्यक्ति सदा ही अपमानित महसूस करता है। आज वह इस हालत में है कि आप उसे दया दिखा रहे हैं। मन ही मन वह सोचता है काश ऐसा दिन आए कि एक दिन मैं भी आपको दया दिखा सकूं!

जब आप भिखारी को दान देते हैं, तो भिखारी आपके प्रति मंगलभाव से नहीं भरा होता। वह आपको अभिशाप देता है कि भगवान करे एक दिन ऐसा आए कि आप भीख मांगें और वह देने की स्थिति में हो। दुखी के प्रति सिंपथी नहीं। पतंजलि कहते हैं– दुखी के प्रति करुणा। भेद क्या है? करुणा में हम उसे उसकी स्थिति से तो उबारना चाहेंगे, लेकिन उसके दुख को हम सहयोग नहीं करेंगे, उसके दुःख की तरफ ध्यान न देंगे।

तीसरी बात वे कहते हैं पुण्यात्मा के प्रति प्रसन्नता का भाव। हम इसका ठीक उल्टा करते हैं। यदि आपसे आकर कोई कहे कि फलां आदमी बड़ा साधुचित्त है, पहुंचा हुआ महात्मा है, बड़ा सिद्धपुरुष है, ईमानदार है, सत्यभाषी है, आपके मन में पहली प्रतिक्रिया क्या होती है? सबसे पहले आपके मन में यही आएगा कि यह हो ही नहीं सकता। ज़रूर झूठा होगा, पाखंडी होगा। बीतने दो थोड़ा समय, सारी पोल-पट्टी खुल जाएगी। अरे हम जानते हैं महात्माओं को। सब झूठे नकली साधु सिद्ध होते हैं। पुण्यात्मा पर हम अविश्वास और संदेह करते हैं। पुण्य के प्रति हमें भरोसा ही नहीं है। याद रखना! जिस चीज पर हमें भरोसा नहीं है, जिस चीज पर हमें श्रद्धा ही नहीं है, वह हमारे जीवन में कैसे घटित होगी?

यदि कोई आपसे कहता है कि फलाँ आदमी बड़ा ईमानदार और सत्यभाषी है और आप उसको संदेह की नजर से देखते हैं, तो इसका अर्थ हुआ कि आप भी कभी ज़िंदगी में ईमानदार और सत्यभाषी नहीं हो पाएंगे। आपको भरोसा ही नहीं है कि कोई हो सकता है। जब कोई आपसे कहता है कि फलां व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, एनलाइटंड हो गया... सबसे पहला रिएक्शन जो आता है वह यही कि हो ही नहीं सकता। याद रखना! जब आप कह रहे हैं कि यह हो ही नहीं सकता आप अपनी जड़ें काट रहे हो। आप अपनी संभावनाएं नष्ट कर रहे हो। अब आपके भीतर भी बुद्धत्व का फूल कभी न खिल सकेगा। क्योंकि आप मानते ही नहीं कि हो सकता है। पुण्यात्मा के प्रति प्रसन्नता का भाव।

जब तुम सुनो कोई अच्छी खबर, किसी अच्छे व्यक्ति से मिलो, किसी सज्जन पुरुष से मिलो तो उसके प्रति प्रसन्नता का भाव होना चाहिए कि चलो इसके अंदर यह शुभ घटित हुआ। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् घटित हुआ। तुम्हारे भीतर भी संभावना बढ़ जाएगी। और चौथी बात पतंजलि कहते हैं पापी के प्रति उपेक्षा का भाव। इंडिफ्रेंस रखना। उसमें ज़्यादा रस मत लेना। तटस्थ रहना। हमें पाप में बड़ा रस है। बुराईयों में हमारी बड़ी उत्सुकता है।

रोज़ सुबह से लोग अखबार खोल कर बैठे हैं। बीस-पच्चीस पेज का अखबार। मैं अमेरिका में था वहाँ वाशिंग्टन टाइम्ज़ ढाई सौ पेज का अखबार! उठाने में भी हाथ दुखने लगे इतना वजनदार। लेकिन लोग एकदम सुबह से अखबार पढ़ने में लग जाते हैं। और अखबार में है क्या? कहां हत्या हुई, कहां बलात्कार हुआ, किस राज्य में नेता ने धोखा दिया, किस अफसर ने घूस खाई, कहां दुर्घटना घटी, कहां आतंकवाद। बस यही सब कुछ उसमें है। चोरी, डकैती, बलात्कार, हत्या, अपराध, राजनीति, षड्यंत्र इस सब में हमें बड़ा रस है। इसके प्रति हम उपेक्षापूर्ण नहीं हैं। बड़ी गहन उत्सुकता है

जानने की कि दुनिया में कहां–कहां कितनी बुराइयां हो रही है? इससे क्या होता होगा? इसकी साइकॉलजी, इसका मनोविज्ञान समझो।

जब तुम्हें पता चलता है कि दुनिया में सब तरफ बुराइयां ही बुराइयां हैं, कहीं तुम्हारा अहंकार पुष्ट होता है कि इन लोगों से तो मैं ही भला। माना कि मेरे मन में चोरी का इरादा है पर अभी की तो नहीं। माना कि बलात्कार की सोचता रहता हूं, रात को सपने भी देखता हूं मगर वास्तव में आज तक तो मैंने किया नहीं। मैं ही ज़्यादा बड़ा महात्मा हूं। और ये राजनेता दुनिया को धोखा दे रहे हैं। ये षड्यंत्रकारी और आतंकवादी; यद्यपि छोटा–मोटा आतंकवादी तो मैं भी हूं। अपने घर–परिवार में तो दादागिरी जमाकर ही रखता हूं। सब को अपनी मर्जी से चलाता हूं। पर यह आतंकवादी तो गज़ब कर रहे हैं, बम फोड़ रहे हैं, लोगों की जान ले रहे हैं। हम धीरे–धीरे लोगों का गला दबा रहे हैं। लेकिन हमें बड़ा संतोष मिलता है कि दुनिया में हमसे भी ज़्यादा खतरनाक लोग हैं। बड़े–बड़े षड्यंत्र रचने वाले। हम अपनी छोटी–मोटी चालाकी कर रहे हैं, हमें बड़ी तसल्ली होती है कि हम ही अच्छे आदमी हैं। अखबार पढ़कर जो निष्कर्ष निकलता है अचेतन मन में वह यही कि मैं ही श्रेष्ठ आदमी हूं। दुनिया में तो सब मुझसे भी ज़्यादा निकृष्ट हैं। अखबार है क्या? सब की आलोचना। सब की बुराई। सब की निंदा।

महिलाएं निंदा रसपान करती हैं आपस में मिलजुलकर किटी पार्टी में। अगर तुम जाकर सुनो, तो सिवाय निंदा के कुछ न पाओगे। जो महिला वहां अनुपस्थित है बस उसी की निंदा हो रही होगी। और इसलिए महिलाएं बहुत डरती हैं कोई भी किटी पार्टी मिस नहीं करना चाहती। उन्हें पता है आज हम नहीं गए, तो हमारी ही आलोचना होने वाली है। पुरुष थोड़ी दूर–दूर की आलोचना करता है। वह अखबार, पत्रिकाएं और टेलीविजन की न्यूज देखता है। सारी दुनिया की आलोचना उसमें भरी हुई है। यह अशांत होने के तरीके हैं। अगर तुम सुखी आदमी से ईर्ष्या कर रहे हो, यदि तुम दुखी आदमी के प्रति सहानुभूति दिखा रहे हो, अगर तुम पुण्यात्मा के प्रति अविश्वास से भरे हो और अगर तुम पापियों में बहुत रस ले रहे हो, तो यह तुम अशांत होने का उपाय कर रहे हो।

पतंजलि का यह सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है। सुनो! ओशो क्या कहते हैं–

प्रसन्न व्यक्ति के प्रति मैत्रीपूर्ण भावना का संवर्धन करने से मन शांत हो जाता है।

प्रसन्न व्यक्ति के साथ तुम ईर्ष्या अनुभव करते हो– एक सूक्ष्म प्रतियोगिता के रूप में। प्रसन्न लोगों के साथ तुम स्वयं को निम्न अनुभव करते हो। तुम आस–पास रहने को उन लोगों को चुन लेते हो सदा जो अप्रसन्न हैं। तुम मित्रता बनाते हो अप्रसन्न व्यक्तियों के साथ क्योंकि अप्रसन्न व्यक्तियों के साथ तुम अपने आपको ऊँचा अनुभव

करते हो। तुम हमेशा उस किसी को चुन लेते हो जो तुमसे नीचे है। तुम हमेशा अधिक ऊँचे से भयभीत हो जाते हो, तुम हमेशा किसी निम्न को चुन लेते हो। और जितना तुम ज़्यादा निम्न को चुनते हो, उतना नीचे तुम गिरोगे। तब फिर और ज़्यादा निम्न व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

उनका साथ खोजो जो तुमसे ज़्यादा ऊँचे हों– विवेक में ऊँचे, प्रसन्नता में ऊँचे, शांति में, मौन में, एकजुट होने में। हमेशा ज़्यादा ऊँचे का साथ खोज लेना; क्योंकि उसी की तरह तुम ज्यादा ऊँचे हो सकते हो। तुम घाटियों के पार हो सकते हो और ऊँचे शिखरों तक पहुंच सकते हो। यह बात सीढ़ी बन जाती है। सदा ज्यादा ऊँचे का साथ खोज लेना, सुंदर का, प्रसन्न का साथ। तब तुम ज्यादा सुंदर हो जाओगे; तुम ज्यादा प्रसन्न हो जाओगे।

करुणा का अर्थ है कि तुम दूसरे व्यक्ति की मदद करना चाहोगे। तुम वह करना चाहोगे जो कुछ किया जा सकता है। उसे उसके दुःख से बाहर लाने में तुम उसकी मदद करना चाहोगे। तुम उसके कारण प्रसन्न नहीं हो किंतु तुम दुःखी भी नहीं हो।

ठीक इन दोनों के बीच है करुणा। बुद्ध करुणामय हैं। वे तुम्हारे साथ दुःखी अनुभव नहीं करेंगे क्योंकि उससे किसी को मदद नहीं मिलने वाली। और वे प्रसन्न भी अनुभव नहीं करेंगे क्योंकि प्रसन्नता अनुभव करने में कोई तुक नहीं है। जब कोई दुःखी हो तो तुम कैसे प्रसन्न हो सकते हो। लेकिन वे (बुद्ध) अप्रसन्न भी अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि उससे मदद नहीं मिलने वाली। वे करुणा अनुभव करेंगे। करुणा है ठीक इन दोनों के बीच में। करुणा का अर्थ है तुम्हारे दुःख में से तुम्हें बाहर लाने में मदद करना चाहेंगे। करुणा का अर्थ है वे तुम्हारे लिए हैं लेकिन विरुद्ध हैं तुम्हारे दुःख के। वे तुम्हें प्रेम करते हैं तुम्हारे दुःख को नहीं। वे तुम पर ध्यान देना चाहेंगे; लेकिन तुम्हारे साथ लगे तुम्हारे दुःख पर नहीं।

इन चार बातों को अपने हृदय में खूब गहरा उतरने देना और तुम पाओगे तुम्हारा जीवन रूपांतरित हो गया। पापी के प्रति उपेक्षा। यह बात सुनने में ज़रा अजीब–सी लगती है। बाइबिल में जीज़स क्राइस्ट का वचन है 'जज नाट एंड रिज़िस्ट नाट ईवल' बुराई का प्रतिरोध न करो। कोई क्रिश्चन पादरी ईसा मसीह के इस वचन को कभी नहीं समझाता। ओशो ने इस पर बड़ी गहन व्याख्या दी है। 'रिज़िस्ट नाट ईवल' बुराई का प्रतिरोध भी न करो। क्योंकि प्रतिरोध करने में भी तुम्हें उस पर ध्यान देना होगा। अगर कहीं बुराई है, रहने भी दो, तुम उसकी तरफ ध्यान न दो।

फ्रांस में एक मनोवैज्ञानिक हुआ इमाइल कुये। उसने एक अद्भुत नियम खोजा विपरीत परिणाम का नियम। द लॉ आफ रिवर्स इफैक्ट। तुम जिस चीज़ से बचना चाहते हो, जिसका तुम प्रतिरोध करते हो तुम उसी की तरफ आकर्षित हो जाते हो।

बचपन में आपने साइकल चलाना सीखी होगी आपको याद होगा। पचास फुट चौड़ी सड़क है। आप साइकल सीख रहे हैं। आपको नज़र आता है सड़क के किनारे लगा हुआ बिजली का खंभा और आपको लगता है कहीं खंभे से न टकरा जाऊं। और आश्चर्य की बात जैसे–जैसे आप डरते हैं कि खंभे से न टकरा जाऊं आपका ध्यान खंभे की तरफ गया और जहां आपकी नज़र गई आपका ध्यान भी धीरे से मुड़ गया। आपका हेंडल खंभे की तरफ हो गया। तब आप और घबराए कि मारे गए। अब तो साइकल चली खंभे की तरफ। और अंत में जाकर आप खंभे से टकरा ही गए। यह है लॉ आफ रिवर्स इफैक्ट. जिससे आपने बचना चाहा था उसी से जा टकराए।

मन के इस नियम को खूब अच्छे से समझना। यदि तुमने बुराई पर ध्यान दिया, बचने के लिए भी अगर तुमने ध्यान दिया, तो तुम बुराई के गड्ढे में ही जाकर गिरोगे। नहीं, पुण्यात्मा के प्रति प्रसन्नता का भाव और पापी के प्रति उपेक्षा का भाव। इंडिफ्रेंट उस पर ध्यान ही मत देना। न तो दूसरों के अंदर की बुराई पर ध्यान देना और न ही अपने भीतर की किसी बुराई पर ध्यान देना। तथाकथित आध्यात्मिक लोग, धार्मिक लोग स्वयं को सुधारने में लग जाते हैं। वे देखते हैं अपने भीतर क्रोध, अपने भीतर काम, अपने भीतर घृणा और ईर्ष्या और इससे लड़ने में लग जाते हैं।

नहीं, कृपया इससे भी मत लड़ना। बी इंडिफ्रेंट टु इट। क्रोध है, तो रहने दो। तुम उस पर ध्यान न दो। अगर तुमने उससे बचने की कोशिश की तुम बुरी तरह उसी में फंस जाओगे। और अक्सर ऐसा होता है साधारण सांसारिक व्यक्ति से भी ज़्यादा अशांत हो जाते हैं धार्मिक लोग। क्योंकि वे अपने भीतर एक द्वंद्व में, एक लड़ाई में, एक अंतर्युद्ध में उलझ जाते हैं। वे अपने ही भीतर के दुर्गुणों से दुश्मनी साध लेते हैं। इस भूल से बचना। पतंजलि के आज के चार सूत्र तुम्हारे जीवन में बड़े क्रांतिकारी सिद्ध हो सकेंगे।

धन्यवाद। जय ओशो।।

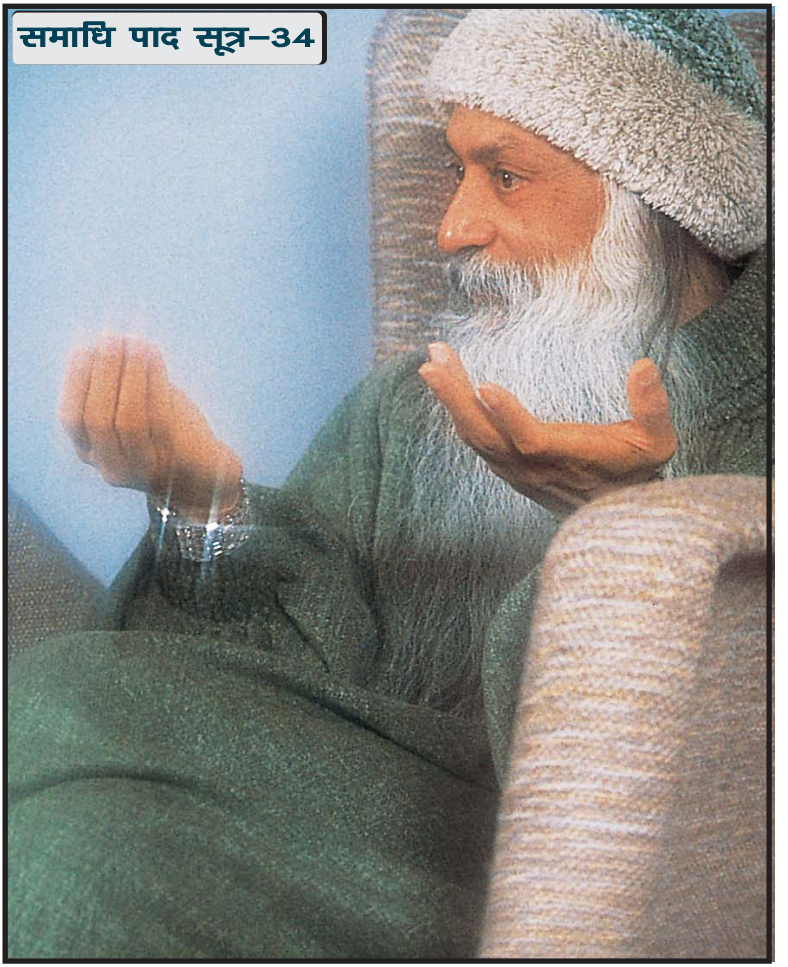

श्वास : अद्भुत कीमिया

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।। 34 ।।

प्रत्क्षर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य

धीमी गहरी सांसें लेकर, मन तनाव खोता है;
बाहर बारम्बार रोककर, बड़ा शांत होता है।

स्मरण करो, तैंतीसवें सूत्र में पंतजलि ने कहा– सुखी के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति करुणा, पुण्यवान के प्रति प्रसन्नता और पापी के प्रति उपेक्षा का भाव; ये हमारी चित्त की वृत्तियों के बिल्कुल प्रतिकूल हैं और इसलिए इनकी साधना भी कठिन है। मन को बदलना बहुत दुष्कर है।

आज के चौंतीसवें सूत्र में पतंजलि एक स्थूल विधि बताते हैं जिसको सभी लोग साध सकते हैं। मेरे ख़्याल से तो अगर पतंजलि का पूरा योगशास्त्र खो जाए या सिर्फ़ यह एक विधि ही रह जाए, तो भी पतंजलि का पूरा विज्ञान शेष बच जाएगा। यह विधि बड़ी अद्भुत है।

पतंजलि कहते हैं– श्वास को बाहर फेंको और तीन–चार सैकंड रोक लो। फिर भीतर श्वास को लो, तीन–चार सैकंड श्वास को रोककर अंतर्कुंभक करो और तुम पाओगे कि तुम्हारा मन शांत होने लगा। मन के साथ सीधा कुछ करना अत्यंत सूक्ष्म और कठिन है। शरीर के साथ कुछ करना स्थूल और सरल है। इसलिए कोई भी विधि जो शरीर से शुरू होती है वह ज़्यादा साधकों के काम आती है। मन से शुरू होने वाली विधियां बहुत मित्रों के काम नहीं आ सकतीं। इसलिए आज के सूत्र को मैं विशेष महत्त्व देता हूँ। पतंजलि कहते हैं–

धीमी गहरी साँसें लेकर मन तनाव खोता है।
बाहर बारंबार रोककर बड़ा शांत होता है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक मनोचिकित्सक के पास पहुंचा और उसने कहा की डॉक्टर साहब मुझे एक बड़ी बीमारी हो गई है, बड़ा तनावग्रस्त हूँ, बड़ा बेचैन और परेशान हूँ। मनोचिकित्सक ने पूछा– आपकी तकलीफ क्या है? नसरुद्दीन ने कहा– मुझे तनाव इस बात का है कि अपनी पत्नी को देखकर मेरा गला सूख जाता है, हाथ–पैर थरथर कांपने लगते हैं, मन में बड़ा क्रोध उत्पन्न हो जाता है। मुझे समझ नहीं आता कि इन तनावों से कैसे मुक्त होऊँ। मनोचिकित्सक ने कहा– ये तो कुछ ख़ास नहीं! क़रीब–क़रीब निन्यानबे प्रतिशत पतियों के साथ ऐसा ही होता है। चिंता की कोई बात नहीं। यह कोई बीमारी नहीं है। असली बीमारी तो वो है जब पत्नी को देखकर कोई व्यक्ति हिंसक हो उठता है, उसका सिर फोड़ने का मन होता है, घसीटके पटकने का मन होता है, तब असली चिंता की बात है; वो साइकोपैथी है।

नसरुद्दीन बहुत खुश हुआ, उसने कहा– डॉक्टर साहब साइकोपैथी नामक जिस बीमारी की आप बात कर रहे हैं क्या वह बीमारी किसी प्रकार मुझे लग सकती है। मैं भी बड़ा उत्सुक हूँ। करना तो मैं भी यही चाहता हूँ उठाऊँ एक लठ और पत्नी का सिर फोड़ दूं। लेकिन जैसे ही उसके सामने पहुंचता हूँ, मेरे मंसूबे ठंडे पड़ जाते हैं, हिम्मत नहीं कर

पाता, इरादे तो बड़े ख़तरनाक हैं, लेकिन इतना साहस नहीं जुटा पाता। नसरुद्दीन ने कहा कि दिन में तो मैं कुछ कर ही नहीं पाता और रात को मैं एक दुःस्वप्न नाइटमेयर देखता हूं।

मनोचिकित्सक ने पूछा कौन–सा दुःस्वप्न तुम देखते हो? नसरुद्दीन ने कहा– मैं देखता हूँ कि एक बड़ा भारी राक्षस खड़ा है और उसके सामने मेरी पत्नी खड़ी हुई है। उसको देखकर मैं बहुत डर जाता हूँ, कांप जाता हूँ। रोज़ रात को यही सपना आता है। भयानक राक्षस मेरी पत्नी के पीछे खड़ा है और ऐसा लगता है कि वो पत्नी की गर्दन दबाने ही वाला है। मनोचिकित्सक को भी थोड़ी उत्सुकता पैदा हुई। उसने कहा थोड़ा और विस्तार से वर्णन करो। नसरुद्दीन ने कहा– बड़ी बड़ी लाल आँखें, खूंखार बड़े–बड़े दांत भैंस के खूंटे जैसे, चाकू की भांति तेज नाखूनों को देखते ही हाथ–पैर थरथर काँपने लगते हैं।

मनोचिकित्सक बोला, अरे! यह राक्षस तो बड़ा ख़तरनाक है। नसरुद्दीन ने कहा– क्षमा करना, ये तो मैं अपनी पत्नी का वर्णन कर रहा हूँ, राक्षस का नहीं। राक्षस का वर्णन सुनकर तो आपके भी हाथ–पैर कांप जाएंगे। वो जो राक्षस पीछे खड़ा है दस–दस फुट लम्बे उसके दांत हैं। बड़ी–बड़ी उसकी आँखें हैं। खूंखार चेहरा, एक हाथ में तलवार है, दूसरे हाथ में बंदूक है, बम लिये हुए है साथ में और लग रहा है कि वो मेरी पत्नी की गर्दन को बस दबोचने ही वाला है। यह दुःस्वप्न मुझे बहुत परेशान कर रहा है।

मनोचिकित्सक ने कहा– वेरी इंट्रस्टिंग! कब से इस राक्षस को देख रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा– आप थोड़ा धीरज तो रखो, पूरी बात तो सुन लो, वो राक्षस कोई और नहीं है, शक्ल मेरी ही है, मैं अपने ही आप को उस रूप में देखता हूँ।

ये जो नकारात्मक भावनाएं हैं... क्रोध की, चिंता की, परेशानी की, दुःख की, हिंसा की... इन नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होने के लिए मनोचिकित्सा काम नहीं आएगी। पश्चिम में पिछले सौ साल में मनोविज्ञान विकसित हुआ। लेकिन बड़े अचरज की बात! किसी की भी मदद नहीं हो पाई। मनोचिकित्सक कुछ ज़्यादा सहायता नहीं पहुंचा पाता। लोग ज़्यादा से ज़्यादा नॉर्मल पागलपन में आ जाते हैं। जो एबनॉर्मल हो गए थे, सामान्य से बाहर चले गए थे, सीमा के बाहर पागल हो गए थे, वे थोड़ा–सा सीमा के अंदर आ जाते हैं। समाज के द्वारा जो स्वीकृत विक्षिप्तता है उस घेरे में आ जाते हैं। कुछ ख़ास फर्क नहीं पड़ता। मनोविज्ञान के द्वारा कभी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध न हुआ, न हो सकेगा।

पतंजलि कहते हैं– एक सरल–सी विधि का प्रयोग करो– श्वास को रोकने की विधि। हमारा मन श्वास के साथ बड़ी गहराई से जुड़ा हुआ है। मन में कोई भी

नकारात्मक भाव हो, ज़ोर से बाहर गहरी श्वास फेंको और कुछ क्षणों के लिए रुक जाओ। न केवल कार्बनडाइऑक्साइड एवं विषाक्त वायु बाहर चली जाएगी, उसके साथ–साथ तुम्हारे मन में जो ज़हर और विष भरा है, जो नेगेटिविटी भरी है, वह भी बाहर चली जाएगी। तब तुम पाओगे कि तुम धीरे–धीरे शांत और प्रसन्न होने लगे। सुनो! ओशो उसको समझाते हुए कहते हैं–

पतंजलि एक विधि का सुझाव देते हैं– 'बारी–बारी से श्वास बाहर निकालने और रोकने द्वारा भी मन शांत होता है।'

जब कभी तुम अनुभव करते हो कि मन शांत नहीं, वह तनावपूर्ण है, चिंतित है, शोर से भरा है, निरंतर सपने देख रहा है, तो एक काम करना– पहले गहरी सांस छोड़ना। जब भी शुरू करें, सांस छोड़ने द्वारा ही करें। जितना हो सके उतनी गहराई से सांस छोड़ना; वायु बाहर फेंक देना। वायु बाहर फेंकने के साथ ही मनोदशा बाहर फेंकी जाएगी, क्योंकि श्वसन ही सबकुछ है।

जितना संभव हो, श्वास को बाहर निकाल देना। पेट को भीतर खींचना और उसी तरह बने रहना कुछ सेकंड के लिए, सांस मत लेना। वायु को बाहर रहने देना ओर कुछ सेकंड के लिए सांस मत लेना। फिर शरीर को सांस लेने देना। खूब गहरा सांस भीतर लेना जितना तुमसे बन पड़े। फिर उतनी ही देर रोक लेना जितना श्वास को बाहर फेंककर रोका था। यह अंतराल उतना ही होना चाहिए।

यदि तुम पूरा श्वास बाहर छोड़कर तीन सेकंड रुकते हो, तो पूरा श्वास भीतर लेकर तीन सेकंड तक बनाए रखना, तीन सैकंड तक रोके रखना। बाहर फेंको और रुके रहो तीन सेकंड तक। भीतर लो ओर रुके रहो तीन सेकंड तक। लेकिन इसे पूर्णतया बाहर फेंक देना होता है। समग्रता से सांस छोड़ो और समग्रता से सांस लो, और एक लय बना लो। सांस खींचने के बाद रुके रहना, सांस छोड़ने के बाद रुके रहना। तुरंत तुम अनुभव करोगे कि एक परिवर्तन तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व में उतर रहा है। वह मनोदशा जा चुकी होगी। एक नई आबोहवा तुममें प्रवेश कर चुकी होगी।

ओशो की एक प्रसिद्ध किताब है– जिसमें ध्यान की सभी विधियों का संकलन है– उसका नाम है ध्यानयोग : प्रथम एवं अंतिम मुक्ति। मैडिटेशन : द फर्स्ट एंड लास्ट फरीडम। इसमें एक अद्भुत विधि हैः मनोदशाओं को बाहर फेंकना... जब भी कोई नकारात्मक मनोदशा तुम्हें पकड़े, जोर से श्वास बाहर फेंको और रोको, जितनी देर आराम से रोक सको, जितना समय आराम से रोक सको, श्वास को रोके रहो और भाव करो कि तुम्हारी नकारात्मकता भी बाहर चली गई, बाहर शून्य आकाश में चली गई। फिर धीरे से गहरी श्वास लो। इस प्रकार तुम पाओगे तुम्हारी नेगटिविटी विसर्जित

होने लगी।

ठीक इसके विपरीत एक और प्रयोग किया जा सकता है। जिस किसी पॉजटिव भावदशा को, विधायकता को तुम अपने भीतर लाना चाहते हो, उसी भाव के साथ गहरी साँस भीतर लो, सीने और पेट को फूल जाने दो, और श्वास को थोड़ी देर रोको; भाव करो वह प्रेम की भावदशा, मैत्रीभाव, करुणाभाव, प्रसन्नता का भाव तुम्हारे भीतर आ रहा है। हर भीतर जाती श्वास के साथ तुम्हारे भीतर विधायक भावदशा जा रही है।

तब भीतर श्वास को रोक लो। भाव करो कि वह मैत्री, वह प्रेमलता, वह करुणा तुम्हारे रोम–रोम में फैल रही है। शरीर के एक–एक कोष्ठ में समाहित हो रही है। उस श्वास को रोकने के साथ तुम पाओगे कि वह भावदशा तुम्हारे प्राणों की गहराई में बस गई। धीरे–धीरे तुम पाओगे कि तुम नेगटिविटी से मुक्त हो गए और पाजिटिविटी तुम्हारे हृदय में समा गई।

पतंजलि की यह विधि बड़ी वैज्ञानिक, अद्भुत और अत्यधिक सरल है। कोई भी इसे कर सकता है। छोटा बच्चा भी इसे कर सकता है। तुम प्रयोग करके देखना। कभी क्रोध आए, तो क्रोध को व्यक्त मत करना, चले जाना अकेले कमरे में, खिड़की–दरवाजे बंद कर लेना। श्वास को ज़ोर से बाहर फेंकना और रोकना... पच्चीस–तीस बार बहिर्कुंभक करने के बाद तुम पाओगे कि तुम्हारे मन से क्रोध विसर्जित हो गया।

फिर इसका विपरीत करना– करुणा का भाव, दया का भाव, प्रेम का भाव लेकर– भीतर श्वास लेना, श्वास को रोकना और महसूस करना कि तुम ज़्यादा प्रेमपूर्ण हो रहे हो, तुम जगत के प्रति मैत्रीभाव से भर रहे हो और पाँच मिनट के भीतर ही तुम पाओगे तुम्हारा मूड बिल्कुल परिवर्तित हो गया। धीरे–धीरे तुम एक नए ही व्यक्ति बन जाओगे।

यह छोटी–सी विधि अद्भुत कीमिया है। सैकड़ों सालों में जो मनोविज्ञान नहीं कर पाया, वह पतंजलि की यह छोटी–सी विधि कर सकती है। पतंजलि मनोवैज्ञानिक नहीं, बल्कि आत्मा के वैज्ञानिक हैं। इस विधि का प्रयोग करना और देखना... इसके परिणाम इतने शीघ्र आते हैं कि दो या तीन मिनट के भीतर ही तुम्हें पता लग जाएगा कि विधि कितनी कारगर है।

एक बार कीमिया समझ गए कि तुम अपने मन के मालिक हो गए। श्वास को बदलो और अपने मन की मालकियत प्राप्त करो। तब तुम स्वामी बने। इसीलिए तो हम संन्यासी को कहते हैं न स्वामी! वह स्वामित्व श्वास की इस विधि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। बहुम–बहुत धन्यवाद। जय ओशो।।

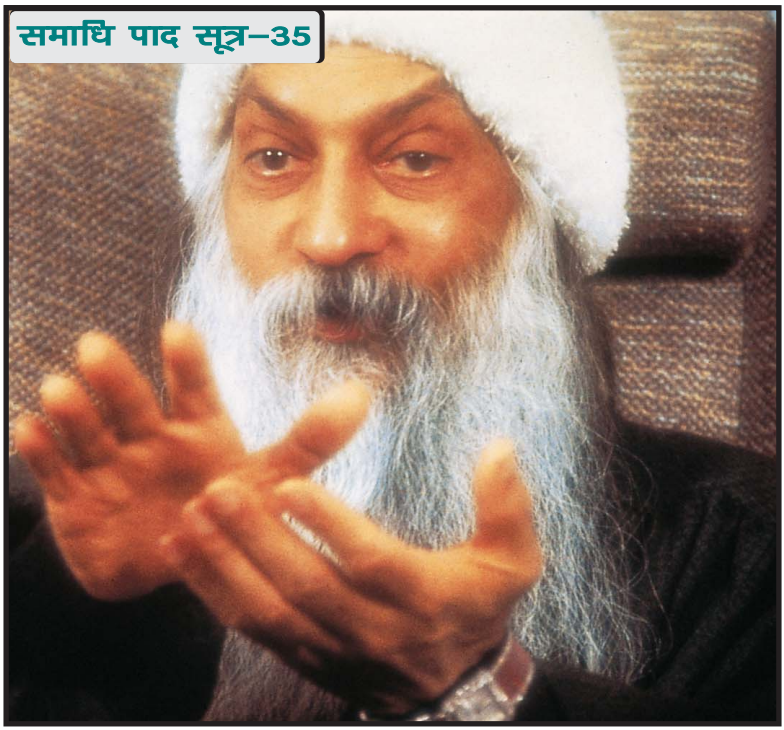

समाधि पाद सूत्र–35

अतींद्रिय अनुभवों का जगत

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधिनी।।35।।

विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति निबंधिनी

दिव्य अनुभवों से जगता है, प्रबल आत्मविश्वास।
साधक पथ पर यूं चलता, ज्यूं मंज़िल बिल्कुल पास।

पतंजलि के पूर्व सूत्र का स्मरण करें... उन्होंने कहा कि धीमी गहरी श्वास लेकर और श्वास रोककर मन शांत हो जाता है। इसके आगे आज के सूत्र में वे कहते हैं कि इस विधि से गुज़रने पर– अंतर्कुंभक और बहिर्कुंभक– से जब मन शांत हो जाता है, तब मनुष्य की अतींद्रिय क्षमता जागती है। सामान्यतः हम अपनी केवल पाँच इंद्रियों से परिचित हैं जो बाहर देखतीं, सुनतीं, सूंघतीं, स्वाद लेतीं और स्पर्श करतीं हैं। इन पाँच इंद्रियों के ठीक पीछे सूक्ष्म इंद्रियां हैं– उन्हें हम अतींद्रियां भी कह सकते हैं। जब वे जाग

जाती हैं, सक्रिय हो जाती हैं, तब हम एक अलौकिक लोक में प्रवेश कर जाते हैं। इस संबंध में परमगुरु ओशो कहते हैं–

क्योंकि जब तुम अपने श्वसन को और अपनी मनःस्थितयों को बदलते हो, तो तुम्हारे शारीरिक रसायन अपना ढांचा बदलते हैं; तुम एक रासायनिक रूपांतरण में से गुजरते हो। तुम्हारी आँखें साफ हो जाती हैं, एक नई संवेदन क्षमता घटती है। वही पुराना वृक्ष एकदम नया हो जाता है। तुम कभी न जान पाए थे इसकी हरीतिमा। यह आलोकित हो जाता है। तुम्हारे चारों ओर का सारा संसार नया रूप ले लेता है। अब यह एक स्वर्ग हो जाता है; वही साधारण पुराना रद्दी संसार नहीं रहता।

तुम्हारे चारों ओर के लोग अब वही नहीं रहे। तुम्हारी साधारण स्त्री सबसे सुंदर स्त्री हो जाती है। तुम्हारी अनुभूति की स्पष्टता के साथ ही हर चीज़ बदल जाती है। जब तुम्हारी दृष्टि बदलती है, तो हर चीज़ बदल जाती है।

पतंजलि कहते हैं, 'जब ध्यान अतींद्रिय संवेदना जगाता है, तो आत्मविश्वास प्राप्त होता है और यह बात मदद देती है साधना में सातत्य बनाए रखने में।'

जब तुम आश्वस्त हो जाते हो कि तुम सम्यक मार्ग पर हो। संसार और–और सुंदर हो रहा है, असुंदरता तिरोहित हो रही है। संसार अधिकाधिक एक घर बन रहा होता है। तुम इसमें और ज़्यादा निश्चिंत अनुभव करते हो। यह मित्रता से भरा होता है। तुम्हारे और ब्रह्मांड के बीच एक प्रेम–क्रीड़ा चलती है। तुम ज़्यादा आश्वस्त, ज़्यादा आत्मविश्वासी होते हो, और ज़्यादा धैर्य चला आता है तुम्हारे प्रयास में।

कई बार साधक मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हमने ध्यान में बड़ी उत्सुकता ली। थोड़े दिन तक हमने ध्यान प्रयोग किये। फिर पता नहीं क्यों हमारी साधना छूट गई। फिर दो–चार महीने बाद ख़्याल आया कि अरे! ध्यान छूट गया। फिर दुबारा शुरू कर दिया। फिर दस–पाँच दिन किया... फिर छूट गया। लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि ऐसा क्यों होता है, हम सतत ध्यान क्यों नहीं कर पाते?

उसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है कि जब तक तुम्हें ध्यान में अतींद्रिय अनुभव न होने लगे, साधना में सातत्य नहीं बन पाएगा; वो जो निरंतर प्रयास कंटिन्युअटि ऑफ एफर्ट्स चाहिए, वो पैदा नहीं हो पाएगी; ध्यान छूट छूट जाएगा। क्योंकि पारलौकिक अनुभवों के बगैर कोई रस तो उसमें आ नहीं रहा, तुम्हें कोई मील का पत्थर तो मिला नहीं, तुम्हें कुछ अंदाज नहीं कि तुम चले भी हो या नहीं चले हो, या कोल्हू के बैल की तरह गोल–गोल घूम रहे हो? कहीं पहुंचना हो भी रहा है कि नहीं? मंज़िल का जब तक एहसास न हो तब तक साधक साधनापथ पर नहीं चल पाता।

आज के सूत्र में पतंजलि कहते हैं–

विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति निबंधिनी

जब इस प्रकार के अतींद्रिय अनुभव होने लगते हैं, जब तुम भीतर सुनने लगते हो, भीतर देखने लगते हो, भीतर की दिव्य गंध तुम्हें आने लगती है, अपने ही भीतर एक अद्भुत दिव्य स्वाद आने लगता है, भीतर स्पर्श होने लगता है; तब तुम्हें पक्का हो जाता है कि तुम परमात्मा की तरफ़ बढ़ रहे हो। तब तुम्हारे पैरों में एक आत्मबल, एक आत्मविश्वास पैदा होता है। तब तुम बलपूर्वक आगे बढ़ सकते हो; तुम्हें पता है कि मंज़िल बहुत निकट है।

दिव्य अनुभवों से जगता है प्रबल आत्मविश्वास
साधक पथ पर यूँ चलता ज्यूँ मंज़िल बिल्कुल पास।

जैसे पाँच ज्ञानेंद्रियां बाहर हैं संसार को जानने के लिए, ठीक वैसे ही पाँच ज्ञानेंद्रियां हमारे भीतर हैं परमात्मा को जानने के लिए। परमात्मा की भी एक ध्वनि है। संतों ने उसे अनाहत नाद या ओंकार कहा है। अत्यंत सूक्ष्म ध्वनि बड़े ग़ौर से सुनोगे, जागरूकता से, तो ही सुनाई देगी। ठीक वैसे ही भीतर का शांत श्यामल आलोक है; बाहर के चकाचौंध वाले प्रकाश जैसा नहीं; अत्यंत शीतल, अत्यंत मद्धिम– बड़ी सजगता के साथ देखोगे तो ही दिखाई पड़ेगा। लेकिन एक बार दिखाई पड़ गया... तब तुम्हें पता चल गया परमात्मा के प्रकाश स्वरूप का... फिर तुम्हारी गति बड़ी तीव्र हो जाएगी, फिर तुम विश्वासपूर्वक आगे चले चलोगे। वो जो श्रद्धा और आत्मविश्वास जागता है, वह अतींद्रिय अनुभवों से ही जागता है। उसके पहले तुम अपनी तरफ़ से साधना तो करते हो, लेकिन कुछ प्राप्ति तो हो नहीं रही और इसीलिए साधना बार–बार छूट–छूट जाती है। दुनिया में ऐसे लाखों लोग हैं जो आध्यात्मिक साधना की शुरुआत तो करते हैं, किन्तु थोड़े दिन के बाद उनका रस समाप्त हो जाता है। आरंभ में साधना में रस नहीं आता। इसलिए साधना के साथ–साथ एक अनिवार्य तत्त्व है– वो है धीरज। धैर्य रखना होगा... पहले ही दिन से, या चार छह दिन में, कि हफ़्ते दो हफ़्ते में वह रस नहीं आने लगेगा। धीरे–धीरे अतींद्रिय क्षमता जागेगी।

मैने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उसे बारंबार मना करती थी कि तुम शराब पीना बंद करो। डॉक्टर मना कर रहे हैं; तुम्हारा लिवर खराब हो रहा है, तुम्हारे हाथ पैर कांपने लगे हैं, डाइजैस्चन ठीक नहीं रहता, शराब पीना बंद करो। लेकिन नसरुद्दीन सुनता नहीं था। पत्नी भी पीछे ही पड़ी रहती। आख़िर एक दिन पत्नी बहुत तंग आ गई। उसने कहा– तुम डॉक्टर की सलाह पर भी नहीं चलते, तो निश्चित रूप से शराब बहुत ही अच्छी चीज़ होगी। चलो फिर आज से मैं भी शुरू करती हूँ। नसरुद्दीन

की पत्नी ने सोचा था कि नसरुद्दीन डर जाएगा... ये सोचकर की मेरी बीवी भी शराबघर जाएगी।

नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा कि जब इतनी अच्छी चीज़ है, तुम छोड़ नहीं रहे, स्वास्थ्य गंवाने को तैयार हो, ज़िंदगी खोने को तैयार हो, पत्नी को छोड़ने के लिए तैयार हो; लेकिन शराब छोड़ने को नहीं। अब इतनी श्रेष्ठ चीज़ तुम पी रहे हो, तो चलो मैं भी तुम्हारे साथ पीयूँगी। अब तो नसरुद्दीन बेचारा कुछ न कह पाया। पत्नी उसके साथ गई शराबघर में। नसरुद्दीन ने ऑर्डर दिया, दो पैग मंगाए। नसरुद्दीन ने पीना शुरू किया। पत्नी ने भी यह सोचकर की बड़ी अच्छी चीज़ होगी, उठाया पैग, और पीया एक घूंट... पहला ही घूंट और शराब की बदबू एवं तीखा, कड़वा स्वाद... उसने गिलास नीचे पटक दिया। उसने कहा यह गंदी, बदबूदार, सड़ी–गली चीज़, यह बे–स्वाद चीज़ तुम पीते हो? नसरुद्दीन ने कहा गुलजान! तुम क्या सोचती थी कि मैं यहाँ कोई मज़े करने आता हूँ!

निश्चित रूप से जब तुम शराब पीना शुरू करते हो... पहले दिन तो अच्छा नहीं लगता, बे–स्वाद है; लेकिन पीते–पीते उसमें स्वाद आने लगता है। जब कोई व्यक्ति पहली बार सिगरेट पीता है; बड़ी मुश्किल होती है, आँखों से पानी आने लगता है, छींक आने लगती है, खांसी आने लगती है, दम घुटने लगता है... लेकिन यही व्यक्ति एक दिन सिगरेट पीते–पीते उसका आदी हो जाता है, तब उसको इसमें सुख आने लगता है। फिर सिगरेट के धुएँ में उसे बू नहीं आती, बल्कि सुगंध जान पड़ती है।

यही मैं कहना चाहता हूँ; जैसे बाहर के मादक द्रव्य शुरुआत में अच्छे नहीं लगते, किन्तु धीरे–धीरे उनमें रस आना शुरू हो जाता है। जब आपने पहली बार कॉफ़ी पी होगी, तो निश्चित रूप से आपको कॉफ़ी अच्छी नहीं लगी होगी। लेकिन जो लोग कॉफ़ी पीते हैं, धीरे–धीरे इसके अडिक्टिड हो जाते हैं। फिर बिना कॉफ़ी के रह नहीं पाते। ठीक यही स्थिति ध्यान साधना की है। शुरुआत में कोई ध्यान करने बैठता है, तो अपने चंचल मन को ही भीतर पाता है... यहाँ से वहाँ भाग दौड़ करता हुआ... कुछ रस नहीं आता। लगता है व्यर्थ ही समय गंवा रहे थे, क्यों बेकार बैठे रहे इतनी देर तक? इससे अच्छा कुछ और काम–धाम करते। लेकिन धीरे–धीरे जब मन निर्विचार होने लगता है, कुंभक करते–करते मन शांत होने लगता है। तब तुम्हें भीतर एक ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है... ओंकार का संगीत तुम्हारे भीतर गूँजने लगता हैं और तब बड़ा रस आने लगता है। फिर तुम्हें यकीन हो जाता है कि मंज़िल बिल्कुल पास है।

हमारा आश्रम है नेपाल में चितवन में। वहां से हिमालय दिखाई पड़ता है... दूर हिमाच्छादित शिखर। ठीक वैसे ही पंजाब में पठानकोट के पास माधोपुर में हमारा

आश्रम है, वहाँ से भी कश्मीर का और हिमाचल प्रदेश का हिमालय नज़र आता है; यद्यपि सैंकड़ों किलोमीटर दूर है; लेकिन एक बार हिमाच्छादित शिखर तुम्हें दिख गए, सुबह की धूप में चमकते हुए उज्ज्वल शिखर, तो राही को भरोसा हो जाता है कि हिमालय है और तब वहाँ पहुंचना आसान हो जाता है। दो बातें कन्फर्म हो गईं– पहली कि हिमालय है और दूसरी बात उसकी दिशा भी पता चल गई... किस दिशा में है?

जब तक तुमने हिमालय देखा नहीं था तब तक बड़ा मुश्किल है। कैसे पक्का भरोसा हो कि हिमालय जैसी जगह है भी या नहीं। एक बार दिख जाने के बाद पैरों में दम आ जाता है; ठीक उसी प्रकार एक बार ओंकार की ध्वनि सुनाई देने लगे, एक बार भीतर का शांत प्रकाश दिखाई देने लगे, एक बार तुम्हारे नासापुट अंदर की दिव्य सुगंध से भर जाएं, एक बार तुम्हारे मुँह में वह दिव्य रस, वह दिव्य स्वाद आ जाए, एक बार तुम परमात्मा का स्पर्श कर लो, उसके आलिंगन में आ जाओ; फिर यात्रा बड़ी आसान है, फिर तुम रुक न सकोगे, फिर तो ध्यान स्वयं ही तुम्हें खींचने लगेगा। सौ बातों की एक बात यह कि एक समय ऐसा होता है जब साधक को अपनी तरफ से ध्यान में मेहनत करनी पड़ती है। फिर ऐसा समय आता है– अतींद्रिय अनुभवों के पश्चात– ध्यान का आकर्षण ही तुम्हें खींचने लगता है।

एक उदाहरण से समझो। एक चुंबक रखा हुआ है, और एक लोहे का टुकड़ा उससे बहुत दूर है। पहले तो लोहे के टुकड़े को स्वयं ही चुम्बक की ओर चलना होगा; लेकिन एक सीमा के बाद जब वह चुम्बक के मैगनेटिक फील्ड के अंतर्गत आ गया, उसके चुंबकीय क्षेत्र में प्रवेश कर गया, उसके बाद चुंबक ही उसे खींचने लगेगा। तो एक हद तक लोहे के टुकड़े का स्वयं का प्रयास ज़रूरी है और एक सीमा के बाद चुंबक का आकर्षण ही उसे खींचने लगता है।

अतींद्रिय क्षमता या जिन्हें हम दिव्य अनुभूतियां कहते हैं डिवाइन एक्सपिरियंसिज, वे चुंबक का काम करते हैं। जब तक तुम्हें दिव्य अनुभूतियां न होने लगें, अपनी तरफ से प्रयास किये जाना, साधना का श्रम किये जाना। एक बार दिव्य अनुभूतियां शुरू हो गईं; फिर तो तुम्हें कोई रोक न सकेगा। फिर तो उनका इतना प्रबल आकर्षण होगा कि तुम्हें स्वयं ही भीतर को खींचेगा। क्योंकि दो बातें तय हो गईं... एक बात पक्की हो गई कि परमात्मा है, वह सूक्ष्म अलौकिक लोक है और दूसरी बात पक्की हो गई कि वह तुम्हारे ही भीतर है, तुम्हारे ही प्राणों के केंद्र में है। आज के पतंजलि के सूत्र बड़े उपयोगी हैं साधना में सातत्य रखने के लिए।

दिव्य अनुभवों से जगता है प्रबल आत्मविश्वास
साधक पथ पर यूँ चलता ज्यूँ मंज़िल बिल्कुल पास।

धन्यवाद। जय ओशो।।

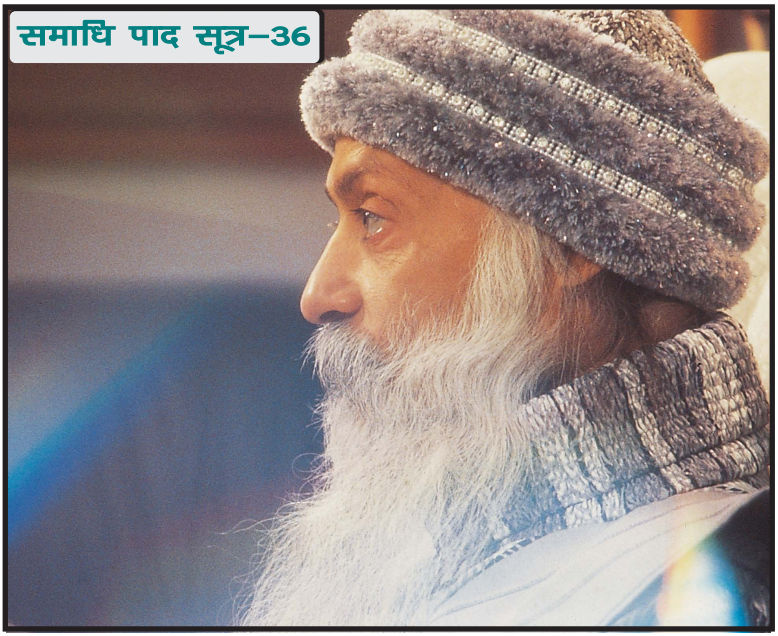

दुःखों का अंत कहां

विशोका वा ज्योतिष्मती।। 36 ।।

एक बार जब दिखने लगता भीतर शांत प्रकाश
मन हो जाता मगन देखकर शोकांतक आकाश।

योगसूत्र के आज छत्तीसवें सूत्र में पतंजलि कहते हैं– 'जब भीतर वह शीतल शांत प्रकाश दिखाई देने लगता है, तब सारे दुःखों का अंत हो जाता है।

एक आकाश बाहर है– विराट, अनादि और अनंत– उससे भी ज़्यादा असीम आकाश हमारे भीतर है। एक बार अंतर्आकाश के दर्शन होने लगें, तो बहिर्आकाश फीका पड़ जाता है।

पीछे हमने बात की थी अनाहत नाद की, ओंकार की ध्वनि की– वह प्रथम दिव्य अनुभव है जो साधक को होता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण दिव्य अनुभव है– अन्तस के आकाश में शीतल प्रकाश का दिखना... एक बार भीतर की ज्योति, भीतर की लौ, भीतर का आलोक प्रकट हो जाए, परमात्मा के प्रकाश के दर्शन हो जाएं, फिर साधना में बड़ी गति आ जाती है। तुम दुगुनी, चौगुनी गति से आगे बढ़ने लगते हो; जैसे चुंबक

लोहे के टुकड़े को खींचने लगे। पतंजलि कहते हैं–

'विशोका वा ज्योतिष्मती।'

एक बार वह ज्योति प्रकट हो जाए! जब तक वह प्रकट नहीं हुई तब तक तो हमारा जीवन अंधेरे–अंधेरे में ही है। किसी कवि ने लिखा है–

दीया जले सारी रात, दीया जले सारी रात
पहने सिर पर ताज अगन का, भेदी मेरी दिल की जलन का
लाया है इस अंधियारे घर में, अंसुवन की सौगात
दीया जले सारी रात।
जल–थल, जल–थल भीगी पलकें,
पलक–पलक मेरे आँसू छलकें
बरस रही दो नैनन से, बिन बादल बरसात
दीया जले सारी रात।
टूट गये क्यों प्यार पुराने, मैं जानूं या दीपक जाने
जलते–जलते जल जाए, पर कहे न दिल की बात
दीया जले सारी रात।
भूल गई मोहे सब रंग रलियां,
बिखर गई आशा की कलियां
ऐसी चली विरह की आंधी, डाल रहे न पात
दीया जले सारी रात, दीया जले सारी रात।

एक जो बाहर का दीया है, उससे दुःख मिटते नहीं, विरह की रात और लंबी जान पड़ती है। भूल गई मोहे सब रंग रलियां, बिखर गई आशा की कलियां, ऐसी चली विरह की आंधी, डाल रहे न पात, दीया जले सारी रात।

भीतर के प्रकाश और बाहर के प्रकाश का भेद समझना। बाहर का जो भी प्रकाश है उसका कोई स्रोत होता है। चाहे वह दीया हो, सूरज हो, या चांद तारे हों; उसका कोई न कोई स्रोत होता है, सोर्स होता है। और निश्चित रूप से जिसका कोई स्रोत है, वह एक दिन नष्ट भी हो जाएगा। दीया रातभर जलता है छोटा–सा है, सूरज बहुत बड़ा है पृथ्वी से 60 हजार गुणा बड़ा। वैज्ञानिक अनुमान लगाते हैं कि करीब दस अरब साल पहले सूरज का निर्माण हुआ। लेकिन याद रखना! रोज़–रोज़ सूरज की रोशनी कम होती जा रही है और एक दिन ऐसा आएगा कि सूरज बुझ जाएगा। ब्लैकहोल में कहीं समा जाएगा। कोल्ड स्टार बन जाएगा। प्रकाश का कितना भी बड़ा स्रोत हो, एक दिन चुक जाएगा। उसके भीतर जो ईंधन है, वह रोज़–रोज़ कम होता जा रहा है। शनैः शनैः सूरज समापन की ओर जा रहा है।

अतः बाहर का जो प्रकाश है उसका सदा ही कोई स्रोत होता है और स्रोत अनंत नहीं हो सकता। भीतर का जो प्रकाश है वह स्रोत रहित प्रकाश है। इसीलिए वह अनादि और अनंत है। न तो कोई उसका उद्गम है जहाँ से वह शुरू हो रहा हो और न ही वह किसी दिन समाप्त होगा। जो चीज़ शाश्वत है, सनातन है; केवल वही शोक का अंत करने वाली हो सकती है। बाहर की रोशनी जो स्वयं ही क्षणभंगुर है वह हमारे शोक का अंत कैसे करेगी? हमारे जीवन के दुःखों का कारण ही यह है कि हम उन चीज़ों से प्रेम करते हैं जो स्वयं ही मिट जाने वाली हैं। चाहे वह कोई व्यक्ति हो अथवा कोई वस्तु हो या कोई स्थान हो; वे स्वयं ही मिट जानेवाले हैं। उनसे हमारा लगाव है और इसीलिए हम दुःखी होते हैं। जब तक शाश्वत और सनातन से हमारा नाता न जुड़े तब तक जीवन में परमानंद नहीं हो सकता।

पतंजलि कहते हैं– एक बार भीतर का वह शांत, शीतल, मद्धिम प्रकाश दिखने लगे, जो सनातन और शाश्वत है, जिसकी न शुरुआत है न कोई समापन, तब सारे दुःखों का अंत हो जाता है।

इस प्रकार ओंकार की ध्वनि का सुनाई पड़ना, भीतर के प्रकाश का दिखाई देना, ये दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण मील के पत्थर हैं अध्यात्म के साधनापथ पर। इसलिए ओशोधारा के जो कार्यक्रम हैं, उनमें सबसे पहले हम ओंकार की ध्वनि सुनवाते हैं साधकों को। सुरति समाधि में उसके श्रवण में डुबाते हैं और उसके पश्चात निरति समाधि में परमात्मा के प्रकाश का अनुभव कराते हैं। धीरे–धीरे एक एक क़दम आगे बढ़ते हैं। जब साधक परमात्मा की ध्वनि एवं परमात्मा के आलोक से परिचित हो जाता है; तब समय आता है अमृत समाधि में प्रभु के अमृत रूप को जानने का। इसके बाद दिव्य समाधि में– परमात्मा की दिव्य ऊर्जा, परमात्मा का दिव्य स्वाद, परमात्मा की दिव्य सुगंध और परमात्मा की दिव्य खुमारी– इन चार आयामों को साधक जान पाता है। धीरे–धीरे एक–एक क़दम आगे बढ़ते चले जाते हैं, परमात्मा में डूबते चले जाते हैं, लीन होते चले जाते हैं; उस आंतरिक प्रकाश को जानना जीवन में एक बड़ा क्रांतिकारी मोड़ है। इस संबंध में ओशो कहते हैं–

उस आंतरिक प्रकाश पर भी ध्यान करो, जो शांत है और सभी दुखों से बाहर है।

ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जब तुमने संवेदनक्षमता की एक निश्चित गुणवत्ता प्राप्त कर ली होती है। तब आँखें बंद कर सकते हो और पा सकते हो उस अग्नि को– हृदय के पास की वह सुंदर अग्निशिखा– एक नीला प्रकाश। लेकिन बिलकुल अभी तो तुम उसे नहीं देख सकते। वह है वहां; वह सदा से ही है वहां। जब तुम मरते हो तब वह नीला प्रकाश तुम्हारे शरीर से बाहर चला जाता है। लेकिन तुम उसे

नहीं देखते तब, क्योंकि जब तुम जीवित थे तब नहीं देख सकते थे उसे।

और दूसरे भी नहीं देख पाएंगे कि कोई चीज़ बाहर जा रही है, लेकिन सोवियत रूस में किरलियान ने बहुत संवेदनशील फिल्म द्वारा तस्वीरें उतारी हैं। जब कोई व्यक्ति मरता है तब कुछ घटता है उसके चारों ओर। कोई जीव ऊर्जा, कोई प्रकाश जैसी चीज़ छूट जाती है, चली जाती है और तिरोहित हो जाती है ब्रह्मांड में। प्रकाश सदा है वहां; वह तुम्हारे अस्तित्व का केंद्र बिंदु है। यह हृदय के समीप होता है एक नीली ज्योति के रूप में।

जब तुम्हारे पास संवेदनशीलता हो तब तुम देख सकते हो तुम्हारे चारों ओर के सुंदर संसार को– जब तुम्हारी आंखें साफ होती हैं। फिर तुम उन्हें बंद कर लेते हो और हृदय के ज़्यादा करीब बढ़ते हो। तुम जानने का प्रयत्न करते हो वहां क्या है। पहले तो तुम अंधकार अनुभव करोगे। यह ऐसा है जैसे तुम किसी गरमी के दिन बाहर के तेज प्रकाश से कमरे के भीतर आ जाओ, और तुम अनुभव करो कि हर चीज़ अंधकारमयी है। लेकिन प्रतीक्षा करना। अंधकार के साथ आंखों को समायोजित होने दो, और जल्दी ही तुम देखने लगोगे घर की चीज़ों को।

तुम लाखों जन्मों से बाहर ही रहे हुए हो। जब तुम पहली बार भीतर आते हो तो वहां अंधकार और शून्यता के सिवाय कुछ नहीं होता। लेकिन प्रतीक्षा करना। कुछ दिन लगेंगे इसमें। कुछ महीने भी लग सकते हैं। लेकिन प्रतीक्षा करना। आंखें बंद कर लेना और भीतर झांकना हृदय में। अकस्मात एक दिन यह घटता है। तुम देख लेते हो प्रकाश को, उस ज्योति को। तब एकाग्रता करना उस अग्नि की ज्योति पर।

और कुछ इससे ज़्यादा आनंदमय नहीं। और कुछ भी ज़्यादा नृत्यपूर्ण और गानपूर्ण नहीं है। और कुछ भी तुम्हारे हृदय के भीतर इस अंतरप्रकाश से ज़्यादा संगीतपूर्ण या सुसंगत नहीं होता है। और जितने ज़्यादा तुम एकाग्र होते हो उतने ज़्यादा तुम हो जाते हो शांतिमय, मौन, प्रशांत, एकजुट। फिर तुम्हारे लिए कहीं कोई अंधकार नहीं रहता। जब तुम्हारा हृदय प्रकाश से भरा होता है तो समस्त लोक प्रकाश से भरा होता है। इसीलिए 'अंतस के प्रकाश पर भी ध्यान करो, जो उज्ज्वल और शांत है और सभी दुखों के बाहर।'

मन के सारे दु:ख समाप्त हो जाते हैं, सारी पीड़ाएं विदा हो जाती हैं। भीतर का यह जो प्रकाश है। है तो यह रंगहीन द कलरलैस कलर। जैसे भीतर की ध्वनि साउंडलैस साउंड है ठीक वैसे ही अंतस का प्रकाश कलरलैस कलर है। किन्तु हमारे सूक्ष्म शरीर में जो सात चक्र हैं उनसे गुज़रकर मन के प्रिज़्म से गुज़रकर यह दिव्य आलोक सात रंगों में बंट जाता है। सहस्त्रार से जब देखो तो यह वायलट कलर का है।

मूलाधार चक्र से जब देखो तो लाल रंग का है। लाल से लेकर बैंगनी तक जैसे इन्द्रधनुष में सात रंग होते हैं; ठीक इसी प्रकार भीतर के इस आलोक में भी सात रंग विभिन्न साधकों को दिखाई पड़ते हैं। समय–समय पर यह रंग बदलते हैं। यह निर्भर करता है कि उस समय मुख्य रूप से हमारी जीवन ऊर्जा किस केन्द्र पर है। जो व्यक्ति भक्तिभाव में जीते हैं, हार्ट सेंटर्ड हैं, अनाहत चक्र में उनकी ज़्यादा ऊर्जा बहती है, वे भीतर के प्रकाश को हरे रंग का देखते हैं। जो व्यक्ति मणिपुर चक्र की साधना करते हैं उन्हें यह प्रकाश पीले रंग का दिखाई देगा। तो सात चक्र हैं; जैसे संगीत में सात सुर होते हैं; ठीक वैसे ही भीतर के आलोक में भी सात रंग होते हैं। जैसे प्रिज़्म से गुज़रकर सूरज की रोशनी सात हिस्सों मे बंट जाती है; ठीक वैसे ही मन के प्रिज़्म से गुज़रकर सात चक्रों से पास होकर भीतर का आलोक भी सात रंगों में बंट जाता है।

मैं निवेदन करूँगा कि आप लोग आएं, निरति समाधि में भाग लें, और तब आप इस भीतर के दिव्य प्रकाश के अलौकिक अनुभव से परिचित होंगे। तब आप जानेंगे कि आप केवल माटी की देह ही नहीं, आप मृण्मय ही नहीं; आप चिन्मय ज्योति हैं।

जिस ज्योति की चर्चा महर्षि पतंजलि कर रहे हैं : 'विशोका वा ज्योतिष्मती'– उस ज्योति को देखकर तुम विशोक हो जाते हो, अशोक हो जाते हो, सारे शोक समाप्त हो जाते हैं, परमानंद घटित होता है। तब तुम अपने आप को शरीर नहीं मानते। मानने का सवाल ही नहीं, तुम जान लेते हो कि तुम दिव्य आलोक हो और तब तुम्हें पता चलता है तुम अमृत स्वरूप हो। शरीर तो मरेगा, मिटेगा; लेकिन यह ज्योति, यह प्रकाश कभी नष्ट नहीं होगा। क्योंकि यह कभी पैदा भी नहीं हुआ। शरीर का जन्म हुआ था; शरीर की मृत्यु भी होगी।

वह जो आंतरिक प्रकाश है वही तुम हो। एक शरीर से दूसरे शरीर में, एक जनम से दूसरे जनम में यात्रा करते जाते हो– वह प्रकाश की ही यात्रा है। तब तुम जानते हो यह सारा जगत प्रकाश से निर्मित है; सबकुछ प्रकाशरूप है। तब तुम्हारा जीवन एक उत्सव हो जाता है, दीवाली हो जाता है। फिर तुम साल में एक दिन दीवाली न मनाओगे; बल्कि तुम्हारे तीन सौ पैंसठ दिन दीवाली ही दीवाली होंगे। प्रकाश ही प्रकाश होगा। प्रकाश का उत्सव होगा 'विशोका वा ज्योतिष्मती'।

'एक बार जब दिखने लगता भीतर शांत प्रकाश
मन हो जाता मगन देखकर शोकांतक आकाश।'

धन्यवाद। जय ओशो।।

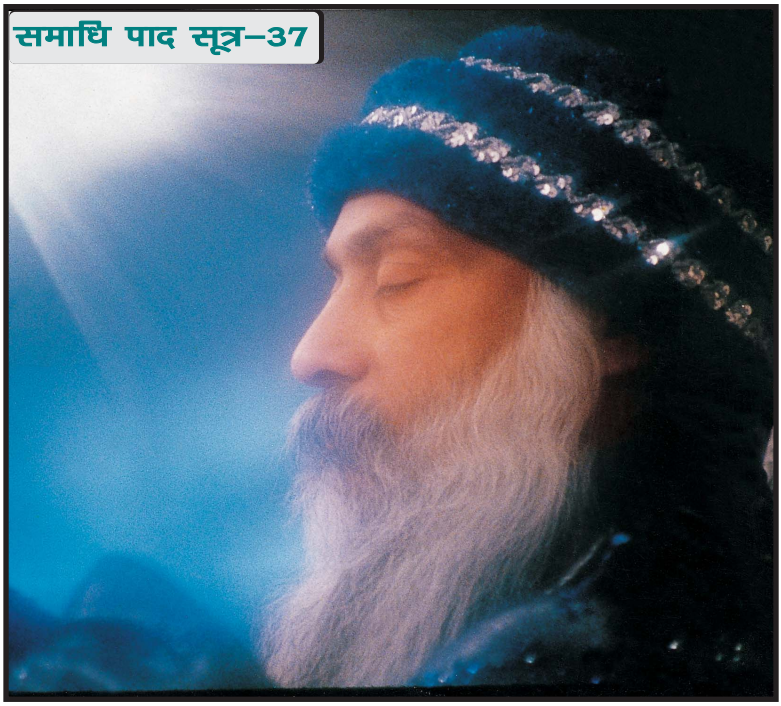

वीतरागियों का संग

वीतरागविषयं वा चित्तम्।। 37 ।।

वीतराग विषयम् वा चित्तम्

वीतराग जो हो गए उनसे, जोड़ो अपना नाता;
पूरा गुरु का ध्यान सहज ही, ले समाधि में जाता।

आज के सूत्र में पतंजलि कहते हैं चित्तवृत्ति से निरोध का एक और बड़ा सरल सुगम उपाय। उनका ध्यान करो जो इच्छारहित हो गए हैं, जो अनासक्त हो गए हैं, जो वीतराग हो गए हैं। हमारे मन के इस नियम को समझना। हम जिसका ख्याल करते हैं हम वैसे ही होने लगते हैं। हम जिस पर ध्यान देते हैं, देर–सवेर हम वही हो जाते हैं।

फिर क्यों न इस नियम का उपयोग करते हुए हम उनके स्मरण से भरें जिन्होंने डिजायरलेसनेस को जाना, जो वीतराग हो गए। इन तीन शब्दों को समझना। एक तो है राग, दूसरा विराग और तीसरा वीतराग। रागी का अर्थ जिसे जीवन के प्रति गहन

आसक्ति है, जीवेष्णा से भरा है, जोर से चीजों को पकड़ता है, मोहग्रस्त है। विरागी इसका ठीक विपरीत है। विरागी का अर्थ है जो चीजों को छोड़कर भागता है, जो प्रेम के नाते को तोड़ता है, संसार का त्याग करता है, जो विरक्त हो गया, वैराग्य से भर गया। राग और विराग ये दो पोलर ऑपजिट्स हैं। ये विपरीत ध्रुव हैं।

ऐसा समझें कि एक आदमी पैरों के बल खड़ा है और वही आदमी फिर शीर्षासन करके खड़ा हो गया। यह आदमी वही का वही है; इसमें कोई रूपांतरण नहीं हुआ। पहले सीधा खड़ा था अब उल्टा खड़ा हो गया। रागी और विरागी में कुछ भेद नहीं है। भोगी और त्यागी में कुछ खास भेद नहीं है। दोनों में एक–सा पागलपन है। एक अति भोजन कर रहा था दूसरा उपवास करने लगा। यह वही का वही आदमी है। कुछ फर्क न पड़ा। पहले यह ज़रूरत से ज़्यादा भोजन करके अपने शरीर को कष्ट दे रहा था; अब यह भूखे रहकर शरीर को कष्ट दे रहा है। पहले इसके अंदर विक्षिप्तता थी। ज़्यादा से ज़्यादा सुख–सुविधा, सामान और संपत्ति जुटाने की, धन–पैसा इकट्ठा करने की; अब इसके भीतर दूसरा पागलपन सवार है कि पैसे को छुऊंगा नहीं, सुख–सुविधा में न रहूंगा, कष्ट में रहूंगा। रागी और विरागी में कोई क्वालिटेटिव डिफ्रेंस नहीं है। वे एक–सी ही चित्तवृत्ति के लोग हैं। आसक्त और विरक्त– देखने में बड़े विपरीत लगते हैं; लेकिन विपरीत हैं नहीं।

एक तीसरा बिंदु है ट्रांसेंडेंटल पोइंट। ऐसा समझें एक त्रिकोण है; उसके नीचे के दो कोण भोगी और त्यागी के हैं, आसक्त और विरक्त के हैं, रागी और विरागी के हैं। वह जो तीसरा बिंदु शीर्षबिंदु है, वह है वीतरागता का। भगवान कृष्ण ने उसके लिए नया शब्द प्रयोग किया है 'अनासक्त'। न तो आसक्त और न ही विरक्त। काश हम उन लोगों के ध्यान से भरें, उनके स्मरण में जिएं जो अनासक्त हो गए, जो वीतराग हो गए! तब धीरे–धीरे हमारे भीतर वही भावदशा निर्मित होने लगती है। हम भी आसक्ति और विरक्ति के पार जाने लगते हैं।

पिछले सूत्रों में पतंजलि ने वर्णन किया अन्य विधियों का। कैसे हम योग की अवस्था में पहुंचें? कैसे चित्तवृत्ति का निरोध हो? आज के सैंतीसवें सूत्र में वे कहते हैं–

'वीतराग जो हो गए उनसे, जोड़ो अपना नाता;
पूरे गुरु का ध्यान सहज ही, ले समाधि में जाता।'

सूफ़ी परंपरा में इसका खूब उपयोग किया गया है। अपने गुरु का ध्यान करो। गुरु जो वीतराग हो गए, गुरु जो अनासक्त हो गए, उनके ध्यान में डूबो। तब तुम पाओगे धीरे–धीरे तुम भी वीतराग होने लगे। राग और विराग से मुक्त होने लगे। सामान्य आदमी गहन राग में जीता है। हमारे चारों तरफ उन्हीं की भीड़ है। उन्हीं पर हमारा ध्यान जाता है। निश्चित रूप से उसका प्रभाव हमपर पड़ रहा है। हम भी वैसे ही हो जाते हैं।

रोज़ सुबह उठकर हम अखबार पढ़ते हैं– हत्याएं, बलात्कार, षड्यंत्र, राजनेताओं की चालबाजियां, आतंकवादियों के उपद्रव। तुम यह मत सोचना कि अखबार पढ़ना सिर्फ अखबार पढ़ना है। इसकी प्रतिछवि कहीं तुम्हारे भीतर बन रही है। जो तुम पढ़ रहे हो, जिस पर तुम ध्यान दे रहे हो; एक दिन तुम भी ऐसे ही हो जाओगे। रोज़–रोज़ पढ़ते–पढ़ते फलाँ व्यक्ति ने हत्या कर दी, अमुक व्यक्ति ने चोरी कर ली, फलाने ने डकैती डाल ली, रिश्वत ले ली... इत्यादि। हो सकता है एक दिन तुम भी रिश्वत लो। क्योंकि तुम्हारे भीतर यह धारणा मजबूत होती जा रही है कि दुनिया में सभी रिश्वतखोर हैं, सब जगह घूस चल रही है। अगर मैंने भी हजार–पांच सौ रुपया घूस ले लिया, तो क्या हर्ज हो गया।

अमेरिका में कुछ साल पहले एक छोटे–से बच्चे ने अपने पिता की पिस्तौल उठाकर घर के लोगों को गोली मार दी। अदालत में उससे पूछा गया कि ऐसा क्यों किया? उसने कहा टीवी में हम दिन भर देखते हैं। हर कोई पिस्तौल चला रहा है, गोली मार रहा है, हत्या कर रहा है। वह छोटा बच्चा... अभी समझता भी नहीं कि हत्या क्या होती है? जीवन–मृत्यु क्या होती है... उसे कुछ पता नहीं। लेकिन टेलीविजन में अपराधों की कहानियाँ देख–देखकर उसे भी शौक चढ़ जाता है कि पिस्तौल चलाकर देखूं क्या होता है? जो हम देखेंगे वैसे ही हम होते जाएंगे... जाने अंजाने में।

पुराने जमाने में धन्यभागी थे वे लोग जो सुबह उठकर गीता पढ़ते थे, उपनिषद का पाठ करते थे। जब तुम उपनिषद का पाठ करोगे, तो उपनिषद के ऋषि के कोई गुण तुम्हारे भीतर प्रवेश करने लगेंगे। जब तुम अनासक्त कृष्ण के वचन दोहराओगे, तुम्हारे भीतर भी अनासक्ति की सुगंध उड़ने लगेगी। जब तुम सुबह उठकर महावीर के वचनों का, बुद्ध के वचनों का पाठ करोगे, तुम्हारे भीतर भी जैनत्व की और बुद्धत्व की सुवास उठने लगेगी। लेकिन सामान्यतः हम बहुत राग से भरे हुए हैं और हमारे चारों तरफ भी उसी प्रकार के रागियों की भीड़ है। अंतिम क्षण तक, मृत्यु के क्षण तक हम मोह को छोड़ नहीं पाते।

मुल्ला नसरुद्दीन को फांसी की सजा हो गयी थी। उसने मजिस्ट्रेट से प्रार्थना की कि मुझे सोमवार की बजाय एक दिन पहले यानी रविवार को ही फांसी लगा दी जाए। मजिस्ट्रेट भी थोड़ा चौंका और पूछा, 'तुम्हें मरने की ऐसी भी क्या जल्दी है?' नसरुद्दीन ने उत्तर दिया, 'मैं नए सप्ताह की शुरुआत एक दुर्घटना से नहीं करना चाहता।' मरने वाला है... अभी भी राग गया नहीं।

हद तो तब हो गई, जब उसे फांसी के तख्ते के पास ले जाया गया, तो उसने तख्ते पर चढ़ने से इंकार कर दिया। सिपाही बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा कि क्या बात है? उसने कहा कि सीढ़ियां बहुत कमजोर मालूम पड़ती हैं। अगर गिर जाऊंगा तो

तुम्हारे हाथ–पैर टूटेंगे कि मेरे! फांसी के तख्ते पर चढ़ना है। सीढ़ियां कमजोर हैं, मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। नयी सीढ़ियां लाओ।

उन सिपाहियों ने कहा– पागल हो गये हो! मरने वाले आदमी को क्या प्रयोजन है?

नसरुद्दीन ने कहा– अगले क्षण का क्या भरोसा! शायद बच जाऊं, तो लंगड़ा होकर मैं नहीं बचना चाहता हूं। और एक बात पक्की है कि जब तक मैं मरा नहीं हूं, तब तक मैं जीने की कोशिश करूंगा। सीढ़ियां नई चाहियें। नयी सीढ़ियां लगायी गयीं, तब वह चढ़ा। फिर भी बहुत संभलकर चढ़ा। जब उसके गले में फंदा लगा ही दिया गया, और मजिस्ट्रेट ने कहा– नसरुद्दीन, तुझे कोई आखिरी बात तो नहीं कहनी है?

नसरुद्दीन ने कहा– यस, आई हेव टु से समथिंग। दिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। यह जो फांसी लगाई जा रही है, यह मेरे लिए एक शिक्षा सिद्ध होगी। मजिस्ट्रेट समझा नहीं। उसने कहा कि– अब शिक्षा से क्या फायदा होगा? नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दोबारा जीवन मिला, तो जिस वजह से फांसी लग रही है, वह काम मैं ज़रा संभलकर करूंगा। दिस इज़ गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। गले में फंदा लगा हो तो भी आदमी दूसरे जीवन के बाबत सोच रहा होता है। दूसरा जीवन मिले तो इस बार जिस भूल–चूक के कारण पकड़े गये हैं और फांसी लग रही है, वह भूल–चूक नहीं करनी है– आगे होशियारी से, संभलकर चलना है।

इतना राग से भरा हुआ व्यक्ति मरते क्षण भी वह यही योजना बना रहा है कि अगले जन्म में अपराध करेंगे, जरा और चालाकी से करेंगे, पकड़े न जाएं। वीतरागियों का ध्यान करो। वे जो राग–विराग से मुक्त हो गए। ओशो कहते हैं–

'जो वीतरागता को उपलब्ध हो चुका है उसका ध्यान करो।'

यह भी! सभी विकल्प पतंजलि तुम्हें दे रहे हैं। वीतराग वह है जो सारी आकांक्षाओं के पार जा चुका होता है– उस पर भी ध्यान करो। महावीर, बुद्ध, पतंजलि या वह जो तुम्हारी पसंद हो– जरथुस्त्र, मोहम्मद, क्राइस्ट या कोई भी, जिसके प्रति तुम लगाव और प्रेम अनुभव करते हो। उसपर ध्यान केंद्रित करो जो आकांक्षाओं–इच्छाओं के पार जा चुका हो। तुम्हारे सद्गुरु पर ध्यान केंद्रित करो जो इच्छाओं के पार जा चुका है। यह कैसे मदद देगा? यह बात मदद देती है, क्योंकि जब तुम ध्यान करते हो उसका जो आकांक्षाओं के पार जा चुका है, तो वह तुम्हारे भीतर एक चुंबकीय शक्ति बन जाता है। तुम उसे तुम्हारे भीतर प्रवेश करने देते हो, वह तुम्हें तुम्हारे से बाहर खींचता है। यह बात उसके प्रति तुम्हारा खुलापन बन जाती है।

यदि तुम ध्यान करते हो उसपर जो आकांक्षाओं के पार जा चुका होता है, तो तुम देर–सवेर उसी की भांति हो जाओगे। क्योंकि ध्यान तुम्हें ध्यान की विषयवस्तु की

भांति ही बना देता है। यदि तुम ध्यान लगाते हो धन पर, तो तुम धन की भांति हो जाओगे। जाओ और देखो किसी कंजूस को– उसके पास अब आत्मा नहीं बची है। उसके पास केवल बैंक–बैलेंस है; भीतर कुछ नहीं है उसके। यदि तुम ध्यान से सुनो, तुम सिर्फ सुनोगे नोटों, रुपयों की आवाज। तुम न सुन पाओगे हृदय की किसी धड़कन को।

जिस किसी पर तुम अपना ध्यान देते हो उसी की भांति हो जाते हो। अतः जागरूक रहना; किसी ऐसी चीज़ पर ध्यान मत देना जिसकी भांति तुम होना ही न चाहते हो। केवल उसी चीज़ पर ध्यान देना जिसकी भांति तुम होना चाहते हो, क्योंकि यही है प्रारंभ। बीज बो दिया गया है ध्यान सहित, और जल्दी ही वह वृक्ष बन जाएगा।

तुम नरक के बीज बोते हो और जब वे वृक्ष बन जाते हैं तब तुम पूछते हो, 'मैं इतना दुःखी क्यों हूँ?' तुम हमेशा गलत चीज पर ध्यान लगाते हो, तुम हमेशा उस चीज पर ध्यान लगाते हो जो नकारात्मक है। तुम हमेशा ध्यान देते हो दोषों पर; तब तुम दोषपूर्ण हो जाते हो।

दोष पर ध्यान मत देना। सुंदर पर देना ध्यान। क्यों गिनना कांटों को? क्यों नहीं देखते फूलों को? क्यों गिनना रातों को? क्यों नहीं महत्त्व देते दिनों को? यदि तुम केवल रातों को ही गिनते हो, तब दो रातें होती हैं, और केवल एक ही दिन होता है इन दोनों के बीच। यदि तुम दिनों को महत्व देकर उनकी गणना करते हो, तब दो दिन होते हैं और उन दोनों के बीच केवल एक ही रात्रि होती है।

और इससे बहुत अंतर पड़ता है।

यदि तुम प्रकाश होना चाहते हो तो प्रकाश की तरफ देखना। अंधेरे की ओर देखना यदि तुम्हें अंधकार ही होना हो तो।

पतंजलि कहते हैं, 'उसपर ध्यान केंद्रित करो जो वीतरागता को उपलब्ध हो चुका है।'

सद्गुरु खोजना; सद्गुरु को समर्पण करना। उसके प्रति एकाग्र रहना।

जे. कृष्णमूर्ति जी बार–बार कहा करते थे द आब्ज़र्वर बिकम्स द आब्ज़र्वड, तुम जिसका निरीक्षण करोगे, जिसका अवलोकन करोगे, जिस पर ध्यान दोगे तुम वही हो जाओगे। बुराई पर ध्यान मत देना। सदा भलाई पर ध्यान देना। अंधकार पर नहीं, प्रकाश पर ध्यान करना। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' पर ध्यान करना। इसीलिए अध्यात्म में सद्गुरु का बड़ा महत्त्व हो जाता है। सद्गुरु अर्थात् जिसके भीतर सच्चिदानंद का फूल पूरा खिल गया– 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का एक जीवंत उदाहरण। उस पर ध्यान करो; ताकि तुम भी वैसे ही हो जाओ। एक दिन हर शिष्य को सद्गुरु बन जाना है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

बोधपूर्वक निद्रा में प्रवेश

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा।। 38 ।।

स्वप्न निद्रा ज्ञान आलम्बनम् वा

निद्रा के साक्षी हो जाओ, सपने के प्रति जागो;
बोध सहित निद्रा में जाकर, सजग समाधि पाओ।

कहते हैं महर्षि पतंजलि कि नींद के समय भी जागे–जागे सोओ। और जब स्वप्न उतरता है उस समय भी बोधपूर्ण रहो। सामान्यतः तो हम अपनी जागरण की अवस्था में भी जागे हुए नहीं रहते। यह सूत्र तो अति कठिन हो जाएगा! याद रखना! शुरुआत तो करनी होगी जागरण में और ज़्यादा जागने से।

हमारी चेतना की पांच अवस्थाएं हैं– जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधि और मृत्यु के बाद परामृत्यु की अवस्था। आधुनिक मनोविज्ञान ने तीन अवस्थाओं की खोज की है जिसे वे कहते हैं कांशस माइंड, सबकांशस माइंड और अनकांशस माइंड। शेष दो के बारे में अभी पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों को मालूम नहीं। वहां समाधिस्थ लोग हुए ही नहीं जिनका अवलोकन, निरीक्षण किया जा सके। मनोवैज्ञानिक तो अध्ययन कर रहे हैं पागलों का; जिनके चित्त डांवाडोल हो गए हैं, जिनके मन विक्षिप्त हो गए हैं। वे तीन अवस्थाओं में ही जी रहे हैं जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति। जागृति अर्थात् चेतन मन। स्वप्न यानी अर्ध–चेतन मन, उप–चेतन मन और सुषुप्ति यानी अचेतन मन।

चौथी अवस्था जिसे भारत के ऋषियों ने तुरीय अवस्था कहा है। तुरिया का अर्थ होता है चौथी द फोर्थ। वह समाधि की अवस्था है। सुषुप्ति से बहुत कुछ मिलती–जुलती। सुषुप्ति में दो बातें हैं रिलैक्सेशन एंड अनअवेयरनेस। समाधि में एक समानता है, एक भेद है। समाधि में है रिलैक्सेशन प्लस अवेयरनेस। ठीक वैसा ही गहन विश्राम है जैसा कि नींद में होता है। लेकिन एक छोटा–सा फर्क : नींद में हम बेहोश होते हैं, समाधि में हम होशपूर्ण होते हैं। ऐसे होशपूर्ण जैसे कि जागरण में होते हैं और ऐसे विश्रामपूर्ण जैसे कि नींद में होते हैं।

अतः समाधि संयोग है जागृति और सुषुप्ति का। इन चार–पांच अवस्थाओं को समझकर फिर यह बात समझना आसान होगा पतंजलि का यह सूत्र कि काश हम

सोते हुए भी होश को साध सकें। तो रिलैक्सेशन तो वही घट जाएगा, विश्रामपूर्ण अवस्था तो वही बन जाएगी जो नींद में बनती थी; लेकिन भीतर–भीतर होश का एक धागा बना रहेगा। भीतर हम जागे हुए ही रहेंगे। तब हम नींद को भी अपने ऊपर अवतरित होता हुआ देख पाएंगे।

सामान्यतः हम ज़िंदगी में करीब–करीब एक तिहाई जीवन सोते हैं। चौबीस घंटे में से लगभग आठ घंटे। एक आदमी अगर नब्बे साल जीता है तो कम से कम तीस साल तो उसके सोने में गुजरते हैं, तीस साल लंबा वक्त है और हमें नींद के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं। मैं आपसे पूछूं कि बताइए नींद क्या है? नींद में क्या होता है? आप कुछ भी न बता सकेंगे। क्योंकि उस समय आप पूरी तरह मूर्छित हो जाते हैं। तीस साल जिस नींद में आप रहे उसके बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं। काश हम बोधपूर्वक नींद में जा सकें।

पतंजलि बड़ी अद्भुत विधि दे रहे हैं चित्तवृत्ति से निरोध की। क्योंकि चित्त की सारी वृत्तियां तभी चलती हैं जब हम बोधपूर्ण न हो। यदि हम बोधपूर्ण हो जाएं, स्वप्न देखते–देखते अचानक अगर हमें होश आ जाए कि यह स्वप्न है, स्वप्न तुरंत टूट जाएगा। स्वप्न को चलाए रखने के लिए बेहोशी बहुत आवश्यक है। मनोविज्ञान जिन स्वप्नों का अध्ययन करता है वे स्वप्न कूड़ा–कचरा हैं। वे कोई गहरे स्वप्न नहीं हैं।

ओशो ने पांच प्रकार के स्वप्नों का वर्णन किया है। सबसे ऊपर सुपरफिशल लेयर जो सपनों की है वह तो दिन भर की धूल–धमास है। दिनभर में जो घटनाएं घटीं, उन्हीं के कुछ इंप्रेशन्स, उनके कुछ इंपैक्ट, उनकी कुछ छाप हमारे मन पर रह गई... वह भीतर चलती है।

मैंने सुना है कृपण–शिरोमणि महाकंजूस सेठ चंदूलाल ने चाय की चुस्की लेते हुए पत्नी को बताया, आजकल रात में मुझे अजीब–अजीब सपने दिखते हैं। कभी मैं तुम्हारे लिए हीरे जड़े जेवरों का सेट खरीदता हूं, कभी बेशकीमती साड़ियों की दुकान में स्वयं को घुसते देखता हूं। बात क्या है? पत्नी ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, बात सिर्फ यह है कि तुम केवल सपनों में ही ठीक–ठीक बातें सोच पाते हो।

सामान्यतः जो स्वप्न हैं वे दिन के ही इंप्रेशन हैं। इससे और थोड़ा गहरा स्वप्न है वह अधूरी वासनाओं का स्वप्न है। दिन में जो काम हम पूरे नहीं कर पाए, दिन में हम सोच रहे थे कुछ काम करने की, कोई कामना, कोई वासना मन में उठी किंतु सभ्यतावश, संस्कृतिवश हम नहीं कर पाए। वे चीजें रात को हमारे मन को घेर लेंगी। वह दूसरे प्रकार का स्वप्न है। उससे गहरा और तीसरे प्रकार का स्वप्न है; वह संबंधित है भविष्य से। भविष्य की कोई झलक हमें स्वप्न में मिल जाती है। चौथे प्रकार का स्वप्न है अतीत से संबंधित। कभी–कभी पिछले जन्मों की स्मृति हमारे सपनों में आ जाती है।

और पांचवें प्रकार का स्वप्न है हमारी आवश्यकताओं से संबंधित। शरीर की आवश्यकताएं हैं। तुम अगर भूखे पेट सोये हो, हो सकता है तुम रात को सपना देखो कि किसी सम्राट ने तुम्हें भोजन पर निमंत्रित किया है कि किसी शादी की पार्टी में तुम गए हो और बड़े पकवान खा रहे हो। यह शरीर की आवश्यकताओं से संबंधित है।

ये पांच प्रकार के स्वप्न हैं जिनमें हम डोलते हैं। लेकिन अगर हम जागरूक हो जाएं स्वप्न में, तब हम इनके भीतर के भेद को भी समझ पाएंगे। सामान्यतः तो हम इनके भेद को भी नहीं समझ पाते। हमें सभी सपने एक–से जान पड़ते हैं। हम अंतर नहीं कर पाते कि वास्तव में कोई पिछले जन्म की याद है, भविष्य की कोई झलक है या मेरी कोई अधूरी वासना है या शरीर की कोई ज़रूरत है या दिन भर की घटनाओं का धूल–धमास। वह जो गर्द मेरे मन पर इकट्ठी हो गई है उसका मैंने सपना देखा है।

मैंने सुना है चंदूलाल की बीवी को सिर में सिर में चोट आई गिरने के कारण। अस्पताल में भर्ती थी। चंदूलाल ने घबराते हुए पूछा– 'डॉक्टर साहब, क्या आपको विश्वास है कि मेरी पत्नी बच जाएगी? वह होश में कब तक आएगी?'

डॉक्टर ने कहा– 'आप उसकी नहीं, अपनी चिंता कीजिए। आपकी पत्नी बेहोशी में बड़बड़ा रही थी कि अगर मैं बच गई, तो तुझे जिंदा नहीं छोडूंगी कमीने।'

अधूरी वासना कहीं पत्नी के मन में है कि पति को समाप्त कर दे। शायद होश की अवस्था में वह न कह पाए यह बात, नींद में कह पा रही है, बेहोशी में कह पा रही है।

मैंने सुनी है मुल्ला नसरुद्दीन की कहानी। एक अंधेरी रात में एक गांव के पास से गुज़र रहा था। चार चोरों ने उस पर हमला कर दिया। वह जी–तोड़ लड़ा, वह इतनी बुरी तरह लड़ा कि अगर वे चार न होते तो एकाध की हत्या हो गई होती। वे चार थोड़ी ही देर में अपने को बचाने में लग गये, आक्रमण तो भूल ही गये। फिर भी चार थे। बामुश्किल घंटों की लड़ाई के बाद किसी तरह मुल्ला पर कब्जा कर पाये। और जब उसकी जेब टटोली तो केवल एक पैसा मिला। वे बहुत हैरान हुए कि मुल्ला अगर एकाध आना तुम्हारे खीसे में रहता तो हम चारों की जान की कोई खैरियत न थी। एक पैसे के लिए तुम इतना लड़े! हद कर दी! हमने कभी तुम्हारे जैसा आदमी नहीं देखा। चमत्कार हो तुम!

मुल्ला ने कहा कि उसका कारण है। पैसे का सवाल नहीं है। आइ डोंट वांट टु एक्सपोज माइ पर्सनल फाइनैंशल पजिशन टु स्ट्रेंजर्स। मैं अजनबियों के सामने अपनी माली हालत बिल्कुल प्रगट नहीं करना चाहता हूं, बस और कोई कारण नहीं है। यह सवाल माली हालत की पोल खुल जाने का है, और तुम ठहरे अजनबी। सवाल पैसे का नहीं है; सवाल पैसे के मूल्य का है। एक पैसा है कि करोड़, यह सवाल नहीं है। अगर

पैसे का मूल्य है तो एक में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। और अगर करोड़ में मूल्य है तो एक में भी मूल्य होगा।

सामान्यतः तो हम जीवन को भी ऐसे जी रहे हैं जैसे वह सत्य हो; जबकि ऋषि कहते हैं जीवन है मायावत, स्वप्नवत। हम तो एक–एक रुपये में अपनी जान लगाके बैठे हैं। छोटी–छोटी क्षुद्र चीजों में अपने प्राण जोड़ दिए हैं। बचपन में आपने कहानी सुनी होगी न! कि किसी राजा ने अपने प्राण किसी तोते में रख दिए। वह तोता कहीं दूर है। अब इस राजा को कोई मारे, काटे, तलवार चलाए इस राजा की जान नहीं जाएगी; क्योंकि उसकी जान तोते में सुरक्षित है। लेकिन अगर कोई तोते की गर्दन मरोड़ दे तब यह राजा मर जाएगा। हम सबने भी अपने प्राण किन्हीं–किन्हीं तोतों में बिठा रखे हैं। किसी ने तिजोरी में, किसी ने प्रेमपात्र में, किसी ने राजनीति में, किसी ने अपनी इज्जत में, मान–मर्यादा में। न जाने कहां–कहां हमने अपनी जान दांव पर लगा रखी है? हम उनको बहुत सत्य मान रहे हैं।

पतंजलि के सूत्र का अगर तुमने पालन किया। रात को सोते समय जागरूक होकर सोए, तब तुम पाओगे स्वप्न तो विदा हो ही गए; बल्कि एक और विचित्र बात की अनुभूति होगी कि जागृति की अवस्था में जिस संसार को तुम देख रहे थे वह भी स्वप्नवत मालूम होने लगेगा। वह भी माया जैसा आभासित होने लगेगा।

जब आदि शंकराचार्य कहते हैं 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या।' अर्थात परमात्मा सत्य है संसार मायावत है। तो वे किसी सिद्धांत की बात नहीं कर रहे हैं। तुम पतंजलि की इस विधि का प्रयोग करो तुम भी यही पाओगे। संसार स्वप्नवत हो जाएगा। फिर जेब में एक रुपया हो कि एक करोड़, सब स्वप्नवत हो जाएगा। इस सूत्र को समझाते हुए ओशो ने कहा है–

मन है झील जिसमें संसार बन जाता है मायामय, अवास्तविक। तुम बंद आंखों से देखते हो सपना या कि खुली आंखों से इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। यदि मन है वहां, तो सब जो घटता है वह सपना है। यह होगा पहला बोध यदि तुम ध्यान करो स्वप्नों पर।

और दूसरा बोध होगा कि तुम साक्षी हो : सपना मौजूद है पर तुम उसके हिस्से नहीं। तुम हिस्से नहीं हो अपने मन के, तुम हो एक अतिक्रमण। तुम हो मन में, पर तुम नहीं हो मन। तुम देखते हो मन के द्वारा, पर तुम नहीं हो मन। तुम प्रयोग करते हो मन का, पर तुम नहीं हो मन। अकस्मात तुम होते हो साक्षी– मन नहीं रहते। और यह साक्षी अंतिम होता है परम बोध। फिर चाहे तुम सपना देखो जबकि सोए होते हो या कि फिर सपना देखो जबकि तुम जागे होते हो इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, तुम साक्षी बने रहते हो। तुम बने रहते हो संसार में। लेकिन अब संसार तुममें प्रवेश नहीं कर सकता। चीज़े

हैं वहां, लेकिन मन नहीं होता चीज़ों में, और चीज़ें नहीं होतीं मन में। अकस्मात साक्षी उतर आता है और हर चीज़ बदल जाती है।

यह बहुत–बहुत सीधा है यदि एक बार तुम इसका राज़ जान लेते हो, अन्यथा यह लगता है बहुत–बहुत कठिन, लगभग असंभव ही कि कैसे जागो जब सपना चल रहा हो तो? यह लगता है असंभव, लेकिन है नहीं। इसमें लगेंगे तीन से नौ महीने तक यदि तुम हर रात सोने लगो और जब नींद आने लगे तो तुम प्रयत्न करो सचेत होने का।

लेकिन ध्यान रहे सक्रिय ढंग से कोशिश मत करना सचेत होने की अन्यथा तुम सो ही न पाओगे। एक निष्क्रिय होश बन जाना– खुले, स्वाभाविक, विश्रांत, मात्र देखते हुए एक कोने से। इसके बारे में बहुत क्रियाशील नहीं, वरन मात्र निष्क्रिय जागरूकता, बहुत संबंधित नहीं। किनारे बैठे हुए हो, साथ नदी बह रही है। और तुम केवल देख रहे हो। तीन से लेकर नौ महीने लगेंगे इसमें।

फिर किसी दिन नींद तुम पर उतर रही होती है किसी धुंधले आवरण की भांति, काले परदे की भांति, जैसे की सूर्य अस्त हो गया हो और रात उतर रही हो। यह तुम्हारे चारों ओर ठहर जाती है, लेकिन भीतर गहरे में एक लौ जलती रहती है। तुम देख रहे होते हो, मौन निष्कंप हुए। फिर सपनों का संसार प्रारंभ हो जाता है।

तब बहुत नाटक घटते हैं, बहुत से मनोनाटक और तुम देखते चले जाते हो। धीरे–धीरे भेद अस्तित्व में आता है। अब तुम देख सकते हो कि कौन–से प्रकार का सपना देख रहे हो तुम। फिर अचानक एक दिन तुम जान लेते हो कि यह वैसा ही है जैसा जागने के समय होता है। इनकी गुणवत्ता में कोई भेद नहीं। सारा संसार भ्रममय तो हो चुका होता है।

और जब संसार भ्रममय होता है केवल तब साक्षी होता है वास्तविक। यही अर्थ होता है पतंजलि का जब वे कहते हैं, 'उस ज्ञान पर भी ध्यान करो जो आता है निद्रा के समय।'– और वह तुम्हें बना देगा बोधमय व्यक्ति।

बस इसी प्रकार रोज़ रात को सोते–सोते बोधपूर्वक सो जाना। एक दिन तुम रात को जाग जाओगे। एक दिन स्वप्न टूट जाएगा। और संसार स्वप्नवत प्रतीत होने लगेगा। क्योंकि तुम्हारे भीतर साक्षी चैतन्य का एहसास तुम्हें होने लगेगा।

चित्तवृत्ति का निरोध हुआ कि तुम्हारे भीतर परम–योग घटा।

धन्यवाद। जय ओशो।।

जो तुमको हो पसंद...

यथाभिमतध्यानाद्वा।। 39 ।।

यथा अभिमत ध्यानात् वा

जो भी प्रिय हो वस्तु, या कि सुंदर हो कोई चेहरा;
ध्यान उसी से शुरू करो, जाओ समाधि में गहरा।(39)

अथवा जिसको जो अभिमत (रुचिकर) हो उसके ध्यान से मन की स्थिति बंधती है।

समाधिपाद के उनतालीसवें सूत्र में पतंजलि एक अद्भुत रहस्य बताते हैं कि अपने चित्त का ही उपयोग कर लो, चित्त के पार जाने में। अपने मन का ही उपयोग कर लो मन की वृत्तियों से मुक्त होने में।

इस मन की सामान्य वृत्ति क्या है? जिससे भी हमारा लगाव होता है, जिससे भी हमारा प्रेम होता है उसके प्रति हमारा ध्यान आकर्षित होता है। काश हम उसी से अपनी ध्यान की शुरुआत करें! आकार से शुरू करें और हम निराकार में पहुंच जाएंगे। जो रूप तुम्हें प्रिय लगता है, तुम उसी रूप पर एकाग्रता साधो। धीरे–धीरे तुम पाओगे कि रूप के भीतर अरूप के दर्शन होने लगे। सामान्यतः ध्यान की साधना करने वाले लोग इसका ठीक उल्टा करते हैं। वे ऐसी चीज़ पर ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं जो मन के लिए प्रीतिकर विषय नहीं है। कोई बैठा है मंदिर में पत्थर की मूर्ति के सामने। कैसे ध्यान लगेगा पत्थर की मूर्ति पर? इससे तो तुम्हारा कोई लगाव नहीं है। ज़्यादा अच्छा होता तुम अपने बेटे के सम्मुख बैठकर उसपर ध्यान करते। बेटे से तुम्हें प्रेम है। बेहतर होता तुम अपनी प्रेमिका के सामने बैठकर अपनी प्रेयसी का ध्यान करते। धीरे–धीरे प्रेयसी के भीतर तुम्हें प्रभुता का गुण नजर आने लगता। अच्छा होता तुम अपने पति के सम्मुख बैठकर उस पर ध्यान करतीं। पति के भीतर परमेश्वर नजर आने लगता।

पुराने जमाने में कहा जाता था पति परमेश्वर है। निश्चित रूप से उन लोगों ने कहा होगा जिन्होंने अपने पति में परमात्मा की झलक पाई। कोई ज़रूरत नहीं है योग के नाम पर व्यर्थ की कवायदें करने की। तुम सुन रहे हो न रोज़ पतंजलि के सूत्र? इनमें जितनी भी बातें आईं, हम सभी सामान्य संसारी लोग उनका पालन कर सकते हैं। लेकिन पतंजलि के नाम पर तथाकथित योगी व साधु–संन्यासी जो कर रहे हैं, वह

पतंजलि के बिल्कुल ही खिलाफ है। पतंजलि तो सहजयोग के पक्षधर हैं। जो सहज है, जो स्वाभाविक है, जो प्रकृति ने हमें दिया है, परमात्मा ने जो गुण हमें प्रदत्त किए हैं; हम उनका सदुपयोग करना सीखें। कोई ज़रूरत नहीं त्याग करने की, कोई ज़रूरत नहीं संसार से भागने की। जो तुम्हें प्रीतिकर लगता हो, उसी पर ध्यान करो। पतंजलि कहते हैं–

यथा अभिमत ध्यानात् वा

'जो भी प्रिय हो वस्तु, या कि सुंदर हो कोई चेहरा;
ध्यान उसी से शुरू करो, जाओ समाधि में गहरा।'

हो सकता है तुम्हें कोई फूल पसंद हो, फूल पर ही ध्यान करो। हो सकता है चांदनी रात तुम्हें प्रीतिकर लगती हो; इससे ज़्यादा खूबसूरत और क्या होगा ध्यान करने के लिए? हो सकता है नदी के किनारे बैठकर तुम्हें बहुत आनंद आता हो, बस नदी पर ही ध्यान करो।

हरमन हैस्स की प्रसिद्ध किताब सिद्धार्थ! भारत में उसपर एक फिल्म भी बनी थी, शशि कपूर ने जिसमें काम किया है। उसमें सिद्धार्थ नाम का जो व्यक्ति है; वह नदी के किनारे रहता है, मल्लाह का काम करता है, नाव चलाता है और नदी से उसको बड़ा लगाव है। वह कुछ और नहीं करता खाली समय में बैठा–बैठा सिर्फ प्रवाहित होती नदी को देखता रहता, देखता रहता...। नदी के अलग–अलग मूड्स, अलग–अलग भावदशाएं उसने जानीं। बरसात में उफनती हुई नदी, गर्मी में सूख गई, उदास मुरझाई हुई नदी। नदी से उसे बड़ा लगाव है। बस नदी का ही निरीक्षण करता रहता। और कहानी कहती है कि सिद्धार्थ परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। सिद्धार्थ का एक मित्र था जो गौतम बुद्ध का शिष्य बना। यह कहानी गौतम बुद्ध के जमाने की है। एक ओर सिद्धार्थ का वह मित्र जो गौतम बुद्ध का भिक्षु बन गया था, अपनी अंतिम अवस्था तक परम ज्ञान को प्राप्त न कर सका; यद्यपि उसने बड़ी साधना की थी, बड़ी त्याग–तपस्या की थी। दूसरी ओर यह सिद्धार्थ नाम का व्यक्ति जो सिर्फ एक साधारण माँझी था; लेकिन नदी के गहन प्रेम में था। वह नदी के प्रेम से ही भवसागर पार हो गया। सुनो ओशो क्या कहते हैं–

'ध्यान करो किसी उस चीज पर भी, जो कि तुम्हें आकर्षित करती हो।'

ध्यान करो अपनी प्रेमिका के, अपने प्रेमी के चेहरे पर ध्यान करो। यदि तुम प्रेम करते हो फूलों से तो ध्यान करना गुलाब का। ध्यान करना चांद का या जो भी तुम पसंद करते हो उसका। यदि तुम्हें प्रेम है भोजन से, तो ध्यान करो भोजन पर। क्यों कहते हैं पतंजलि कि 'जो कुछ तुम्हें आकर्षित करता हो।' क्योंकि ध्यान कोई जबरदस्ती का प्रयास नहीं होना चाहिए। यदि यह जबरदस्ती का होता है तो यह बेकार

होता है एकदम शुरू से ही। जबरदस्ती लादी हुई बात तुम्हें कभी स्वाभाविक नहीं बनाएगी। बिलकुल शुरू से ही कोई ऐसी चीज ढूंढना जो तुम्हें आकर्षित करती हो। कोई ज़रूरत नहीं अनावश्यक संघर्ष निर्मित कर लेने की। यह बात समझ लेनी है, क्योंकि यदि तुम मन को वही विषय देते हो जो उसे आकर्षित करते हों, तो मन के पास स्वाभाविक क्षमता होती है ध्यान करने की।

वस्तुतः जहां भी ध्यान घटता है वहां विशिष्ट गुणवत्ता होती है। ध्यान ले आता है उस विशिष्ट गुणवत्ता को। यह गुणवत्ता नहीं होती है विषय–वस्तुओं में, यह होती है तुममें ही। जब तुम किसी चीज़ पर ध्यान करते हो, तुम उसे दे देते हो अपनी अंतस सत्ता। अकस्मात वह हो जाती है पावन, पवित्र। चीजें पावन नहीं होतीं, ध्यान उन्हें बना देता है पावन। तुम किसी चट्टान पर ध्यान कर सकते हो और सहसा वह चट्टान हो जाती है मंदिर। कोई बुद्ध इतना सौंदर्यपूर्ण नहीं होता जितनी की वह चट्टान जबकि तुम उसपर ध्यान करते हो। ध्यान है क्या? यह है चट्टान को बोछारों से सराबोर करना तुम्हारी चेतना द्वारा। यह है चट्टान के चारों ओर गतिमान होना, इतना निमग्न होना, इतनी गहनता से संपर्क में होना कि एक सेतु वहां आ जुड़ता है तुम्हारे और चट्टान के बीच। अंतराल तिरोहित हो जाता है– तुम जुड़ जाते हो चट्टान के साथ। वास्तव में अभी तो तुम जानते ही नहीं कौन द्रष्टा है कौन दृश्य। द्रष्टा ही बन जाता है दृश्य, दृश्य ही बन जाता है द्रष्टा। अब तुम नहीं जानते चट्टान क्या है, कौन है और ध्यानी कौन है। अचानक ऊर्जाएं मिलती हैं और सम्मिलित हो जाती हैं और वहां होता है मंदिर। अनावश्यक ही विक्षेपों को निर्मित मत करो, क्योंकि तब तुम बन जाते हो दुःखी।

वे लोग जो शांत होने की, ध्यान करने की कोशिश करते हैं, वे सामान्य संसारियों से भी ज़्यादा अशांत और बेचैन हो जाते हैं। अपने मन को गाली देते हैं। एक तथाकथित संत। तथाकथित ही कहता हूं मैं उन्हें संत नहीं मानता। उन्होंने लिखा है 'मन मेरो बड़ो हरामी।' यह संत संत नहीं रहे होंगे दुष्ट रहे होंगे। यह अपने मन के साथ दुष्टता कर रहे हैं। मन को ऐसी जगह लगाने की कोशिश कर रहे हैं जहां वह नहीं लगना चाहता। मन हरामी नहीं है, मन चंचल नहीं है। मन की निंदा और आलोचना करने से कुछ न होगा। अपने स्वभाव को, अपनी प्रकृति को पहचानो। सहज रूप से मन जहां प्रवाहित होता है तुम वहीं ध्यानमग्न हो जाओ।

ओशो कहते हैं मेरे ध्यान के पक्षी के दो पंख हैं होश और प्रेम। अर्थात् ध्यान और भक्ति। पतंजलि का यह सूत्र योग और भक्ति का समन्वय है।

मुझे याद आता है एक बार एक सज्जन ओशो के पास आए और उन्होंने कहा कि तीन वर्ष पहले उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थीं। उनके कुलगुरु ने बताया कि एक मंत्र जाप करो। वे सज्जन कहने लगे कि मैं रोज़ एक–एक घंटा सुबह–शाम मंत्रजाप करने

की कोशिश करता हूं, लेकिन चित्त मेरा लगता नहीं, मेरा चित्त बड़ा चंचल है। मैं बहुत व्यथित हो गया हूं। पत्नी की ही याद बनी रहती है। मंत्र में मन नहीं लगता। ओशो ने कहा यह व्यर्थ का मानसिक अभ्यास छोड़ो, यह कसरत छोड़ो। मंत्र जपने की कोई ज़रूरत नहीं। चुपचाप शांत बैठ जाओ और अपनी पत्नी का स्मरण करो। याद करो उन सुखद क्षणों को जो तुमने अपनी पत्नी के साथ बिताए। वे कहने लगे यह तो बड़ी अधार्मिक–सी बात होगी। ओशो ने कहा तुम एक हफ्ते प्रयोग करके देखो। एक हफ्ते बाद वे आए; बहुत प्रसन्न, बहुत शांत, बहुत आनंदित और उन्होंने कहा मैं तो पहले बहुत आत्मग्लानि से भर गया था। सेल्फ कंडैमनेशन से भर गया था। इस एक हफ्ते में मेरे भीतर बड़ा रूपांतरण हुआ। पत्नी की सुखद स्मृतियों में डूबते–डूबते धीरे–धीरे पत्नी का रूप और आकार तो खो गया मैं निराकार चैतन्य में प्रवेश कर गया। वास्तव में मुझे ध्यान घट गया। ठीक यही विधि है ध्यान की।

स्कूल में शिक्षक कहते हैं बच्चों से कि ध्यान एकाग्र करो ब्लैकबोर्ड पर। हम बता रहे हैं अकबर के पिता जी का नाम क्या था? कि पानीपत की तीसरी लड़ाई कब हुई थी? कि चंद्रगुप्त मौर्य किस साल सिंहासन पर बैठे थे? बच्चों का ध्यान नहीं लगता उन्हें क्या करना चंद्रगुप्त मौर्य से! और उन्हें क्या करना अकबर के बाप का नाम जानने से! और पानीपत की लड़ाइयों के बारे में जानने से। वह बच्चा देख रहा है खिड़की के बाहर कोई पक्षी चहचहा रहा है। वृक्ष में फूल खिले हैं, कोयल वहां कुहू–कुहू कर रही है। उसका ध्यान वहां जा रहा है। यह स्वाभाविक है।

जहां हमारा प्रेम है वहां हमारी एकाग्रता अपने आप सधती है। इसलिए मैं आप सबसे निवेदन करूंगा कभी भी जबरदस्ती एकाग्रता साधने की कोशिश मत करना। तुम्हारे भीतर अंतर्संघर्ष, अंतर्द्वंद्व; एक इनर कॉन्फलिक्ट पैदा हो जाएगा। उससे तुम खंड–खंड हो जाओगे। चले हो तुम अखंड ब्रह्म को जानने और स्वयं अपने भीतर खंडित हो जाओगे। कैसे अखंड को जान पाओगे? तो जो सहज स्वाभाविक तुम्हें आकर्षित करता है उसी की तरफ जाओ। उसमें तुम समग्र हो पाओगे टोटैलिटी के साथ। और वह टोटैलिटी तुम्हारे भीतर एक गुणवत्ता पैदा करती है वही ध्यान की कीमिया है। तो स्वयं के खिलाफ कभी न जाना।

नागार्जुन एक संत हुए बौद्ध परंपरा में। एक दिन एक गरीब आदमी उनके पास आया और उसने कहा मैं भी ध्यान करना चाहता हूं। आपके प्रवचन मैंने सुने हैं किंतु ध्यान में मन नहीं लगता; क्योंकि मेरे पास एक गाय है। दरिद्र आदमी हूं कुछ और ज़्यादा मेरे पास है नहीं। एक गाय है और उस गाय से मुझे बहुत लगाव है। अपनी मां की तरह ही उसकी सेवा करता हूं। मेरी मां तो बचपन में गुजर गई थीं। इस गाय को ही मैंने अपनी मां जैसा जाना है। इसकी मैं बड़े प्रेम से, लगन से सेवा करता हूं। दिन–रात

उसी का ख्याल बना रहता है और इसीलिए परमात्मा में मेरा चित्त नहीं लगता। मैं कैसे ध्यान करूं? नागार्जुन मुस्कुराए। नागार्जुन ने कहा पागल! तुझे परमात्मा का ध्यान करने की ज़रूरत नहीं। तू उस गाय का ही ध्यान कर। उस गाय के सम्मुख बैठ, प्रेम से उसे देख, उसकी पीठ पर हाथ फेर और जब ध्यान करने अकेले अपने कमरे में बैठता है तब मन ही मन कल्पना कर उस गाय की। अपना सारा प्रेम, अपना हृदय उस पर उलींच दे और तू पाएगा कि गाय के माध्यम से ही तूने परमात्मा को भी पा लिया। जिस विषय पर तुम्हारा ध्यान सहज रूप से प्रवाहित होता है उसी विषय को चुनना। गलत विषय को कभी न चुनना।

मैं पढ़ रहा था किसी शायर की लिखी हुई यह पंक्तियां।

राह–ए–खिजां में तलाशे–बहार करते रहे
शबे–सियह से तलब हुस्ने–यार करते रहे।

अर्थात्, अब तक तो हम पतझड़ में वसंत खोजते रहे। काली अंधेरी रात से सौंदर्य मांगते रहे।

ख्याले–यार कभी जिक्रे–यार करते रहे;
इसी मताअ पै हम रोजगार करते रहे।

कभी उसका ख्याल किया, कभी उसका जिक्र भी किया। मगर बस बातचीत में मग्न रहे, चर्चा का व्यापार ही किया। इन चर्चाओं से कुछ न होगा।

नहीं शिकायतें–हिज्रां कि इस वसीले से
हम उनसे रिश्ता–ए–दिल उस्तवार करते रहे

इतने से ही हम चाहते थे कि परमेश्वर मिल जाए। सिर्फ बातचीत से ही जीवन का खजाना खुल जाए। नहीं, इतने से कुछ न होगा।

वो दिन कि कोई भी जब वजह–ए–इंतजार न थी;
हम उनमें भी दिन–रात तेरा इंतजार करते रहे।

जो चीज तुम्हें आकर्षित नहीं करती उसकी प्रतीक्षा करने से कोई लाभ नहीं। प्रेम की दीवानगी चाहिए। तुम्हारे भीतर प्यार का पागलपन चाहिए। तभी योग घटित होता है, भक्ति घटित होती है, ध्यान घटित होता है। उसके बिना आजतक किसी को ध्यान घटित नहीं हुआ। पतंजलि का यह सूत्र खूब–खूब स्मरण रखना–

यथा अभिमत ध्यानात् वा
'जो भी प्रिय हो वस्तु, या कि सुंदर हो कोई चेहरा;
ध्यान उसी से शुरू करो, जाओ समाधि में गहरा।'

धन्यवाद। जय ओशो।।

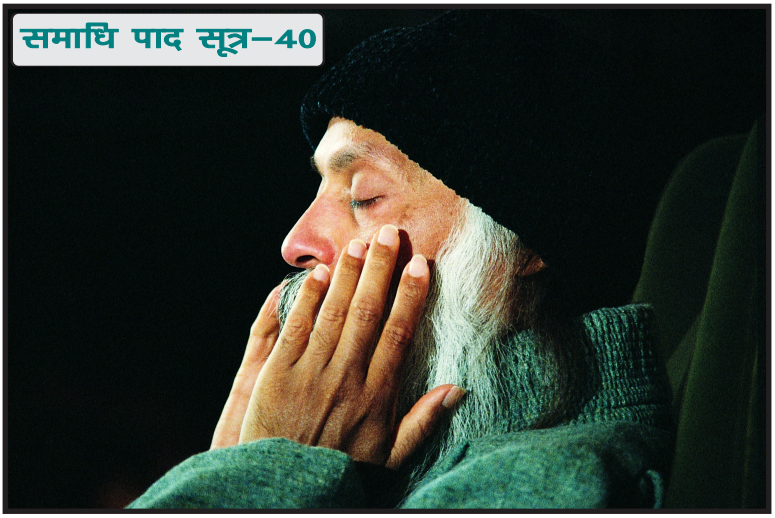

अतिसूक्ष्म से अपरिसीम तक

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः।। 40 ।।

परमाणु परम महत्त्व अन्तः अस्य वशीकारः

साध्य बिन्दु हो या विराट हो, योगी रम जाता है;
और अंत में दृश्य न द्रष्टा, दर्शन रह जाता है।

पूर्वोक्त उपायों से स्थित हुआ चित्त, छोटे–से–छोटे (परमाणु) और बड़े–से–बड़े (महत आकाश) विषय में बिना रुकावट लगाया जा सकता है। अहंकार हार जाता है, ओंकार जीत जाता है।

पतंजलि योग प्रदीप के पिछले सूत्रों में समाधि के द्वारों की चर्चा हो रही थी। परमात्मा का मंदिर है समाधि; उसमें प्रवेश के अनेक–अनेक द्वार हैं। विभिन्न विधियां हो सकती हैं। किसी भी द्वार से प्रवेश कर जाओ। भीतर जाकर परिणाम एक–से हैं। आज का चालीसवां सूत्र– इसमें पतंजलि कहते हैं–

परमाणु परम महत्त्व अन्तः अस्य वशीकारः।

योगी सूक्ष्म–अति–सूक्ष्म से लेकर विराटतम का मालिक हो जाता है। वह सबकुछ जानता है। अत्यंत सूक्ष्म से लेकर... अति विराट तक। कैसे यह घटना घटती है? ऐसा समझो अहंकार पिघल जाता है और ओंकार ही शेष रह जाता है। अहंकार की

सीमा है। अहंकार है क्षुद्र। जब विराट से मिलन होता है हमारा, तब हम भी विराट हो जाते हैं। और विराट में सूक्ष्म का ज्ञान भी समाहित है। सूक्ष्म में विराट छिपा है। विराट में सूक्ष्म छिपा है। इन दोनों के मध्य में एक भ्रांति है– अहंकार की भ्रांति। बस यह अहंकार मिट जाने भर की बात है। योग की सारी विधियां इस अहंकार से, अर्थात् चित्तवृत्ति से मुक्ति का उपाय है। एक प्यारा गीत मैं पढ़ रहा था।

प्यार की हार से डरना कैसा,
प्यार की हार भी जीत है प्यारे;
टूटे दिल की टीसों में भी,
एक सुहाना गीत है प्यारे।

प्यार में हार हो जाती है। अहंकार मिट जाता है और यही उसकी जीत है। परमात्मा के प्रेम में डूबा हुआ भक्त या योगी स्वयं तो विलीन हो जाता है और परमात्म स्वरूप ही हो जाता है। उसका मिटना ही उसका होना है।

प्यार के टुकड़े कदम–कदम पर एक अछूती राह दिखाएं
वरना इस अंधियारे जग में कौन किसी का मीत है प्यारे
अहंकार ही अंधकार है। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है।
उजली सेज पै सोने वाले प्यार की सुंदरता क्या जानें?
प्रेम की पलकों पर मोती सांसों में संगीत है प्यारे।

ओंकार का महासंगीत भीतर छिड़ जाता है। प्रेम के आंसू, अहोभाव के आंसू, भक्त की आंखों से बहते हैं।

अपनी आशाओं की कलियां इस दुनिया से ओझल कर लो
फूल पर धूल उड़ाकर हंसना इस दुनिया की रीत है प्यारे।

योगी को फिर दुनिया की भी परवाह नहीं रह जाती। ये जगवाले क्या समझेंगे? पागल, कि दीवाना, इसकी चिंता नहीं रह जाती। अहंकार मिटा कि सारी चिंता मिटी।

फूल पर धूल उड़ाकर हंसना इस दुनिया की रीत है प्यारे
रात के गहरे सन्नाटे में शबनम बनकर रोने वाली
या चंदा की ढलती छाया या पंछी की प्रीत है प्यारे
प्यार की हार से डरना कैसा प्यार की हार भी जीत है प्यारे
टूटे दिल की टीसों में भी एक सुहाना गीत है प्यारे।

वह अहंकार टूटे तो सुहाना गीत शुरू होता है। भागवत गीत शुरू होता है। और ओंकार से जुड़ने पर हम समस्त अस्तित्व के साथ एक हो जाते हैं। पिछली सदी में वैज्ञानिकों ने परमाणु की खोज की। अत्यंत सूक्ष्म! इलेक्ट्रॉन, माइक्रोस्कोप से लाखों

गुना भी बड़ा करके देखो तो भी दिखाई नहीं देता इतना सूक्ष्म। लेकिन उतने सूक्ष्म परमाणु में जानते हो कितनी शक्ति छुपी थी? एक परमाणु के विस्फोट से हिरोशिमा और नागासाकी क्षणभर में राख हो गए। थोड़े–से ही परमाणु इस सारी पृथ्वी को राख कर सकते हैं। अत्यंत सूक्ष्म में अत्यंत विराट शक्ति छिपी हुई है।

योगी जब अपने भीतर ओंकार के नाद में, परमात्मा के प्रकाश में डूबता है, तो वह परमाणु से भी ज़्यादा सूक्ष्म जगत में प्रवेश कर गया। अभी विज्ञान भी ओंकार की ध्वनि को, अनाहत नाद को नहीं पकड़ पाए हैं। विज्ञान ने जिन प्रकाश के फोटोन्स को जाना है, वे तो बाहर के हैं। वे तो प्रयोगशाला में जांचे जा सकते हैं। उनका तो हिसाब–किताब, गुणा–भाग आदि गणित बिठाया जा सकता है। भीतर उससे भी सूक्ष्म आलोक है। अति सूक्ष्म! उसी को परमसत्य कहा गया है, परमात्मा कहा गया है। जब उससे कोई जुड़ जाता है अचानक सारे अस्तित्व के साथ वह एकात्म हो जाता है।

ऐसा समझें आप अपने घर में, अपने आंगन में एक गड्ढा खोदते हैं, कुंआ बनाते हैं, उस कुंए की पाट बनाते हैं। निश्चित रूप से आपके कुंए की पाट पड़ोसी के कुंए की पाट से भिन्न होगी। हो सकता है आपने गोल कुंआ बनाया हो, पड़ोसी ने चौकोर कुंआ बनाया हो। एक तीसरे व्यक्ति ने संगमरमर का पाट बनाया हो। चौथे ने सीमेंट, कंकरीट का। किसी ने साधारण पत्थर का। किसी ने कच्ची मिट्टी का, ईंट का। भांति–भांति के कुंए हो सकते हैं। अलग–अलग गहराई के, अलग–अलग आकृतियों के। लेकिन अगर गहराई में जाओ तो तुम पहुंचोगे पानी के स्रोत पर। क्या वह पानी भिन्न–भिन्न है? मेरे घर के कुंए में और मेरे पड़ोसी के घर के कुंए में और उसके पड़ोसी के घर के कुंए में जल–स्रोत तो एक ही है। यदि हम खोज करें कि कुंए में पानी कहां से आया? हम पाएंगे कि जमीन के नीचे एक विशाल जल–भंडार है अंडरग्राउंड वाटर सोर्स। यह सब कुंए एक प्रकार की खिड़कियां हैं, जिसमें से वह विराट जल भंडार झांक रहा है।

ठीक ऐसे ही हमारा अहंकार है जो देह और मन के साथ तादात्म्य करने से निर्मित होता है। ऊपर–ऊपर से हम सात अरब आदमी हैं दुनिया में। सब एक दूसरे से भिन्न! कोई भी किसी के जैसा नहीं। आपके जैसा आदमी न आज तक हुआ है न कभी होगा। आपका शरीर, आपका मन सर्वथा भिन्न है सबसे। लेकिन अगर आप देह और मन की... और गहराई में जाएं, इसके पार उठें, तब आप पाएंगे कि आपकी चेतना में गूंजता हुआ ओंकार का नाद है। वह चैतन्य, वह अनाहत नाद सारे जगत में एक ही है। वह विराट जल भंडार है... अनादि और अनंत। उसकी कोई सीमा नहीं। वह अथाह...

परमात्मा है। वहां कोई भेद नहीं है। यदि हम अपने आप को कुंआ समझ रहे हैं तब तो बड़े भेद हैं, तब हमारा ज्ञान भी बड़ा सीमित और संकुचित होगा। यदि जल के साथ हमारा तादात्म्य हो जाए, परमात्मा को हम जान लें तब हम अचानक सारे जगत के जल के रहस्य को जान गए। यदि हमने पानी के एक परमाणु, एक अणु एचटू.ओ. को भी जान लिया, हमने समस्त सागरों का राज़ जान लिया। क्योंकि सातों महासागर उसी एचटू.ओ. से बने हैं।

तो सूक्ष्म और विराट भिन्न–भिन्न नहीं हैं। भिन्न क्या हैं? कुंए की पाट भिन्न हैं। कुंए का ढंग अलग है। कुंए का रंग अलग है। कुंए की आकृतियां अलग हैं। छुटपुट भेद पानी में हो सकता है। हो सकता है मेरे कुंए में कैल्सियम की मात्रा ज़्यादा हो। आपके कुंए में कैल्सियम की मात्रा कम हो। कहीं पर हो सकता है खारा पानी हो। किसी कुंए में मीठा पानी हो। किसी जल स्रोत का पानी शीतल हो। किसी अन्य झरने का पानी गर्म हो। हॉट वाटर स्प्रिंग्स होते हैं न! लेकिन याद रखना! एच.टू.ओ. के अणु में कोई परिवर्तन नहीं है। यह जो संयोगिक भेद है यह स्थानीय परिस्थितियों के कारण है। मेरी ज़मीन में जहां कुंआ खोदा गया है यदि उस ज़मीन में नमक की मात्रा ज़्यादा है, वह नमक पानी में घुल गया। मेरे कुंए का पानी और आपके कुंए का पानी एक ही है। हां, नमक की मात्रा में जो भेद है वह मिट्टी की वजह से है, पानी की वजह से नहीं।

तो इस प्रकार जब हम अपने अहंकार से मुक्त होकर देह और मन के भीतर प्राणों के अंतर्तम केंद्र में पहुंचते हैं, तब अचानक हम सूक्ष्मतम के और विराटतम के मालिक हो जाते हैं। इस सूत्र को समझाते हुए ओशो ने कहा है–

इस प्रकार योगी हो जाता है सबका मालिक, अति सूक्ष्म परमाणु से लेकर अपरिसीम तक का। लघुतम से लेकर विशालतम तक सबका मालिक बन जाता है वह। ध्यान द्वार है अपरिसीम शक्ति का। ध्यान द्वार है अति चेतन का।

तुम हो चेतन! बढ़ो अचेतन की गहराइयों में। यह होता है उतरना तुम्हारे अस्तित्व के तलघर में। अधिकाधिक जागरूकता एकत्रित करो ताकि तुम बढ़ सको निद्रा में, सपनों में। आरंभ करना अपने जागने के समय जागरूकता एकत्रित करने से; वह अचेतन में बढ़ने के लिए मदद देगी। तब अचेतन में और ऊर्जा एकत्रित करना; वह अति चेतन में बढ़ने में मदद करेगी। ऊर्जा की ज़रूरत पड़ेगी। बिलकुल अभी तो तुम्हारी ऊर्जा एक टिमटिमाहट की भांति है– पर्याप्त नहीं है। जागरूकता द्वारा ज़्यादा ऊर्जा निर्मित करना।

यह वैसा ही होता है जैसे कि तुम पानी गरम करते हो, या कि तुम बर्फ गरम करते

हो। यदि तुम गरम करते हो बर्फ को तो वह पिघलती है। गरमी की एक निश्चित डिग्री पर वह पानी बन जाती है। फिर तुम्हें उसे ज़्यादा गरम करना होता है यदि तुम चाहते हो कि वह वाष्पित हो जाए। तुम उसे गरम किए जाते हो और एक निश्चित तापमान पर, सौ डिग्री पर अचानक वह छलांग लगाती है और भाप बन जाती है। परिमाणात्मकता बदल जाती है गुणात्मकता में। परिमाणात्मक परिवर्तन बन जाता है गुणात्मक।

एक निश्चित तापमान के नीचे वह होता है बर्फ, उस तापमान के पार हो वह बन जाता है पानी, एक विशेष तापमान से नीचे तो वह रहता है पानी, उस तापमान के पार हो तो वाष्पीभूत हो जाता है, भाप बन जाती है। जब वह बर्फ होता है, तो वह करीब–करीब मरा हुआ होता है और बंद होता है। वह होता है ठंडा। जीवंत होने को पर्याप्त ऊष्ण कण नहीं। जब वह पानी होता है, तो ज़्यादा प्रवाहमान, ज़्यादा जीवंत होता है, बंद नहीं। जब वह पिघल गया होता है, तब वह ज़्यादा ऊष्ण होता है। लेकिन पानी तो नीचे की ओर बढ़ता है। जब वह वाष्पीभूत हो जाता है तो दिशा बदल चुकी होती है। वह अब और सपाट न रहा, वह ऊर्ध्वगामी बन जाता है; वह ऊपर की ओर बढ़ता है।

पहले तो अधिकाधिक सचेत हो जाना जागने के समय। वह बात तुम तक ले आएगी ऊष्णता की एक निश्चित मात्रा। वह वास्तव में आंतरिक ऊष्णता की एक निश्चित डिग्री ही होती है, तुम्हारी चेतना का एक निश्चित तापमान जो कि तुम्हारी मदद करेगा अचेतन में बढ़ने के लिए। तो, अधिकाधिक बोधपूर्ण हो जाना अचेतन में। ज़्यादा प्रयास की ज़रूरत होगी, ज़्यादा ऊर्जा निर्मित की जाएगी। तब अचानक एक दिन तुम पाओगे कि तुम ऊपर की ओर बढ़ रहे हो। तुम भारविहीन हो गए हो और अब गुरुत्वाकर्षण तुम्हें प्रभावित नहीं करता। तुम बन रहे हो अतिचेतन।

अतिचेतन के पास सारी शक्ति होती है : वह होता है सर्वशक्तिमान, वह होता है सर्वज्ञ, वह होता है सर्वव्यापी। अतिचेतन है सब जगह। अतिचेतन के पास वह हर एक शक्ति है जो संभव होती है, और अतिचेतन देखता है प्रत्येक चीज को। वह बन गया होता है दृष्टि की परम स्पष्टता। यही अर्थ करते हैं पतंजलि जब वे कहते हैं–

इस प्रकार योगी हो जाता है सबका मालिक, अतिसूक्ष्म परमाणु से लेकर अपरिसीम तक का।' ओंकार सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, सर्वद्रष्टा। सबका साक्षी है। ओंकार से एकाकार हो जाओ। और तुम भी इन्हीं तीन गुणों से संपन्न हो जाओगे। यही सहजयोग है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

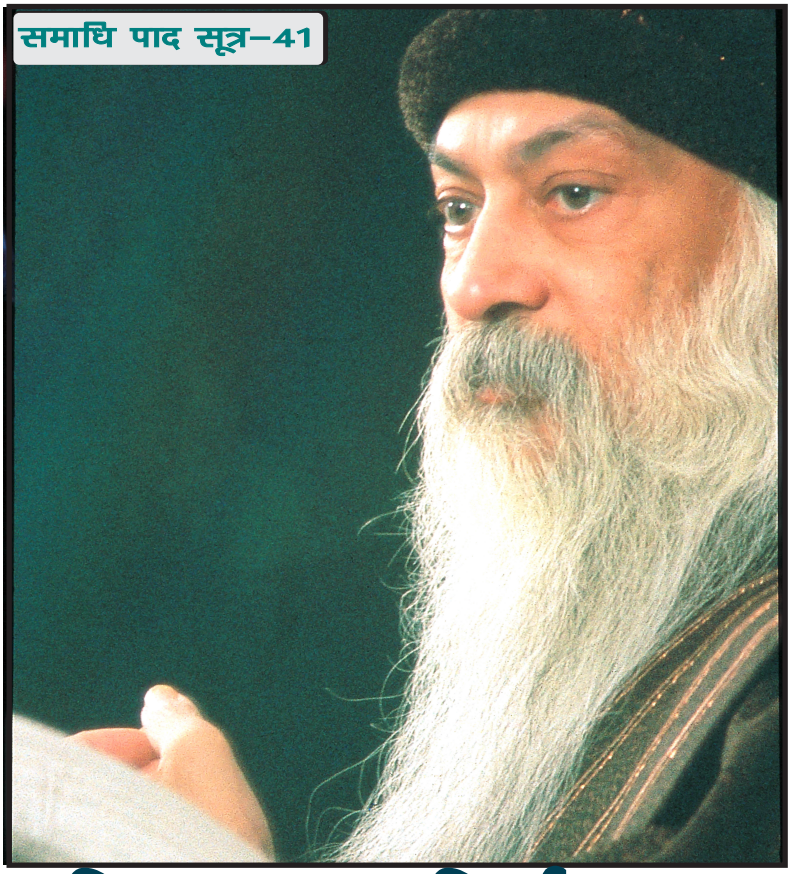

मणि समान निर्मल मन

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्तिः।।41।।
क्षीणवृत्तेःअभिजातस्य इव मणेःग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थ तदंजनता समापत्तिः

क्षीण वृत्ति वाला मन, निर्मल हो मणि समान;
प्रतिबिंबित करता है, ज्ञेय, ज्ञाता, ज्ञान।

पतंजलि के पूर्व सूत्र का हम स्मरण करें, फिर आगे बढ़ेंगे–

'साध्य बिन्दु हो या विराट हो, योगी रम जाता है;
और अंत में दृश्य न द्रष्टा, दर्शन रह जाता है।'

पतंजलि का आज का सूत्र इसी से संबंधित है।

'क्षीण वृत्ति वाला मन, निर्मल हो मणि समान;
प्रतिबिंबित करता है, ज्ञाता, ज्ञेय, व ज्ञान।'

इन तीन शब्दों को समझना। दृश्य, द्रष्टा और दर्शन। या ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। अथवा श्रव्य, श्रोता और श्रवण। जब तुम ओंकार में डूबते हो... गौर से देखना न तो वहां कोई संगीतकार है, न ही कोई श्रोता है, न कोई वाद्य यंत्र है जिससे ध्वनि की तरंगें उत्पन्न हो रही हों और न ही कोई सुननेवाला है। लेकिन फिर भी श्रवण की घटना घट रही है।

जब तुम भीतर के आलोक से परिचित होओगे निरति समाधि में, तब एक अद्भुत बात तुम जानोगे। न तो प्रकाश का कोई स्रोत है और न ही प्रकाश का कोई द्रष्टा है। लेकिन फिर भी दर्शन घटित हो रहा है। देयर इज़ नो आब्ज़र्वर, देयर इज़ नथिंग टु बि आब्ज़र्व्ड, बट आब्ज़र्वेशन इज़ हैपनिंग. अद्वैत की घटना घटती है। बाहरी जगत में हम जो भी जानते हैं उसमें सदा एक द्वैत रहता है। मैं एक वृक्ष को देखता हूं निश्चित रूप से वृक्ष मेरे लिए दृश्य बन गया। और मैं वृक्ष का द्रष्टा हूं। मैं वृक्ष नहीं हूं, वृक्ष 'मैं' नहीं है। हम दोनों भिन्न-भिन्न हैं। और दोनों के भीतर, दोनों के बीच में ज्ञान की एक घटना घट रही है। दर्शन की एक घटना घट रही है। सच पूछो तो द्वैत नहीं त्रैत है। ट्रिनिटी है। डुवैलिटी नहीं। मैं किसी संगीतकार को सुन रहा हूं। तो तीन चीज़ें हैं– एक उसका वाद्य यंत्र; संगीत का स्रोत है। दूसरा मैं उसका सुननेवाला श्रोता हूं; इसके अतिरिक्त दोनों के बीच में ध्वनि-तरंगों का आवागमन हो रहा है... संगीत है। इस प्रकार श्रव्य है, श्रोता है, संगीत है। तीन मौजूद हैं। द्वैत सामान्य भाषा में हम कहते हैं। कहना चाहिए त्रैत।

अंतस जगत में जब हम जाते हैं, चित्त की वृत्तियां क्षीण हो जाती हैं। पतंजलि कहते हैं ये तीनों ही विदा हो जाते हैं। या कहो पॉज़िटिव ढंग से कि सिर्फ एक रह जाता है। यह दो तरीके हो सकते हैं अभिव्यक्त करने के। या तो कहो अद्वैत (नॉन डुवैलिटी); दो नहीं बचते। या कहो कि वहां तीनों में से कुछ भी नहीं रह जाता। एक विधायक (सकारात्मक) ढंग है कहने का। एक नकारात्मक ढंग है कहने का।

पतंजलि कहते हैं जिसकी तमस और रजस वृत्तियां क्षीण हो गईं ऐसे अभिजात मणि के समान निर्मल चित्तवालों का गृहीत, ग्रहण वह ग्राह्य में स्थित होकर उन्हीं के स्वरूप को प्राप्त कर जाना अर्थात् तन्मय हो जाना समापत्ति कहलाता है, समाधि कहलाता है। उनके साथ एकात्म, तदाकार हो जाना। जिसे हम जानते हैं, हम वही हो जाते हैं। वहां कोई भेद और भिन्नता नहीं रह जाती। ओंकार को जाननेवाला ओंकार ही हो जाता है। भीतर प्रभु के प्रकाश को जाननेवाला स्वयं प्रकाशमय हो जाता है।

इसलिए तो ऋषि कहते हैं 'अहम् ब्रह्मास्मि।' मैं स्वयं ब्रह्म हूं। ब्रह्म के नाद को जिसने सुना वह अलग से श्रोता नहीं रह गया वह स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप हो गया। मन की क्रियाएं जब नियंत्रित हो जाती हैं तब ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का भेद मिट जाता है। सामान्यतः यह भेद हमारी इंद्रियों के ज्ञान की वजह से और मन की वृत्तियों की वजह से उत्पन्न होता है। तामस एक वृत्ति है, राजस एक वृत्ति है और यहां तक कि सत्व भी एक वृत्ति है। ये तीनों वृत्तियां अपना रंग डालती हैं। ऐसा समझो तीन रंग के चश्मे हैं हम इसमें से किसी भी रंग का चश्मा पहनें; हम जगत को वैसा न देख पाएंगे जैसा कि वास्तव में वह है। लाल रंग के चश्मे से देखेंगे दुनिया लाल दिखाई देगी, भ्रम पैदा हो गया, दुनिया लाल नहीं है। हरे रंग के चश्मे से देखेंगे; दुनिया हरी दिखाई देगी। हमारी मन की वृत्तियां प्रोजेक्टर का काम करती है। वे जगत को वैसा नहीं जानने देतीं जैसा कि वह है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से कह रहा था कि लगता है मेरा बुढ़ापा आ गया। दूर की चीज़ें साफ नज़र नहीं आतीं। मैं चाहता हूं कि एक चश्मा बनवा लूं। नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा, 'फिजूल खर्च करने की कोई ज़रूरत नहीं। तुम्हें दूर देखने की ज़रूरत क्या है? वैसे भी इस कॉलोनी में मुझसे ज़्यादा सुंदर कोई दूसरी स्त्री है नहीं।'

बेचारा मुल्ला कुछ कह रहा है, पत्नी कुछ और समझ रही है। उसके भीतर अपना मन है। वह उस मन के माध्यम से ही सुनेगी, समझेगी।

मैंने एक दूसरी कहानी सुनी है नसरुद्दीन की। किराए के मकान में रह रहा था। पहली ही बरसात आई, छत में जगह–जगह से पानी चूने लगा। नसरुद्दीन बहुत परेशान हो गया। पूरा घर गीला, फर्श गीला, यहां तक कि घर के भीतर भी छाता लगाकर घूमना पड़ता था। नसरुद्दीन ने मकान मालिक को बुलाया और कहा कि देखिये जगह–जगह से पानी टपक रहा है। दिन में चार–पांच बार स्नान हो जाता है कुछ तो इंतजाम करिये। मकान मालिक ने कहा निश्चित रूप से दिन में चार–पांच बार स्नान... अभी इंतजाम करता हूं साबुन और तौलिये का।

बेचारा किराएदार कुछ कह रहा है, मकान मालिक कुछ और समझ रहा है। उसकी अपनी वृत्ति है, उसका अपना मन है। दूसरे की बात हम कभी समझ ही नहीं पाते। बाहर के जगत में जो भी ज्ञान हमें प्राप्त होता है; वह बड़ा भ्रांतिपूर्ण, बहुत कन्फ्यूज़न से भरा होता है। इसीलिए दुनिया में इतनी मिसंडरस्टेंडिंग है, गलतफहमी पैदा होती है। कोई किसी की बात समझ नहीं पाता। फिर अक्सर ऐसा होता है कि असाधु, साधु बनने की कोशिश में लग जाते हैं; पापी, पुण्यात्मा बनने की कोशिश में

लग जाते हैं। तब भी चित्त की वृत्ति समाप्त नहीं होती। हां, तमस से रजस वृत्ति पैदा हो जाती है। लाल चश्मे की जगह हरा चश्मा लगा लिया; लेकिन सत्य का दर्शन नहीं होता।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल के कपड़े खराब हो गए। होली पे रंग लग गया। वह साबुन से निकल नहीं रहा था, बड़े परेशान हो गए, नए कपड़े बर्बाद हो गए। किसी मित्र ने सलाह दी। सलाहकारों की कोई कमी है? एक ढूंढ़ो चार मिल जाते हैं। न ढूंढ़ो तो भी मिल जाते हैं। उस मित्र ने सलाह दी कि बाजार में फलां–फलां सलूशन आया है, बहुत ही अच्छा डिटर्जेंट है, उस सलूशन से ही ये धब्बे निकल जाएंगे। चंदूलाल प्रसन्न हुए। दौड़े–दौड़े सलूशन लेकर आए और धो डाले कपड़े। दो दिन बाद जब वह कपड़े पहनकर बाहर निकले तो कार्टून नजर आ रहे थे। कपड़े पहले से भी ज़्यादा बर्बाद हो गए थे। किसी ने पूछा चंदूलाल यह क्या किया? यह कपड़े कैसे बर्बाद किए? उसने कहा कि होली का जो रंग था उसके धब्बे तो निकल गए; अब यह सलूशन के धब्बे रह गए हैं।

वह जो आदमी असाधु था, पापी था, तामसी था; अगर वह कोशिश करे, सलूशन का इस्तेमाल करे, तो हो सकता है वह राजसी बन जाए, सात्विक बन जाए, हो सकता है वह पुण्यात्मा बन जाए, साधु बन जाए। इनके धब्बे और भी गहरे हैं। असाधुता से तो छूटने का मन भी होता था; साधुता के धब्बे से तो छूटने का मन भी नहीं होता। बड़ी मुश्किल हो गई! वह पापी तो कभी–कभी सोचता था कि कैसे पाप से मुक्त होऊं। यह जो पुण्यात्मा है, इसने तो सोचना ही छोड़ दिया है कि पुण्य से मुक्त होना है। यह सोचता है कि मैंने मंजिल पा ली। नहीं, यह भी मन की वृत्ति है। पतंजलि के सूत्र को गौर से सुनना।

क्षीण वृत्तेः अभिजातस्य इव मणेः।

क्षीण वृत्ति वाला मन। वृत्तियां क्या है? तमस, रजस, सत्व। तीनों से ही मुक्त होना है। तब गुणातीत अवस्था उपलब्ध होती है। इस मन को ऐसा समझें कि मन कोई वस्तु नहीं है। मन एक प्रक्रिया है इट इज़ ए प्रोसेस नाट ए थिंग। जैसे समंदर में लहरें उठती हैं। लहर कोई वस्तु नहीं है। आप मुझे पैकेट में बंद करके गिफ्ट नहीं कर सकते कि यह लीजिए एक लहर आपके लिए लेकर आया हूं। लहर कोई वस्तु नहीं है, लहर एक प्रोसेस है, प्रक्रिया है। ठीक ऐसे ही हमारा जो मन है, और उसकी जो वृत्तियां हैं वे कोई ठोस वस्तु नहीं है। सिर्फ प्रक्रियाएं हैं। इन प्रक्रियाओं के प्रति जागना।

जैसे एक तरंगित झील में चांद प्रतिफलित होता है तो चांद का बिंब तो नहीं दिखता, लेकिन हिलती हुई झील की वजह से लहरों में चांदनी फैल जाती है। पूरी झील सफेद चमकने लगती है; लेकिन चांद का प्रतिबिंब नहीं बनता, चांद नहीं झलकता।

चांदनी फैल जाती है। जब मन निस्तरंग हो जाता है, वृत्तियों से मुक्त हो जाता है...। ऐसा समझो निस्तरंग झील। अब चांद जैसा है ठीक वैसा ही दिखाई देता है। और झील भी जैसी थी ठीक वैसी दिखाई देती है। वस्तुएं अपनी यथार्थ अवस्था में पहुंच जाती हैं और जैसी वे हैं वैसी ही जान पड़ती हैं। तब दर्शन, द्रष्टा और दृश्य शुद्ध हो जाते हैं।

पतंजलि कहते हैं, 'स्फटिक मणि के समान हो जाता है मन।' फिर कुछ भी प्रोजेक्शन नहीं होता। ओशो इसको समझाते हुए कहते हैं–

इसीलिए पतंजलि कहते हैं, 'जब मन की क्रिया नियंत्रण में होती है, तो मन शुद्ध स्फटिक बन जाता है, और जब मन शुद्ध स्फटिक बन जाता है, तो तीन चीजें प्रतिबिंबित होती हैं उसमें।' फिर वह समान रूप से प्रतिबिंबित करता है, बिना विकार के, बोधकर्ता को, बोध को और बोध के विषय को।

जब मन संपूर्णतया साफ होता है, एक सुव्यवस्था बन गया होता है, तो भ्रम नहीं रहता और चीज़ें थम चुकी होती हैं, तब तीन चीज़ें प्रतिबिंबित होती हैं उसमें; वह दर्पण बन जाता है, तीन आयामों का दर्पण। बाहर का संसार, विषय वस्तुओं का संसार प्रतिबिंबित होता है। भीतर का संसार, आत्मपरक चेतना का संसार प्रतिबिंबित होता है। दोनों के बीच का संबंध, वह बोध प्रतिबिंबित होता है। और होता है बिना किसी विकार के।

मन के साथ तुम्हारे बहुत घुल–मिल जाने से ही ऐसा होता है कि विकार चला आता है। क्या होता है विकार? मन एक सीधी यंत्र–क्रिया, युक्ति है। यह आंखों की भांति है; तुम आंखों द्वारा देखते हो और संसार प्रतिबिंबित हो जाता है। लेकिन आंखों के पास तो केवल एक आयाम है : वे तो केवल संसार को प्रतिबिंबित कर सकती हैं; वे तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकतीं। मन त्रिआयामी घटना है, बड़ी गहरी है। वह सबकुछ प्रतिबिंबित कर सकता है, और बिना किसी विकार के। साधारणतया तो वह विकृत ही करता है। जब तुम देखते हो किसी चीज़ को यदि तुम मन से अलग नहीं होते, तो चीज़ बिगड़ जाएगी। तुम कुछ और देखोगे। तुम इसमें अपना ज्ञान मिला दोगे, अपने भाव–विचार मिला दोगे। तुम इसे दृष्टि की शुद्धता सहित नहीं देखोगे। तुम देखोगे धारणा सहित, और धारणाएँ प्रक्षेपित होंगी उस पर।

परम सत्य को जानना है, तो बिना चित्त वृत्तियों के ही जाना जा सकता है। सहजयोग की सारी प्रक्रिया बस इतनी ही है–

'चित्त से वियोग का, आत्मा से योग का।
आओ जानें हम अनुशासन योग का।'

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–42

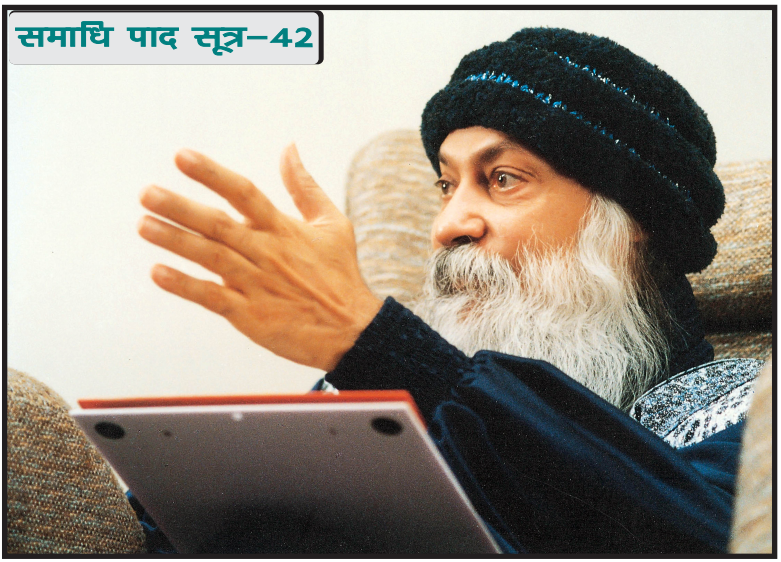

सवितर्क समाधि

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः।।42।।

तत्र शब्द अर्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः

कितना अनुभव से जाना है, कितना पुस्तक ज्ञान;
जब तक है सवितर्क समाधि, होता सही न भान।

पतंजलि समाधि का विभाजन करते हैं दो हिस्सों में– सवितर्क समाधि और निर्वितर्क समाधि। सवितर्क समाधि का अर्थ है कि हमारा तर्कयुक्त मन अभी भी मौजूद है और समाधि की भी शुरुआत हो गई है। एक खिचड़ी अवस्था है। एक मिक्स्ट स्टेट। जहां पर चैतन्यता भी आ गई किंतु चित्त की पुरानी वृत्तियां क्षीण तो हो गईं फिर भी मौजूद हैं। पुराना अभी गया नहीं और नया आ गया। पुरानी वृत्तियां अपनी रेखाएं छोड़ गई हैं। नया प्रगट हो गया है।

ऐसा समझो सूरज अभी पूरा उगा नहीं, लालिमा छा गई सूर्योदय की, भोर की; कुछ अंधकार बाकी है। रात का भी असर कुछ शेष है। लेकिन धुंधला–धुंधला प्रकाश होने लगा। तो सवितर्क समाधि न तो पूरा दिन है, न पूरी रात है। दिन आने वाला है; रात करीब–करीब जा चुकी। योगी अक्सर इस अवस्था में विक्षिप्त होने की संभावना

से भर जाते हैं। पुराना ज्ञान और नया ज्ञान मिश्रित हो जाता है। समझ में नहीं आता कि मैं जो जान रहा हूं–'अहम् ब्रह्मास्मि– यह सुनी–सुनाई बात है, यह वेद वचन है जो मुझे कंठस्थ हो गया, या वास्तव में मैं भीतर इसे जान रहा हूं। यह सच्चा ज्ञान है कि नहीं... अनुमान लगाना मुश्किल हो जाता है।

पतंजलि कहते हैं, 'उन समापत्तियों में से शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों से मिली हुई सवितर्क समापत्ति है। इस समापत्ति में योगी का मन मिश्रित अवस्था में होता है, वह सच्चे ज्ञान एवं शब्द, तर्कों व इंद्रियों से आधारित ज्ञान में भेद नहीं कर पाता।'

ऐसा समझो एक तो है परिधि परिफरि की अवस्था। एक है केंद्र में स्थित, स्वयं में स्थित होने की स्वस्थ अवस्था। परिधि पर हम पूरी तरह व्याधि में हैं, स्वस्थ होने पर हम समाधि में हैं और एक है दोनों के बीच की अवस्था। न तो परिधि पर हैं, न केंद्र में हैं, बीच में कहीं आ गए। अभी परिधि का भी असर बाकी है और केंद्र से आती हुई तरंगें भी छू रही है। कहना मुश्किल है कि मैं शाब्दिक ज्ञान में हूं, पुस्तकीय ज्ञान में हूं, सुनी–सुनाई बातें हैं या मेरा वास्तविक अनुभव हो रहा है। वास्तविक अनुभव होता है और उस पर भी संदेह खड़ा होता है।

कितने मित्र मेरे पास रोज़ आते हैं और पूछते हैं कि बड़े आनंद की अनुभूति हो रही है, बड़ी शांति छा रही है, क्या यह सचमुच में हो रहा है? खुद ही भरोसा नहीं आता! कहते हैं कि भीतर अद्भुत प्रकाश छा गया। बड़े प्यारे रंग नजर आ रहे हैं। कहीं मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा। वह तर्कयुक्त मन अभी मौजूद है। इसका नाम है सवितर्क समाधि।

पतंजलि बड़े वैज्ञानिक तरीके से एक–एक स्टेप, एक–एक सीढ़ी हमें आगे ले जा रहे हैं। स्वभावतः हर साधक के साथ ऐसा ही होगा। जन्मों–जन्मों से केवल अशांति ही जानी थी। जब पहली बार शांति की झलक मिलेगी स्वयं ही विश्वास नहीं होता। आत्मश्रद्धा पैदा नहीं होती। मैं और शांत हो जाऊंगा! कभी सोचा न था। कहीं कल्पना तो नहीं कर ली शांति की? शांति भी सत्य है और यह पुराना तर्कयुक्त मन; यह भी सत्य है। मिश्रित अवस्था है। ओशो इसको समझाते हैं–

'सवितर्क समाधि, वह समाधि है, जहां योगी अभी भी वह भेद करने के योग्य नहीं रहता, जो सच्चे ज्ञान के और शब्दों पर आधारित ज्ञान, तर्क या इंद्रिय बोध पर आधारित ज्ञान के बीच होता है- जो सब मिश्रित अवस्था में मन में बना रहता है।'

दो प्रकार की समाधि होती है : एक को पतंजलि कहते हैं 'सवितर्क'; दूसरी को वे कहते हैं 'निर्विकल्प या निर्वितर्क'। ये होती हैं दो अवस्थाएं। पहले तो कोई उपलब्ध होता है सवितर्क समाधि को; जिसमें की तर्कसंगत मन अभी भी चल रहा होता है। यह

है समाधि, लेकिन फिर भी बौद्धिक दृष्टिकोण पर आधारित होती है। तर्क अभी भी काम कर रहा है, तुम भेद बना रहे होते हो। यह उच्चतम समाधि नहीं होती है, मात्र पहला कदम है। लेकिन यह भी बहुत–बहुत कठिन है, क्योंकि इसमें भी ज़रूरत पड़ेगी केंद्र की ओर थोड़ा बहुत जाने की।

उदाहरण के लिए : परिधि है वहां, जहां कि तुम बिलकुल अभी खड़े हो और केंद्र है वहां जहां कि मैं बिलकुल हूं अभी, और दोनों के बीच, ठीक मध्य में सवितर्क समाधि है। इसका मतलब हुआ कि तुम सतह पर से सरक आए हो; तो भी तुम केंद्र तक नहीं पहुंचे हो अभी तक। तुम सरक आए हो परिधि से, पर अभी भी बहुत दूर है केंद्र। तुम ठीक मध्य में हो। अभी तक कुछ पुराना कार्य कर रहा है, और कुछ नया आधे रास्ते तक प्रवेश कर चुका है। और चेतना की इस बीच की अवस्था कि परिस्थिति क्या होगी।

सवितर्क समाधि, वह समाधि है, जहां योगी अभी भी वह भेद करने के योग्य नहीं रहता, जो सच्चे ज्ञान के...।

क्या सत्य है, यह भेद वह अभी भी नहीं कर पाएगा, क्योंकि सत्य जाना जा सकता है केवल केंद्र द्वारा ही। उसे जानने का दूसरा कोई उपाय नहीं। वह नहीं जान सकता सच्चा ज्ञान क्या है। कोई सत्य बूंद–बूंद टपक रहा होता है भीतर, क्योंकि वह सरक आया है परिधि से, ज़्यादा निकट आ पहुंचा है केंद्र के। वह अभी केंद्रस्थ नहीं हुआ है, तो भी ज़्यादा निकट आ पहुंचा है। केंद्र की कोई चीज़ भीतर झर रही है– कुछ–कुछ प्रत्यक्ष बोध, केंद्र की कुछ झलकियाँ, लेकिन पुराना मन फिर भी है वहां, पूरी तरह नहीं चला गया। एक दूरी है वहां, लेकिन पुराना मन अभी भी कार्य करता जा रहा है। योगी अभी भी अयोग्य है भेद करने में कि क्या है सच्चा ज्ञान।

मन अपनी पुरानी प्रवृत्तियों के अनुसार मिथ्या ज्ञान, कल्पना, स्मृति इन सबको मिश्रित करता चला जाता है। वास्तविक ज्ञान भी घट रहा है, सत्य की अनुभूति भी हो रही है और पुराना कल्पना और पुस्तक से मिला ज्ञान भी उसमें मिश्रित हो रहा है।

मैंने सुना है रेलगाड़ी में यात्रा करते हुए दो स्कूल शिक्षकों की मुलाकात हुई। बातचीत के इस सिलसिले में अर्थशास्त्र के शिक्षक ने पूछा– अगर तुम्हें अंबानी जी की सारी दौलत, जमीन जायदाद और कारखाने मिल जाएं, तो क्या होगा?

गणित के शिक्षक ने जवाब दिया– मैं अंबानी जी से भी अधिक अमीर बन जाउंगा।

आश्चर्य से भरकर अर्थशास्त्र के शिक्षक ने पूछा– सो कैसे?

गणित के शिक्षक ने कहा– अरे भाई, मैं अपनी चार ट्यूशन पढ़ाना जारी रखूंगा न!

महासंपत्ति भी मिल जाए, परमात्मा भी अवतरित हो जाए; फिर भी वह तर्कवाला मन अपना तर्क तो जारी रखेगा; ट्यूशन बंद नहीं करने वाला। मिश्रित अवस्था हो जाएगी। शब्दों के अर्थ पर हम चले जाते हैं। पूर्व सूत्रों में हमने इसकी विस्तार से चर्चा की है कि किस प्रकार शब्द अपने अर्थ प्रोड्यूस करते हैं और भ्रांति खड़ी करते हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा निराश था कि न तो अपने अफसरों को खुश कर सका और न ही अपने मित्रों को। ऑफिस के सभी लोग उससे चिढ़ते थे, उसकी अवहेलना करते थे। अंततः निराश होकर उसने इस्तीफा देने की ठानी। यह समाचार खुशखबरी के रूप में आग की तरह फैल गया। मन ही मन सब प्रसन्न हुए कि अच्छा हुआ, इस मुसीबत से छुटकारा होगा। विदाई पार्टी में औपचारिकतावश अधिकारियों और सहकर्मियों ने भी उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। काफी देर तक अपनी तारीफ सुनने के बाद नसरुद्दीन ने भरे गले से कहा– आज मेरी आंखें खुल गईं। वाकई मुझे नहीं मालूम था कि आप लोग मुझे इस तरह बेइंतहा चाहते हैं। मैं अपना इस्तीफा वापस लेता हूं।

शब्द भ्रम पैदा कर देते हैं। शब्दों में हम आ जाते हैं। मैंने सुनी है एक और कहानी।

चंदूलाल एक सुबह बैठकर अपना अखबार पढ़ रहा है। और जैसा कि इस बात पर सभी पत्नियां नाराज होती हैं; उसकी पत्नी भी नाराज हो रही थी कि क्या सुबह–सुबह तुम अखबार लेकर बैठ जाते हो! एक जमाना था कि तुम सुबह–सुबह मेरी सूरत की बातें किया करते थे और अब! अब तो जिक्र भी नहीं। एक वक्त था कि तुम कहते थे तुम्हारा चांद–सा चेहरा... जी करे देखता रहूं...। लेकिन अब तो यह चेहरा तुम्हारे जेहन में न जाने कब से फीका पड़ गया। कहते थे कि तेरी वाणी कोयल–सी मधुर है; लेकिन अब! अब तो कभी सवाल ही नहीं। अब तो कर्कशा हो गई...। चंदूलाल ने गाते हुए कहा–

है तेरी वाणी मधुर, मगर बकवास बंद कर;

मुझे अखबार पढ़ने दे एएए...

शब्दों के अपने अर्थ मिश्रित हो जाते हैं। भीतर कुछ, बाहर कुछ। चीजें मिश्रित अवस्था में पहुंच जाती हैं। पतंजलि सवितर्क समाधि का वर्णन जब कर रहे हैं– याद रखना– इसके साथ एक खतरा जुड़ा हुआ है। योगी कभी–कभी इस अवस्था में विक्षिप्त हो जाते हैं। क्योंकि अभी पूरी तरह केंद्रस्थ तो हुए नहीं। इसीलिए योग की साधना के लिए, समाधि की साधना के लिए एक संघ की ज़रूरत पड़ती है। साधकों का एक संघ

चाहिए, एक मिस्ट्री स्कूल। ओशो उसे कहते हैं रहस्य विद्यालय। आश्रम चाहिए। अकेले–अकेले घर में कोई स्वयं ही समाधि की साधना करने लगे... इसकी संभावना तो कम है कि वह बुद्धत्व को प्राप्त हो; बल्कि इसकी संभावना ज़्यादा है कि वह विक्षिप्तता को प्राप्त हो जाएगा। उसका सामान्य मन भी डांवाडोल हो जाएगा। बड़ी मिश्रण की अवस्था उत्पन्न हो जाएगी। अतः साधकों का एक संघ बड़ा सहयोगी होता है।

यहां ओशो फ्रेगरेंस में हम कोशिश कर रहे हैं कि जगह–जगह बहुत सारे आश्रम, पीठ, ध्यान–केंद्र, सत्संग केंद्र स्थापित हों ताकि लोग मिलजुलकर साधना कर सकें। कोई तुमसे एक कदम आगे है, कोई तुमसे एक कदम पीछे है। कभी कोई कन्फ्यूज़न क्रियेट हो, हो सकता है कोई तुम्हें मदद दे दे। कोई तुम्हें समझा दे। कोई तुमसे पीछे है, कहीं वह किसी मिश्रित मन की अवस्था में हो, तो तुम उसे सहयोग पहुंचा सको। मिलजुलकर संग–साथ अगर हम चलेंगे, तो हम बड़ी आसानी से अपनी मंजिल तक पहुंच पाएंगे। इसलिए बुद्ध ने तो तीन शरणों की बात की...

बुद्धम शरणम् गच्छामि।
संघम् शरणम् गच्छामि।
धम्मम शरणम् गच्छामि।

यह संघ की शरण जाने की क्या ज़रूरत है? क्या सिर्फ बुद्ध की शरण जाना पर्याप्त नहीं? यह प्रश्न बारंबार बौद्ध दार्शनिक पूछते हैं कि क्या अकेले बुद्ध की शरण पर्याप्त नहीं? क्या सिर्फ धर्म की शरण जाना पर्याप्त नहीं? नहीं है पर्याप्त। बीच की अवस्था में हम भटक जाएंगे। हम बड़े कन्फ्यूज़न और भ्रम की अवस्था में पहुंच जाएंगे। यदि एक संघ होगा, संगी साथी होंगे, कोई हमसे आगे, कोई हमसे पीछे, कोई हमारे साथ वाला होगा, तब हम एक–दूसरे को मिलजुलकर सहयोग पहुंचा पाएंगे।

बुद्ध तो हैं बिल्कुल केंद्र में स्थित। उनकी बातें शायद उतनी समझ में न आएं। वे हिमालय के गौरी शंकर पर खड़े हैं। धवल शिखर पर। और हम जी रहे हैं अंधेरी घाटियों में। काश हमें कोई व्यक्ति मिल जाए जो अंधेरी घाटी और उज्ज्वल शिखर के बीच में है। वह हमारे लिए ज़्यादा सहयोग का होगा। पर्वतारोहियों का दल देखते हो! बीस–पच्चीस लोग ऊपर चढ़ते हैं एक–दूसरे से रस्सी से बंधे हुए। उनकी कमर कसी हुई है एक ही रस्सी से। एक का पैर फिसल जाएगा गिर नहीं पाएगा खाई–खंदक में। बाकी के बीसियों लोगों से वह बंधा हुआ है। इसलिए संघ के मित्रों का जो बंधन है, एक ब्रदरहुड की भावना; वह बड़ी सहयोगी है साधना में। सवितर्क समाधि में विक्षिप्तता का खतरा मौजूद है इसे ख्याल रखना।

धन्यवाद। जय ओशो।।

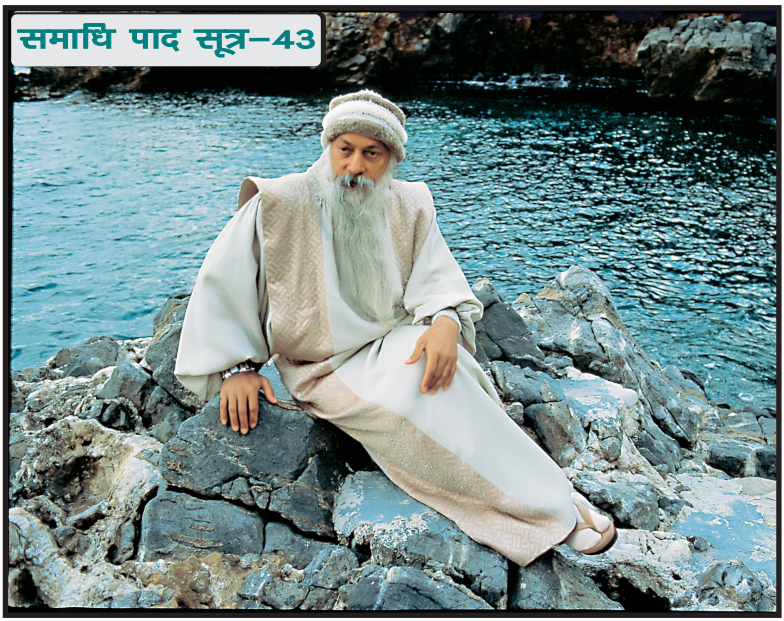

निर्वितर्क समाधि

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का।।43।।

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप–शून्या इव अर्थ मात्र निर्भासा निर्वितर्का

जहाँ न स्मृतियों का संसार, जहाँ न भाषा का व्यापार;
निर्वितर्क होती समाधि जब, कोई नहीं कल्पित आधार।

पिछले सूत्र में महर्षि पतंजलि ने सवितर्क समाधि का वर्णन किया। आज के तैंतालीसवें सूत्र में निर्वितर्क समाधि का वर्णन करते हैं। जब तर्कयुक्त मन शांत हो जाता है। अपने तर्क, अपनी स्मृतियां, अपनी व्याख्याएं बीच में लाना बंद कर देता है। अपने पुराने अनुभव, अपने पुराने ज्ञान, अपनी पुरानी धारणाएं और मान्यताएं बीच में लाना बंद कर देता है तब समाधि गहरी हो जाती है।

यह अवस्था निर्वितर्क समाधि कहलाती है। स्मृति के परिशुद्ध हो जाने पर स्वरूप से शून्य जैसी, अर्थमात्र–सी भासने वाली समापत्ति का नाम निर्वितर्क समाधि है। अर्थात् अब मन कोई अवरोध खड़े नहीं करता। मन कोई व्याख्याएं नहीं करता। मन अपनी पुरानी स्मृतियों और अनुभवों को बीच में नहीं लाता।

सामान्यतः जब हम किसी व्यक्ति से मिलते हैं तो हम उस व्यक्ति से सीधा साक्षात नहीं करते। बीस साल से हम इस व्यक्ति को जानते हैं। पिछले बीस सालों में हमारे मन में इस व्यक्ति के प्रति कुछ धारणाएं बन गईं। उन फिक्स्ट धारणाओं के चश्मे को पहनकर हम आज के इस व्यक्ति से मिलते हैं। वास्तव में वर्तमान के इस व्यक्ति से हमारी मुलाकात कभी हो ही नहीं पाती। वे बीच की स्मृतियां, बीच में दीवार बनकर खड़ी हो जाती हैं।

जब एक हिंदू एक मुसलमान से मिलता है... दो इंसान नहीं मिलते हैं; बल्कि हिंदू के मन में मुसलमान के प्रति एक धारणा है। मुसलमान के मन में हिंदू के प्रति एक धारणा है। वे दोनों धारणाएं मजबूत दीवार की तरह बीच में खड़ी हैं। वे इन दो इंसानों को मिलने ही नहीं देतीं। पति–पत्नी हों कि पिता–पुत्र, भाई–भाई हों कि बॉस और सबऑर्डिनेट हों। एक दूसरे के प्रति हम ऑलरेडी प्रैजुडिस्ट हैं। पूर्वाग्रह से भरे हुए हैं। हम पहले से ही जानते हैं। जानते तो नहीं... मानते हैं कि फलां आदमी कैसा है। और हमारी वह धारणा बीच में आ जाती है। और उस वास्तविक व्यक्ति से कभी हमारी मुलाकात नहीं हो पाती। इसीलिए दुनिया में इतनी मिसंडरस्टेंडिंग और गलतफहमियां हैं; कोई किसी को समझ नहीं पाता। कोई किसी की बात ही नहीं सुनता। वह पहले से ही अपना अर्थ निकाले बैठा है; पूर्वाग्रह से ग्रस्त है।

मुल्ला नसरुद्दीन को बचपन से ही मछली मारने का बड़ा शौक था। लेकिन गांव का जो तालाब था उसमें उसे ज़्यादा से ज़्यादा एक फुट लंबी मछली फंसी थी। अन्यथा बस कभी चार इंच बड़ी, कभी छह इंच बड़ी...। साठ साल हो गए। मछली मारते–मारते बुढ़ापा आ गया था। एक फुट से ज़्यादा बड़ी मछली उसे कभी नहीं मिली। हां, अन्य लोगों से उसने सुना था कि बीस फुट लंबी मछली किसी को मिली, किसी को चालीस फुट लंबी मछली मिली; लेकिन मुल्ला यह कहते हुए हँस देता था कि लोग झूठ बोल रहे हैं... मुल्ला तो ठहरा कुंए का मेंढक। कहता था कि मछलियां तो बस चार–छह इंच की या ज़्यादा से ज़्यादा एक फुट की होती हैं। इससे बड़ी मछली कोई हो ही नहीं सकती।

साठ साल के अनुभवों में धारणा मजबूत हो गई थी। फिर एक दिन संयोग की बात नसरुद्दीन मछली मार रहा था और एक बड़ी भारी मछली फंस गई। उसको बाहर खींचने में ही कोई तीन–चार लोगों की मदद लेनी पड़ी। मछली जब बाहर लायी गई तो नसरुद्दीन ने उसको फीते से नापा– कोई पच्चीस फुट लंबी! नसरुद्दीन ने चश्मा लगाया, गौर से देखा... मछली के चारों तरफ उसने दो–तीन चक्कर लगाए; अविश्वास भरी दृष्टि से! गांव के लोग जो वहां इकट्ठे हो गए थे, उनसे कहा कि भाइयो! उठाओ और इस जानवर को वापिस पानी में फेंको... यह मछली है ही नहीं। इतनी बड़ी मछली

हो ही नहीं सकती। साठ साल में आज तक जो नहीं हुआ वह आज कैसे हो जाएगा?

लोग मेरे पास आते हैं कहते हैं हम बीस साल से ध्यान कर रहे हैं, साधना कर रहे हैं; ओंकार का नाद, जिसका शास्त्रों में वर्णन है, अभी तक हमें सुनाई नहीं दिया। मैं कहता हूं, आओ! छह दिन ध्यान–समाधि करो। वे करते हैं छह दिन ध्यान–समाधि और ओंकार सुनाई देता है। सबसे पहले उनका प्रश्न यही होता है– क्या यही ओंकार है? यह पच्चीस फुट की मछली हो ही नहीं सकती। मुझ जैसे पापी को और परमात्मा की ध्वनि सुनाई पड़ गई? हो ही नहीं सकता! यह कुछ और होगा...।

भरोसा नहीं आता। वे कहते हैं ओंकार की ध्वनि तो जन्मों–जन्मों की साधना से मिलती है। हमें छह दिन में कैसे मिल गई? मैं उनसे कहता हूं आप पिछले कई जन्मों से साधना करते आ रहे हैं यह आखिरी जनम है। जन्मों–जन्मों की साधना से ही मिला है। हमें विश्वास नहीं होता, हमारी पूर्व धारणाएं बीच में आ जाती हैं। और यह धारणाएं दी किसने? हमारे ही मन ने प्रोजेक्ट की हैं... किसी और ने नहीं।

एक दिन सुबह–सुबह बाजार में जाकर सेठ चंदूलाल ने कहा कि मेरी पत्नी दुनिया की सर्वाधिक सुंदर स्त्री है। लोग आश्चर्यचकित हुए। वे सब चंदूलाल की पत्नी को जानते थे। साधारण घरेलू स्त्री। उन्होंने कहा चंदूलाल तुम कैसी बहकी–बहकी बातें कर रहे हो? तुम्हारी पत्नी दुनिया की सर्वाधिक सुन्दर स्त्री! क्या प्रमाण है? किसने कहा? चंदूलाल ने कहा, 'आज सुबह मेरी पत्नी ने खुद मुझे बताया।'

स्वतः प्रमाण। और कौन–सा प्रमाण चाहिए? हम जिन धारणाओं में जी रहे हैं, ज़रा गौर से देखना, वह हमारी पत्नी ने, वह जो हमारा मन है, उसी ने हमको बताया है। हम उसकी मानकर चल रहे हैं। प्रमाण कोई भी नहीं है। हमारी सारी धारणाएं, हमारे तमाम अंधविश्वास, हमारी समस्त मान्यताएं बिल्कुल कपोल कल्पित हैं। पतंजलि कह रहे हैं–

'जहाँ न स्मृतियों का संसार, जहाँ न भाषा का व्यापार;
निर्वितर्क होती समाधि जब, कोई नहीं कल्पित आधार।'

सारे कल्पित आधार खो जाते हैं; तभी निर्वितर्क समाधि होती है। जब तक तुम्हारे भीतर कल्पनाएं हैं तब तक सवितर्क समाधि ही रहेगी। कल्पनाओं से मुक्त होना होगा। और कल्पनाएं क्यों हैं? क्योंकि हम मूर्छित हैं। मूर्छा में हमें कुछ का कुछ दिखाई देता है।

मैंने सुना है नसरुद्दीन का बेटा जवान हो गया। उसने कहा कि डैडी अब मैं भी शराब पीना शुरू कर दूं आपकी तरह। नसरुद्दीन मना नहीं कर सकता था; क्योंकि वह खुद लंबे समय से शराब पी रहा था। नहीं तो बेटा तर्क करेगा कि आप क्यों पीते हो? नसरुद्दीन ने

कहा– ठीक! बेटा अब तू युवा हो गया है, एडल्ट हो गया है, तू भी शराब पी सकता है। अपने साथ ही ले गया शराबखाने; ताकि थोड़ी शिक्षा भी दे दे। कब तक शराब पीनी? कितनी शराब पीनी? बेटे ने पूछा कि पिता जी जब शराब पी लूंगा तो घर का ठीक–ठीक रास्ता समझ में नहीं आएगा। आप मुझे कृपया समझा दें कि घर तक पहुंचने के लिए कौन–सा मार्ग अपनाना होगा? ताकि नशे की हालत में भी मुझे याद रहे।

नसरुद्दीन ने कहा, सुन! जब हम शराबखाने से बाहर निकलेंगे तब हम सीधी रोड चलेंगे। करीब एक फर्लांग दूर चलने के बाद तुम्हें दो रोड दिखाई देंगे। एक बायीं तरफ मुड़ती है, एक दाहिनी तरफ मुड़ती है। हमेशा बायीं तरफ वाली रोड पर जाना। अपना घर बायीं तरफ वाले रोड पर है। दाहिनी तरफ वाले रोड पर मैं कई बार जाकर देख चुका; वहां कोई रोड है ही नहीं। बस वह दिखाई भर देती है, है नहीं। दाहिने वाले रोड पर कभी नहीं जाना वह है ही नहीं।

मूर्च्छा जितनी गहन होगी उतनी ही ज़्यादा कल्पनाएं अपना जाल फैलाएंगी। उतनी ही ज़्यादा स्मृतियां और धारणाएं अपना रंग दिखाएंगी।

जब एक हिंदू एक हिंदू मंदिर के सामने से गुजरता है और पत्थर की मूर्ति के सामने प्रणाम करता है, तब एक मुसलमान उसे देखकर हंसता है। उसकी धारणा है परमात्मा के निराकार होने की। अमूर्त होने की। जब वही हिंदू मस्जिद के सामने से गुजरता है; मस्जिद की तरफ देखता भी नहीं। उसे पता भी नहीं चलता कि मस्जिद निकल गई। वह उसे ध्यान देने योग्य भी नहीं मानता।

जब एक जैन सुनता है कहानी ईसाइयों की कि ईसा मसीह कुंवारी मां से पैदा हुए थे; वह मन ही मन हंसता है। क्या बेवकूफी की बात है! किसी ईसाई को समझ में नहीं आती बेवकूफी की बात। शेष सारी दुनिया हँसती है कि कुंवारी मां से कोई बेटा कैसे पैदा हो सकता है? क्या पागलपन की बात है! लेकिन वह ईसाई चाहे वह पोस्ट ग्रेजुएट हो कि पीएच.डी. हो कि नोबल प्राइज विनर हो; वह मानता है कि जीजस क्राइस्ट कुंवारी मां से पैदा हुए। चाहे वह स्वयं ही गायनोकॉलजिस्ट हो तब भी वह मानता है कि जीजस क्राइस्ट कुंवारी मां से पैदा हुए थे।

दूसरे के अंधविश्वास को हम बड़ी आसानी से देख लेते हैं। खुद की मान्यताओं को हम नहीं देखते। किसी हिंदू से कहो कि गणेश जी चूहे पर सवार होकर कैसे यात्रा करते होंगे? लड़ाई–झगड़े को तैयार हो जाएगा कि आप हमारी मान्यता पर कुठाराघात कर रहे हैं, हमारी भावनाओं को चोट पहुंचा रहे हैं। गणेश जी को देखकर सारी दुनिया हंसती है। देवता कम कार्टून ज़्यादा नजर आते हैं। भारी भरकम तोंद, हाथी का सिर, चूहे पर सवार... किसी कार्टूनिस्ट की सुन्दर कल्पना। लेकिन धार्मिक भावनाओं को

चोट लग जाएगी... अगर ऐसा कह दिया तो। जब तक हम अपनी धारणाएं छोड़ने को राज़ी नहीं होंगे, सत्य से मिलन नहीं हो सकता। इस बात को भली–भांति समझ लेना। ओशो कहते हैं–

स्मृति के कारण तुम सुन नहीं सकते; स्मृति के कारण तुम देख नहीं सकते; स्मृति के कारण तुम संसार की तथ्यता की ओर नहीं देख सकते। स्मृति आ जाती है बीच में– तुम्हारा अतीत, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे अनुभव– और वह रंग देती है यथार्थ को। संसार माया नहीं है, लेकिन जब उसकी व्याख्या की जाती है तो तुम जीते हो मायामय संसार में। याद रखना इसे।

हिंदू कहते हैं कि संसार माया है, भ्रम है। जब वे कहते हैं ऐसा, तो उनका अर्थ उस संसार से नहीं जो कि वहां होता है, उनका मात्र इतना ही अर्थ होता है : वह संसार जो तुम्हारे भीतर है– तुम्हारी व्याख्याओं का, तुम्हारे अपने अर्थों का संसार। तथ्य का संसार असत्य नहीं है; वह तो स्वयं ब्रह्म है। वह परम सत्य है।

लेकिन वह संसार जिसे तुम्हारे द्वारा निर्मित किया गया है, तुम्हारे मन और स्मृति द्वारा, और जिसमें की तुम रहते हो। जो तुम्हें घेरे रहता है वातावरण की भांति, वह होता है असत्य। और तुम इसके साथ बढ़ते हो और इसी में बढ़ते हो। जहां कहीं तुम जाते हो, तुम इसे तुम्हारे चारों ओर लिए रहते हो। यह तुम्हारा प्रभामंडल होता है, और इसके द्वारा तुम संसार को देखते हो। तब जो कुछ भी तुम देखते हो, वह सत्य नहीं होता, वह व्याख्या होती है।

पतंजलि कहते हैं :

जब स्मृति परिशुद्ध होती है और मन किसी अवरोध के बिना वस्तुओं की यथार्थता देख सकता है, तब निर्वितर्क समाधि फलित होती है।

व्याख्या अवरोध ही है। व्याख्या करते हो और सत्य खो जाता है। बिना व्याख्या बनाए देखो, और सत्य वहां होता है, और वहां सदा से है ही। सत्य हर पल मौजूद होता है। वह किसी दूसरी तरह से हो कैसे सकता है?

सत्य का अर्थ है : वह जो कि सचमुच है। जो अपनी जगह से नहीं सरका है क्षण भर के लिए भी। तुम तो बस तुम्हारी व्याख्याओं में जीते हो और तुम निर्मित कर लेते हो तुम्हारा अपना संसार। वास्तविकता लोकगत है, भ्रम व्यक्तिगत है।

सत्य सार्वभौम है, स्वप्न व्यक्तिगत होता है। इस सूत्र को याद रखना और तुम सवितर्क से निर्वितर्क समाधि में डूबने लगोगे।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–44

सविचार व निर्विचार दशा

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता।।44।।

एतय एव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्म विषया व्याख्याता

सूक्ष्म विषय रहता, सविचार समाधि में;
और सूक्ष्मतर होता है, निर्विचार समाधि में।

मैं कब से ढूँढ़ रहा हूँ अपने प्रकाश की रेखा
तम के तट पर अंकित है निस्सीम नियति का लेखा
मैं कब से ढूँढ़ रहा हूँ अपने प्रकाश की रेखा।
देनेवाले को अब तक मैं देख नहीं पाया हूँ
पर पल भर सुख भी देखा फिर पल भर दुःख भी देखा
किसका आलोक गगन से रवि शशि उड्डगन बिखराते?
किस अंधकार को लेकर काले बादल घिर आते?
उस चित्रकार को अब तक मैं देख नहीं पाया हूँ
पर देखा है चित्रों को बन–बनकर मिट–मिट जाते
फिर उठना फिर गिर पड़ना आशा है वही निराशा
क्या आदि अंत संसृति का अभिलाषा ही अभिलाषा
अज्ञात देश से आना अज्ञात देश को जाना
अज्ञात! अरे! क्या इतनी ही है हम सबकी परिभाषा!
पल भर परिचित वन उपवन, परिचित है जग का प्रति कण–कण
फिर पल में वही अपरिचित हम–तुम, सुख–सुषमा, जीवन
है क्या रहस्य बनने में, है कौन सत्य मिटने में
है क्या रहस्य बनने में, है कौन सत्य मिटने में?
मैं कब से ढूँढ़ रहा हूँ अपने प्रकाश की रेखा।
तम के तट पर अंकित है निस्सीम नियति का लेखा
मैं कब से ढूँढ़ रहा हूँ।

ढूँढ़ने के तीन तरीके हैं। एक तो तार्किक तरीक़ा है वैज्ञानिक का, दूसरा तरीक़ा है भाव का– कवि का, चित्रकार का, कलाकार का, संगीतकार का। और तीसरा तरीक़ा है सत्य की खोज का– संत का, ऋषि का। कवि और ऋषि के भेद को समझना...। संस्कृत में दोनों पर्यायवाची हैं; लेकिन दोनों में भेद भी है। कवि खोजता

है हृदय से, भाव से, प्रेम से और ऋषि खोजता है भावातीत होकर... विचारातीत तो हुआ ही भावातीत भी हो गया।

ये तीन तरीके हैं सत्य को खोजने के। स्वभावतः जब हम समाधि की तलाश में निकलेंगे, परमात्मा की खोज में चलेंगे, तब भी ये तीन ढंग हो जाएंगे। अतः पतंजलि ने वर्णन किया सबसे पहले सवितर्क समाधि का। तर्कयुक्त मन; वह जो लॉजिकल माइंड है– उसके चलने का तरीक़ा। अगर वह तर्क छोड़ दे तो निर्वितर्क समाधि घटती है।

आज के सूत्र में वर्णन करते हैं सूक्ष्मतर समाधियों का। तीसरी समाधि को वो कहते हैं सविचार समाधि और चौथी समाधि को कहते हैं निर्विचार समाधि।

यहाँ विचार से उनका क्या तात्पर्य है, समझना। समझो तुम एक फूल को देख रहे हो। अगर फूल पर तुम्हारा कंटैंप्लेशन है। भाव से भर के देख रहे हो, उसके संबंध में कुछ तर्क नहीं कर रहे। वो जो तुमने बॉटनी की किताब से, वनस्पतिशास्त्र में फूलों का ज्ञान प्राप्त किया है; उसे बीच में नहीं ला रहे। यह किस जाति का फूल है? इसकी पंखुड़ियां कितनी हैं? क्या इससे कोई औषधि बन सकती है? वो सारा ज्ञान तुमने हटा दिया। वहाँ सामने फूल है और यहाँ तुम हो। पूरे प्रेमभाव से उसे जान रहे हो... इसको कहते हैं कंटैंप्लेशन या मनन।

पतंजलि इसी को कह रहे हैं विचार। सामान्यतः विचार से हम समझते हैं कि वे जो अनर्गल व्यर्थ के विचार हमारे मन में चलते रहते हैं। पतंजलि उन विचारों की भीड़ की बात नहीं कर रहे हैं। सविचार समाधि का अर्थ है : जिस विषय को तुम जान रहे हो; पूरी तरह तुम उसी पर कंटैंप्लेशन कर रहे हो। पूरी तरह उसमें एब्ज़ार्ब हो गये हो। लेकिन इसमें एक द्वंद्व मौजूद है ऑब्जेक्ट एंड सब्जेक्ट का।

फिर चौथी समाधि की चर्चा करते हैं पतंजलि– निर्विचार समाधि। उसमें कंटैंप्लेशन भी नहीं रहा। यह जो मनन की अवस्था थी वह भी जाती रही। याद रखना! तर्कयुक्त अवस्था जो है मन की, वह चिंतन की अवस्था है। हम जिसे सविचार समाधि कह रहे हैं, वह मनन की अवस्था है। चिंतन और मनन के भेद को समझना। चिंतन में तर्क चलते हैं, बुद्धि काम करती है, मनन हृदय से होता है, भाव से होता है। तुम कोई और शब्द देना चाहो, तो दे दो। लेकिन पतंजलि की बात का यहाँ ठीक–ठीक अर्थ पकड़ना। शब्दों की मैं चिंता नहीं करता कि तुम इसे सविचार समाधि कहो की न कहो। हो सकता है तुम इसे सभाव समाधि कहना पसंद करो; भाव समाधि; यह शब्द तो प्रयुक्त किया जाता रहा है। रामकृष्ण परमहंस भाव–समाधि में डूब जाते थे।

निश्चित रूप से निर्विचार समाधि इससे और गहरी है...। वह भावातीत समाधि है। क्योंकि भाव में भी द्वंद्व है। प्रेमी और प्रेमीपात्र– लवर एंड बिलविड– दोनों के बीच में

भेद है। प्रेम की ऊर्जा ज़रूर बह रही है, लेकिन चिंतन–मनन नहीं हो रहा है। कोई विमर्श नहीं हो रहा है, कुछ लॉजिक आर्ग्युमेंट्स नहीं हो रहे हैं, कोई बहस–विवाद नहीं हो रहा है। बड़ी प्रेमल अवस्था है! फिर भी द्वैत तो है, डुवैलिटी तो है।

निर्विचार समाधि में यह द्वैत भी गिर जाता है। फिर यह कहना मुश्किल होगा कि जिस फूल को तुम देख रहे हो तुम उस फूल से भिन्न और पृथक हो। तुम्हें लगेगा जैसे तुम ही फूल हो गये या फूल तुम हो गया। विराट आकाश को देखते हुए तुम्हें लगेगा तुम भी आकाश स्वरूप हो गये अथवा आकाश तुममें अवतरित हो गया। दोनों का भेद मिट गया। अब कोई प्रेमभाव भी न बचा; भाव के भी बियांड; उसके भी पार अतिक्रमण की अवस्था हो गई। अब तुम समझ नहीं पा रहे की तुम आकाश हो, कि आकाश तुम हो गये। आकाश और तुम्हारा होना एकाकार हो गया। सारे आकार खो गये। विषय और विषयी का भेद मिट जाता है। पतंजलि कहते हैं–

'सूक्ष्म विषय रहता सविचार समाधि में,
और सूक्ष्मतर होता है, निर्विचार समाधि में।'

ध्यान के विषय क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते जाते हैं। तर्क बहुत स्थूल है। विचार उससे सूक्ष्म है। निर्विचार उससे भी सूक्ष्म है...। और निर्विचार से भी ज़्यादा सूक्ष्म... आगे पतंजलि वर्णन करेंगे; मन की शून्य अवस्था। उसके भी आगे कुछ है...। आगे के सूत्रों में हम उसकी चर्चा करेंगे। ओशो समझाते हैं–

पतंजलि कहते हैं, 'सवितर्क और निर्वितर्क समाधि का जो स्पष्टीकरण है, उसी से समाधि की उच्चतर स्थितियां भी स्पष्ट होती हैं। लेकिन सविचार और निर्विचार समाधि की उच्चतर अवस्थाओं में ध्यान के विषय अधिक सूक्ष्म होते हैं।

सविचार में– कवि... और बल्कि कोई भी जो सविचार में प्रवेश करता है कवि हो जाता है– वह फूल का विचार करता है उसके बारे में नहीं सोचता। वह प्रत्यक्ष और तात्कालिक होता है। लेकिन अब भी भेद होता है वहां...। कवि फूल से अलग रहता है। कवि होता है व्यक्ति और फूल होता है विषय। द्वैत होता है। द्वैत को पार नहीं किया गया है : कवि फूल नहीं बना है, फूल कवि नहीं बना है। द्रष्टा है द्रष्टा हीं और दृश्य अभी भी दृश्य ही है। द्रष्टा नहीं बना है दृश्य, दृश्य नहीं बना है द्रष्टा। द्वैत मौजूद है।

सविचार समाधि में तर्क गिराया जा चुका होता है पर द्वैत नहीं। निर्विचार समाधि में द्वैत भी गिर जाता है। व्यक्ति बस देखता है फूल को, न स्वयं की सोचते हुए और न फूल की सोचते हुए; बिलकुल ही कुछ न सोचते हुए! वह है निर्विचार : बिना सोच–विचार के, चिंतन–मनन के पार। व्यक्ति होता भर है फूल के साथ। नहीं सोच रहा होता है उसके बारे में। नहीं सोच रहा होता है तार्किक की भांति अथवा कवि की भांति।

अब आता है रहस्यवादी संत, जो कि बस होता है फूल के साथ। तुम नहीं कह सकते कि वह उसके बारे में सोचता है, या कि वह सोचता भर भी है। नहीं, वह मात्र उसके साथ होता है। वह फूल को वहां होने देता है और होने देता है स्वयं को। उस होने देने की घड़ी में अकस्मात वहां चली आती है एकमयता। फूल फूल नहीं रह जाता और द्रष्टा द्रष्टा नहीं रहता। अकस्मात ऊर्जाएं मिलतीं और घुलमिल जातीं और एक हो जाती हैं। अब द्वैत का अतिक्रमण हो गया, द्वैत के पार हो गए। संत नहीं जानता फूल कौन है और कौन देख रहा है उसे? यदि तुम पूछो संत से, रहस्यवादी से, तो वह कहेगा, 'मैं नहीं जानता। हो सकता है वह फूल ही हो जो देख रहा है मुझे। हो सकता है वह मैं ही हूं जो देख रहा हूं फूल को। बात परिवर्तनशील है।' वह कहेगा, 'निर्भर करता है... और कई बार, वहां न तो मैं होता हूं और न ही फूल। दोनों मिट जाते हैं। एकमयी ऊर्जा ही बची रहती है केवल। मैं बन जाता हूं फूल और फूल बन जाता है मैं।' यह होती है निर्विचार अवस्था, किसी चिंतन–मनन की नहीं; बल्कि अस्तित्व की।

हमारे जीवन के तीन केंद्र हैं मस्तिष्क, हृदय और नाभि। ओशो की प्रसिद्ध किताब 'अंतर्यात्रा' में ओशो ने बहुत विस्तार से समझाया है। मस्तिष्क केंद्र है सोच–विचार का, तर्क का। हृदय केंद्र है भावना का, प्रेम का और नाभि केंद्र है होने का। सिर में थिंकिंग, हृदय में फीलिंग और नाभि में बींग। सोचना, भावना और होना– ये तीन प्रक्रियाएँ हमारे भीतर घटती हैं। वैज्ञानिक मस्तिष्क से जीता है; कवि हृदय से जीता है; और संत अपने प्राणों के केंद्र नाभि से जीता है। वह अपनी बींग से, अपने होने के केंद्र से जीता है। और मज़े की बात है, होने के तल पर वह सारे अस्तित्व से जुड़ा हुआ है।

कवि, कलाकार और संगीतकार; कभी–कभी... अपनी विषय–वस्तु के साथ एकात्मता अनुभव करते हैं। प्रेमी कभी–कभी अपने प्रेमपात्र के साथ एक हो जाता है। लेकिन वह मिलन क्षणिक होता है। तत्पश्चात फिर द्वंद्व खड़ा हो जाता; फिर विषाद घेर लेता है। इसलिये सभी प्रेमी असफल महसूस करते हैं। क्षणभर को आनंद झर जाता है। बरस जाता है कुछ। लेकिन फिर दूरी निर्मित हो जाती है। वह एकात्मता स्थिर नहीं रह पाती। तर्क तो कभी एक होता ही नहीं। वह तो बहुत दूरी खड़ी करके रखता है। भाव निकट आता है। क्षणिक रूप से एकात्मता होती है।

सविचार समाधि और निर्विचार समाधि में सचमुच एकता हो जाती है। अस्तित्वगत रूप से एकता अनुभव होती है। इसके आगे और सूक्ष्मतर समाधियां है। जिनका वर्णन हम आगे के सूत्रों में करेंगे। सहजयोग के पथ पर एक–एक क़दम धीरे–धीरे आगे बढ़ेंगे।

धन्यवाद। जय ओशो।।

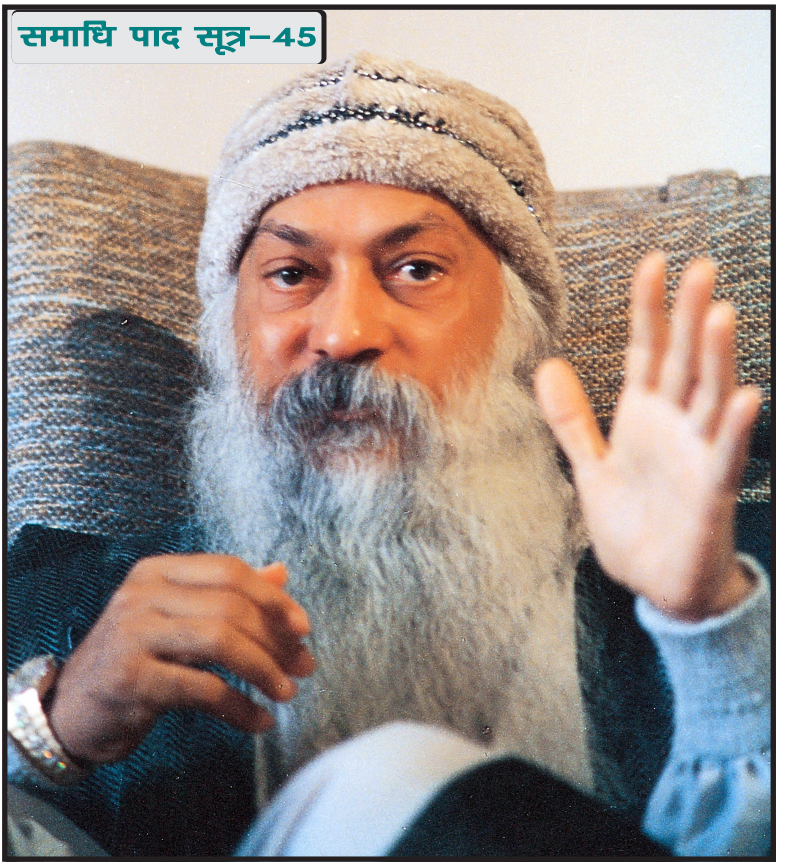

आंतरिक गहराई में पदार्पण

सूक्ष्मविषयत्वं चालिंगपर्यवसानम्।। 45 ।।

सूक्ष्म विषयत्वम् च अलिंग पर्यवसानम्

विषय सूक्ष्मतम जब होता, मिट जाता आकार;
कभी विषय ऊर्जा रहती, कभी केवल निराकार।

आज का सूत्र समझने से पहले पूर्व सूत्रों का स्मरण करें। पहले पतंजलि ने कहा सवितर्क समाधि जिसमें तर्कयुक्त मन लॉजिकल माइंड मौजूद रहता है। फिर उससे और सूक्ष्म तल पर पहुँचे निर्वितर्क समाधि। वो जो आर्ग्युमैंटटिव माइंड है, वह विदा

हुआ; लेकिन अभी भी भाव और विचार मौजूद हैं। पतंजलि जिसे सविचार समाधि कह रहे हैं। आज की भाषा में उसे भाव समाधि कहना ज़्यादा अच्छा होगा। फिर उससे भी और ज़्यादा सूक्ष्म निर्विचार समाधि। अब भाव भी न रहे; तर्क तो गए ही गए, विचार भी गए, भाव भी गए। फिर क्या शेष बचता है?

आज पतंजलि उसकी चर्चा करते हैं। विषय सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम होता जाता है। अंत में केवल जीवन–ऊर्जा रह जाती है। आकार रहित, भार रहित– ये दो लक्षण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। जब ध्यानी साधक को अपने भीतर निराकारता का अनुभव होने लगे, ओंकार का अनुभव होने लगे और भारहीनता का अनुभव होने लगे; तब उसे समझना चाहिए वह समाधि की बड़ी गहराई में पहुँच गया।

एक शब्द आपने सुना होगा निरंकार। वह निराकार और ओंकार से मिलके बना है। वो भीतर केंद्र में जो हमारी चेतना है, आकार रहित है, निराकार है... और उस निराकार में ओंकार गूंज रहा है। ओंकार धन निराकार बराबर निरंकार। एक शब्द में दोनों बातें आ गईं। भीतर की उस शून्यता में संगीत गूंज रहा है।

पतंजलि उसी ओर इशारा करते हैं कि वह सूक्ष्म विषयता लिंगरहित, प्रकृतिपर्यंत है। अर्थात सूक्ष्म विषयों से संबंधित समाधि का प्रांत सूक्ष्म ऊर्जा की निराकार अवस्था तक फैलता है। वह फैलता ही चला जाता है। कोई चीज़ जितनी स्थूल होती है उतना ही उसका आकार सुनिश्चित होता है। जैसे–जैसे वह सूक्ष्म होती जाती है, आकार मिटता जाता है।

एक बर्फ की शिला मजबूत है; उसका आकार है। लेकिन वह पिघल जाए, पानी हो जाए; तब उसका आकार द्रवीभूत हो गया। लोटे में डालोगे लोटे जैसा हो जाएगा पानी। गिलास में रखोगे गिलास जैसा। बाल्टी में भर दोगे बाल्टी जैसा। पानी की अपनी कोई शेप न रही। कप में रखोगे, तो पानी कप का रूप धारण कर लेगा। बर्फ के साथ ऐसा नहीं कर सकते थे। बर्फ का एक सुनिश्चित आकार था। फिर पानी और सूक्ष्म हो जाए, वाष्प बन जाए तो? तब वह पात्र की शेप से भी मुक्त हुआ। अब न तो वह बाल्टी जैसा रहा न गिलास जैसा, न लोटे जैसा, न कप जैसा... वाष्प फैलती चली जाती है। पूरे आकाश में फैलती चली जाती है। आपने ख़्याल किया आप कमरे के एक कोने में एक अगरबत्ती जलाते हैं। पाँच मिनट के भीतर ही अगरबत्ती की ख़ुशबू पूरे कमरे में व्याप्त हो जाती है। ख़ुशबू का क्या आकार है? ख़ुशबू का कोई आकार नहीं है। जहाँ भी होगी पूरे में फैल जाएगी।

ठीक ऐसे ही समाधि में धीरे–धीरे हम तर्क से निर्वितर्क, विचार से निर्विचार, भाव से भावातीत अवस्था में, अंततः पहुँचते हैं केवल ऊर्जामयता में। ओंकार की कोई शेप

नहीं है। इसलिए इस अवस्था को शून्यता की अवस्था भी कहा जाता है। भगवान गौतम बुद्ध ने शून्यता पर बड़ा ज़ोर दिया। हिंदू मनीषियों को लगा कि जैसे परमात्मा की पूर्णता पर प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं, या इंकार कर रहे हैं। लोगों ने बुद्ध को नास्तिक समझा। नहीं, बुद्ध नास्तिक नहीं हैं। बुद्ध इसी शून्यता की बात कर रहे हैं। यह समाधि की गहरी अवस्थाओं में से एक है। सूक्ष्म से सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और अतिसूक्ष्म...।

मैने सुना है एक बार की बात है कि जंगल के जानवरों ने तय किया की जो विवाह योग्य पशु हैं, जंगली जानवर हैं, उनके लिये एक मैरिज ब्यूरो खोला जाए। लोमड़ी देवी की अध्यक्षता में एक संस्था शुरू हुई। सभी जानवर उत्साहपूर्वक अपनी–अपनी पर्ची भर रहे थे की उनको कैसा वर या वधू चाहिए? सम्राट शेर जी जब पधारे और पर्ची भरने लगे, तो चूहेचंद ने अचानक बीच में उछलकर कहा की महाराज रुकिये! रुकिये राजन रुकिये! शादी की पर्ची मत भरिये। राजा ने कहा क्यों चूहे! मुझे शादी करने से क्यों रोक रहे हो? चूहे ने कहा कि महाराज मैं आपसे पुनः निवेदन करता हूँ आप शादी की पर्ची मत भरिये। कुंआरे ही रहिए। क्योंकि शादी करने से पहले मैं भी शेर हुआ करता था। शादी के बाद ही मेरी यह दुर्गति हुई।

परमात्मा से जब विवाह होगा, समाधि के साथ जब तुम एकात्म होओगे; तब सूक्ष्म से सूक्ष्म होते चले जाओगे। शेर से चूहा और बाद में चूहा भी गायब हो जाएगा। वह भी नहीं रह जाएगा, कुछ भी नहीं रह जाएगा, मूर्त से अमूर्त... मूर्ति पूजा से शुरू करोगे और अंततः अमूर्त में खो जाओगे। ऐसा समझो एक आदमी एक पहाड़ पर या चट्टान पर ध्यान करता हो; विषय बहुत स्थूल है। एक वृक्ष पर ध्यान करना उससे ज़्यादा सूक्ष्म है। फूल पर ध्यान करना और भी सूक्ष्म है। सुगंध पर ध्यान करना और अतिसूक्ष्म है। और अंत में सुगंध को भी छोड़ो उस आकाश में ध्यान करो जिसमें सुगंध व्याप्त है। वह सूक्ष्म; अतिसूक्ष्म है। इसकी व्याख्या करते हुए ओशो समझाते हैं।

बाद में ध्यान के विषय को बना देना होता है ज़्यादा और ज़्यादा सूक्ष्म...। उदाहरण के लिए, तुम ध्यान कर सकते हो चट्टान पर, या कि तुम ध्यान कर सकते हो फूल पर अथवा फूल की सुगंध पर या तुम ध्यान कर सकते हो ध्यानी पर। और तब चीज़ें ज़्यादा और ज़्यादा सूक्ष्म होती जाती हैं।

उदाहरण के लिए तुम ध्यान कर सकते हो ओम की ध्वनि पर। पहला ध्यान है इसे ज़ोर से कहने का, जिससे की वह प्रतिध्वनित हो सके तुम्हारे चारों ओर। वह तुम्हारे चारों ओर एक ध्वनि मंदिर बन जाए। ओम, ओम, ओम! तुम अपने चारों ओर निर्मित करते हो प्रदोलित तरंगें– अपरिष्कृत, पहला चरण। फिर तुम अपना मुँह बंद कर लेते हो। अब तुम इसे जोर–जोर से नहीं कहते। भीतर तुम कहते हो, 'ओम, ओम,

ओम।' होठों को नहीं हिलने देना, जीभ को भी नहीं हिलाना। बिना जीभ और बिना होठों के तुम कहते हो, 'ओम'। अब तुम निर्मित कर लेते हो एक आंतरिक वातावरण, एक क्लाईमट ओम का। विषय सूक्ष्म हो गया है।

फिर है तीसरा चरण : तुम उसका पाठ भी नहीं करते। तुम मात्र सुनते हो उसे। तुम बदल देते हो स्थिति, कर्ता से तुम सरक जाते हो सुननेवाले की निश्चेष्टता की ओर। तीसरी अवस्था में तुम भीतर भी नहीं उच्चारित करते, 'ओम'। तुम बस बैठ जाते हो और तुम बस सुनते हो उस ध्वनि को, नाद को। वह पहुंचता है क्योंकि वह वहां होता है। तुम मौन नहीं हो इसलिए तुम उसे सुन नहीं सकते।

'ओम' किसी मानवी भाषा का शब्द नहीं। उसका कोई अर्थ नहीं है। इसीलिए हिंदू इसे सामान्य वर्णमाला में नहीं लिखते। नहीं, उन्होंने एक अलग रूपाकार बना लिया है इसके लिए, मात्र भेद बतलाने को कि वह वर्णमाला का हिस्सा नहीं है। वह अलग से, अपने से ही अस्तित्व रखता है, और उसका कोई अर्थ नहीं है। यह मानवी भाषा का शब्द नहीं। यह स्वयं अस्तित्व का ही नाद है। निःशब्द का नाद है, मौन का नाद है। जब हर चीज़ मौन होती है तब सुनाई पड़ता है वह। तो तुम बन जाते हो श्रोता। यह इसी भांति बढ़ता जाता है, ज़्यादा और ज़्यादा सूक्ष्म ढंग से। और चौथी अवस्था में तुम भूल ही जाते हो हर चीज़ को– कर्ता को, श्रोता को, नाद को– हर चीज़ को। चौथी अवस्था में वहां कुछ नहीं होता।

तलाश जितनी ज़्यादा और ज़्यादा सूक्ष्म होती जाती है, और ज़्यादा और ज़्यादा शक्तिपूर्ण होती जाती है चेतना। और एक क्षण आता है जब चेतना इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि तुम सहज स्वाभाविक व्यक्ति की भांति जीते हो संसार में, बिना किसी भय में। लेकिन पतंजलि के साथ चरण–चरण बढ़ना। ध्यान के विषय अधिकाधिक सूक्ष्म होते हैं।

इन सूक्ष्म विषयों से संबंधित समाधि का प्रांत सूक्ष्म ऊर्जा की निराकार अवस्था तक फैलता है। यही है आठवां चित्र। समाधि का आयाम जो कि जुड़ा हुआ है, इन ज़्यादा सूक्ष्म विषयों के साथ, वह अधिकाधिक सूक्ष्म होता जाता है, और एक घड़ी आती है जब आकार मिट जाता है और वहां होता है निराकार।

'...सूक्ष्म ऊर्जा की निराकार अवस्था तक फैलता है।'

ये जो आठवें चित्र की बात ओशो ने कही, इसका संदर्भ आपको समझा दूं। जापान में झेन फ़क़ीरों ने आठ चित्र बनाए हैं। बड़ी सुंदर पेंटिंग! प्रतीकात्मक रूप से आध्यात्मिक खोज के प्रतीक हैं वे। पहले चित्र में एक आदमी है। उसका बैल जंगल में कहीं खो गया है। दूसरे चित्र में वह अपने बैल को खोजने निकलता है। तीसरे चित्र में

उस बैल के फुट प्रिंट्स दिखाई देते हैं; उसके पैरों के निशान मिट्टी में पड़े हुए। तब उसे समझ में आ जाता है बैल किस दिशा में गया है? वह बैल के पद-चिह्नों के पीछे-पीछे जाता है। जानने के लिये अगले चित्र में पेड़ों के बीच में से उसे बैल की पूँछ दिखाई देती है। अब तय हो गया की बैल यहीं छिपा है।

फिर बैल का पिछला हिस्सा दो पैर उसे दिखाई देते हैं। अगले चित्र में पूरा बैल दिखाई देता है। अगले चित्र में वह बैल को गले में रस्सी बांधकर अपने घर ले आता है। और आठवां अंतिम चित्र जो है; उसमें बैल गायब हो जाता है; और बैल का मालिक भी गायब हो जाता है। आठवां चित्र सिर्फ कोरा कैनवास है। उसमें कुछ भी नहीं।

ये झेन फ़क़ीरों ने सिंबोलिक बनाया है कि परमात्मा की खोज में जब कोई निकलता है- ओंकार की ध्वनि तक पहुंचता है। तर्क से विचार में, विचार से भाव में और अंततः केवल निराकार ऊर्जा में, फिर ओंकार में और अंत में कुछ भी नहीं रह जाता। कबीर साहब कहते हैं-

'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समँद में, सो कत हेरी जाइ।।'

सबकुछ खो जाता है। न श्रोता बचता है, न कुछ श्रव्य बचता है। संवेदनशीलता और जागरूकता जैसे-जैसे बढ़ती चली जाती है; केवल एक दिव्य ऊर्जा, केवल एक डिवाइन एनर्जी रह जाती है। बच्चन जी की ये पंक्तियां सुनना-

'जितना दिल की गहराई हो, उतना गहरा है प्याला।
जितनी दिल की मादकता हो, उतनी मादक है हाला।।
जितनी उर की भावुकता हो, उतना सुंदर साकी है।
जितना हो जो रसिक उसे है, उतनी रसमय मधुशाला।।
किसी ओर मैं देखूं मुझको दिखलाई देता साकी।
किसी ओर दिखलाई पड़ती मुझको मधुशाला।।
हर सूरत साकी की सूरत में परिवर्तित हो जाती।
आँखों के आगे हो कुछ भी, आँखों में है मधुशाला।।'

एक समय ऐसा आता है समाधि में डूबते-डूबते बस समाधि ही बचती है। फिर जहाँ देखते हो वहीं परमात्मा- स्वयं के भीतर भी, स्वयं के बाहर भी। सब आकारों में वही निराकार; सब आकृतियों में वही ओंकार। तब जानना समाधि की बहुत गहराई में पहुँच गए।

धन्यवाद। जय ओशो।।

सबीज समाधि

ता एव सबीजः समाधिः।। 46 ।।

जब तक ध्येय विषय है, तब तक होती सबीज समाधि।
मुक्ति नहीं मिलती है, रहती जनम–मरण की उपाधि।

पूर्व सूत्रों का स्मरण :– सवितर्क समाधि, निर्वितर्क समाधि, सविचार समाधि, निर्विचार समाधि, उसके बाद निराकार ऊर्जा और उसमें गूंजता हुआ ओंकार...।

आज के सूत्र में पतंजलि कहते हैं– ये सभी समाधियां जिनका पीछे वर्णन किया है सबीज समाधियां हैं। मन का बीज इनके भीतर मौजूद है।

जैसे पतझड़ में पत्ते झड़ जाते हैं। पेड़ नग्न खड़े हो जाते हैं। लेकिन वसंत ऋतु आने पर फिर नई कोंपलें फूट आती हैं। फिर पेड़ हरा–भरा हो जाता है। जैसे कोई पौधा नष्ट हो जाए और उसके अतिसूक्ष्म बीज ज़मीन में दबे हों; ऊपर से देखने में लगेगा की ज़मीन बिल्कुल साफ है। कहीं कोई पौधा नहीं है। लेकिन बरसात के दिन आएंगे; पानी गिरेगा, बीज फिर उग आयेंगे, घास फिर उग आयेगी, फिर पौधे पनप आएंगे।

सबीज समाधि का अर्थ है कि चित्तवृत्तियां ऊपर से देखने में तो बिल्कुल शांत हो गईं। लेकिन पैदा होने की वह वृत्ति टैंडंसी; वह मौजूद है। बीज रूप में मौजूद है। अतिसूक्ष्म! बीज का अर्थ है– अतिसूक्ष्म। जो दिखाई भी न देता हो। सबीज समाधि चार प्रकार की हुई– सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार; बीज मौजूद है।

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए परमगुरु ओशो ने इस प्रकार समझाया है।

वे समाधियां जो किसी विषय पर ध्यान करने से फलित होती हैं। सबीज समाधियां होती हैं और आवगमन के चक्र से मुक्त नहीं करतीं।

सारी समस्या यही होती है कि दूसरे से, विषय से कैसे मुक्त हों? विषय ही होता है सारा संसार। तुम आओगे फिर–फिर यदि विषय वहां होता है तो, क्योंकि विषय के साथ ही विद्यमान होती है आकांक्षा, विषय के साथ ही जीवन बना रहता है विचार का, विषय के साथ ही अस्तित्व होता है अहंकार का, विषय के साथ ही अस्तित्व रखते हो 'तुम'। यदि विषय गिर जाता है, तुम गिर पड़ोगे अचानक ही, क्योंकि विषय और व्यक्ति एक साथ ही अस्तित्व रखते हैं। वे एक दूसरे के हिस्से हैं; एक का अस्तित्व नहीं

बना रह सकता है। ऐसा सिक्के की भांति ही है। चित्त और पट्ट एक साथ अस्तित्व रखते हैं। तुम एक को बचा दूसरे को नहीं फेंक सकते। तुम चित्त को नहीं बचा सकते और पट्ट को नहीं फेंक सकते– वे दोनों इकट्ठे ही हैं। या तो तुम उन दोनों को ही रख लो और या फिर दोनों को ही फेंक दो। यदि तुम एक को फेंकते हो तो दूसरा फिंक जाता है। व्यक्ति और विषय साथ–साथ होते हैं, वे एक होते हैं, एक ही चीज के पहलू होते हैं। जब विषय गिर जाता है, तुरंत व्यक्तिपरकता का संपूर्ण घर ही ढह जाता है। तब तुम फिर वही पुराने न रहे। तब तुम पार चले गए, और केवल 'पार' ही जीवन–मृत्यु के पार है।

तुम्हें मरना होगा, तुम्हें होना होगा पुनर्जीवित। जब मर रहे होते हो, तो वृक्ष की भांति तुम फिर से बीज में एकत्रित कर लेते हो, अपनी आकांक्षाओं, अभीप्साओं को। तुम नहीं जाते दूसरे जन्म में, बीज उड़ जाता है और जा पहुंचता है दूसरे जन्म में। वह सब जिसे तुमने जिया होता है, चाहा होता है– तुम्हारी कुंठाएं, तुम्हारी विफलताएं, तुम्हारी सफलताएं, तुम्हारे प्रेम, घृणा– जब तुम मर रहे होते हो तो सारी ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है एक बीज में। वह बीज होता है ऊर्जा का। वह बीज कूद पड़ता है तुममें से और सरक जाता है किसी गर्भ में। फिर वह बीज पुनर्निर्मित कर देता है तुम्हें, वृक्ष के बीज की भांति ही। जब वह वृक्ष मरने वाला होता है वह सुरक्षित रखता है स्वयं को बीज में। बीज के द्वारा वृक्ष डटा रहता है; बीज के द्वारा 'तुम' डटे रहते हो, अटके रहते हो। इसीलिए पतंजलि इसे कहते हैं 'सबीज' समाधि। यदि विषय वहां होता है, तो तुम्हें फिर–फिर जन्म लेना होगा, तुम्हें गुजरना पड़ेगा उसी दुःख में से, उसी नरक में से जो है जीवन, जब तक कि तुम बीज–विहीन ही न हो जाओ।

सबीज समाधि के बाद अंतिम जो समाधि है उसका नाम है– निर्बीज समाधि– सीडलेस समाधि। इस बात को बहुत ग़ौर से समझना; विषय चाहे कोई भी हो; तर्क हो कि विचार, भाव हो या ऊर्जा, ओंकार हो या निराकार; विषय तो विषय ही है। चाहे सांसारिक हो अथवा पौदगलिक आध्यात्मिक– यहाँ तक की शून्यता का विचार भी एक विचार है। यहाँ तक की शून्यता का भाव भी एक भाव ही है।

जापान के झेन फ़क़ीर की कथाओं में आता है। किसी शिष्य ने बहुत वर्षों तक ध्यान किया। आया गुरु के पास और उसने कहा की गुरुदेव अब मैं बिल्कुल विचारशून्य हो गया हूं। झेन गुरु ने डंडा उठाकर उसके सिर में मारा और कहा की जाओ इस शून्यता को भी फेंक आओ। ये शून्यता का अनुभव किसे हो रहा है? अगर अनुभव हो रहा है की मैं शून्य हो गया हूं, मैं खाली हो गया हूँ, तो इसका अर्थ है तुम मौजूद हो और जिसका तुम्हें अनुभव हो रहा है वह भी मौजूद है। तो फिर शून्यता कहाँ

हुई? शून्यता तो तब होती जब अनुभव भी न रह जाता और जब अनुभव ही नहीं रह गया तो अनुभवकर्त्ता कहाँ रह जाएगा?

वो दोनों चीज़ें तो इकट्ठी ही हो सकती हैं। जब अनुभव करने का कोई विषय ही न बचा; न तर्क बचे, न विचार बचे, न भाव बचे, न भावातीत और विचारशून्य अवस्था ही बची, न ही अमन की अवस्था द स्टेट ऑफ नो माइंड; तो फिर उसे जाननेवाला भी कोई न बचा। ठीक ही तो है; जब जानने को ही कुछ नहीं तो जाननेवाला भी कहीं नहीं। ऑब्जैक्ट के साथ सब्जैक्ट भी विदा हो जाता है। जब कुछ जानने को ही नहीं है।

जब कुछ ज्ञेय नहीं है। तो फिर ज्ञाता कहाँ खड़ा होगा! किस चीज़ का ज्ञाता? गहन–निद्रा की अवस्था में जब स्वप्न भी विदा हो जाते हैं; तब न कुछ ज्ञेय होता है, न कोई ज्ञाता होता है। ठीक वैसे ही समाधि की अंतिम गहराइयों में ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जाते हैं।

और बड़े मज़े की बात है... जब ज्ञाता और ज्ञेय खो गये तो ज्ञान कहाँ बचेगा? ये पूरी की पूरी ट्रिनिटी; ये त्रिमूर्ति– ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान– खो जाती है। दूसरे शब्दों में द्रष्टा, दृश्य और दर्शन अथवा तुम कह सकते हो श्रव्य, श्रोता और श्रवण सब विदा हो जाते हैं; कुछ भी नहीं बचता।

आज सुबह मैं पढ़ रहा था एक चुटकुला... मुल्ला नसरुद्दीन की शादी हुई। उसकी पत्नी को बड़े सुंदर–सुंदर उपहार मिले थे। गिफ़्ट्स की पैकेट्स खोलते हुए वह बहुत प्रसन्न हो रही थी... किसी में आभूषण, किसी में वस्त्र, किसी में अन्य कुछ लाजवाब। एक बहुत बड़ा पैकेट जो उसकी सहेली ने दिया था, अंत में खोला गया, यह सोचके कि इसमें तो कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण चीज़ होगी।

लेकिन खोलने पर सबसे पहले एक पत्र निकला... उस पत्र में लिखा था की इस पैकेट में मैं तुम्हें उपहारस्वरूप वो वस्त्र दे रही हूँ जो सुहागरात को तुम पहनना; इन्हें पहनने पर तुम्हारे पतिदेव भौचक्के रह जाएंगे; आँखें फाड़े रह जाएंगे; आश्चर्यचकित और बहुत प्रसन्न होंगे। नसरुद्दीन की पत्नी की उत्सुकता और बढ़ गई और वह पैकेट खोला, जानते हो उस पैकेट में कौन से वस्त्र थे? खाली था वो!

जिसे हम कह रहे हैं स्टेट ऑफ नो माइंड– वहाँ विचार भी नहीं, तर्क भी नहीं, भाव भी नहीं– डिब्बा बिल्कुल खाली। इस खाली डिब्बे को भी फेंक दो।

इसलिये झेन फकीर जब कहते हैं अपने शिष्य से स्टेट ऑफ नो माइंड के बारे में कि इसे भी फेंक दो; इस शून्यता को भी त्याग दो; यह बड़े से बड़ा त्याग है। बाहर तुमने स्थूल विषयों को त्यागा, जो कोई ख़ास बात न थी। भीतर के सूक्ष्म विषयों का आलंबन लिया।

अब पतंजलि के साथ एक–एक क़दम और आगे बढ़ो। भीतर के सूक्ष्म विषय से जो मोह और राग उत्पन्न हो गया है। अब कृपया उसे भी जाने दो।

निश्चित रूप से ओंकार ने, आलोक ने, निराकार दिव्य ऊर्जा ने बहुत सहयोग पहुंचाया, बाहर के सांसारिक विषयों से छुड़ाया। अपने भीतर डूबने में बड़ी मदद की। वो जो इंद्रियों से हमारी ऊर्जा बाहर संसार के विषयों की तरफ़ जाती थी, वह अतींद्रिय हो गई। स्वयं के भीतर आने लगी। लेकिन भीतर भी ये सूक्ष्म इंद्रियां ही हैं। जो भीतर देख रही हैं, सुन रही हैं, भीतर जान रही हैं। विषय भीतर के हो गए बाहर के न रहे। अंतिम अवस्था में ये भी खो जाएँ वरना बीज रूप में विषय मौजूद है।

ओशो कहते हैं कि जहाँ विषय है, वहाँ संसार है। और जहाँ संसार है वहाँ सूक्ष्म रूप से अहंकार है। तुम्हें ये भाव बना ही रहेगा की मैं जाननेवाला हूँ आई एम द नोवर और यही है वह बीज आई एम द नोवर। मैं ज्ञाता हूँ, मैं क्या जानता हूँ? मैं बाहर का संगीत सुन रहा हूँ या भीतर का संगीत सुन रहा हूं; हूँ तो मैं श्रोता।

मैंने बाहर का दृश्य देखा अथवा भीतर उससे भी ज़्यादा अद्‌भुत दृश्य देखा– मैं तो द्रष्टा बना ही रहा, मैं तो मौजूद हूँ– और ये मैंपन एमनेस जिसे हम कहें अस्मिता... यह अहंकार से भी ज़्यादा सूक्ष्म है। अहंकार पर्सनैलिटी व्यक्तित्व से संबंधित होता है। अस्मिता भीतर की इंडिविजुवैलिटी से संबंधित होती है, निजता से संबंधित होती है। यह अस्मिता जो है... यह बीज है। यदि अस्मिता शेष बची, तो अहंकार के पुनः पनपने का संभावना है।

पतंजलि कहते हैं–

ता एव सबीजः समाधिः।

जब तक ध्येय विषय है तब तक होती सबीज समाधि;
मुक्ति नहीं मिलती है रहती जनम–मरण की व्याधि।।

अभी आवागमन का चक्र चलता रहेगा। क्योंकि बीज मौजूद है। यह अस्मिता पुनः नए गर्भ में प्रवेश करेगी, फिर नया शरीर धारण करेगी। फिर मन विचारों, तर्कों, भावनाओं से भर जाएगा। फिर अहंकार अपने पूरे रूप में मौजूद हो जाएगा। तो अंतिम लक्ष्य है– पतंजलि के योग का– निर्बीज समाधि। आगे के सूत्रों में हम उसकी चर्चा करेंगे। उसके बाद ही निर्वाण होता है। और निर्वाण के बाद फिर महापरिनिर्वाण होता है। इस शून्य मन के भी आगे जाना है। निरंकार के भी आगे जाना है। जहाँ तुम ही न रह जाओ... कोई भी न रह जाए... न कुछ जानने को... न कोई जाननेवाला।

धन्यवाद। जय ओशो।।

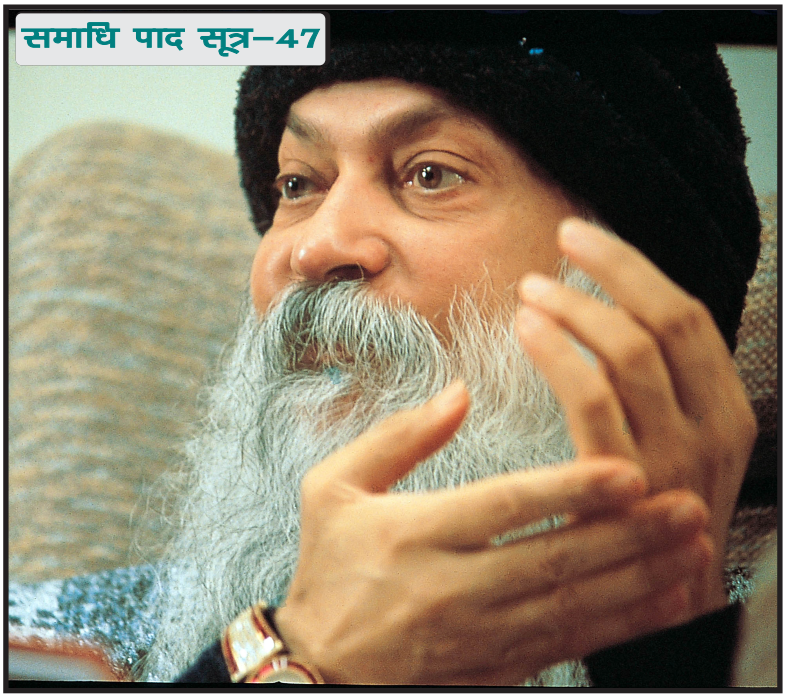

निर्विचार समाधि

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः।।47।।

निर्विचार वैशारद्ये अध्यात्म प्रसादः

जैसे–जैसे बढ़ती जाती, निर्विचार समाधि;
वैसे–वैसे साधक पर, प्रभु कृपा बरसती जाती।

ऐ मेरे हमनशीं चल कहीं ओर चल; इस चमन में अब अपना गुज़ारा नहीं।
बात होती गुलों तक तो सह लेते हम; अब तो काँटों पर भी हक़ हमारा नहीं।

कैसे हम इस मायावी संसार में हम इतने दिन जी लिए? ध्यानी व्यक्ति की जब समाधि गहराने लगती है, तो उसे आश्चर्य होता है कि कैसे स्वप्नलोक में जीते रहे? गुलों और काँटों पर, यहाँ के सुखों–दुःखों पर, कोई भी तो हमारा अधिकार नहीं था। वे

वास्तविक थे ही नहीं... अधिकार होता भी कैसे?

आज आए हो तुम कल चले जाओगे, ये मोहब्बत को अपनी गवारा नहीं;

उम्रभर का सहारा बनो तो बनो, दो घड़ी का सहारा सहारा नहीं।

इस ज़िंदगी में हम प्रेम ढूँढ़ते हैं, अमर प्रेम ढूँढ़ते हैं, शाश्वत सहारा ढूंढ़ते हैं, जो कभी मिलता नहीं। दो घड़ी का सहारा, क्षणभंगुर प्रेम, बस उतना ही घटित होता है। इसीलिये हर व्यक्ति विषादग्रस्त है। दो घड़ी का सहारा सहारा नहीं; असली सहारा तो सिर्फ़ परमात्मा ही है।

'ज़ालिमों अपनी किस्मत पे नाज़ाँ न हो, दौर बदलेगा ये वक्त की बात है।

वो यक़ीनन सुनेगा सदाएँ मेरी, क्या तुम्हारा ख़ुदा है हमारा नहीं?'

एक समय होता है जब भक्त सदाएँ देता है, प्रार्थना करता है, पुकारता है प्रभु को। फिर दूसरा समय आता है जब भक्त सुनना शुरू करता है– वो परमात्मा की आवाज़ उसे सुनाई पड़नी शुरू होती है। सूफ़ी फकीर उसे कहते हैं सदा–ए–आसमानी। ओंकार की ध्वनि, आकाश की आवाज़, शून्य का संगीत। इसमें डूबते–डूबते एक दिन ऐसा आता है कि भक्त स्वयं बह्ममय हो जाता है। स्वयं भी वह शून्य ही हो जाता है।

तत्पश्चात पतंजलि कहते हैं इस शून्यता को भी छोड़ देना। शून्यता को भी पकड़ न लेना। पीछे मैं आपको वह लतीफा सुना रहा था न! सुहागरात में मिला उपहार और पैकेट खोलने पर उसमें कोई वस्त्र न निकले। मात्र खाली डिब्बा था। इस खाली डिब्बे को भी अगर तुमने पकड़ लिया, अगर इसी को घर में सजाकर रख लिया, याद रखना! ये खाली डिब्बा ज़्यादा दिन खाली न रहेगा। अस्तित्व की एक खूबी है कि शून्यता को बरदाश्त नहीं कर सकता। तुम एक खाली घड़ा नदी में डुबाओ, तो तुम पाओगे तुरंत ही चारों तरफ़ से पानी आया और खाली घड़े को भर गया। तेज धूप पड़ती है। हवा गर्म होकर ऊपर उठ जाती है ज़मीन से। वहाँ जो वैक्यूम बना तुरंत चारों तरफ़ के वातावरण से एटमस्फियर से हवाएँ चलनी शुरू हो जाती हैं। उस शून्य को, रिक्त स्थान को भरने के लिये तूफान चलने लगता है।

अगर खाली डिब्बे को भी तुमने ज़्यादा देर तक रखा तो वो खाली न रहेगा। उसे भी त्याग देना। उस शून्यता को जिसको तुमने बड़े श्रम से, बड़ी साधना से, बड़े योग से पाया है; उस शून्यता का भी त्याग कर देना। घर का, परिवार का, धन–संपत्ति का, सामानों का त्याग कोई त्याग नहीं है; वो तो तुम्हारे थे ही नहीं। जब असली भीतर की संपदाएँ मिलनी शुरू होती हैं, जो लगता है की सचमुच में हमारी हैं, असली त्याग तो वहाँ आता है।

ओशो ने अपनी ध्यान की विधियों में शून्यता के चरण के उपरांत उत्सव को जोड़ा। कई बार उनसे पूछा गया की ध्यान का लक्ष्य तो साक्षीभाव में, शून्यता में जाना है। इसके बाद सेलिब्रेशन क्यों? ये जो डाईनेमिक मेडिटेशन है, सक्रिय ध्यान है, चौथे चरण पर समाप्त हो जाना चाहिए। योग का लक्ष्य उपलब्ध हो गया।

लेकिन ओशो उसमें पाँचवां चरण जोड़ते हैं कि अभी ध्यान से, समाधि से वापिस निकलो; नाचो, गाओ, झूमो, उत्सव मनाओ। क्योंकि यदि हमने शून्यता को भी पकड़ लिया ज़ोर से, तो फिर शून्यता शून्यता न रह जाएगी। नृत्य में, गायन में, उत्सव मनाने में सारी ऊर्जा शरीर उन्मुख हो जाएगी। वो जिसे तुम स्टेट ऑफ नो माइंड कह रहे थे– मन की शून्यता– वहाँ से ख़्याल हटेगा। इस प्रकार उत्सव मनाने से उस खाली डिब्बे से भी छुटकारा होगा; नहीं तो हम खाली डिब्बे को पकड़ के बैठ जाएंगे। फिर खालीपन ज़्यादा देर खाली नहीं रह पायेगा, शीघ्र ही वह भर जाएगा।

ओशो के इस ध्यान–विज्ञान को खूब गहराई से समझना। शून्यता से भी मुक्ति का उपाय उन्होंने अपनी विधियों में रखा है। ओशो कहते हैं–

समाधि की निर्विचार अवस्था की परम शुद्धता उपलब्ध होने पर प्रकट होता है आध्यात्मिक प्रसाद।

'निर्विचार वैशारद्ये अध्यात्म प्रसादः।'

यह शब्द प्रसाद बहुत–बहुत सुंदर है। जब कोई स्वयं की सत्ता में स्थिर हो जाता है, घर आ जाता है, अकस्मात वहां चला आता है आशीष, एक प्रसाद। वह सब जिसे किसी ने सदा से चाहा होता है, अकस्मात पूरा हो जाता है। जो तुम होना चाहते थे, अचानक तुम हो जाते हो, और तुमने कुछ किया नहीं होता उसके लिए, तुमने कोई प्रयास नहीं किया होता उसके लिए! निर्विचार समाधि में व्यक्ति जान लेता है कि अपने सच्चे स्वभाव में, गहनतम स्वभाव में व्यक्ति सदा ही संपूरित होता है। वहां होता है एक संपूरित नृत्य।

'निर्विचार समाधि की परम शुद्धता उपलब्ध होने पर...!'

और परम शुद्धता होती क्या है?– जहां अ–विचार का विचार तक भी विद्यमान नहीं होता है। वही है परम परिशुद्धता : जहां दर्पण बस दर्पण ही होता है, उसमें कुछ प्रतिबिंबित नहीं हो रहा होता– क्योंकि प्रतिबिंब भी एक अशुद्धता ही होती है। वस्तुतः वह दर्पण के साथ कुछ जोड़ता नहीं, पर फिर भी दर्पण परिशुद्ध नहीं रहता। प्रतिबिंब कुछ बिगाड़ नहीं सकता दर्पण का। वह कोई पदचिह्न, कोई अवशेष न छोड़ेगा, वह कोई छाप न छोड़ेगा दर्पण पर; लेकिन जब वह वहां होता है, तो दर्पण भरा रहता है किसी दूसरी ही चीज़ से। कोई बाहरी चीज़ वहां होती है। दर्पण अपनी परम शुद्धता में, अपनी

परम एकांतिकता में नहीं होता। दर्पण निर्दोष न रहा; कोई चीज़ मौजूद है वहां।

जब मन संपूर्णतया जा चुका होता है और वहां अ–मन भी नहीं होता; किसी भी, कोई भी चीज़ का विचार मात्र भी वहां नहीं होता; इतने आनंदपूर्ण क्षण में होने की तुम्हारी अवस्था का विचार भी नहीं होता। जब तुम समाधि की निर्विचार अवस्था की इस परम शुद्धता में ही होते हो, तो प्रकट होता है आध्यात्मिक प्रसाद। बहुत–सी चीज़ें घटती हैं।

अचानक परमात्मा का प्रसाद उतरता है जब हम उस अ–मन की दशा को भी छोड़ देते हैं। उस खाली डिब्बे से भी मुक्त हो जाते हैं। तब प्रभु की कृपा बरसती है।

सुनी होगी आपने कहानी गौतम बुद्ध के शिष्य सुभूति की। वर्षों से साधना कर रहा था। एक रात एक वृक्ष के नीचे बैठके समाधि में डूबा हुआ था। धीरे–धीरे निर्विचार समाधि को उपलब्ध हुआ और तब उसे महसूस हुआ मानो उसपर फूल बरस रहे हों। जैसे ही उसने नज़र ऊपर उठाई, तो देखा कि देवता उसके ऊपर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वह आश्चर्यचकित हुआ कि मेरे ऊपर फूलों की वर्षा क्यों? यह सम्मान क्यों? देवताओं के द्वारा! उसने पूछा मैं विस्मित हूँ यह जानकर कि मुझ पर फूल बरस रहे हैं? देवताओं ने कहा तुमने शून्यता के ऊपर, मौन के ऊपर जो प्रवचन दिया है उसकी खुशी में, उसके सम्मान में तुम पर वर्षा हो रही है। सुभूति ने कहा, 'क्षमा करें, मैंने तो शून्यता पर कोई प्रवचन नहीं दिया।' देवताओं ने कहा, यही तो महानतम प्रवचन है कि तुम्हें शून्यता का भी एहसास नहीं हो रहा। यही समाधि की चरम गहराई है।

याद रहे! शुरुआत में योगी को आनंद की अनुभूति होती है। बाद में जब आनंद और गहरा और गहरा होता चला जाता है, तब आनंद की भी अनुभूति विदा हो जाती है। परमानंद की दशा में आनंद भी नहीं बचता। वह आनंद भी दुःख के कॉन्ट्रास्ट में था। जन्मों–जन्मों से हम दुःख में, तनाव में, पीड़ा में, चिंता में जी रहे थे। जब पहली बार मन शांत होता है, विचारों के कोलाहल से मुक्त होता है, तो बड़ी शांति का, बड़े आनंद का अनुभव होता है।

लेकिन याद रखना, सारे अनुभव कॉन्ट्रास्ट में होते हैं। जैसे स्कूल में शिक्षक ब्लैकबोर्ड पर सफेद चाक से लिखते हैं, जैसे रात में काले बादलों के बीच सफेद बिजली चमकती है। अनुभव के लिये कॉन्ट्रास्ट चाहिए। रात के अंधेरे में तारे चमकते हैं। दिन की रोशनी में भी तारे वहीं होते हैं। लेकिन दिखाई पड़ने बंद हो जाते हैं। अंधेरे का कॉन्ट्रास्ट चाहिए। ठीक ऐसे ही दुःख और पीड़ाओं के कॉन्ट्रास्ट में शांति और आनंद का अनुभव होता है।

लेकिन जब समय बीत जाता है, वह पीछे की पृष्ठभूमि बहुत दूर छूट जाती है,

विस्मृत हो जातीं; तब शांति और आनंद का भी अनुभव नहीं होता है। यही असली शांति है, यही परमानंद की अवस्था है। प्रभुकृपा बरसती है। सुभूति की यह कहानी प्रतीकात्मक है। फूल निश्चित रूप से बरसते हैं। शून्यता से भी मुक्त हो जाने पर पूर्णता बरस उठती है, चारों तरफ़ से अस्तित्व की वर्षा होने लगती है।

मैंने सुना है, नसरुद्दीन, एक दिन अपने कुत्ते पर बहुत नाराज़ था। कह रहा था कि मैं इस कुत्ते को गोली मार दूंगा। इसको ज़हर खिलाकर ख़तम कर दूंगा। उसके पड़ोसी चंदूलाल ने कुत्ते पर इतनी नाराज़गी का कारण पूछा। कहने लगे कि तुम तो अपने कुत्ते से बहुत प्रेम करते थे! आज इतनी नाराज़गी की कौन-सी बात हो गई? नसरुद्दीन ने कहा, 'अब ये मुझे धोखा दे रहा है, पहले वफादार था। अब धोखेबाज़ हो गया है।' चंदूलाल ने पूछा,' क्या किया इसने?' नसरुद्दीन ने कहा, 'मैंने कबूतर पाले थे। इसने कबूतर खा लिये; चार महीने पहले मैंने एक बिल्ली पाली थी, पाँच दिन भी इसने बिल्ली को न बचने दिया। ये दुष्ट कुत्ता, हिंसक कुत्ता... फिर मैंने खरगोश पाला। पंद्रह दिन के अंदर यह खरगोश को भी चट कर गया। और सुनो! मुझे मुर्गी पालने का शौक था। इसने मेरी मुर्गियां भी न बचने दीं। नाराज़गी तो बहुत दिन से है लेकिन अब! अब तो हद हो गई नाराज़गी की। मेरी सास को घर में आए एक महीना हो गया और ये कुछ भी नहीं कर रहा है।' चंदूलाल ने कहा, 'धीरज रखो भाई, धीरज रखो, प्रभुकृपा होगी तो कुछ न कुछ ज़रूर होगा।' निश्चित रूप से प्रभुकृपा होती है; लेकिन धीरज... और धीरज कहाँ? जब तुम निर्विचार समाधियों की गहराइयां छूने लगो, शून्यता का एहसास करने लगो, तो इस शून्यता के मोह में मत बंध जाना। थोड़ा और धीरज, थोड़ी और प्रतीक्षा... इस पर भी मुट्ठी मत बांधना और तब तुम पाओगे अद्भुत प्रभुकृपा बरसने लगी। कृपा ही कृपा...! परमात्मा ही परमात्मा हो गया। तुम विदा हुए, तुम समाप्त हुए, तुम्हारा न हो जाना ही उसका हो जाना है। अस्मिता का छोटा-सा बीज भी छाते के समान है। प्रभु की वर्षा होती रहती है। और हमारे छाते की वजह से हम रूखे-सूखे रह जाते हैं। इस आखिरी छाते को भी विदा कर देना। द स्टेट आफ नो माइंड अ-मन की दशा जब महसूस होने लगे, सावधान! यह आखिरी छाता है यह जैसे ही विदा हुआ... प्रभु कृपा बरसी।

पतंजलि कहते हैं-

जैसे-जैसे बढ़ती जाती निर्विचार समाधि
वैसे-वैसे साधक पर प्रभुकृपा बरसती जाती।
'निर्विचार वैशारद्ये अध्यात्म प्रसादः।'

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–48

ऋतम्भरा प्रज्ञा

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।। 48 ।।

निर्विचार समाधि में, होती पैदा ऋतम्भरा;
सत्य को समझने की, आती निर्मल प्रज्ञा।

पतंजलि कहते हैं 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।' निर्विचार समाधि में डूबने पर ऋतम्भरा प्रज्ञा का जन्म होता है। यह शब्द बड़ा प्यारा है! इसका ठीक–ठीक अनुवाद करना मुश्किल है; हिंदी में भी, अंग्रेजी में भी। थोड़ा–सा समझना पड़ेगा– ऋतम्भरा अर्थात् जीवन का परम नियम, जीवन का परम सत्य। लेकिन सत्य शब्द भी बड़ा रूखा–सूखा है और नियम शब्द भी बड़ा प्राणहीन है; उसमें वह जीवंतता नहीं। लगता है कोई मुर्दा नियम, जैसे विज्ञान का कोई सिद्धांत। ऋतम्भरा का अर्थ है जीवन का पूरा सत्य; सारी विपरीतताओं को स्वयं में समाहित किये हुए।

जब आध्यात्मिक प्रसाद बरसता है तब सत्य को धारण करने वाली प्रज्ञा उत्पन्न होती है। प्रसाद क्यों कहते हैं, पतंजलि? शुरुआत की थी प्रयास से। आओ जानें हम अब अनुशासन योग का– श्रम, साधना, प्रयास शुरुआत में और धीरे–धीरे हम पहुँच गए निष्प्रयत्न में– प्रयास से प्रसाद की तरफ़... कर्म से कृपा की तरफ़...। अंतिम घटना जो घटती है... समाधि की, वह हमारे करने से नहीं घटती। यदि वह हमारे कृत्य का परिणाम हो तब तो वही अहंकार को पुष्ट करने वाली हो जाएगी। अंतिम घटना प्रसादस्वरूप होती है। हम कुछ भी नहीं कर रहे होते...।

मैंने आपको सुभूति की कहानी कही न! ओशो ने बड़ी सुंदर प्रवचनमाला दी है सुभूति की इस कथा पर। उसका शीर्षक है 'एंड द फ्लावर्स शावर्ड' और जब फूल बरसे। वे फूल सदा प्रसादस्वरूप बरसते हैं। यदि हमारे कृत्यों के कारण बरसें, यदि उसे हम अपनी मर्ज़ी से बरसा सकें; तब उनमें वो गरिमा और महिमा न रह जाएगी? उन फूलों की सुगंध खो जाएगी। इसलिये योगी शुरुआत तो करता है प्रयास से; किंतु अंत होता है प्रसाद पर। अंत में योगी भी भक्त हो जाता है। प्रभुकृपा में लवलीन हो जाता है।

पतंजलि कहते हैं– आध्यात्मिक प्रसाद बरसने के बाद ही ऋतम्भरा–प्रज्ञा जन्मती है। इस ऋतम्भरा शब्द को ओशो ने बड़े प्यारे अंदाज़ में समझाया है। वे कहते हैं–

'निर्विचार समाधि मे चेतना संपूरित होती है सत्य से, ऋतम्भरा से।'

'ऋतम्भरा' बहुत सुंदर शब्द है। यह 'ताओ' की भांति ही है। शब्द 'सत्य' पूरी तरह इसकी व्याख्या नहीं कर सकता। वेदों में इसे कहा है ऋत्। ऋत् का मतलब होता है– अस्तित्व का मूल आधार। ऋत् का मतलब होता है– अस्तित्व का गहनतम नियम। 'ऋत्' केवल सत्य नहीं; सत्य बहुत ही रूखा–सूखा शब्द है और बहुत ही तार्किक गुणवत्ता लिए रहता है अपने में। हम कहते हैं, 'यह सत्य है और वह असत्य है।' और हम निर्णय करते हैं कि कौन–सा सिद्धांत सत्य है और कौन–सा असत्य। सत्य अपने में ज़्यादा भाग तर्क का लिए रहता है। यह एक तर्कमय शब्द है।

'ऋत्' का अर्थ है : ब्रह्मांड की समस्वरता का नियम; वह नियम जो कि सितारों को गतिमान करता है; वह नियम जिसके द्वारा मौसम आते और चले जाते, सूर्य उदय होता और अस्त हो जाता, दिन के पीछे रात आती और मृत्यु चली आती जन्म के पीछे। मन निर्मित कर लेता है संसार को और अ–मन तुम्हें उसे जानने देता है जो कि है। 'ऋत्' का अर्थ है ब्रह्मांड का नियम, अस्तित्व का ही अंतस्तल।

उसे सत्य कहने की अपेक्षा, उसे अस्तित्व का आत्यंतिक आधार कहना बेहतर होगा। सत्य जान पड़ता है दूर की चीज, कोई ऐसी चीज जो तुमसे अलग अस्तित्व रखती है। 'ऋत्' है तुम्हारा अंतरतम अस्तित्व और अंतरतम अस्तित्व केवल तुम्हारा ही नहीं है, बल्कि अंतरतम अस्तित्व है सभी का– ऋतम्भरा।

निर्विचार समाधि में चैतन्य आपूरित होता है ऋतम्भरा से, ब्रह्मांड की समस्वरता से। कुछ निकाल फेंका नहीं गया होता। कोई द्वंद्व नहीं। हर चीज़ सुव्यवस्था में उतर चुकी होती है। गलत भी विलीन हो जाता है, वह अलग निकाल नहीं दिया जाता; बुरा भी विलीन हो जाता है, वह अलग निकाल नहीं दिया जाता; विष भी विलीन हो जाता है वह अलग नहीं किया जाता है। कोई चीज अलग नहीं की जाती है।

सत्य में, असत्य अलग कर दिया जाता है। ऋतंभरा में संपूर्णता ही स्वीकृत होती है। और संपूर्ण की घटना इतनी समस्वरीय है कि विष भी अपनी भूमिका निभाता है। केवल जीवन ही नहीं बल्कि मृत्यु भी, हर चीज नए प्रकाश में देखी जाती है। यहां तक की पीड़ा यानी दुःख भी स्वयं में एक नई गुणवत्ता धारण कर लेता है। असुंदर भी हो जाता है सुंदर क्योंकि ऋतम्भरा के अवतरण की घड़ी में, तुम्हें पहली बार समझ में आता है कि विपरीत का अस्तित्व क्यों होता है। विपरीतताएं फिर विपरीतताएं नहीं रहतीं; वे सब पूरक बन चुकी होती हैं; वे सब मदद पहुँचाती हैं एक दूसरे को।

राजमिस्त्री को देखा द्वार या खिड़की के ऊपर एक गोल आर्च बनाता है विपरीत ईंटें जोड़ता है; ये विपरीत ईंटें एक दूसरे को सहारा देती हैं, और गोल द्वार बन जाता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सीधी–सीधी ईंटें जोड़ दी जाएं। जोड़ी तो जा सकती हैं,

लेकिन फिर ये द्वार बनेगा नहीं, गिर जाएगा। गुंबद बनाते हैं मंदिर के ऊपर; चारों दिशाओं से जो ईंटें आ रही हैं, वे एक दूसरे को सहारा देती हैं, और मंदिर के गुंबद का निर्माण करती हैं। यदि फ्लैट ईंटें लगा दी जाएं, ये छत बनेगी ही नहीं गिर जाएगी। विपरीत की मदद चाहिए। विपरीत के बिना यह अस्तित्व हो नहीं सकता। तब उन्हें विपरीत कहने का कारण क्या? जो एक दूसरे के बिना हो ही नहीं सकते...।

बहुत स्त्री–पुरुष मेरे पास आते हैं। पति–पत्नी का झगड़ा अनंतकाल से चला आ रहा है और आकर अपना दुःखड़ा सुनाते हैं। पति पत्नी की शिकायत करता है; पत्नी पति की शिकायत करती है। मैं उनकी कहानी सुनता हूँ। भीतर–भीतर तो हँसी आती है, ऊपर से गंभीर चेहरा बनाके रखना पड़ता है; नहीं तो नाराज़ हो जाएंगे कि हम अपने दुःख की बात बता रहे हैं और आप हँस रहे हैं। लेकिन भीतर मैं जानता हूँ, स्त्री–पुरुष दो विपरीत ध्रुव हैं। इन दोनों से ही यह प्रकृति चलती है। केवल मनुष्य ही नहीं सारी प्रकृति में वही नर और मादा का खेल है। पेड़–पौधों में स्त्री और पुरुष दो तत्त्व मौजूद हैं। उससे ही नए बीज निर्मित होते हैं, फल बनते हैं। फूल जो हैं– वे पेड़–पौधों के सैक्स ऑर्गन हैं। सब जगह विपरीतता है; इस विपरीतता से ही जीवन चल रहा है।

जहाँ विपरीतता है वहाँ पर निश्चित ही कॉनफ़्लिक्ट भी होगा। जहाँ प्रेम होगा वहाँ घृणा भी होगी। हम चाहते हैं सिक्के का एक पहलू बच जाए; पति पत्नी के भीतर– प्रेम तो हो, घृणा न हो; करुणा तो हो, क्रोध न हो। ये असंभव बात है– ऐसा हो ही नहीं सकता। जहाँ प्रेम है वहां घृणा भी होगी। पेंडुलम की भाँति सारी गति है जीवन की। घड़ी के पेंडुलम को देखते हैं– बांए गया, फिर दाएँ गया...। जब वो दाहिनी तरफ़ जा रहा है, तो वास्तव में बांयीं तरफ़ जाने के लिये मोमैंटम गेन कर रहा है, संवेग एकत्रित कर रहा है। जब बांयीं तरफ़ जा रहा है तब दांयीं तरफ़ जाने के लिये शक्ति एकत्रित कर रहा है। बाएँ और दाएँ जाना विपरीत नहीं हैं एक हार्मनी है, एक लयबद्धता है।

जब एक नए बच्चे का जन्म हो रहा है, तो समझना उसकी मृत्यु की तैयारी हो रही है। एक दिन यह बूढ़ा होगा, बीमार होगा और इसकी मौत आयेगी। जब किसी वृद्ध की मृत्यु हो तो जानना नए जन्म की तैयारी हो रही है। पुराना शरीर छूटा फिर नए शरीर, ताजे शरीर से फिर शुरुआत होगी। पेंडुलम बांए गया तो दाएँ जाएगा, दाएँ गया तो बांए जाएगा। जीवन की सारी विपरीतता को इस पूर्ण सत्य को जो व्यक्ति इकट्ठा देखने लगता है, उसे हम कहेंगे सम्यक दृष्टिवाला व्यक्ति।

पतंजलि उसी के लिये कह रहे हैं ऋतम्भरा प्रज्ञा। एक तो हमारी साधारण प्रज्ञा है, साधारण समझ, जिसे हम अंडरस्टेंडिंग कहते हैं। एक और गहरी समझ, अंग्रेजी में जिसके लिये हम विज़्डम शब्द का इस्तेमाल करते हैं, संतों की जो समझ है जीवन की

बारे में, वो साधारण अंडरस्टेंडिंग नहीं है, वो बड़ी गहरी विज़्डम है, वही ऋतम्भरा प्रज्ञा है। वहाँ विपरीत विपरीत नहीं रह जाते एक दूसरे के परिपूरक हो जाते हैं।

मैने सुना है नसरुद्दीन को एक दिन बहुत उदास देखकर ऑफिस के मित्रों ने पूछा कि अरे! तुम तो पिछले पाँच–छह महीनों से बड़े खुश नज़र आ रहे थे आज अचानक क्या हुआ? क्यों इतने चिंतित और परेशान हो? नसरुद्दीन ने कहा कि छह महीने पहले मेरी पत्नी बच्चों सहित मुझसे नाराज़ होकर मायके चली गई थी, कभी न आने की कसम खाकर। कल रात वो बच्चों सहित फिर वापस आ गई है।

पत्नी जब मायके जाएगी तब तुम्हारे भीतर कहीं इच्छा होगी की वापिस आ जाए। जब घर में आ जाएगी तब तुम सोचोगे देवी कब मायके जाएगी। जो हमारे निकट है उससे दूरी का भाव उत्पन्न होता है; जो दूर है उससे आकर्षण पैदा होता है। जीवन की इस पूर्णता को देखना। ये दोनों बातें आपस में कॉम्प्लीमेंट्री है। इसमें कुछ विपरीतता नहीं है।

मैने सुनी है एक और कहानी नसरुद्दीन के बारे में। नसरुद्दीन का एक बहुत पुराना मित्र कोई बीस साल बाद मिला। साथ स्कूल में पढ़ते थे। बीस साल गुज़र गये, अचानक मुलाकात हुई। उसने पूछा, नसरुद्दीन! शादी–ब्याह हो गई, बच्चे वगैरह? नसरुद्दीन ने कहा मेरी पत्नी के बारे में कुछ न पूछो; वो तो बस यूँ समझो स्वर्ग में अप्सरा है, हूर है...हूर है हूर, स्वर्ग की अप्सरा है। उसका मित्र बहुत उदास हो गया। उसने कहा, 'तुम बड़े सौभाग्यशाली हो नसरुद्दीन। तुम्हारी पत्नी स्वर्ग में अप्सरा है, मेरी तो अभी तक जिंदा है।'

पत्नी जिंदा होगी, तो तुम सोचोगे कब ये स्वर्गवासी हो जाए? स्वर्गवासी हुई नहीं कि फिर तुम इंतज़ार करने लगोगे दूसरी पत्नी कहाँ से मिल जाए? कि उन्हीं देवी जी से कैसे मुलाकात हो अगले जनम में, योजनाएँ बनने लगेंगी।

निकटता और दूरी फिर निकटता और दूरी नहीं रह जाते, एक हो जाते हैं। आकर्षण और विकर्षण एक हो जाते हैं। चुंबक के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की तरह जो कभी अलग नहीं हो सकते। जब तक तुम्हें जीवन में द्वैत दिखाई दे रहा है, जब तक तुम्हें राम और रावण अलग–अलग नज़र आते हैं– एक दूसरे के दुश्मन! तब तक जानना ऋतम्भरा प्रज्ञा पैदा नहीं हुई। ऋतम्भरा प्रज्ञा में शुभ और अशुभ, नैतिक और अनैतिक, अच्छा और बुरा सब एक संपूर्णता के हिस्से हो जाते हैं। एक दूसरे के परिपूरक हो जाते हैं। यह शब्द ऋतम्भरा बड़ा प्यारा है! सत्य को धारण करनेवाली प्रज्ञा।

पतंजलि कहते हैं 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।' आगे के सूत्र और भी गहन होंगे, बहुत ग़ौर से सुनना, समझना, डूबना और उन्हें जीना।

धन्यवाद। जय ओशो।।

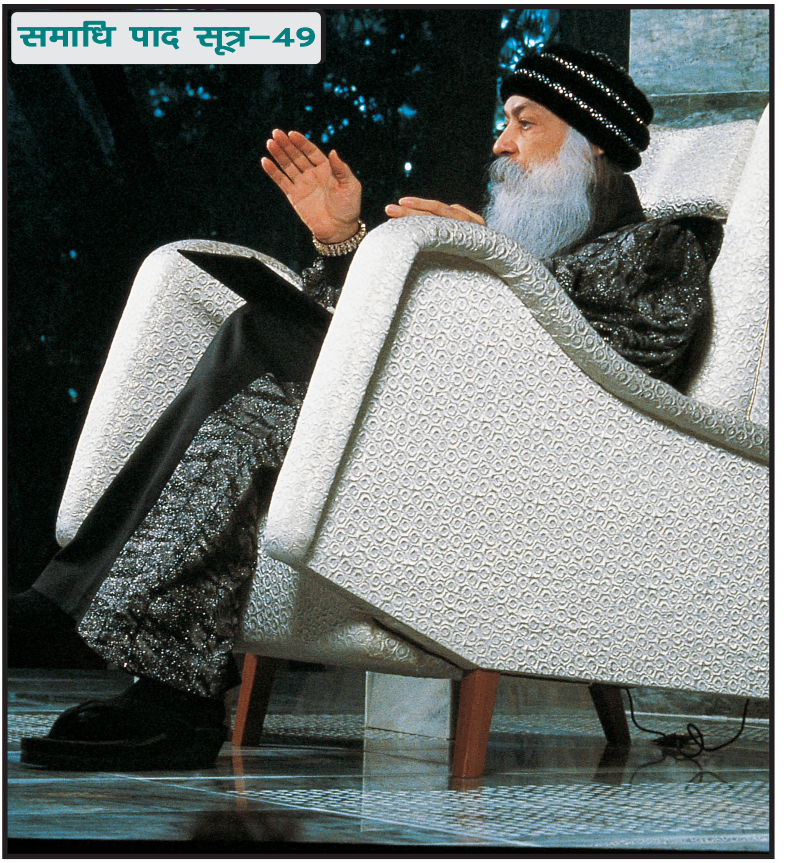

विराट सत्य : इंद्रियों से परे

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्।।49।।

श्रुत अनुमान प्रज्ञाभ्याम् अन्य विषया विशेष अर्थत्वात्

ऋतम्भरा उपलब्ध न होती, सुनकर या अनुमान से;
परम सत्य का बोध न होता, किसी भी इंद्रिय–ज्ञान से।

पतंजलि कहते हैं कि अनुमान हम जो भी लगाते हैं वे ग़लत ही होंगे। हम सुनकर, देखकर अथवा किसी अन्य इंद्रिय से जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह भी हमेशा ग़लत ही होता है। क्यों? क्योंकि इंद्रिय हमेशा एक छोटे–से अंश को देख पाती है, सुन पाती है,

छू पाती है और सत्य है पूरा विराट असीम, अपरिसीम...।

आपने उस हाथी की कहानी तो सुनी होगी जिसे देखने पाँच अंधे गये थे। उन्होंने प्रत्येक ने हाथी के एक–एक अंग को छुआ और उन्होंने जो अनुमान लगाया स्पर्श के द्वारा, वह बिल्कुल ही ग़लत था। अंश के द्वारा पूर्ण का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। और इंद्रिय हमेशा एक छोटे–से अंश को ही जान सकती है। ऐसा समझें कि हमारा शरीर एक मकान है। इसमें जो हमारी इंद्रियां हैं वे खिड़कियां हैं और भीतर मालिक है... हमारा चैतन्य। इन खिड़कियों के माध्यम से जब वह बाहर झांकता है तो उसे जो भी दिखाई देगा वो सीमित आकृति में ही दिखाई देगा। आप खिड़की से आकाश को देखते हैं। यदि खिड़की चौकोर है तो खिड़की की वह चौकोर फ्रेम आकाश पर जड़ी हुई दिखाई देती है, आकाश चौकोर नहीं है, न आकाश गोल है, न आकाश त्रिकोण है, न आकाश षट्कोण है।

सभी आकृतियां खिड़की की आकृतियां हैं। आकाश की तो कोई आकृति नहीं। लेकिन मजबूरी है खिड़की किसी भी आकृति की हो हम केवल उसी आकृति में ही आकाश को देख पायेंगे। ठीक इसी प्रकार जो भी हम सुनते हैं, समझते हैं, अर्थ निकालते हैं, सूंघकर, चखकर, स्पर्श से; हमारे वे सभी अनुमान ग़लत होते हैं। प्रत्येक इंद्रिय अपना रंग उसमें डाल देती है। प्रत्येक इंद्रिय केवल रिसेप्टिव नहीं है, वह केवल सूचनाओं को ग्रहण नहीं कर रही; बल्कि वह प्रोजेक्टर भी है। वह अपना रंग प्रोजैक्ट करती है, प्रक्षेपित करती है और सत्य को हम नहीं देख पाते। इसीलिये ऋतम्भरा प्रज्ञा श्रुत, अनुमान अथवा इंद्रिय ज्ञान से कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकती। ओशो कहते हैं–

निर्विचार समाधि की अवस्था में, विषय–वस्तु की अनुभूति होती है उसके पूरे परिप्रेक्ष्य में, क्योंकि इस अवस्था में ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होता है, इंद्रियों को प्रयुक्त किए बिना ही।

जब इंद्रियों का प्रयोग नहीं होता, जब आकाश को देखने के लिए छोटे–से छिद्र का प्रयोग नहीं किया जाता... क्योंकि छिद्र आकाश को अपना ढाँचा देगा और हर चीज नष्ट कर देगा– आकाश उस छिद्र से ज़्यादा बड़ा नहीं होगा, वह हो नहीं सकता। कैसे तुम्हारा परिप्रेक्ष्य ज़्यादा बड़ा हो सकता है तुम्हारी आँखों से? कैसे तुम्हारा स्पर्श ज़्यादा बड़ा हो सकता है तुम्हारे हाथों से? और कैसे ध्वनि ज़्यादा गहन हो सकती है तुम्हारे कानों से? असंभव! आंखें, कान और नाक छिद्र हैं। उनके द्वारा तुम देख रहे होते हो सत्य को।

जब अकस्मात निर्विचार में तुम स्वयं में से बाहर कूद जाते हो, पहली बार वह विशालता, वह असीमता जानी जाती है। अब पूरा परिप्रेक्ष्य उपलब्ध हो जाता है। आरंभ

नहीं होता है वहां, अंत नहीं होता है वहां। अस्तित्व में कहीं कोई सीमाएं नहीं। वह असीम होता है। कोई सीमाएं नहीं होतीं। सारी सीमाएं तुम्हारी इंद्रियों से संबंधित होती हैं। वह इंद्रियों द्वारा दी जाती हैं। अस्तित्व स्वयं असीम है; सारी दिशाओं में तुम चलते और चलते चले जाते हो। उसका कोई अंत नहीं होता।

यदि तुम देखो विषय–वस्तु की ओर पूरे परिप्रेक्ष्य के साथ, तो विषय अपने हर हिस्से के द्वारा जुड़ा होता है अपरिसीम के साथ। उसके बिना वह अस्तित्व नहीं रख सकता है। कोई विषय, कोई वस्तु स्वतंत्र रूप से अस्तित्व नहीं रखती है। व्यक्ति तो मात्र एक व्याख्या है। हर कहीं समष्टि अस्तित्व रखती है। यदि तुम हिस्से को बना लेते हो समष्टि, तब तुम विभ्रांत हो जाते हो। यही दृष्टिकोण होता है अज्ञान का। तब तुम हिस्से को ऐसे देखते हो जैसे वह संपूर्णता हो। जब तुम देखते हो हिस्से की तरफ और संपूर्ण प्रकट हो जाता है उसमें, तो यह दृष्टिकोण एक जाग्रत चेतना का है।

निर्विचार समाधि की अवस्था में विषय–वस्तु की अनुभूति होती है उसे पूरे परिप्रेक्ष्य में, क्योंकि इस अवस्था में ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होता है, इंद्रियों को प्रयुक्त किए बिना ही।

बिना ज्ञान के, बिना इंद्रियों के, बिना बाहर की सूचनाओं के जो हमें सीधा–सीधा अनुभव होता है– केवल वही प्रत्यक्ष ज्ञान है। वही ऋतम्भरा को जन्म देता है।

एक छोटे–से उदाहरण से समझें– कल्पना करें घनघोर अंधेरा है कमरे में, कुछ भी दिखाई नहीं देता, और मैं आप से पूछूँ– क्या आप वहाँ बैठे हैं? आप कहेंगे कि हाँ मैं बैठा हूं। मैं आपसे पूछूं की आपको कैसे पता चला की आप हैं, दिखाई तो आप पड़ते नहीं, क्या आप स्वयं को देख पा रहे हैं? आप कहेंगे– नहीं। इस घनघोर अंधेरे में मैं स्वयं को देख तो नहीं पा रहा हूँ। फिर मैं पूछूंगा– किस इंद्रिय से पता चला कि आप हैं? आप कहेंगे इसमें किसी इंद्रिय की ज़रूरत नहीं; मुझे सीधे ही पता चल रहा है कि मैं हूँ। ये है प्रत्यक्ष ज्ञान।

हमें हमारे स्वयं के होने की अनुभूति कैसे होती है? कल्पना करें यदि मेरी आँखें न होतीं, तो मैं दर्पण में अपने चेहरे को देख न पाता। यदि मेरे कान खराब हो जाएँ, बहरे हो जाएँ, मैं कोई ध्वनि न सुन पाऊँगा। यदि मेरे सूंघने की क्षमता, स्वाद लेने की क्षमता किसी बीमारी में नष्ट हो जाए, तब मैं बाहर के जगत की सुगंध या दुर्गंध, सुस्वाद या बे–स्वाद कुछ भी न जान सकूंगा। यदि मेरे हाथों पर कोई एनेस्थेटिक दवा लगा दी जाए जिससे नर्वस सिस्टम शून्य हो जाता है, तब मैं किसी चीज़ को छू न पाऊँगा मुझे स्पर्श का पता न चलेगा, मैं न जान सकूंगा की ये वस्तु गर्म है कि ठंडी, कोमल है कि

खुरदुरी; मुझे कोई भी ज्ञान न हो सकेगा। जब मेरी सारी इंद्रियां मुझे कोई सूचना न देंगी, क्या तब मुझे ये पता नहीं चलेगा कि मैं हूँ? ये मुझे मेरे होने का पता कैसे चल रहा है? निश्चित रूप से मेरा होना इंद्रियों के अतीत है। वो जो मैने उपमा दी थी कि शरीर एक मकान के समान है और चेतना उसके भीतर की मालिक। यदि सारी खिड़कियां बंद हों तब भी मालिक यह तो जानेगा ही कि मैं हूँ। खिड़की के खुले होने या बंद होने से मालिक के होने या न होने में कोई भेद नहीं पड़ता।

ठीक इसी प्रकार जब हम पूर्णतः निर्विचार हो जाते हैं, हमारे भीतर की मन की इंद्रियां भी काम करना बंद कर देती हैं, तब भी हमें ज्ञान होता है। वह ज्ञान ही ऋतम्भरा प्रज्ञा है। सीधा-सीधा साक्षात होता है। जो भी हम जानते हैं सीधा साक्षात् जानते हैं। इंद्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान सदा ही परोक्ष होता है और वह विश्वसनीय नहीं है। यह सूचना किसी ने लाकर हमको दी और जो व्यक्ति सूचना लाया है, वह सूचना को बदल देता है, उसमें परिवर्तन हो जाता है। एक शब्द का ज़रा-सा फर्क पूरी बात को बदल देता है।

मैंने सुना है उत्तरप्रदेश के एक सज्जन ने एक साऊथ इंडियन लड़की से विवाह किया। उसे हिंदी नहीं आती थी। नई-नई वह हिंदी सीख रही थी अपनी ससुराल में आकर। एक दिन कुछ मेहमान आये थे। उनको वह भोजन परोस रही थी। पहले उसने पूछ लिया था कि हिंदी में क्या कहना है?

उसके पति ने उसे समझा दिया था कि तुम मेहमानों से कहना, लीजिए लीजिए, खाना खाइए, शर्म न कीजिए, अपना ही घर समझें। उस नववधू ने हिंदी का यह वाक्य याद कर लिया।

मेहमान आए, खाना खाने बैठे, जब उन लोगों ने कहा कि बस पेट भर गया। तब उसने और सब्जी और रोटी ला के दी और उसने कहा कि खाओ-खाओ! अरे मजे से खाओ। शर्म तो है नहीं।

एक शब्द का फर्क कि शर्म न कीजिए और शर्म तो है नहीं... एक शब्द का फर्क और ज़मीन-आसमान का फर्क हो जाता है। शब्दों के द्वारा जो ज्ञान हमें प्राप्त होगा उसमें ज़रूरी नहीं कि वही भाव संप्रेषित हो जो उस व्यक्ति के द्वारा भेजा गया है। शब्द चीज़ों को बदल देते हैं। विचार चीज़ों को बदल देते हैं।

आप क्रोध से भरे हैं। क्रोध भरी नज़रों से आप जगत को जब देखते हैं, तो जगत वैसा नहीं दिखाई देता जैसा है और जब आप प्रेम भरी नज़रों से देखते हैं तब भी संसार वैसा दिखाई नहीं देता जैसा वह है। प्रेम ने अपना रंग डाल दिया... क्रोध ने अपना रंग डाल दिया। जब तक हम विचारातीत और भावातीत न हो जाएँ, जब तक हमारी समाधि

में कोई भी विषय न बचे– न तर्क, न विचार, न भाव– यहाँ तक कि मन की शून्यता भी न बचे, तभी और केवल तभी सत्य का सीधा साक्षात्कार होता है और तब ऋतम्भरा प्रज्ञा जनमती है।

ओशो ने अपने विविध प्रवचनों में अध्यात्म को अलग–अलग दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया। बहुत–सी विपरीत बातें उन्होंने कहीं; ताकि हम खुले आकाश के नीचे आ जाएं। वो जो हमारी संकीर्ण, बंधी हुई दृष्टि है हम एक नैरो टनल से देख रहे हैं चीज़ों को, वो हम देखना बंद करें। योगियों ने अपनी संकीर्णता से धर्म को जाना, भक्तों ने दूसरे प्रकार की संकीर्णता से जाना, सांख्यविदों ने अपना चश्मा चढ़ाके परमात्मा को देखा, तांत्रिकों ने और दूसरे चश्मे से देखा। सबने अपने–अपने रंग भर दिये। अध्यात्म का शुद्धतम रूप ओशो ने प्रगट करने की कोशिश की। उन्होंने विभिन्न विपरीत दृष्टिकोणों को एक साथ प्रस्तुत किया।

ओशो ने कहा कि खिड़की के बाहर आओ। मकान के बाहर आके आकाश को देखो। यह आकाश न चौकोर है, न गोल है, न त्रिकोण है...। आकाश को उसकी अनंतता में सीधे–सीधे जानो। ठीक जैसे बाहर का आकाश है वैसा ही हमारे अंतस का आकाश है। सारी धारणाएँ, मान्यताएँ, विश्वास, विचार, सिद्धांत, फिलॉसफ़ीज़ हटाके रख दें। जब मन बिल्कुल ही न बचे केवल तभी सत्य का साक्षात्कार हो सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। श्रुतियों से न होगा।

श्रुत अनुमान प्रज्ञाभ्याम् अन्य विषया विशेष अर्थत्वात्।

भारत में धर्मग्रंथों को श्रुति कहा जाता है। सुने गये... गुरु से सुने गये वचन, माना की गुरु ने सत्य को जाना है और उसने कहने की कोशिश भी की है, लेकिन फिर भी उसके वचनों में सत्य नहीं आएगा।

चीन के संत लाओत्सू ने अपनी किताब में पहली पंक्ति यही लिखी है की सत्य को कहा नहीं जा सकता और जो कहा जाता है वह सत्य नहीं रह जाता। सत्गुरुओं ने सत्य को कहने की कोशिश कि लेकिन स्मरण रखना! जो कहा गया है उसमें सत्य आया नहीं। उनके कहने के प्रयास से उनकी करुणा तो झलकती है, किंतु सत्य अभिव्यक्त नहीं होता। इसलिये श्रुतियों से भी न होगा, अनुमान से भी न होगा, इंद्रिय ज्ञान से भी न होगा। अतींद्रिय अनुभूति ही केवल सत्य की अनुभूति होती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा को जन्म देती है।

पतंजलि धीरे–धीरे एक–एक क़दम समाधि की गहराईयों में हमें लेते जा रहे हैं। अधिकाधिक संवेदनशील होकर समझना, प्रयोग करना, जीना...। धीरे–धीरे हम समाधिपाद के अंतिम सूत्रों की ओर बढ़ रहे हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

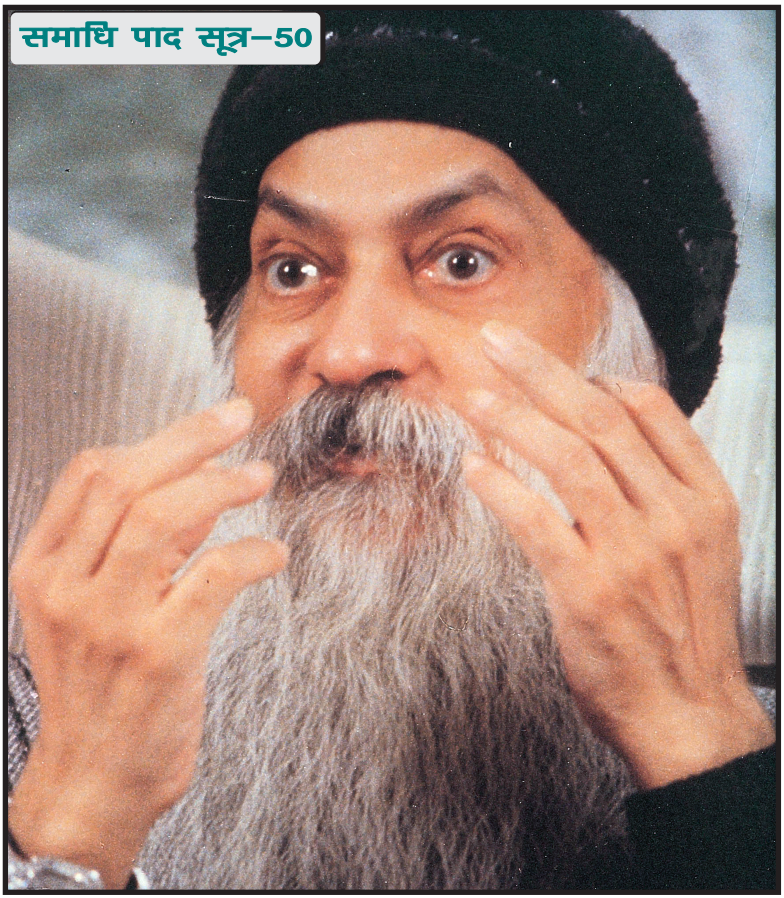

ऋतंभरा काटे सब संस्कार

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी।। 50 ।।

तत् जः संस्कारः अन्य संस्कार प्रतिबन्धी

ऋतम्भरा प्रज्ञा से जन्मे, संस्कार जब आते;
जीवन के तब अन्य पुराने, संस्कार कट जाते।

महर्षि पतंजलि कहते हैं– ऋतंभरा प्रज्ञा से जन्मा संस्कार अन्य संस्कारों को रोकनेवाला होता है। यह बात ठीक वैसे ही है; जैसे पैर में कांटा गड़ा हो, हम एक दूसरे

कांटे से उस कांटे को निकाल दें और फिर दोनों कांटों को फेंक दें। पहले ऋतंभरा प्रज्ञा का संस्कार पैदा किया। वह अन्य सभी पुराने संस्कारों को नष्ट करने वाला सिद्ध होता है। जैसे लोहे की आरी से लोहा कट जाता है, ठीक वैसे ही सत्य धारण करने वाली प्रज्ञा यद्यपि मन का ही एक संस्कार है, मन की ही एक प्रवृत्ति है। किन्तु यह प्रवृत्ति मन की अन्य सारी वृत्तियों को नष्ट करने वाली सिद्ध होती है।

एक उदाहरण से समझें। बच्चों को बीमारी के टीके लगाते हैं। उस टीके में उसी बीमारी के कीटाणु होते हैं। स्मोलपॉक्स का टीका हो, कि पोलियो की ड्राप्स हों, उनमें स्मोलपॉक्स के या पोलियो के ही कीटाणु मौजूद होते हैं, मृत अवस्था में; और यही कीटाणु बच्चों को उन बीमारियों से रक्षा करने वाले सिद्ध होते हैं। कीटाणुओं से ही कीटाणुओं का नाश हो जाता है अथवा यूँ कहें कि सजातीय रक्षात्मक कीटाणु सजातीय हानिकारक कीटाणुओं से रक्षा करते हैं।

ठीक इसी प्रकार एलोपैथी में एंटीबायोटिक्स खोजे गए हैं। एंटी का अर्थ होता है विपरीत और बायोटिक्स का अर्थ है जीवाणुओं से, कीटाणुओं से। वह जो अत्यंत सूक्ष्म कीटाणु है, एक कीटाणु दूसरे कीटाणु को मारनेवाला सिद्ध होता है। इसको बोलते है एंटीबायोटिक। वह भी कीटाणु से ही बना है। वह कीटाणु स्वयं भी रोग पैदा करने की क्षमता रखता है; किन्तु दूसरे कीटाणुओं को नष्ट करनेवाला सिद्ध होता है।

तो जैसे एंटीबायोटिक्स काम करते हैं, जैसे वैक्सीन्स काम करती हैं संक्रामक रोगों को रोकने में; ठीक वैसे ही ऋतंभरा प्रज्ञा से जन्मा मन का संस्कार मन को समूल नष्ट करनेवाला सिद्ध होता है। जब मन नष्ट हो जाता है, तब समस्त इंद्रियों के पार और मन के पार अत्यंत जागरूक अवस्था में, महासंवेदनशीलता उत्पन्न होती है; और तब जगत को हम बिल्कुल अ–मन से देखते हैं। फिर जगत की जगह परमात्मा नजर आता है। परम सत्य नजर आता है। इंद्रियों और मन के माध्यम से देखा गया परमात्मा संसार है। बिना मन के देखा गया संसार ही परमात्मा है।

याद रखना, लोग सोचते हैं कि कण–कण में भगवान छिपा है। छिपा कहीं नहीं है, कण–कण ही भगवान है। परमाणु ही परमात्मा है। हमारे देखने की दृष्टि कौन–सी है? यदि हमने मन के माध्यम से देखा तब हमें कण नजर आएगा और जब बिना मन के माध्यम के देखा, तो परमात्मा नजर आएगा। ऐसा नहीं है कि कण–कण में भगवान छिपा है, तो कण भी दिखाई दे और भगवान भी दिखाई दे। जब भगवत्ता प्रगट होगी; विस्तीर्ण बोध, प्रगाढ़ बोध प्रगट होगा, तब कण खो जाएगा और जब कण दिखाई दे रहा था तब भगवत्ता दिखाई नहीं दे रही थी।

आपने शायद मनोविज्ञान की किताबों में गश्टोल्ट सायकॉलजी के चित्र देखे होंगे। एक ही चित्र में एक युवा स्त्री की तस्वीर है और उसी चित्र में एक वृद्ध स्त्री की तस्वीर है। उन्हीं रेखाओं से, उन्हीं बिंदुओं से दोनों चित्र बने हैं। जब युवा स्त्री आपको दिखाई देगी उस समय वृद्ध स्त्री दिखाई नहीं देगी। अगर आप एक मिनट, डेढ़ मिनट उस चित्र को देखते रहें थोड़ी देर में वृद्ध स्त्री प्रगट हो जाएगी। लेकिन तब युवा स्त्री खो जाएगी। फिर आप जानते हैं कि इस चित्र में दो स्त्रियां बनी हुई हैं; लेकिन फिर भी आप दोनों को एक साथ नहीं देख सकते। जब एक दिखाई देगी दूसरी खो जाएगी। दूसरी प्रगट होगी पहली खो जाएगी।

ठीक ऐसे ही कण–कण में भगवान या संसार में परमात्मा ऐसी दोनों चीजें एक साथ कभी नहीं दिखाई देतीं। जब तक संसार दिखाई देता है, तब तक परमात्मा दिखाई नहीं देता। जब भगवान दिखाई देता है, तब यह जगत खो जाता है। इसलिए तो ऋषि कहते हैं, जगत माया है। जिनके लिए ब्रह्म सत्य हो गया उनके लिए जगत माया हो गया। इसको कोई सिद्धांत मत समझना; यह अनुभव है।

पतंजलि कहते हैं– ऋतंभरा प्रज्ञा से जन्मा संस्कार, अन्य संस्कारों को रोकता है। वे अन्य संस्कार एक कांटे की भांति उपयोग में लाए जाते हैं। ध्यान की विधियां, समाधि की विधियां, साक्षीभाव, मंत्रजाप, गुरु के प्रति समर्पण, प्रभु के प्रति समर्पण, दीक्षा, संन्यास, माला, गेरुवा वस्त्र, नया नाम, यम, नियम, संयम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा इत्यादि। यह सब भी संस्कार हैं, याद रखना। लेकिन ये संस्कार हैं एंटीबायोटिक की भांति, वैक्सीन की भांति जो अन्य सभी संस्कारों को नष्ट कर देंगे और स्वयं भी फिर विदा हो जाएंगे।

एक छोटे–से उदाहरण से कहूं... जैसे एक दीपक में तेल होता है और बाती होती है। जब हम दीपक को जलाते हैं पहले तो बाती तेल का इंधन की भांति उपयोग करती है। क्रमशः तेल चुकता जाता, चुकता जाता...। जब तेल पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब कपास की बाती स्वयं ही जलने लगती है। सारे तेल को जलाने के बाद बाती खुद जल जाती है और राख हो जाती है।

ठीक ऐसे ही ऋतंभरा प्रज्ञा है... है तो स्वयं एक संस्कार। अंततः यह भी सब संस्कारों को नष्ट करके नष्ट हो जाता है। संस्कार का अर्थ समझना, साधारण भाषा में, आदत। जिसको हम कहें कंडीशनिंग पुरानी आदत। हमारा मन आदतों से चलता है।

मैंने सुना है एक जनरल मैनेजर के पास आकर बहुत संकोच से एक युवक ने कहाः कि सर मैं पिछले पंद्रह वर्षों से, फिर वह थोड़ा नर्वस हो गया। जनरल मैनेजर ने पूछा हां... हां... कहो, क्या पंद्रह वर्षों से? उसने कहा सर मैं पंद्रह वर्षों से... फिर अटक

गया। जनरल मैनेजर ने कहा घबराओ नहीं बोलो क्या बात है? उसने कहा सर मैं पंद्रह वर्षों से आपकी बेटी से प्रेम करता हूं। जनरल मैनेजर ने कहाः तो फिर क्या चाहते हो, बोलो? उस युवक ने कहाः मैं शादी करना चाहता हूं। जनरल मैनेजर ने कहाः शुक्र है खुदा का! मैं तो समझा तुम पैंशन मांगने आए हो।

जनरल मैनेजर का संस्कार... पुरानी आदत जाते–जाते ही जाती है। मैंने सुना है, एक नौकर अपने मालिक को उठा रहा है। सुबह हो गई है। मालिक अभी भी खर्राटे भर रहा है। कैसी–कैसी उपमाएं देकर नौकर उसे उठा रहा हैः

उठो, मेरे मालिक सुबह हो गयी!
बुरे मुहूर्त में गिरते बाजार–भाव की तरह चांद नीचे उतर आया है...।
कंकड़ जो तुमने मिलवाए थे चावल की बोरियों में, इस तरह कि दिखाई न पड़ें...
ठीक उसी तरह भोर की रोशनी में, अनगिनत तारे एक–एक कर छिप गए हैं।
सरसों के तेल की खुशबू वाले भटकटैया के तेल–सा हलका ललामी रंग
पूर्व आकाश में फैलने लगा है।
अपनी आढ़त में महंगे दामों बिकनेवाली,
नकली अगरबत्तियों–सी स्थायी खुशबू लिए
पुरवैया हवा डोल रही है, चिड़िया चूं–चूं बोल रही है।
इस बार सड़े गेहूं का आटा,
हमारी दुकान से ले जानेवालों ने जैसा मचाया था शोर–शराबा,
रात का मौन कुछ वैसी ही खलबली, हल्ले–हंगामे में डूब गया है।
जैसे रिक्शे पर शहर की परिक्रमा कर...
हमारा प्रचारक हमारे पुराने सड़े–गले सामानों की
उत्तमता की गारंटी देता है, उन्हें नया–ताजा बतलाता है।
ठीक वैसे ही पंछी चहक रहे हैं, नए दिवस का विज्ञापन कर रहे हैं।
और सब के ऊपर–
मंदी के बाद फिर भाव ऊंचे चढ़ रहे हैं
वैसे ही ऊपर उठने लगा है गोल सूरज।
प्रकृति में सर्वत्र एक ताजगी है– नयी–नयी,
उठो, मेरे सेठ, सुबह हो गयी।

ये किराने की दुकान में काम करने वाले के संस्कार हैं। वह उपमा भी देगा और उदाहरण भी देगा तो पुराने ही देगा। इन संस्कारों को मिटाने के लिए ऋतंभरा प्रज्ञा से जन्मा संस्कार विस्तीर्ण और प्रगाढ़ बोध जब उत्पन्न होता है; उस विस्तीर्णता में सब खो

जाता है; मन उसमें विलीन हो जाता है। ओशो कहते हैं–

जो प्रत्यक्ष बोध निर्विचार समाधि में उपलब्ध होता है वह सभी सामान्य बोध संवेदनाओं के पार का होता है– विस्तीर्णता में भी और प्रगाढ़ता में भी।

ये दो शब्द बड़े अर्थपूर्ण हैं : 'विस्तीर्णता' और 'प्रगाढ़ता'। जब तुम संसार को देखते हो इंद्रियों द्वारा, मस्तिष्क द्वारा और मन द्वारा, तो संसार बहुत फीका होता है। उसमें कोई आलोक नहीं रहता। वह बहुत धूल भरा होता है और जल्दी ही वह उबाऊ हो जाता है। व्यक्ति थकान अनुभव करता है– वही वृक्ष, वही लोग, वही कार्यकलाप– हर चीज एकदम पिटी हुई होती है। ऐसा नहीं है।

प्रगाढ़ता इतनी ज्यादा हो जाती है कि जब तुम देखते हो एक पत्थर की ओर, उस पत्थर के द्वारा राहें सरक रही होती हैं संपूर्ण अस्तित्व में; पत्थर के द्वारा तुम प्रवेश कर सकते हो उच्चतम रहस्यों में। हर कहीं है द्वार, खटखटाओ तुम, और हर कहीं स्वीकृत हो जाते हो तुम, स्वागत पाते हो तुम। जहां कहीं से तुम प्रवेश करते हो, तुम प्रविष्ट हो जाते हो अपरिसीम में; क्योंकि सारे द्वार समष्टि के हैं। व्यक्ति हो सकते हैं मौजूद; वे होते हैं द्वारों की भांति। प्रेम करो किसी व्यक्ति को और तुम प्रवेश करते हो अनंतता में, अपरिसीम में। जरा देखो फूल की तरफ और खुल जाता है मंदिर। लेट जाओ रेत पर और रेत का हर कण उतना ही विशाल होता है जितनी की समष्टि। यही है धर्म का उच्चतर गणित।

साधारण गणित तो कहता है कि एक अंश कभी नहीं हो सकता संपूर्ण। यह बात सामान्य गणित के नियमों में से एक है जो चलते हैं विश्वविद्यालयों में : अंश कभी नहीं हो सकता संपूर्ण और अंश सदा छोटा होता है संपूर्ण से, और अंश कभी ज्यादा बड़ा नहीं हो सकता संपूर्ण से। ये गणित के साधारण नियम हैं और हर कोई मान लेगा कि ऐसा ही है।

लेकिन फिर है ज़्यादा ऊँचा गणित। जब तुम बाहर आ जाते हो इंद्रियों के तो वहां संसार है उच्चतर गणित का। और ये हैं सूत्र : अंश सदा संपूर्ण होता है। अंश कभी भी, कभी भी छोटा नहीं होता संपूर्ण से, और अंश कभी ज्यादा बड़ा नहीं होता संपूर्ण से। बल्कि विसंगतियों की भी विसंगति यह है कि कभी–कभी अंश संपूर्ण से भी बड़ा होता है।

कण–कण में भगवान नहीं है, कण भगवान का अंश नहीं है। कण ही भगवान है, भगवान ही कण है। मन के पुराने संस्कार मिट जाएं। मन का सारा गुणा–भाग, पुराना गणित, पुराने हिसाब–किताब की आदत सब विदा हो जाती है और तब हम एक अलौकिक लोक में प्रवेश करते हैं। वही समाधि का लोक है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

समाधि पाद सूत्र–51

ऋतंभरा को भी अलविदा

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः।।51।।

तस्य अपि निरोधे सर्व निरोधात् निर्बीजः समाधिः

ऋतम्भरा के संस्कार को, भी जब कभी जलाओगे;
तब होगी निर्बीज समाधि, तभी मुक्ति को पाओगे।

आज हम समाधि पाद के अंतिम सूत्र पर आ गये। पतंजलि कहते हैं–

ऋतम्भरा प्रज्ञा से जन्मे संस्कार का भी निरोध हो जाने पर, समस्त संस्कारों के निरोध होने से, निर्बीज समाधि फलित होती है और तब आवागमन से मुक्ति मिलती है।

रूसी मनोवैज्ञानिक पावलफ़ के बारे में आपने सुना होगा। उसने रिफ्लैक्स एक्शन और कंडिशनिंग संस्कार का नियम खोजा। बड़ा महत्त्वपूर्ण नियम है। उसने कई सिगरेट और शराब के आदी लोगों की आदत छुड़वाई। उसका कहना था कि पुरानी आदत को छुड़ाने का एक ही तरीक़ा है, एक नई आदत पैदा करो जो उस पुरानी आदत के ख़िलाफ हो, एक नया संस्कार जो पुराने संस्कार को काट दे।

पावलफ़ ने अपने अस्पताल में इस प्रकार का इंतज़ाम किया था कि मरीज़ जिस बिस्तर पर रहता था वहाँ ऑटोमेटिक यांत्रिक व्यवस्था थी; जैसे ही वो सिगरेट जलाएगा, पलंग से उसको इलैक्ट्रिक करंट लगेगा; जब भी वो सिगरेट छूएगा, लाइटर और माचिस पर उसका हाथ जाएगा, तुरंत उसे बिजली का झटका लगेगा। सप्ताह भर के अंदर–अंदर एक कंडिश्निंग उसके मन में बैठ जाएगी। सिगरेट, माचिस, लाइटर अर्थात्... बिजली का झटका! ये दोनों चीज़ें– सिगरेट का जलाना और बिजली का झटका खाना– पर्यायवाची हो जाएंगी। एक हफ़्ते के बाद उसके मन में सिगरेट का ख़्याल तक नहीं आएगा। मन में सिगरेट की बात सोचने से भी उसे भीतर जैसे करंट लग जाता हो। एक नया संस्कार पड़ गया, एक नई कंडिश्निंग जिसने पुरानी कंडिश्निंग नष्ट कर दी। पावलफ़ ने हजारों एडिक्टिड लोगों को काफ़ी मदद पहुंचाई।

लेकिन मनोविज्ञान एक नई आदत पैदा करने तक रुक जाता है। धर्म इससे आगे और एक क़दम उठाता है; इस नई आदत को भी जाने दो।

पतंजलि कहते हैं, 'ऋतम्भरा प्रज्ञा को भी जाने दो। अब इसे पकड़ के न बैठ जाना, इससे चिपक मत जाना।'

यह संभव है कि योगी इस नए संस्कार से, ऋतम्भरा प्रज्ञा से जन्मों–जन्मों तक चिपके रह सकते हैं। बड़ी आनंददायी स्थिति है! पुराने सारे दुःख विदा हो गये, सारे

संताप और विषाद समाप्त हुए। इस परमानंद की अवस्था में कोई साधक कई जन्मों तक रह सकता है; लेकिन अंततः इससे भी छूट जाना है, तभी आवागमन से मुक्ति होती है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे फ़ज़लू को कोई छूत की बीमारी हो गई थी। धीरे–धीरे पड़ोस में नौ–दस बच्चों को वही बीमारी लग गई। फिर मोहल्ले और आसपास के गांवों में हज़ारों बच्चों को वह बीमारी लग गई। जो डॉक्टर नसरुद्दीने के बेटे का इलाज कर रहा था वो बार–बार फ़ीस मांगता... नसरुद्दीन कहता– 'दूंगा, बाद में दूंगा, बाद में दूंगा।' कोई एक महीने के बाद नसरुद्दीन का बेटा बिल्कुल ठीक हो गया। डॉक्टर ने कहा, 'फ़ीस दो।' नसरुद्दीन ने कहा– 'तुम्हें फ़ीस मांगते हुए शर्म आनी चाहिए। मेरे बेटे ने ही इस गांव में और आस–पास के गांवों में छूत की बीमारी फैलाई जिससे हजारों बच्चों का इलाज करके तुमने लाखों रुपए कमाये हैं। उल्टा तुम्हें मुझे फ़ीस देनी चाहिए। मेरे बच्चे को कुछ पुरस्कार देना चाहिए। इसी के कारण तुमने लाखों रुपये कमाये हैं; नाम और इज़्ज़त कमाई है।'

जैसे बीमारी संक्रामक इन्फेक्शस होती है। छूने से फैलती है। ठीक वैसे ही समाधि और स्वास्थ्य भी, आनंद और शांति भी इनफेक्शस होते हैं। सामान्यतः तुमने ऐसा कभी सोचा भी न होगा! हम हमेशा सोचते हैं कि व्याधि संक्रामक होती है।

मैं आज आपसे नई बात कहता हूँ– समाधि भी संक्रामक होती है। इस पृथ्वी पर ऐसे क्षण आते हैं– बसंत के क्षण– आध्यात्मिक बसंत के क्षण, जब बहुत–बहुत फूल खिलते हैं। बसंत में फूल कैसे खिलते हैं? एक कवि ने लिखा है की शायद एक फूल के खिल जाने पर कुछ तरंगें फैलती होंगी, इसीलिए अन्य सभी पौधों में कलियां फूल बनने लगती हैं... कुछ संक्रमण, कुछ इन्फेक्शन फैल जाता है। खिलावट की बीमारी फैल जाती है। बीमारी नहीं कहना चाहिए; बल्कि यह तो स्वास्थ्य है।

पृथ्वी पर हर पच्चीस सौ साल बाद ऐसे आध्यात्मिक बसंत के क्षण आते हैं जब खूब–खूब फूल खिलते हैं। ओशो के साथ हमने भी उसी बसंत के युग में महासतयुग में प्रवेश किया है। मत पूछना, निर्बीज समाधि की यह घटना कैसे घटती है? इसका 'कैसे' नहीं बताया जा सकता। निर्विचार समाधि तक पहुंचने की विधि हो सकती है लेकिन निर्विचार के बाद... सबीज से निर्बीज में कैसे जाओगे, इसकी कोई विधि अथवा उपाय नहीं है, क्योंकि विधि में क्रिया होती है, और क्रिया में अंहकार होता है। अगर तुमने निर्बीज होने की कोशिश भी की, उस कोशिश में फिर अहंकार आ गया, फिर अस्मिता का बीज आ गया। इसलिये कोई कोशिश इसमें सफल नहीं हो सकती। सिर्फ़ इंतज़ार करना होगा। एक वृक्ष क्या कर सकता है फूल खिलाने के लिये? बसंत की प्रतीक्षा कर सकता है बस। जापान के झेन मास्टर्स कहते हैं, 'कुछ न करते हुए बस यूँ ही बैठे–बैठे आती है ऋतु बसंत की और घास अपने आप उगने लगती है। फूल अपने आप खिलने

लगते हैं। सुवास अपने आप उड़ने लगती है।' संत तिलोपा, नरोपा और सरहपा... वे भी इसी बात की घोषणा करते हैं कि कुछ न करो। सुनने में बड़ा विचित्र लगता है... कुछ न करो। ध्यान, योग भी न करो। तिलोपा जैसे लोग और झेन फकीर जिन शिष्यों से बात कर रहे हैं वे निर्बीज समाधि के द्वार पर पहुँच गये हैं। उनसे कह रहे हैं... कुछ न करो; क्योंकि अब तुम्हारा कुछ करना ही उपद्रव होगा। तुम्हारा कुछ भी करना वापिस तुम्हें अस्मिता के जगत में, क्रिया के जगत में ले आएगा। अब कुछ भी न करो। अब सारा द्वैत मिट ही जाए...।

मैंने सुनी है एक चीनी कथा। कथा ही है सत्य तो हो नहीं सकती। लेकिन बड़ी प्रतीकात्मक है। एक सम्राट ने एक चित्रकार को कहा कि मेरे राजमहल की दीवार पर पहाड़ियों का एक सुंदर चित्र बनाओ। वो चित्रकार लगभग छह माह तक पेंटिंग बनाता रहा। छह माह बाद सम्राट आया। हैरान हुआ! इतनी सुंदर पहाड़ियां, झरने, नदी, वृक्ष, पहाड़ियों के पीछे पहाड़ियां...। एक छोटी–सी पगडंडी जा रही थी। राजा हैरान हुआ देखकर! वास्तविक पहाड़ियों से भी ज़्यादा सुंदर पहाड़ियां! सचमुच के झरनों से भी ज़्यादा सुंदर झरने, ज़्यादा सजीव...।

राजा ने चित्रकार से पूछा, 'यह पहाड़ के पीछे से जो पगडंडी जा रही है घूमती हुई... यह कहाँ जा रही है? चित्रकार ने कहा, 'क्षमा करें, मैं कभी उस पगडंडी पर गया नहीं, मैं जाके बताता हूँ। कहानी कहती है वह चित्रकार उस पगडंडी पर चला, चलते–चलते... वो पहाड़ी के पीछे चला गया और फिर पता नहीं कहाँ खो गया, कभी लौटकर नहीं आया।

कहानी तो कहानी ठहरी। सचमुच तो ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन यह कहानी कुछ भीतर के जगत की तरफ इशारा करती है... साधक समाधि के पथ पर चलता तो है, चलते–चलते कहाँ खो जाता है पता ही नहीं चलता। निर्बीज समाधि में कुछ भी नहीं बचता। अस्मिता का बीज भी नष्ट हो जाता है। उसके पहले तक अस्मिता बचती है। शुरुआत में अहंकार था, अहंकार के बाद अस्मिता आई, अस्मिता के बाद आत्मतत्व रहा और अंत में वह भी विलीन हो गया। ओशो कहते हैं–

जब दूसरे नियंत्रणों पर का यह नियंत्रण पार कर लिया जाता है, तो यह होता है अंतिम नियंत्रण : निर्विचार समाधि, वह समाधि जहां विचार समाप्त हो गए। यह होता है अंतिम नियंत्रण। अभी भी तुम होते हो; किसी अहंकार की भांति नहीं; बल्कि एक आत्मा की भांति। अभी भी तुम अलग होते हो समष्टि से। तुम केवल एक बड़ी पारदर्शी तरंग होते हो फिर भी तुम होते तो हो। और यदि तुम चिपके रहते हो इससे, तो तुम फिर जन्म लोगे, क्योंकि विभेद को पार नहीं किया गया है। तुम अभी भी अद्वैत को उपलब्ध नहीं हुए हो। द्वैत का बीज अभी भी वहां मौजूद है, और वह बीज प्रस्फुटित होगा

नए जन्मों में। जीवन–मृत्यु का चक्र चलता ही चला जाएगा।

'जब सारे नियंत्रणों पर का नियंत्रण पार कर लिया जाता है, तो निर्बीज समाधि फलित होती है'– तब तुम उपलब्ध होते हो उस निर्बीज, निर्विचार समाधि को– 'और उसके साथ ही उपलब्ध होती है– जीवन–मृत्यु से मुक्ति।'

फिर चक्र तुम्हारे लिए थम जाता है। फिर कोई समय न रहा, कोई स्थान न रहा। जीवन और मृत्यु दोनों मिट चुके हैं किसी स्वप्न की भांति। कैसे पार जाना होता है इस अंतिम नियंत्रण के? यह बात कठिनतम होती है। निर्विचार को उपलब्ध करना बहुत कठिन है, लेकिन अंतिम नियंत्रण को गिरा देने की तुलना में तो कुछ भी नहीं है, क्योंकि यह बात बहुत सूक्ष्म होती है। कैसे करना होता है इसे? उस अवस्था में 'कैसे उतना प्रासंगिक नहीं होता है। व्यक्ति को तो बस जीना होता है, देखना होता है, उत्सव मनाना होता है, निर्मुक्त और सहज–स्वाभाविक बने रहना होता है। यहीं तो तिलोपा अर्थपूर्ण बन जाते हैं। तिलोपा जैसे लोग झेन गुरु होते हैं। वे इस लक्ष्य की बात कहते हैं : व्यक्ति विमुक्त और सहज–स्वाभाविक होकर जीता है, कुछ नहीं करता नियंत्रण को पार करने के लिए, कुछ नहीं करता। क्योंकि यदि तुम कुछ करते हो, तो फिर वह एक नियंत्रण ही होगा। तुम्हारा कुछ करना तुम्हारे बिगड़ाव का कारण होगा। विमुक्त और स्वाभाविक बने रहो– सार यही है।

कुछ भी न करो; बस इंतज़ार करो और वह महासौभाग्य की घटना अपने आप घटती है; परमगुरु ओशो की कृपा। आज समाधि पाद के अंतिम सूत्र में समापन करना चाहूँगा; ओशो के प्रति गीत के रूप में अपने भाव व्यक्त करते हुए–

एक ओशो क्या मिल गए ज़िंदगी ये नमन हो गई
ज़िंदगी एक थी हादसा अब तो चैनो–अमन हो गई।
थे भटकते हवाओं के संग, सूखे पत्तों के मानिंद हम
वो जो आये तो आई बहार ज़िंदगी गुल चमन हो गई।
एक अंधेरी गुफा से निकल आ गये सूर्य के गांव में
उनसे मिलके लगा ज़िंदगी रोशनी का जश्न हो गई।
ज़िंदगी बस हमारे लिये शोरगुल का ही एक नाम थी
उनसे मिलके जो सरगम छिड़ा ज़िंदगी एक नज़्म हो गई
ये न पूछो अहं ने हमें कैसे–कैसे दिखाए थे दिन?
जब इबादत में सिर झुक गया ज़िंदगी ये भजन हो गई।
जब समाधि में मैं मिट गया ज़िंदगी ये भजन हो गई।

मिट जाओ। मत पूछो कैसे? बस मिट जाओ।
धन्यवाद। जय ओशो।।

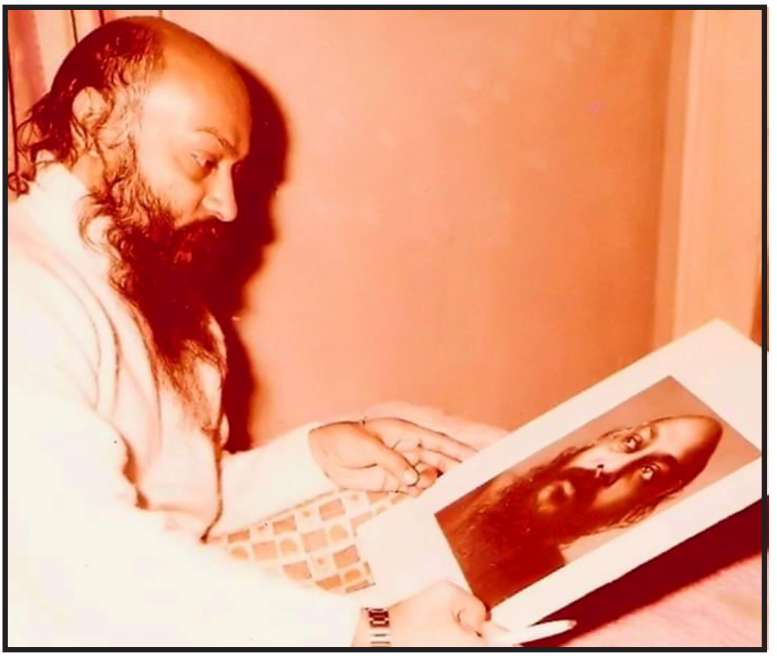

समाधि पाद : एक पुनरावलोकन

प्यारे मित्रो, नमस्कार।

पिछले बावन दिनों से हम पतंजलि के एक-एक सूत्र को विस्तार से समझ रहे हैं। आओ, आज हम सभी सूत्रों पर, समाधि-पाद पर एक विहंगम दृष्टि डालें। सबसे पहले हमने शुरुआत की थी,

'पातंजलयोगप्रदीप' का प्रथम समाधि पाद सुनो।
हे प्रज्ञावान मुमुक्षुओ, ओशो का अमृतज्ञान गुनो।'

पतंजलि को ऐसा समझो जैसे; अध्यात्म-जगत के आइंस्टाइन। ओशो ने योगसूत्र के ऊपर अपने अमृतज्ञान की जो गंगा बहायी-आज के युग में, आज के मनुष्य के लिए, आज की भाषा में, पतंजलि को समझने योग्य बना दिया।

जहां खड़े हम लहराता संसार समुंदर,
चल हंसा उस देश जहां है मानसरोवर।

जहां हम रह रहे हैं, वह हमारा देश नहीं, यह हमारा घर नहीं। इस तन-मन में हम

जी रहे हैं, जाना है हमें 'चेतन' में। 'हंस' हैं हम 'मानसरोवर' के! कैसे जाएं?

आओ जानें हम, अब अनुशासन योग का;
चित्त से वियोग का, आत्मा से योग का।

कुछ ख़ास नहीं करना है। तन–मन से जो तादात्म्य हो गया है, उसे तोड़ना है और 'चेतन' से जोड़ना है। कैसे रोकें वृत्तियों को? मन बड़ा चंचल है! यह दिन–रात, प्रतिपल जाल बुनता रहता है। पतंजलि, योग की परिभाषा करते हैं–चित्तवृत्ति का निरोध ही कहलाता है 'योग'। साधक के भीतर जब बोध घटित होता है, साक्षी तब स्वयं में स्थापित होता है।

सारे धर्म का सार–सूत्र एक शब्द में आ जाता है, वह है बोध, वह है साक्षी। स्वयं में स्थित होना ही स्वस्थ होना है, स्वयं से दूर चले जाना रुग्ण हो जाना है। स्वयं से दूर चले जाना व्याधि है, स्वयं में स्थित हो जाना 'समाधि' है। 'चेतना' जब मन से तादात्म्य कर लेती है, फिर वह 'वृत्तियों' जैसी ही दिखती है।

इस चौथे सूत्र में, पतंजलि कहते हैं–'चेतना दर्पण के समान है, आईने जैसी।' जो भी दृश्य उसके सामने आता है, वह उसके भीतर झलकता है और उससे 'आइडेंटिफ़िकेशन' हो जाता है। मन में वृत्तियां पाँच ढंग की होती हैं। इनसे ही बनती हैं सुख–दुःख की स्थितियां। हमारा मन ही स्वर्ग और नरक का निर्माता है। मन की ये पाँच वृत्तियां–सच्चा ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, नींद, कल्पना, स्मृतियां–ये ही ज़िंदगी चलाती हैं। पतंजलि मन की पाँच वृत्तियों का धीरे–धीरे विश्लेषण कर रहे हैं। एक–एक बात को ग़ौर से समझना।

'मिलता है सम्यक ज्ञान, तीन मुख्य उद्गम से;
प्रत्यक्षबोध, अनुमान और तीसरा आगम से।'

अनुमान तीन प्रकार के होते हैं, पूर्ववत, शेषवत और अदृश्यवत। पूर्ववत अनुमान; जैसे बादलों को देखकर होने वाली वर्षा का अनुमान, संभावना का अनुमान। शेषवत का अर्थ है– नदी में मटमैले पानी को देखकर, बाढ़ से उफनती नदी को देखकर अनुमान लगाना कि कहीं ऊपर बहुत वर्षा हुई होगी। तीसरा अदृश्यवत अनुमान– जैसे, कहीं तुम मरुस्थल में जा रहे हो और एक घड़ी पड़ी हुई मिल जाए, तो अनुमान लगाएंगे; किसी की घड़ी गिर गई, छूट गई। ये घड़ी किसी ने बनाई होगी, ये अपने–आप नहीं बन सकती। आप ऐसा अनुमान तो नहीं करेंगे कि मरुस्थल की रेत धीरे–धीरे सूरज की गर्मी से गर्म होकर घड़ी बन गई। ठीक इसी प्रकार, इस संसार को, इस सृष्टि को देखकर, स्रष्टा का अनुमान होता है। और आगम का अर्थ है–बुद्धों के वचन। बुद्धों के द्वारा कहे गए वचन, जो शास्त्रों में लिखे हैं।

अगले सूत्र–

विपर्यय कथा है जिसमें झूठ ज़्यादा, सत्य कम,
रस्सी में होता है जैसे सांप का मिथ्या भ्रम।
अर्थ है विकल्प, मात्र एक कल्पना,
शब्दों से जन्मी हुई बिल्कुल झूठी धारणा।

शब्दों और भाषा के पीछे हमारा मन जाता है और हम एक कल्पना खड़ी कर लेते हैं, जिसके पीछे कोई ठोस सच्चाई नहीं होती, कोई वास्तविकता नहीं होती। कोरे शब्द, और शब्द हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। हम सब जानते हैं–'भारतमाता' कहीं कोई है नहीं। हम कहते हैं पृथ्वी, ये हमारी मातृभूमि, ये धरती हमारी। कोई तुम्हारी मातृभूमि को गाली दे दे, मातृभूमि के प्रतीक झंडे पर कोई थूक दे, तो तुम लड़ने–मरने को तैयार हो जाओगे। भली–भांति जानते हो कि झंडा सिर्फ़ एक कपड़ा है, कुछ और नहीं। और मातृभूमि पर तुम स्वयं ही रोज़ थूकते हो, थूकते क्या हो, मलमूत्र भी विसर्जित करते हो उसी मातृभूमि पर। लेकिन कोई झंडे पर थूक दे, मातृभूमि पर, प्रतीक पर; प्रतीक हमारे मन को बहुत पकड़ते हैं। हमारे लिए सत्य से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। साधक को चाहिए कि वह अपने भीतर ग़ौर से देखे– कहीं भाषा, विचार और शब्द; सत्य के ऊपर आवरण तो नहीं बन गए?

स्वप्न–रहित सुषुप्ति में 'चेतना' सो जाती जब,
विषयों की मौजूदगी पता नहीं चलती तब।

गहरी नींद की बड़ी सुंदर व्याख्या है–किसी विषय का पता न चलना।

अनुभवों की यादें ही कहलाती हैं स्मृतियां,
पैदा उनको करती हैं चित्त की ही वृत्तियां।

नींद की भी स्मृति बनती है। सुबह उठकर तुम कहते हो; आज बड़ी अच्छी नींद आई। इसका मतलब कहीं स्मरण है कि नींद में क्या हुआ, बहुत अचेतन में ही सही। तो बाकी की जो चार वृत्तियां हैं, उन सबसे एक पाँचवीं भी पैदा हो जाती है– उसका नाम है स्मृति।

वैराग्य से रुक जाता बाहर को जाता मन,
अभ्यास से संचालित होता है भीतर सुमिरन।

'एक्सट्रोवर्शन' की हमारी आदत बन गई। बाहर से वैराग्य हो, तभी तो 'इंट्रोवर्शन' एक नई आदत शुरू होगी, ध्यान की अंतर्यात्रा शुरू होगी।

आत्मस्मरण में जीने का योगी करता सदा प्रयास,
स्वयं में स्थित होने की कोशिश कहलाती अभ्यास।

धीरे–धीरे एक नई आदत बनानी होगी, अपने भीतर डूबने की, आत्मस्मरण में जीने की।

सच्चा साधक निष्ठा से करता पुरुषार्थ निरंतर है,
दृढ़ता पा लेता ज्यों रस्सी से घिस जाता पत्थर है।

देखते हो रस्सी भी आती–जाती है, तो शिला पर निशान पड़ जाता है। ठीक ऐसे ही धीरे–धीरे ध्यान में रमते, रमते... ध्यान हो जाता है। समाधि में जाते, जाते... एक दिन 'निर्बीज समाधि' भी घटित हो जाती है। विषयों से विरक्ति सिर्फ़ आरंभिक वैराग्य है, पूर्ण इच्छामुक्ति ही सही परम वैराग्य है।

प्रथम सचेतन यत्न से विषयासक्ति घट जाती,
फिर स्वभाव के ज्ञान से तृष्णा पूरी मिट जाती।

पतंजलि, बड़ी क्रमिक, धीमी–धीमी गति से चलते हैं। ए, बी, सी से लेकर एक्स, वाई, ज़ैड तक। कहते हैं– शुरुआत तो करो। जहां खड़े हो वहीं से शुरू करो। थोड़ी–सी विरक्ति, थोड़ा–सा वैराग्य, थोड़ा–सा अभ्यास, थोड़ा–सा सचेतन यत्न, एक दिन धीरे–धीरे यही यत्न 'सहज–समाधि' में ले जाता है। पहली समाधि को 'संप्रज्ञात' कहते हैं– तर्क, विचार, आनंद, अस्मिताभाव रहते हैं।

सत्रहवें सूत्र में पतंजलि कहते हैं, चार बातें समाधि में रहती हैं– तर्क, विचार, आनंदभाव, अस्मिता भाव। यह 'संप्रज्ञात समाधि' है; नाममात्र की समाधि, उथली–उथली समाधि। ऐसा समझें; जैसे बच्चे को हम केजी स्कूल में ले गए। ये केजी स्कूल नाममात्र का स्कूल है। बच्चा वहां खेल–खिलौनों से ही खेलेगा, अभी कोई पढ़ाई–लिखाई नहीं होने वाली। लेकिन बच्चे के मन को समझाने के लिए हम कह देते हैं; हां, यह स्कूल है। ठीक इसी प्रकार 'संप्रज्ञात समाधि' को समाधि कह रहे हैं। चलो यहां से शुरू तो करो।

दूसरी समाधि का नाम 'असंप्रज्ञात' है,
मिट जाते विषय किन्तु रहता संस्कार है।

वह जो चार विषय कहे थे; अब वह तो नहीं रहे, लेकिन उनके संस्कार, उनकी 'कंडिशनिंग', उनके बीज रह गए।

विदेही ही करुणावश वसुंधरा पर आते हैं,
असंप्रज्ञात अवस्था को सहज ही पा जाते हैं।

वह लोग जिन्होंने स्वयं को अपनी देह से भिन्न जान लिया, ऐसे विदेही भी फिर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। किसलिए? अब अपनी तो कोई कामना नहीं है; लेकिन करुणा है; दूसरों को सहयोग पहुंचाने की भावना है। ये लोग जन्म से ही बड़ी शीघ्रतापूर्वक सहज–समाधि को पा लेते हैं। महर्षि रमण, जे० कृष्णमूर्ति और हमारे परम सद्गुरु ओशो स्वयं इसके उदाहरण हैं। वे जन्मजात, पिछले जन्मों से संपदा लेकर ही आए हैं और इस जन्म में बिना किसी अधिक प्रयास के सहज रूप से 'असंप्रज्ञात समाधि' को पा लिया।

अन्य लोग पाते हैं– एकाग्रता व श्रद्धा से, सम्यक प्रयत्न द्वारा, स्मृति व प्रज्ञा से। अन्य लोगों के लिए ये पाँच साधन हैं। जो पिछले जन्मों से पूंजी कमा के नहीं लाए हैं, वे भी 'असंप्रज्ञात समाधि' पा सकते हैं, कैसे? एकाग्रता से, श्रद्धा से, प्रयत्न से, स्मृति से और प्रज्ञा से। अगला सूत्र–

संवेदनशील साधक शीघ्र सफल होते हैं,
त्वरावान सच्चे योगी मंज़िल पा लेते हैं।
जितनी तीव्रता होगी, उतनी शीघ्र मंज़िल मिलेगी;
ज़्यादा, मध्यम व कम कोशिश होती जैसी,
जल्द या बिलंब से मिलती है समाधि वैसी।

हमारी गति पर निर्भर करेगा; हम कितने प्यासे हैं, कितने अभीप्सा से भरे हैं। अगर हमारी अभीप्सा अत्यंत सघन हो, तो एक क्षण में भी घटना घट सकती है और हमारी प्यास कुनकुनी–कुनकुनी हो, तो जनम–जनम भी लग सकते हैं।

ओंकार में लय होना सुगम–समाधि द्वार है,
ईश्वर समर्पण भी ले जाता मन के पार है।

ओंकार में डूबो, समाधि का इससे ज़्यादा सुगम दूसरा कोई द्वार नहीं। समाधि के द्वार और भी हैं, पर यह सुगमतम है। अनहद की ध्वनि में डूबना और ईश्वर के प्रति समर्पण भी। याद रखना, यहां पतंजलि 'भी' लगाते हैं। पतंजलि स्वयं भक्त नहीं हैं, लेकिन वे कहते हैं; ईश्वर के प्रति समर्पण भी, भक्ति भावना भी मन के पार ले जाती है, समाधि में ले जाती है। अपने योगसूत्र में एक छोटा–सा फुटनोट, एक छोटा–सा कॉमैंट छोड़ते हैं कि भक्ति भी एक मार्ग है। यदि कोई समर्पण–भाव से जिये, वह भी 'निर्बीज समाधि' को पा लेगा।

जीवन के दुःख, कर्म, कामना जिसे नहीं हैं छूते;
उस आलोकित दिव्य चेतना को ही ईश्वर कहते।

पतंजलि की 'ईश्वर' की परिभाषा हमारी आम–धारणा से भिन्न है।

आत्मा में ज्ञान–गुण बीज रूप में बसता है;
'ईश्वर' में सर्वज्ञता का फूल पूरा खिलता है।

याद रखना, सर्वज्ञ होना विशेषज्ञ होने के ठीक विपरीत है। विशेषज्ञ का अर्थ है– 'टु नो मोर एंड मोर अबाउट लैस एंड लैस।' इसका लॉजिकल कन्क्लूज़न होगा 'नोइंग एव्रीथिंग अबाउट नथिंग'।

सर्वज्ञ का अर्थ, इसका ठीक उलटा है– 'टु नो लैस एंड लैस अबाउट मोर एंड मोर।' सर्व के बारे में जानना और इसकी तार्किक निष्पत्ति होगी 'टु नो नथिंग अबाउट आल।' सर्वज्ञता के अर्थ को ठीक से समझना।

मनुज देह में ईश्वर ही सद्गुरु बन के आता है,
गुरुओं का वह परमगुरु समयातीत परमात्मा है।

वे जो देह को त्यागकर ओंकार–स्वरूप हो गए, वे कालातीत हो गए और परमगुरु बन गए, द मास्टर ऑफ द मास्टर्स। अगला सूत्र–

वेद कहें हरि ओम् तत्सत, यही प्रभु का नाम है;
शब्द प्रणव या अनहद ही, संतों का सतनाम है।
गुरु–सा जानो गोविंद को, एक ओंकार सतनाम को;
फिर भाव–सहित पीते जाओ इस अमृत हरिनाम को।

इसे अमृत क्यों कहते हैं? विषय है, विष। विषय यानी संसार में जो ऑब्जैक्ट्स हैं, वे हैं विष। और अमृत क्या है? स्वयं के भीतर अंतरात्मा में गूंज रहे ओंकार में डुबकी...।

ओंकार के सुमिरन से शीघ्र समाधि फलती है,
बाधाएं मिट जातीं हैं; सब महाचेतना जगती है।

ओशो जिसे सुपर कॉन्शसनैस कहते हैं, पश्चिम के मनोवैज्ञानिक अभी तक इसे नहीं समझ पाए हैं। उन्होंने कॉन्शस–माइंड और अनकॉन्शस–माइंड, क्लैक्टिव अनकॉन्शस और कॉज़्मिक अनकॉन्शस को खोज लिया। भारत के ऋषियों ने एक दूसरी दिशा में यात्रा की थी, सुपर कॉन्शसनैस– अति चैतन्यता, महाचेतना। वही समाधि की अवस्था है।

अकर्मण्यता, संशय, आलस, आसक्ति, प्रमाद, व्याधि,
दुर्बलता, चंचलता व भ्रम में कैसे लगे समाधि।

अब पतंजलि गिनाते हैं– समाधि में कौन–कौन सी बाधाएं हैं?

तनावग्रस्त मन घबराता है, जब कंपन देह में होता है।
सांस असंतुलित हो तब दुःख में ध्यान नहीं लगता है।

ये हैं व्याधियों के लक्षण, बाधाओं के लक्षण। फिर कहते हैं– ये कैसे दूर होंगी?

एक साधे सब सधे, मिट जाते सब क्षोभ,
ओंकार में ध्यान से गिरते सब अवरोध।

अगला सूत्र– हर साधक के लिए अत्यंत स्मरणीय –

सुखी से मैत्री दुःखी पे करुणा, पुण्यात्मा से खुश होना;
मन की शांति चाहिए, तो पापी की उपेक्षा करना।

धीमी–गहरी सांसें लेके मन तनाव खोता है;
बाहर बारम्बार रोक कर बड़ा शांत होता है।

दिव्य अनुभव से जगता है, प्रबल आत्मविश्वास;
साधक पथ पर यूं चलता ज्यूं मंज़िल बिल्कुल पास।
एक बार जब दिखने लगता भीतर शांत प्रकाश;
मन हो जाता मगन देखकर शोकांतक आकाश।

वीतराग जो हो गए उनसे जोड़ो अपना नाता;
पूर्णगुरु का ध्यान सहज ही ले समाधि में जाता।
निद्रा के साक्षी हो जाओ सपनों के प्रति जागो;
योग सहित निद्रा में डूबो सहज समाधि पाओ।

जो भी वस्तु प्रिय हो या कि सुंदर कोई चेहरा;
आकर्षक से शुरू करो तो ध्यान लगेगा गहरा।
साध्य बिंदु हो या सिंधु हो योगी रम जाता है;
अंत में दृश्य न द्रष्टा, केवल दर्शन रह जाता है।

परमाणु से लेकर परम विराट तक,
जहां चाहे योगी उसमें रम जाता है।
जब सिर्फ दर्शनमात्र रहता है,
तब अद्वैत–बोध शुरू होता है।

ऋतंभरा प्रज्ञा से जन्मे संस्कार जब आते हैं,
मन में जमे अन्य पुराने संस्कार कट जाते हैं।
ऋतंभरा के संस्कार भी जब खुद ही जल जाते हैं,
तब योगी 'निर्बीज समाधि' में परम–मुक्ति पाते हैं।

पतंजलि के इन सूत्रों को अपने हृदय में गुनना, इन्हें जीना।
समाधि क्या है? चर्चा समाप्त। अब मंजिल की यात्रा शुरु।
मार्ग की बात 'साधन पाद' में होगी– बहुत विस्तार से। तैयार रहना।
बहुत–बहुत धन्यवाद। जय ओशो।।

विभूति पाद सूत्र–1 धारणा

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।। 1 ।।

देश बन्धः चित्तस्य धारणा

मन को एकाग्र करना, और ध्येय से बांधना;
विषय में सीमित होना ही, कहलाता है धारणा।

स्थान विशेष (देश) में चित्त को बांधना, अर्थात ध्येय में मन को एकाग्र व सीमित कर देना, धारणा कहलाता है।

पतंजलि योगसूत्र के विभूतिपाद का प्रथम सूत्र है कि ध्येय में चित्त को बांधना 'धारणा' कहलाता है। धारणा यानी एकाग्रता, जिससे विज्ञान का जन्म होता है।

रहता है बस ख़्याल ही तेरा तेरे बग़ैर
जीने का इक यही है सहारा तेरे बग़ैर
अब वह जमाले–शाम, निशाते–सहर कहां
दुनिया से कर लिया है किनारा तेरे बग़ैर
तू रूठकर चला मगर यह तो मुझे बता
किससे करूंगी मैं शिकवा तेरे बग़ैर
बेनूर सब बहारें हैं मेरी निगाह में
धोखा है अब हर–एक नज़ारा तेरे बग़ैर
आ और आके छीन ले रूहे–हयात भी
मैं क्या करूंगी जी के भी तन्हा तेरे बग़ैर

मन जब एक विषय के ऊपर ही इतना एकाग्र हो जाए कि वही जीवन–मरण बन जाए, तब जानना कि एकाग्रता घटी। सामान्यतः हमारा मन बहुत खंड–खंड में बंटा हुआ है, टुकड़ों–टुकड़ों में विभाजित है और वही हमारे दुःख का कारण है। हम बहुचित्तवान हैं, मल्टीसायकिक। आज से ढाई हज़ार साल पहले महावीर ने इस शब्द का प्रयोग किया था कि मनुष्य बहुचित्तवान है। उसके भीतर एक चित्त नहीं है, हज़ार खंड हैं विपरीत दिशाओं में खींचते हुए और वही हमारे दुःख का कारण है। हम अन्य कारणों को मिटाने की सोचते हैं, किन्तु दुःख समाप्त नहीं होता; क्योंकि मूल कारण हमारे भीतर है। हमारे भीतर एक व्यक्ति नहीं है, कई व्यक्ति जी रहे हैं। एक

पूरी–की–पूरी भीड़ हमारे भीतर है। अगर दुःख मिटाना है, तो सबसे पहले तो 'धारणा' को पैदा करना होगा, 'धारणा' का अर्थ है 'एक चित्त' पैदा हुआ। साधक यूनीसायकिक बना। सुनो इस सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं–

अपने भीतर देखो, तुम दुःखी हो; क्योंकि तुम एक नहीं हो, अनेक हो। सबसे पहली बात जो करने योग्य है– वह है धारणा। मन में बहुत–सी चीज़ें पड़ी हैं, एक बड़ी भीड़ है। उन सभी बातों को एक–एक करके गिरा देना, अपने मन को सिकोड़ते जाना और सिकोड़ते–सिकोड़ते वहां तक ले जाना, जहां केवल एक ही विषय शेष रहे। क्या तुमने किसी एक चीज़ पर एकाग्रता को साधा है? एकाग्रता, कॉन्सन्ट्रेशन का अर्थ है कि पूरा का पूरा मन एक ही जगह केन्द्रित हो जाए।

मान लो किसी गुलाब के फूल पर मन को एकाग्र किया, तो गुलाब के फूल तो हमने कई बार देखे हैं, मगर कभी पूरा ध्यान गुलाब पर केन्द्रित नहीं हुआ। अगर गुलाब के फूल पर दृष्टि एकाग्र हो जाए, तो वह फूल ही सारा संसार बन जाता है। मन सिकुड़ता जाता है, सिकुड़ता जाता है टॉर्च की रोशनी की तरह, बस एक ही जगह पर सारा प्रकाश केंद्रित हो जाता है और वह गुलाब का फूल बड़े–से–बड़ा होता चला जाता है। गुलाब जब तुम्हारे लिए अन्य हज़ारों–लाखों विषयों में से एक चीज़ था, तब वह बहुत छोटा–सा था, अब वही गुलाब का फूल सबकुछ है, तुम्हारे लिए सारा संसार है। जिस व्यक्ति को अध्यात्म की तरफ़ यात्रा करनी है, ये कला सीखनी होगी। वैज्ञानिक इसे जानते हैं– धारणा में जीना, एकाग्रता में जीना।

एक बार ऐसा हुआ महान वैज्ञानिक 'लूई पास्टर' अपने माइक्रस्कोप में देखते हुए कुछ काम कर रहे थे। कोई व्यक्ति उनसे मिलने आया, वह कोई आधे घंटे, पौन घंटे से खड़ा है। एक घंटा बीत गया, डेढ़ घंटा बीत गया, 'लूई पास्टर' ने निगाह उठाकर भी न देखा। पास्टर को पता ही न चला कि कोई घर में आया हुआ है। दो घंटे बाद जब सिर उठाके देखा, पूछा आप कब से आए? उसने कहा मैं तो दो घंटे से आया हूं। पास्टर ने कहा कि तुमने मुझे आवाज़ क्यों न दी? उस व्यक्ति ने कहा मैं देख रहा था ग़ौर से, आप कितने एकाग्र थे अपने माइक्रस्कोप में। इतनी एकाग्रता तो मैंने चर्च में प्रार्थना करनेवालों में भी नहीं देखी। मैं कैसे आपको डिस्टर्ब कर सकता था। आप तो प्रार्थनाभाव में थे। 'लूई पास्टर' ने कहा कि तुमने बिल्कुल ठीक बात पकड़ी। चर्च से भी ज़्यादा मैं अपनी गहराई में डूब जाता हूँ, जब माइक्रस्कोप पर बैठा हुआ होता हूं। पास्टर ने कहा जब कभी मेरा मन अशांत होता है, बेचैन होता है, तो मैं आ जाता हूँ अपने माइक्रस्कोप पर और ऐसी एकाग्रता सधती है, अद्‌भुत आनंद आ जाता है।

विभूतिपाद के तीन सूत्र हम लेने जा रहे हैं। पहला सूत्र धारणा से संबंधित, दूसरा

ध्यान से संबंधित और तीसरा समाधि से संबंधित है। धारणा वैज्ञानिक भी जानते हैं, ध्यान कलाकार जानते हैं, संगीतकार जानते हैं, चित्रकार जानते हैं और समाधि आध्यात्मिक व्यक्ति जानते हैं। लेकिन याद रखना, अध्यात्म तक वही पहुंच पाएगा जो धारणा और ध्यान से गुज़रा है। इन तीन बातों को पतंजलि ने योग के अंतरंग कहा– धारणा, ध्यान, समाधि– और इसलिए इनको विभूतिपाद में उन्होंने अलग से गिनाया है। साधनपाद समाप्त कर दिया प्रत्याहार पर जाकर, अब असली योग की बात है।

बुद्ध, महावीर और पतंजलि कोई दार्शनिक नहीं हैं, वे कोई तत्त्व मीमांसा की चर्चा नहीं करते, वे तो सीधी–सीधी 'चेतना' के विज्ञान की बात करते हैं। उनकी शब्दावली भी वैज्ञानिक है। पतंजलि कह रहे हैं–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

देश में बांध देना चित्त को, एक विषय पर एकाग्र कर देना। ये देश शब्द भी समझने जैसा है। पिछली सदी में 'एल्बर्ट आइंस्टाइन' और उनके बाद के वैज्ञानिकों ने जो खोज की उससे एक बात स्पष्ट हुई कि समय और स्थान जिन्हें पहले अलग–अलग माना जाता था, वे वास्तव में अलग–अलग नहीं हैं। स्पेस के, स्थान के तीन आयाम माने जाते थे, एक–दूसरे से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए। 'एल्बर्ट आइंस्टाइन' ने कहा कि समय स्पेस का ही चौथा आयाम है, द फोर्थ डाइमेंशन ऑफ द स्पेस इज़ टाइम। वे दो अलग–अलग बातें नहीं हैं और तब से विज्ञान में एक नए शब्द का उपयोग शुरू हुआ 'स्पेस–टाइम' हिंदी में हम अगर उसको अनुवाद करें तो कहना होगा दिग्काल।

हमारे भीतर तीन तत्त्व हैं– तन, मन और चेतन। तन गति करता है स्थान में। अभी आप एक जगह बैठे हैं, वहां से उठकर आप दूसरी जगह जा सकते हैं। अतः पदार्थ की गति स्थान में है, स्पेस में है। मन की जो गति है वह टाइम में है। आप एक ही जगह बैठे–बैठे भविष्य या भूत में जा सकते हैं, समय में गति कर सकते हैं। तो तन और मन की गति 'स्पेस–टाइम' में है और तीसरा तत्त्व तन और मन का जो द्रष्टा चेतन है, वह अगतिमान है। न वह देश में गति करता, न काल में। पतंजलि ने देश और काल दो शब्द उपयोग नहीं किए, बड़ी गहरी और पैनी समझ है उनकी। जो 'एल्बर्ट आइंस्टाइन' ने खोजा हज़ारों साल बाद, पतंजलि उस बात को पहले ही जानते थे। देश और काल अलग–अलग नहीं हैं, 'स्पेस–टाइम' दोनों में गति रुक जाएं।

जब हमने आसन की बात की थी, तब पतंजलि ने कहा था 'स्थिर सुखम् आसनम्' शरीर का स्थिर हो जाना। अब धारणा में चित्त का स्थिर हो जाना, एक विषय पर केंद्रित हो जाना।

ओशो के एक प्रोफेसर थे। जब ओशो स्टूडेंट थे पहली ही बार दर्शनशास्त्र की

क्लास में, पोस्टग्रैजुएशन की क्लास में गए। वह दार्शनिक महोदय, प्रोफेसर इतने उबाऊ तरीक़े से समझा रहे थे कि ओशो फिर दुबारा उनकी क्लास में नहीं गए। वह काफ़ी नाराज़ रहे, साल भर चिढ़े हुए रहे और सोचते रहे कि यह विद्यार्थी अवश्य फेल हो जाएगा। फिर परीक्षा आई और परीक्षा का जब परिणाम आया, तो ओशो को 95 प्रतिशत अंक मिले। वह प्रोफेसर महोदय बहुत हैरान!

एक बार रास्ते में उन्होंने पकड़ लिया और कहा कि सच बताओ तुमने मेरी केवल एक क्लास अटैंड की है, ये 95 प्रतिशत अंक कैसे मिले? ओशो ने कहा– 'हुज़ूर आपकी कृपा से।' वे थोड़े हैरान हुए कि तुम तो केवल एक बार मेरी क्लास में आए, मेरे कारण 95 प्रतिशत। ठीक–ठीक बताओ तुम्हारा अर्थ क्या है? ओशो ने कहा आप विस्तार से न पूछें तो अच्छा। बस यही समझें कि आपके कारण 95 प्रतिशत मिले। अगर पूरा विस्तार से बताऊंगा, तो आप दुःखी हो जाएंगे। वे कहने लगे– 'बताना ही पड़ेगा।' ओशो ने कहा तो फिर सुन लीजिए अगर वह एक दिन मैं नहीं आया होता, तो मुझे 100 प्रतिशत मिले होते। वह जो 5 प्रतिशत कट गए हैं आपकी वजह से, आपने कन्फ़्यूज़ कर दिया, मेरे मन को थोड़ा विचलित कर दिया। नहीं तो मैं अपने विषय को पूर्णतः जानता था, आपने थोड़ा–सा भटका दिया।

ओशो ने मज़ाक़ किया लेकिन बात सही है। हमारा मन जो यहां–वहां बंटा हुआ है, वह ऐसे हो जाए जैसे कांच के लैंस से गुज़र कर सूरज की किरणें एक बिंदु पर फ़ोकस हो जाती हैं। जब चित्त ऐसा हो जाता है, तब धारणा की क्षमता पैदा हुई।

मैंने सुना है, सरदार विचित्तर सिंह हवाई जहाज़ में यात्रा करते हुए बता रहे थे कि मेरे पिताजी पायलट हैं और मेरी माताजी एयर होस्टैस हैं और अक्सर दोनों ही यात्रा में रहते हैं। अभी भारत में, तो दो घंटे बाद बांग्लादेश में, तो छह घंटे बाद लंदन में, तो कहीं जर्मनी में; सदा यात्रा में रहते हैं। साथ बैठे हुए सहयात्री ने उनसे पूछा कि आपका जन्म कहां हुआ था? विचित्तर सिंह ने कहा– पंजाब। उस सहयात्री ने पूछा कौन–सा हिस्सा? विचित्तर सिंह ने कहा– 'हिस्सा नहीं, मैं पूरा का पूरा ही पंजाब में पैदा हुआ था।' लेकिन हमारी स्थिति ऐसी है कि एक अंग कहीं, दूसरा अंग कहीं, तीसरा अंग कहीं, मन हमारा बिल्कुल बंटा–बंटा हुआ है।

एक पुराना फिल्मी गाना है– **दिल के टुकड़े हज़ार हुए।**
कोई इधर गिरा, कोई उधर गिरा।
वैसी हमारी दुर्गति है। इस सबको एक में बांधना होगा।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

'स्पेस–टाइम' में, दिग्काल में चित्त को बांधना ही धारणा है। धारणा के कारण ही

भीतर वह क्षमता उत्पन्न होती है– धारण करने की क्षमता। उसका अर्थ है जैसे कोई स्त्री गर्भस्थ होती है, गर्भवती होती है उसने कुछ धारण किया। जैसे ज़मीन में कोई बीज पड़ता है, ज़मीन ने बीज को धारण किया; अब वह भीतर पल्लवित हो सकेगा, पौधा बन सकेगा। ठीक ऐसे ही चित्त की एक अवस्था 'धारणा' की है। जब तक वह पैदा न हो जाए, तब तक धर्म में आगे गति संभव नहीं है।

पश्चिम में मनोविज्ञान जो कार्य कर रहा है, याद रखना वह योग के कार्य से बिल्कुल भिन्न है। पश्चिम का विज्ञान मन के खंड–खंड टुकड़ों का विश्लेषण कर रहा है, उन्हें समझने की कोशिश कर रहा है; उसका कोई लाभ नहीं। योग कह रहा है जुड़ो, योग का अर्थ ही जोड़ना होता है। जैसे हम कहते हैं न कि दो और दो का योग चार होता है! तुम्हारे भीतर सबकुछ एकजुट हो जाए। उन टुकड़ों–टुकड़ों का विश्लेषण करने से कुछ लाभ न होगा, पश्चिम का मनोवैज्ञानिक और मरीज़ एक ही नाव पर सवार हैं।

प्रसिद्ध विचारक विलियम जेम्स एक बार पागलखाने गया था घूमने, वहां से लौट के बहुत दुःखी हो गया। किसी ने उससे पूछा कि आप इतने उदास और चिंतित क्यों हैं? जेम्स ने कहा कि मैं परेशान इसलिए हूँ कि पागलों को देखकर मुझे एक बात समझ में आ गई कि मैं उनसे ज़्यादा भिन्न नहीं हूं। वे मुझसे ज़रा एक–दो क़दम आगे बढ़ गए हैं। मेरा चित्त भी बड़ा चंचल है, उनका थोड़ा और ज़्यादा है। सिर्फ़ डिग्रीज़ यानी पागलपन का स्तर, का भेद है। किसी भी क्षण मैं भी पागल हो सकता हूं और मैं यह बात जानकर ही घबरा रहा हूं।

शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों का जो वर्ग पागलों का इलाज करता है; स्वयं उसी वर्ग में किसी भी अन्य प्रोफेशन की बजाय सबसे ज़्यादा पागल होते हैं। होना तो ऐसा नहीं चाहिए था। भारत में ऋषि हुए, योगी हुए, मुनि हुए; उन्होंने भी इन मनोवैज्ञानिकों की तरह ही हज़ारों लोगों पर काम किया, धर्म की दिशा उन्हें दी, लेकिन स्वयं कभी उस गढ्ढे में न गिरे। शांत, आनंदित, प्रफुल्लित रहे। अस्तु, पश्चिम का मनोविज्ञान और भारत का योग दोनों भिन्न हैं।

कई बार लोग मुझसे ऐसे सवाल पूछते हैं कि क्या साइकॉलजि योग का रिप्लेसमैंट हो सकती है? कभी नहीं, क्योंकि साइकॉलजि धारणा तक से चूक रही है, ध्यान और समाधि तो बहुत दूर की बात हैं। धारणा को साधो–

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। और तब तुम पाओगे तुम एकजुट हुए। उस एक परमात्मा से मिलने चले, पहले तुम स्वयं तो एक हो जाओ। अगर तुम खंड–खंड हो, तो कैसे एक से मिलोगे, अंततः अद्वैत में जाना है जहां दो न रह जाएं।

तो धीरे–धीरे सिमटो, सिकुड़ो, एक बनो– वही 'धारणा' है।

धन्यवाद। जय ओशो।।

विभूति पाद सूत्र–2 ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।। 2 ।।

तत्र प्रत्यय एकतानता ध्यानम्

निरंतर विषय की ओर, मन का बहना ध्यान है;
ध्येय का अहसास है, ध्याता का भी भान है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं– ध्येय की ओर मन का सतत प्रवाह ध्यान है। ध्यान यानी तल्लीनता, प्रेमभाव से ओतप्रोत जानने की शक्ति, ज्ञान की क्षमता होती है।

ध्यान को समझने से पहले हमारे मन की सात अवस्थाओं को समझ लें। एक अवस्था हमारी सामान्य मन की अवस्था, जिसे हम कहते हैं चंचलता। कभी इस तरफ़ मन जा रहा, कभी उस तरफ़ मन जा रहा, बार–बार दिशा बदल रहा, बार–बार विषय बदल रहा, ये हमारी सामान्य चंचलता है।

यदि चंचलता और अधिक बढ़ जाए, तो मन की दूसरी अवस्था पैदा होती है, जिसे हम कहें व्याकुलता, व्यग्रता। उदाहरण के लिए क्रोध के क्षणों में कि लोभ या ईर्ष्या के क्षणों में या बहुत ज़्यादा खुशी और उत्साह के क्षणों में हम इस व्यग्रता की दशा से गुज़रते हैं। कभी गुस्से में, कभी बहुत ज़्यादा प्रेम में। दोनों में ही हमारा चित्त बहुत ज़्यादा चंचल हो जाता है। हमारा तथाकथित प्रेम वह प्रेम नहीं है जिसकी चर्चा बुद्धपुरुष करते हैं, वह भी एक प्रकार का पागलपन ही है, क्षणिक पागलपन। हमारा क्रोध भी एक प्रकार

का क्षणिक पागलपन है, घृणा भी। एक मानसिक बीमारी होती है, आपने नाम सुना होगा जिसे बाईपोलर डिज़ीज़, या मेनियैक डिप्रैसिव सायकोसिस। व्याकुलता में जीने वाला व्यक्ति कभी एक छोर पर, कभी दूसरे छोर पर। कभी वह मेनियैक हो जाता है, अति ऊर्जा, उमंग, उत्साह से भरा, अति आशावादी और कभी कुछ महीनों के लिए डिप्रैशन में चला जाता है, निराश और हताश हो जाता है।

फिर मन की तीसरी अवस्था है, विक्षिप्तता। जब मन बिल्कुल ही खंड-खंड हो गया, पारे की भांति बिखर गया, पागल हो गया। जब व्याकुलता स्थायी रूप से जीवन का हिस्सा बन जाती है, तो वह पागलपन हो जाती है। चंचलता सामान्य अवस्था है, टैंपरेरी पागलपन। थोड़ी देर के लिए आए जैसा कि क्रोध में, ईर्ष्या में आता है; फिर वापिस हम अपनी नार्मल चंचलता में लौट आते हैं। यदि ऐसा हो जाए कि वह व्यग्रता सदा-सदा के लिए स्थायी हो जाए, तब वह विक्षिप्तता कहलाती है। मन की ये तीन अवस्थाएं हैं।

अब इसके बाद अगर चंचलता कम हो, तो क्या होगा? उसे समझना। चंचलता कम हो तो चौथी अवस्था आएगी, वह होगी एकाग्रता की, धारणा की। पिछले सूत्र में हमने उसकी चर्चा की। जैसे लैंस से प्रकाश की किरणें फ़ोकस हो जाएं, तो वह एक विषय पर फोकस बनना, एक बिंदु पर केंद्रित होना धारणा कहलाता है। वैज्ञानिक चित्त की इस अवस्था को भलीभांति जानते हैं। कभी-कभार सामान्य आदमी के जीवन में भी एकाग्रता के पल होते हैं। कभी किसी सौंदर्यपूर्ण दृश्य को देखकर, किसी अद्‌भुत संगीत को सुनकर, कभी प्रेम के किन्हीं क्षणों में, कभी किसी भोजन का स्वाद लेते हुए चित्त अचानक एकाग्र हो जाता है। हम समझते हैं वह आनंद उस दृश्य से, सौंदर्य से, संगीत से, प्रेम से या स्वाद से आया; वास्तव में आनंद आपके भीतर एकाग्रता घट जाने से आया।

मन की पाँचवीं अवस्था है तल्लीनता। कवि इसे जानते हैं, संगीतकार इसे जानते हैं, चित्रकार इसे जानते हैं। कभी-कभी छोटी-मोटी झलक सामान्य व्यक्ति को भी मिलती है। कुछ कार्य तो ऐसे होते हैं जिसमें आप तल्लीन हो जाते हैं। बचपन में तल्लीनता को हम सबने जाना है। खेल खेलते हुए, कि दौड़ते हुए, कि तितली के पीछे भागते हुए, कि नदी के किनारे रेत के घर बनाते हुए; तल्लीनता को हमने जाना है। बच्चे आसानी से किसी भी विषय में तल्लीन हो जाते हैं। अभी उनका चित्त बंटा हुआ नहीं है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे बड़े होंगे वे भी बंटे हुए और स्किट्‌सोफ्रैनिक, खंडित मानसिकता वाले होते जाएंगे। अतः हमारी सभ्यता, हमारे शिक्षा-संस्कार बड़ी महंगी क़ीमत चुकाकर हमें मिलते हैं, अपने मन को तोड़कर हमें मिलते हैं। 'तल्लीनता' को

कलाकार जानते हैं, संगीतकार जानते हैं, कवि जानते हैं।

भारत में कवि के लिए दो शब्द प्रयोग किए जाते हैं, कवि और ऋषि। दोनों में थोड़ा–सा भेद है। कवि ऐसा व्यक्ति है, जो तल्लीनता तक गया है, ध्यान का जिसे एहसास है। जैसा मैंने कहा धारणा वैज्ञानिक जानता है, कलाकार तल्लीनता जानता है। तल्लीनता अर्थात ध्यान। जब न केवल मन विषय की ओर निरंतर बह रहा है; बल्कि उस बहनेवाली ऊर्जा के प्रति भी सतर्कता है। ऐसा समझें जब लैंस से प्रकाश को हमने एक बिंदु पर फ़ोकस किया, तो वह धारणा हुई और वह प्रकाश जो फोकस बन रहा है, वह प्रकाश क्या है? वह है ध्यान।

ध्यान यानी अटैंशन, वही अटैंशन तो फोकस बना। अगर अटैंशन होता ही नहीं, ध्यान होता ही नहीं तो फ़ोकस भी कैसे बनता। इसलिए धारणा में तो वह ऑब्जैक्ट इंपोर्टंट है, जहां पर फ़ोकस बना और ध्यान में वह चैतन्यता ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है जो ऑब्जैक्ट की तरफ़ रही है। और फिर एक अद्‌भुत घटना घटती है। एक तरफ़ ऑब्जैक्ट है, दूसरी तरफ़ सब्जैक्ट है और बीच में चैतन्यता का यह प्रवाह है। यह बीच का जो प्रवाह है, वह ध्यान है। अब यदि ऑब्जैक्ट महत्त्वपूर्ण हो गया, तो तुम वैज्ञानिक हो पाओगे। अगर यह ध्यान ही महत्त्वपूर्ण हो गया, तब तुम कलाकार हो पाओगे। इसलिए विज्ञान जो खोज करता है वह बाह्य जगत से संबंधित होती हैं और कलाकार जिन चीज़ों का सृजन करता है, उसके अंतरतम से आती हैं।

इन दोनों के भेद को समझना, एक कवि की कविता या एक चित्रकार का चित्र उसके भीतर से प्रगट होता है, बाहर से नहीं। विज्ञान वस्तुनिष्ठ है, ऑब्जैक्टिव है और कला जो है वह सब्जैक्टिव है। वह भीतर से बाहर की ओर प्रगट होती है। जैसे किसी वृक्ष में रसधार बहती और भीतर से कली खिलती और फिर फूल बनती है। इसके आगे समाधि की बात वह और भी थोड़ी कठिन होगी समझना। उसके पहले समझना मन के छठवें तल को, संलीनता को। यह एक नया शब्द होगा शायद आपके लिए, जैन पारिभाषिक टर्मिनॉलजि से है। महावीर ने इसका उपयोग किया है।

संलीनता का अर्थ है, सब्जैक्टिविटी में ही पूरी तरह लीन हो जाना। एकाग्रता में विषय बाहर था, जिसमें हम डूब रहे थे, तल्लीनता में हम मध्य में आए, संलीनता में हम स्वयं के भीतर डूबे। अब विषय कोई नहीं है, जाननेवाला स्वयं के भीतर ही डूब रहा है और इसका अंतिम परिणाम है, 'चेतना' की आख़िरी अवस्था, जिसे हम कहें एकता। भीतर आब्ज़र्वर और आब्ज़र्व्ड एक ही हो गए, दो न बचे। दुइ द्‌वैत मिट गई। वह समाधि की अवस्था है। तो धारणा और समाधि के बीच में है– ध्यान।

पतंजलि ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से जमाया है, योग के तीन अंतरंगों को– धारणा,

ध्यान, समाधि। पहले धारणा को साधो, फिर ध्यान में आओ और तब समाधि घटित हो सकेगी। एक–एक क़दम... एक–एक क़दम आगे चलते चलो।

अब मैं पीछे कहे कुछ वाक्यों को ज्यों का त्यों दोहरा देना चाहता हूँ, ताकि आपने पूर्व प्रवचनों में जो समझा था, वह आपकी स्मृति से मिटे ना; बल्कि आगे की व्याख्या समझना आपके लिए आसान रहे। 'ज़्यादा से ज़्यादा जागरूक होना... और–और होशपूर्ण होना ही ध्यान है।' 'मन जब एक विषय के ऊपर ही इतना एकाग्र हो जाए कि वही जीवन–मरण बन जाए, तब जानना कि एकाग्रता घटी।'

मुझे मुल्ला नसरुद्दीन का एक लतीफ़ा याद आता है। तीन दोस्त थे– नसरुद्दीन, विचित्तर सिंह और चंदूलाल। तीनों का ही लकी नंबर तीन था। ग़रीबी से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने सोचा कि कुछ नया धंधा किया जाए। तो सन 2003 में तीसरे महीने मार्च की तीन तारीख को दोपहर तीन बजे उन्होंने एक गैरिज खोली। लेकिन धंधा बिल्कुल नहीं चला, क्योंकि गैरिज उन्होंने तीसरी मंज़िल पर खोली थी।

तब उन्होंने सोचा कि अब हेयर कटिंग सैलून खोलें। बड़ी मेहनत से सुंदर सैलून बनवाया, लेकिन एक भी ग्राहक नहीं आया। कारण, उन्होंने अमृतसर में ठीक गोल्डन टैंपल के सामने सरदारों के मुहल्ला नंबर तीन, बिल्डिंग नंबर तीन, कमरा नंबर तीन में हेयर कटिंग सैलून खोला और रात को तीन बजे वे दुकान खोलते थे। सरदारों के मोहल्ले में, वह भी हेयर कटिंग सैलून! वह धंधा भी नहीं चला।

फिर उन्होंने सोचा कि ये भी अपने वश का नहीं है। चलो, चूंकि तीन लकी नंबर है, इसलिए थ्री व्हीलर ऑटो रिक्शा चलाते हैं। एक महीने मेहनत करते रहे एक भी पैसा नहीं कमा पाए, क्योंकि एक सामने बैठकर ड्राइविंग करता था, दो पीछे बैठे रहते थे। तब उन्हें बहुत झुंझलाहट और गुस्सा आया। उन्होंने कहा कि अब इस आटोरिक्शा को फेंक दिया जाए। नदी के किनारे गए और खींच के ऑटोरिक्शा को नदी में फेंकने की कोशिश की लेकिन वह तीनों उसमें भी असफल रहे, क्योंकि तीनों मित्रों ने एक–एक चाक को पकड़कर अपनी–अपनी दिशा में खींचा। रिक्शा टस–से–मस न हुआ। हर कार्य में असफलता मिली। कारण, हमारे भीतर वे जो तीन गुण हैं– सत्व, रजस और तमस; वे तीनों विभिन्न दिशाओं में हमें खींच रहे हैं।

धारणा के बाद, एकाग्र होने के बाद ध्यान को समझना आसान होगा। ध्यान को समझाना बड़ा कठिन है, कैसे समझाएं कि ध्यान क्या है? करो... तो ही जान सकोगे। इसलिए मैं समझाने पर उतना ज़ोर नहीं दे रहा हूं। बस मेरा समझाना ऐसे समझना कि बस एक आमंत्रण है, आओ और ध्यान सीखो। ध्यान में तुम डूब सकते हो, जान सकते हो मामला बड़ा सरल है। समझाना बहुत कठिन है।

मुझे याद आता है नसरुद्दीन जब छोटा था और स्कूल में पढ़ता था। बायॉलजि के टीचर ने एक दिन उससे पूछा कि एमफ़िबियन का एक उदाहरण दो। एमफ़िबियन अर्थात ऐसे प्राणी जो पानी में भी रहते हों और ज़मीन पर भी। नसरुद्दीन ने कहा– सर, मैं बताऊँ– मेंढक। सर ने कहा– बिल्कुल ठीक! एक और उदाहरण दो, नसरुद्दीन ने फिर हाथ ऊंचा किया और कहा कि एक और मेंढक। शिक्षक ने कहा कि एक नया उदाहरण दो। नसरुद्दीन ने कहा... एक और नया मेंढक।

बस ऐसा ही ध्यान के बारे में। तुम मुझसे कितना भी पूछो कि ध्यान क्या है? मैं कहूंगा... ध्यान बस ध्यान है। तुम कहो कि और थोड़ा विस्तार से कहो तो मैं और लंबा कहूंगा, ध...या...न...। कुछ कहना बड़ा मुश्किल है, समझाना बड़ा कठिन है, लेकिन प्रयोग करना आसान है। तो मैं तुम्हें आमंत्रित करता हूँ, आओ और ध्यान में डूबो। पतंजलि के इस सूत्र पर ओशो के अमृतवचन सुनो–

'ध्यान' का दूसरा चरण 'कला' का मार्ग है। इसलिए कई बार कलाकारों को रहस्यदर्शियों जैसी झलकें मिलती हैं। इसलिए कई बार काव्य वह कह देता है जिसे गद्य में कभी नहीं कहा जा सकता, जिसे कहने का कोई और उपाय नहीं। कई बार पेंटिंग्स ऐसी झलक दे देती हैं कि जिसे प्रगट करने का और कोई उपाय नहीं। किसी धार्मिक व्यक्ति की अपेक्षा एक कलाकार, एक गीतकार, एक मूर्तिकार, ऋषि के ज़्यादा निकट होता है। अगर कोई व्यक्ति कवि होने पर ही रुक गया, तो उसका विकास थम गया। कवि को तो सतत् बहना है और आगे...आगे बढ़ना है। पहले एकाग्रता से ध्यान तक... और फिर ध्यान से समाधि तक। उसे तो चलते ही जाना है, बढ़ते ही जाना है।

ध्यान विषय की ओर बहते हुए मन का अविच्छिन्न प्रवाह है। थोड़ा इसे अनुभव करना और अच्छा होगा कि ध्यान के लिए कोई ऐसा विषय चुनना जिसे कि तुम प्रेम करते हो। तब बड़ी आसानी से ध्यान में उतरना संभव हो सकेगा। अक्सर साधु–महात्माओं ने ऐसे विषय पर ध्यान करने के लिए कहा, जिससे तुम्हारा लगाव नहीं है, प्रेम नहीं है। ओशो की इस बात पर विशेष रूप से ग़ौर करना। वे कह रहे हैं ऐसी चीज़ पर ध्यान करो, जिसका तुम्हारे मन में सहज आकर्षण है। पतंजलि के साधनपाद के सूत्र में भी यह बात आई थी कि जहां तुम्हारा सहज आकर्षण हो वहां ध्यान को लगाना, वह आसान होगा।

कई लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हम ध्यान की बड़ी कोशिश करते हैं, लेकिन मन टिकता नहीं। कारण? वे ग़लत विषय पर ध्यान लगा रहे हैं। ध्यान लगेगा ही नहीं, धारणा भी नहीं बन पाएगी। मन यहां से वहां भागेगा। तो धारणा के लिए ऐसा विषय चुनना जिससे तुम्हारा लगाव है और तब ध्यान को समझना बहुत आसान होगा।

वह ऊर्जा, वह शक्ति जो विषय की ओर बह रही है, वही ध्यान है।

ध्यान को समझाते हुए मैं एक बात और आपको बताना चाहूंगा कि परमगुरु ओशो ही इस ज़मीन पर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सामूहिक रूप से ध्यान शिविर लेने आरंभ किए। उन्होंने ही बड़े पैमाने पर लोगों को ध्यान के विषय पर बताना और उसका प्रयोग कराना आरंभ किया। आज एक छोटी–सी कविता के माध्यम से ओशो के प्रति अपना अहोभाव व्यक्त करता हूँ–

क्या हैं ओशो, कौन हैं ओशो, कैसे कहूं इंसान हैं ओशो!
शत–शत नमन अर्पित उनको, परमात्मा के प्रमान हैं ओशो।
प्रेम हैं ओशो, ध्यान हैं ओशो, निजता का सम्मान हैं ओशो
क्षण में मार गिराएं अहं को, ऐसे घातक बाण हैं ओशो।
सच की खोज में जो निकले, उनकी प्रिय पहचान हैं ओशो
भगवत्ता को जीनेवाले, धरती के भगवान हैं ओशो।
दिल की प्यास बुझाने वाले, संन्यासी के प्रान हैं ओशो।

सुख व दुःख से परे खिली जो, वही शांत मुस्कान हैं ओशो
जन्म–मृत्यु हैं नहीं जहां उस, परमजीवन का ज्ञान हैं ओशो
ध्यान–प्रेम के दो पंखों से, चेतन–गगन उड़ान हैं ओशो
अस्तित्व से मिले जगत को, इक अनुपम वरदान हैं ओशो
उमंग उत्सव आनंद लीला, समाधि का विज्ञान हैं ओशो
धार्मिकता का पैग़ाम ज़मीं पे, लाए वो आसमान हैं ओशो

जीवन–मर्म बताने वाले; गीता, वेद, कुरआन हैं ओशो।
प्यार का गुलिस्तान हैं ओशो, रहमतों का जहान हैं ओशो।
दिलो–जिगर, हैं जान ओशो, भक्तों के भगवान हैं ओशो।
ताओ सांख्य हठ झेन मार्गके सब ध्यानोंकी खान है ओशो
योग साधना के दिग्दर्शक, तंत्र के परम–ज्ञान हैं ओशो।।
क्या हैं ओशो, कौन हैं ओशो, कैसे कहूं इंसान हैं ओशो!

शत–शत नमन अर्पित उनको, परमात्मा के प्रमान हैं ओशो।
भक्तों के भगवान हैं ओशो, भक्तों के भगवान हैं ओशो।।

ओशो की महान कृपा जो वे लाखों–लाखों लोगों को ध्यान की दिशा में मोड़ सके। उन्हें बहुत–बहुत धन्यवाद सहित मैं अहोभाव अर्पित करता हूं।

जय ओशो।। जय ओशो।। जय ओशो।।

विभूति पाद सूत्र–3 समाधि

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।। 3 ।।
तदेव अर्थ मात्र निर्भासम् स्वरूप शून्यम् इव समाधिः

वही ध्यान समाधि कहलाता है, जो अर्थमात्र से भासने वाला; किंतु स्वरूप से शून्य जैसा हो; अर्थात समाधि में मन विषय के साथ एकरूप हो जाता है।

ध्यान जब स्वरूप से, शून्यवत हो जाता है।
समाधि में मन–विषय, एकरूप हो जाता है।

समाधि में मन, विषय के साथ एकरूप हो जाता है। सदगुरु ओशो समझाते हैं– समाधि यानी समस्त व्याधि का मिटना, समस्याओं का समाधान होना, दृश्य व द्रष्टा का एकात्म होना, अनुभव के पार अकथनीय अवस्था।

ध्यान के बारे में समझाना ही इतना कठिन है, समाधि के बारे में समझाना तो क़रीब–क़रीब असंभव। क़रीब–क़रीब कह रहा हूं। कुछ इशारे किए जा सकते हैं, कुछ संकेत किए जा सकते हैं, बस।

मैंने कहा– धारणा है– बाहर एकाग्रता; विषय महत्त्वपूर्ण है। ध्यान में सब्जेक्टिविटी महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों के पार एक तीसरी अवस्था है, बाहर और भीतर के द्वंद्व से मुक्ति। कहना चाहिए अ–मनी दशा, उन्मनी अवस्था।

झेन फ़क़ीर इसे कहते हैं 'द स्टेट ऑफ नो माइंड।' यह मन की परम दशा भी कही जा सकती है और अमनी दशा भी कही जा सकती है। चूंकि वहां जाननेवाला मन ही नहीं रहता, अतः दृश्य और द्रष्टा एक हो जाते हैं, अद्वैत फलित होता है इसलिए फिर उसका वर्णन भी कैसे हो। वर्णन करनेवाला मन स्वयं भी वहां नहीं बचता।

मैंने सुना है शराबी नसरुद्दीन और उसका शराबी दोस्त विचित्तर सिंह दोनों घर से बाहर बगीचे में बैठकर शराब पी रहे थे। चार पैग चढ़ाने के बाद विचित्तर सिंह ने कहा कि नसरुद्दीन तुमने कहा था कि तुमने आज ही एक नया मोबाइल फोन खरीदा है। अरे फोन का कुछ उपयोग करो। ज़रा मेरे घर फोन करके पता लगाओ कि मैं घर में हूँ कि नहीं। नसरुद्दीन उठा और जाने लगा उसके घर पता लगाने के लिए। विचित्तर सिंह ने कहा अरे नालायक जाने की क्या ज़रूरत है? फोन करके पूछ ले।

घर के भीतर होना क्या है, घर के बाहर होना क्या है? ये दोनों बातें तो फिर भी समझी जा सकती हैं। लेकिन याद रखना! तुम्हारा होना न बाहर है, न भीतर है। सामान्यतः हम नए–नए साधकों से कहते हैं अपने भीतर डूबो। याद रखना! वह केवल

शुरुआत की बात है। वहां भी अटक मत जाना। कुछ लोग हैं जो बाहर अटके हुए हैं, भीतर नहीं जा सकते; दूसरे लोग हैं जिनको भीतर पकड़ लेता है, वह बाहर नहीं आ सकते।

मुक्त कौन है? जो न भीतर से बंधा है और न बाहर से बंधा है। समाधि वह अवस्था है। मान लीजिए ठंड के दिन हैं और तुम्हें ठंड लग रही है, तुम बगीचे में बाहर कुर्सी डाल के धूप में बैठ गए। फिर धूप तेज़ होने पर उठके भीतर चले गए। न तुम बाहर से बंधे हो, न भीतर से बंधे हो। जब जैसी ज़रूरत हो, करते हो। उस आदमी को क्या कहें जो अपने घर के भीतर ही नहीं जा पा रहा? बाहर धूप में परेशान है, गर्मी में पसीना–पसीना हो रहा है। वह बाहर से बंध गया, भीतर जाने का द्वार वह भूल गया। और उस आदमी को क्या कहोगे जो जनवरी की तेज़ ठंड में अपने घर के भीतर है। कह रहा है कि धूप में आना चाहता हूँ मगर नहीं आ सकता। ये आदमी भीतर से बंध गया। दोनों ही मुक्त नहीं हैं। असली रूप में परम कैवल्य को उपलब्ध वही है, जो भीतर–बाहर के बंधन से मुक्त हो गया। समाधि के इस सूत्र को समझाते हुए हमारे परमगुरु ओशो ने कहा–

वस्तुनिष्ठता आब्जेक्टिविटी बाह्य संसार है और आत्मनिष्ठता सब्जेक्टिविटी भीतरी संसार है। जबकि तुम न तो बाहर हो, न भीतर, तुम दोनों के पार हो। इसे समझना बहुत कठिन है। क्योंकि साधारणतः कहा जाता है कि अपने भीतर जाओ जबकि वह भी एक अस्थायी अवस्था है। उसके भी पार जाना है, उसके भी बियांड गति करनी है। बाहर और भीतर दोनों के पार, तुम वह हो। जो बाहर जा सकता है और जो भीतर आ सकता है। तुम वह हो जो इन दोनों ध्रुवों के भीतर गतिमान हो सकते हो। तुम उन दोनों के पार हो, तुम तीसरी अवस्था हो। जब मन विषय के साथ एकरूप हो जाता है, तब वह समाधि है– ऐसा कहते हैं पतंजलि।

जब दृश्य विलीन हो जाता है द्रष्टा में और द्रष्टा विलीन हो जाता है दृश्य में। जब न तो कोई देखनेवाला बचा, न कोई देखे जाने वाला। जब द्वैत नहीं बचा तब एक अद्‌भुत शांति और मौन घटित होता है। तब यह नहीं बताया जा सकता कि क्या बचा? क्योंकि यह कहने, बतानेवाला भी नहीं बचा।

समाधि के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि समाधि के बारे में कुछ भी कहना न कहने जैसा ही होगा। उस बारे में जो भी कहा जाए वह या तो वैज्ञानिक होगा अथवा काव्यात्मक होगा। धर्म के बारे में सटीक वक्तव्य नहीं दिया जा सकता, वह अकथनीय है, अनिर्वचनीय है। कुछ लोग हैं जिन्होंने वैज्ञानिक ढंग से धर्म की व्याख्या की। उदाहरण के लिए स्वयं महर्षि पतंजलि, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध; ये वैज्ञानिक चित्त के लोग हैं, तर्कनिष्ठ और बुद्धिजीवी हैं। ये भीतर की उस अकथनीय

बात को भी बौद्धिक तरीक़े से समझाते हैं। फिर दूसरे प्रकार के संत हुए हैं– काव्यात्मक। उदाहरण के लिए चीन के संत लाओत्सू, ईसामसीह, संत मीराबाई, सहजोबाई, चरणदास, दादूदयाल, कबीर साहब, गुरु नानक देव। इन्होंने कलात्मक तरह से, काव्यात्मक तरीक़े से भीतर की बात को समझाया।

तो जब भी उसे व्यक्त किया जाएगा या तो वैज्ञानिक तरीक़े से कहना होगा या भावुक तरीक़े से कहना होगा। दो ही उपाय हैं, लेकिन याद रखना! जो कहा जा रहा है वह इन दोनों के ही पार है। वहां भीतर क्या घटता है कहना बड़ा मुश्किल है। ऐसा समझो वहां अंतस और बाहर के पार वह जो तीसरी अवस्था है; वहां पहुंचकर अखिल 'ब्रह्म' के साथ एकात्म घट जाता है। जिसके साथ हम होते हैं, उसी के समान हो जाते हैं। ऋषियों का यह वचन 'अहं ब्रह्मास्मि', मंसूर की यह घोषणा 'अनलहक' ऐसा मत सोचना कि ये कोई अतिशयोक्तिपूर्ण वक्तव्य हैं। ये परमात्मा के साथ एक हो गए।

शुरू–शुरू में जब समाधि होती है, तो वह एकात्मता थोड़ी देर के लिए होती है, फिर–फिर समाप्त हो जाती है। इसीलिए संत विरह के गीत गाते हैं, मीराबाई आंसू बहाती हैं। वे कहती हैं,

'अंसुवन जल सींच–सींच प्रेम बेल होई।'

क्या होता है? कभी समाधि लगती है, कभी समाधि नहीं लगती। कभी परमात्मा के साथ एक हो जाते हैं और कभी–कभी फिर दुई–भावना, द्वैत–भावना पैदा हो जाती है। इसलिए शुरुआत की समाधि को सवितर्क समाधि, सविचार समाधि कहा जाता है। अभी विकल्प मौजूद है, समाधि से भिन्न अवस्था में भी वापिस लौटना होता है। सुनो यह गीत–

दुनिया ही बदल जाती है मेरी, जब तेरी इनायत होती है;
मिट जाते हैं दिल के ग़म सारे राहत ही राहत होती है;
ये कैसी मोहब्बत होती है...

आते हैं सब नज़र अपने ही फिर कोई ग़ैर नहीं होता,
सब दिल की नफ़रत मिटती है उल्फ़त ही उल्फ़त होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है...

कुछ ऐसा अपनी आँखों में बस जाता है नूरे–हुस्न 'अजल',
हर वक्त निगाहों में रक्शां, तेरी मोहिनी सूरत होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है...

दुःख है तो यही मस्ती अपनी कायम–सी नहीं रह पाती है,
एहसासे–दुइ जब होता है बेहद ही उल्फ़त होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है...

समाधि लगती है, टूट जाती है।

दुःख है तो यही मस्ती अपनी कायम–सी नहीं रहने पाती,

एहसासे–दुई जब होता है, बेहद ही उल्फ़त होती है,

ये कैसी मोहब्बत होती है...?

भक्त बड़ी पीड़ा से गुज़रता है। उसके संताप को समझना अत्यंत मुश्किल है कि मीराबाई क्यों रो रही है, आंसू बहा रही है? इन्होंने परमानंद को जाना है, लेकिन बिछुड़ना हो जा रहा है परमात्मा के साथ, सदा एक नहीं रह पा रहीं।

फिर धीरे–धीरे निर्वितर्क, निर्विचार और 'निर्बीज समाधि' की तरफ़ यात्रा होती है। फिर सदा–सदा के लिए समाधिस्थ अवस्था स्थायी रूप से हो जाती है। फिर उस भगवत्ता में ही जीना होता है, चौबीसों घंटे उसी में डूबना होता है। फिर कोई विकल्प नहीं बचा, इसलिए उसको निर्विकल्प कहते हैं। अब कामना के कोई बीज नहीं बचे, इसलिए उस दुइ से छूटना, फिर दुइ में दुबारा गिरना नहीं होगा। एक बार डूबे सो डूबे; सदा–सदा के लिए डूब गए।

ओशो ने अपना नाम जब ओशो चुना... उसके अर्थ को समझना, ओशो का अर्थ है जिसे ओशनिक एक्सपिरियंस हुआ। जैसे कोई बूंद सागर में गिर जाए और सागर ही हो जाए। अब बूंद अलग बची ही नहीं, वापिस लौटने का कोई उपाय न बचा। ठीक ऐसे ही अस्तित्व की भगवत्ता के साथ जो ओत–प्रोत हो गया, जो एक हो गया, जिसकी अलग से अब कोई सत्ता न बची, वह 'निर्बीज समाधि' में प्रवेश हो गया। निश्चित रूप से जिसके संग हम हैं, जिसके साथ हम जुड़ गए; उसी के साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है।

संसार में भी ऐसा होता है, जो तुम्हारे मित्र हैं, जो तुम्हारे परिचित हैं, जिनके बीच तुम उठते–बैठते हो; उनके साथ तुम्हारा तादात्म्य हो गया। हिंदू परिवार में तुम पैदा हुए, तुम अपने आप को हिंदू मानने लगे। भारतीयों के बीच में तुम रह रहे हो, कहीं तुम्हारे मन में धारणा बन गई की तुम भी भारतीय हो। जबकि तुम्हारी 'चेतना' न हिंदू है न मुसलमान, न भारतीय है न चीनी। तुम कोई भी नहीं हो, लेकिन संग–साथ का असर। जैसे दर्पण के सामने से कोई चीज़ गुज़रे, तो उसका प्रतिबिंब दर्पण में बनता है और दर्पण इस भ्रम में पड़ जाता है कि यही मैं हूं। दर्पण को माफ़ किया जा सकता है, लेकिन हम अपने बोध से च्युत होकर भ्रांति में उलझ जाते हैं, यह क्षम्य नहीं है।

मैंने सुना है छोटे विचित्तर सिंह से क्लासटीचर ने पूछा कि तुम किस खानदान से ताल्लुक रखते हो? आठ वर्षीय विचित्तर सिंह ने कहा, 'सर जानवरों के खानदान से।' शिक्षक ने पूछा– 'क्या मतलब?' विचित्तर सिंह ने उत्तर दिया, 'मम्मी मुझे उल्लू का पट्ठा कहती है, पिताजी गधा कहकर डांटते हैं, दादाजी सुअर की औलाद कहते हैं, मेरी अधिक ऊंचाई होने के कारण पड़ोसी बच्चे मुझे ऊंट पुकारते हैं। डार्विन के सिद्धांत के

मुताबिक मेरे पूर्वज बंदर थे; लेकिन जहां तक मैं अपनी समझ से समझता हूँ मैं एक पिल्ला हूं।' शिक्षक ने आश्चर्य से कहा, पिल्ला! तुम्हें कैसे पता चला कि तुम एक पिल्ले हो? बच्चे ने कहा, 'मम्मी–पापा झड़गते हुए एक–दूसरे को कुत्ता व कुत्ती कहते हैं; इसी से मैंने निष्कर्ष निकाला कि मैं पिल्ला हूं।' जब कुत्ता और कुत्ती के साथ रहोगे, तो स्वाभाविक निष्कर्ष है कि तुम पिल्ले हो जाओगे।

इसलिए सत्संग की इतनी महिमा कही जाती है। उन जाग्रत पुरुषों के साथ रहो; उन ध्यानी, समाधिस्थ लोगों के साथ रहो जिन्होंने 'ब्रह्म' को जाना है। उनके साथ रहते–रहते तुम्हारे पुराने तादात्म्य टूटेंगे और तुम अपने भीतर–बाहर दोनों के पार उस 'परमचैतन्य' को जानोगे। क्योंकि तुम्हारा व्यक्तिगत चैतन्य भी नहीं है। जब हम कहते हैं कि भीतरी 'चेतना', तब उसमें एक इंडिविजुवैलटी है, इसलिए 'ध्यान' में एक इंडिविजुवैलटी का, निजता का एहसास होता है। एक सूक्ष्म अस्मिता रह जाती है, एक हूंपन, एमनैस की फीलिंग रह जाती है। समाधि में वह भी समाप्त हो जाती है, हूंपन भी गया। सिर्फ़ हैपन रह जाता है, इज़नैस।

अस्तु, एक तो है बिल्कुल बाहरी अहंकार; व्यक्तित्व के तल पर, पर्सनैलटी के तल पर, जिसे हम कहें अहंकार, मैं, इगो, फिर भीतरी तल पर अस्मिता, एमनैस और समाधि में फिर वह भी नहीं रह जाती। इज़नैस, सिर्फ़ होनापन। वह कौन है, वह क्या है, उसपर कोई लेबल नहीं लगाया जा सकता, मैं और तू भी नहीं कहा जा सकता। संतों ने भांति–भांति से कहने का प्रयास किया है, लेकिन याद रखना, ये सभी शब्द सटीक नहीं हैं। किसी ने कहा कि बस मैं ही मैं हूँ, दूसरा कोई नहीं। ये कहने का एक तरीक़ा। किसी संत ने कहा कि बस प्रभु तू ही तू है, मैं बचा ही नहीं। किसी तीसरे ने कहा कि अब मैं तू हो गया है, तू मैं हो गया है। लेकिन बात बड़ी कॉन्ट्राडिक्ट्री हो गई, समझ नहीं आएगी। किसी ने कहा है न तू है, न मैं है; बस एक शून्यता है, किसी ने कहा है कि बस एक पूर्णता है, भगवत्ता है। ये कहने के अलग–अलग अंदाज़ हैं। ये सब कहकर ये बता रहे हैं कि हम उसके बारे में कुछ कह नहीं पाएंगे जिसके बारे में तुम सुनना चाह रहे हो।

प्यारे मित्रो! आप से निवेदन करूंगा, ध्यान के बारे में, समाधि के बारे में जो मैंने आपसे कहा, मैं ख़ुद ही आपसे कह रहा हूँ कि वह ठीक–ठीक नहीं है, जो कहा जाना चाहिए वह मैं नहीं कह पाया और जो मैंने कहा है वह सटीक, एक्युरट नहीं है। जाना जा सकता है, बताया नहीं जा सकता; ये ऐसी बात है। तो पतंजलि के ऊपर इस व्याख्यानमाला को बस एक निमंत्रण समझना, आमंत्रण समझना।

आओ ध्यान में डूबो, समाधि का स्वाद चखो। तुम सबको आमंत्रित करता हूं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

विभूति पाद पर विहंगम दृष्टि

आज विभूतिपाद के शेष सूत्रों पर विहंगम दृष्टि डालने के पूर्व, एक बार पुनः याद दिला दूं कि महर्षि पतंजलि ने इस योगशास्त्र को चार खंडों में बाँटा है। श्रेष्ठतम साधक के लिए 'समाधिपाद', मध्यम कोटि के साधक के लिए 'साधनपाद', निम्नतम कोटि के साधक के लिए 'विभूतिपाद'... और 'कैवल्यपाद'... तो परिणाम है इस पूरी अंतर्यात्रा का, वह तो निष्कर्ष है... सारभूत निष्कर्ष।

आज हम संक्षेप में विभूतिपाद की चर्चा करेंगे। इसके तीन सूत्रों की चर्चा हम कर चुके हैं धारणा, ध्यान और समाधि।

चौथे सूत्र में पतंजलि कहते हैं इन तीनों का एकत्व संयम कहलाता है। संयम की अद्‌भुत परिभाषा की। सामान्यतः हम संयमी व्यक्ति के बारे में, नैतिक ढंग से सोचते हैं, चरित्र के बारे में सोचते हैं।

पतंजलि कहते हैं– जिसने 'धारणा, ध्यान, समाधि' की त्रिवेणी को साधा और याद रखना! इस त्रिवेणी में गंगा, यमुना, सरस्वती की तरह सभी कुछ महत्त्वपूर्ण है। किसी चीज़ को छोड़ा नहीं जा सकता। हां, अगर फिर भी चुनना हो, तो ओशो ने बीच की चीज़ को चुना, ध्यान को। ध्यान को चुन लो, डंडे को बीच में से पकड़ लो, दोनों छोर... धारणा और समाधि तो हाथ में आ ही जाएंगे। संयम के सिद्ध होने पर पतंजलि पाँचवें सूत्र में कहते हैं–

उच्चतम चेतना का प्रकाश आविर्भूत होता है। वह व्यक्ति जिसने धारणा, ध्यान, समाधि साध लिए, वह प्रकाशित होने लगता है। उसका भीतरी अंधेरा मिटने लगता है।

पतंजलि कहते हैं कि संयम को चरण–दर–चरण स्टैप–बाई–स्टैप संयोजित करना होता है। पतंजलि सड्‌न एनलाइटनमंट की बात नहीं करते।

झेन फ़क़ीरों ने जापान में अचानक बुद्धत्व की बहुत चर्चा की और उसकी वजह से मुश्किल खड़ी हो जाती है। साधक लोभ और लालच से भर जाते हैं।

पतंजलि मनुष्य के मन को ज़्यादा गहराई से समझते हैं। वे कहते हैं– चरण दर चरण, एक–एक क़दम चलना होगा, धीरे–धीरे। इसलिए साधक शुरुआत से ही धैर्य और प्रतीक्षावाला बन जाता है। वह जल्दबाज़ी में नहीं होता, फलासक्ति उसके भीतर पैदा नहीं होती। पतंजलि आगे कहते हैं– प्रथम बताए गए पाँच अंग अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार... बहिरंग (बाहरी अंग) हैं, उनकी तुलना में धारणा, ध्यान, समाधि... सबीज समाधि के अंतरंग हैं। किंतु फिर भी धारणा, ध्यान, समाधि

'निर्बीज समाधि' के बहिरंग ही हैं। रैलटिविटी की बात है। ये तीन अंग सबीज समाधि के तो अंतरंग हैं, किन्तु उसके भी आगे और है यात्रा, उसके हिसाब से फिर भी ये बहिरंग ही हैं। समाधि को ही अंतिम बात न समझ लें, उसके भी और आगे जाना है...।

इसके बाद पतंजलि चार पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हैं– निरोध परिणाम, निरोध संस्कार, समाधि परिणाम और एकाग्रता का परिणाम। शब्द थोड़े कठिन हैं, इनको आसानी से इस प्रकार समझ लें– जैसे–जैसे चित्तवृत्ति शांत होने लगती है, विचारों के बीच में अंतराल प्रगट होने लगता है, छोटे–छोटे गैप दिखाई पड़ने लगते हैं। शनैः शनैः मन और शांत होने लगता है, निर्विचार के अंतराल और बड़े होने लगते हैं। इन्हीं को इन चार शब्दों में व्यक्त किया गया है, क्रमिक रूप से विचारों की गति कम होने लगती है, निर्विचार बढ़ने लगता है।

फिर पतंजलि कहते हैं कि उपरोक्त सूत्रों में कही गई बात ही अन्य तथ्यों पर, इंद्रियों पर और उनमें होने वाले गुणधर्मों पर और उनमें होने वाले रूपांतरण पर भी लागू होती है। ठीक इसी प्रकार इंद्रियों की वासना भी धीरे–धीरे कम होगी। अन्य दुर्गुण धीरे–धीरे इसी प्रकार भीतर से समाप्त होंगे। अन्य सब भाव धीरे–धीरे क्रमशः विकसित होंगे।

पतंजलि क्रमिक साधना में भरोसा करते हैं। कहते हैं उन परिणामों के अतीत, वर्तमान और भावी गुणधर्म; चाहे वे प्रगट हों या अप्रगट, गुप्त हों या सक्रिय; वे सारे गुणधर्म आधार तत्त्वों में प्रविष्ट होते हैं। जैसे फूल का खिलना और मुरझाना इसकी कहानी बीज में ही लिखी होती है।

आज के आधुनिक विज्ञान की भाषा में हम कह सकते हैं, जैसे जैनटिक इंजीनियरिंग वालों ने पता लगा लिया कि जींस में ही सारी कहानी लिखी है कि वह प्राणी या पौधा कैसा होगा, क्या–क्या घटनाएं घटेंगी, सबकुछ पूर्वलिखित है, उसी अनुसार सारी चीज़ें होंगी। इसी प्रकार जिसे हम भूत और भविष्य कह रहे हैं, वास्तव में वह भी भूत और भविष्य नहीं है। शायद आपको पता हो कि हर लड़की जब अपनी माँ के गर्भ से पैदा होती है, तब उसकी स्वयं की ओवरी में, अंडाशय में, वे सारे अंडे मौजूद होते हैं, जो भविष्य में कभी बच्चे बनेंगे।

एक भी नया ओवम, नया अंडा कभी पैदा नहीं होता। हां, हर महीने एक अंडा परिपक्व होता है, तैयार होता है और गर्भाधान के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु सारे के सारे अंडे जन्म से ही हर बच्ची लेकर आती है। उसकी माँ जब जन्मी थी, तब वह अपने भीतर ओवम लेकर ही आई थी और उसकी नानी जब जन्मी थी, तब वह ओवम लेकर आई थी। इसका अर्थ यह हुआ कि आज जो मनुष्य जाति मौजूद है, इन सबका बीज प्रथम व्यक्ति, प्रथम स्त्री के भीतर मौजूद था। नया कुछ भी नहीं है।

पतंजलि कह रहे हैं अतीत, भविष्य और वर्तमान के सारे गुणधर्म चाहे वे प्रगट हों या अप्रगट, वे मूल प्रकृति में अंतर्निविष्ट होते हैं, वे पहले से ही मौजूद होते हैं। क्रमों का भेद, परिणामों में भेद पैदा कर देता है। आधारभूत प्रक्रिया में छिपी अनेकरूपता के द्वारा रूपांतरण में कई परिवर्तन घटित होते हैं।

पतंजलि कह रहे हैं कि सबकुछ नियमानुसार हो रहा है। अगर कुछ बदलता हुआ नज़र आता है, कुछ रूपांतरण हो रहा है, तो वह भी एक नियम से हो रहा है। ये फूल जो खिला है और मुरझाने लगा, इसका भी एक नियम है। बादल आए और बरस गए, इसका भी एक नियम है। गर्मी आई, फिर बरसात आई, इसका भी एक नियम है। सूरज उगा और डूबा इसका भी एक नियम है, सब चीज़ें नियमानुसार हो रही हैं। कोई बाल्या भील वाल्मीकि ऋषि बन जाता है, कोई हत्यारा अचानक महात्मा बन जाता है; यह भी एक नियम के तहत है। चमत्कार जैसी कोई चीज़ नहीं है।

इसके पश्चात महर्षि पतंजलि सूत्र नंबर 16 से लेकर सूत्र नंबर 49 तक तथाकथित चमत्कारों का वर्णन करते हैं। इसलिए नहीं कि चमत्कारों के लोभ में पड़ो, लालच में पड़ो; बल्कि इसलिए कि इनसे सावधान रहो। ये सिद्धियां हैं, जो अध्यात्म के मार्ग पर मिलती हैं; किन्तु ये आध्यात्मिक नहीं हैं, ये मानसिक शक्तियां ही हैं। बड़ी विलक्षण, इसमें कुछ चमत्कार जैसी लग सकती हैं और इसी में ख़तरा है; अहंकार उत्पन्न हो सकता है...।

इन सिद्धियों को मैं केवल मैंशन कर रहा हूं–

अतीत और भविष्य का ज्ञान, शब्दों में छिपा हुआ भावार्थ का ज्ञान, पूर्व जन्म की जानकारी, दूसरों के मन में चल रहे विचारों का ज्ञान, योगी के शरीर का अदृश्य हो जाना, ध्वनि तरंगों का खो जाना, अपनी मृत्यु की घड़ी की पूर्व सूचना, मैत्रीभाव पर संयम करने से कुछ विशेष गुण की सक्षमता, हाथी बल पर संयम करने से हाथी जैसी शक्ति की प्राप्ति, पराभौतिक सूक्ष्म प्रच्छन्न और दुरुस्त तत्त्वों का ज्ञान, सौर ज्ञान, तारे–नक्षत्रों का ज्ञान, चंद्रगति का ज्ञान, अपनी देह रचना का ज्ञान, कंठ पर संयम करने से भूख–प्यास पर नियंत्रण, पूर्व नाड़ी पर नियंत्रण करने से श्वास पर नियंत्रण, उर्ध्वगामी ऊर्जा द्वारा दिव्य चेतनाओं से संपर्क, प्रतिभा का जनम जो कि इंटैलिजैंस और इंट्यूइशन दोनों के पार है, मन की प्रकृति और स्वभाव का ज्ञान, पुरुष का ज्ञान, अतींद्रिय ज्ञान, परकाया प्रवेश की क्षमता, गुरुत्वाकर्षण के पार निर्भार होने की शक्ति, पराभौतिक श्रवण की शक्ति, योगी का आकाशगामी होना, विदेह की अनुभूति और अणिमा, लघिमा, महिमा इत्यादि आठ प्रकार की सिद्धियां और सर्वज्ञता। ये सारी विलक्षण प्रतिभाएं पैदा होती हैं; अध्यात्म के रास्ते में मिलती हैं।

पतंजलि इनका वर्णन इसलिए कर रहे हैं, ताकि चुपचाप इन्हें देखते हुए गुज़र जाओ। इनमें उलझने की ज़रूरत नहीं है। ये आकर्षित करेंगी, लेकिन याद रखना शक्तियां शक्तियां ही हैं, चाहे वे बाहर के जगत की हों या भीतर के जगत की। एक बार ज़रा अपने भीतर सोचना कि तुम्हें शांति चाहिए कि शक्ति चाहिए। दोनों अलग-अलग बातें हैं। इस संबंध में ओशो ने बड़ी सुंदर व्याख्या करते हुए कहा-

जब व्यक्ति को प्रतिभा की पहली-पहली झलक मिलती है, तो वह इतना शक्ति-संपन्न हो जाता है, इतनी विलक्षण ताक़तों से भर जाता है, इतना बलशाली हो जाता है, एक ऐसी घड़ी आती है कि व्यक्ति फिर वहां से पतित हो सकता है। शक्ति उसे विकृत कर सकती है और इस कारण उसका पतन हो जाता है। जब व्यक्ति अपने को इतना अधिक बुद्धिमान समझने लगता है, तो वह अहंकारी हो जाता है। वह उस शक्ति पर सवार होकर मज़ा लेना चाहेगा। फिर वह चमत्कार या इस प्रकार की कुछ मूर्खताएं करने लगेगा। सभी प्रकार के चमत्कार दिखानेवाले लोग एक तरह से मूढ़ और मूर्ख ही होते हैं; चाहे वे कहें कुछ भी। वे कह सकते हैं कि ये चमत्कार लोगों की मदद के लिए कर रहे हैं; लेकिन वे वास्तव में किसी की सहायता नहीं कर रहे; वे स्वयं को ही नुक़सान और क्षति पहुंचा रहे हैं। अपने साथ दूसरों को भी भटका रहे हैं। क्योंकि इन चमत्कारों को दिखाने के चक्कर में, पार जाने के चक्कर में, वे और-और नीचे गिरते जा रहे हैं। अंततः पूरी की पूरी बात सिवाय चालाकी और धूर्तता के कुछ भी नहीं रह जाती।

पतंजलि कहते हैं- ये वे शक्तियां हैं, जो बहिर्मुखी मन के लिए तो सिद्धियों के समान हैं; किन्तु यही समाधि के मार्ग पर बाधाएं हैं। इस वचन को ख़ूब अच्छे से याद रखना- 'समाधि के मार्ग पर बाधाएं हैं।'

पतंजलि आगे कहते हैं विवेक से भी वैराग्य होने पर, कुछ प्रतिभा से भी वैराग्य होने पर, दोषों के बीज नष्ट होते हैं और तब व्यक्ति मुक्ति की तरफ़ अग्रसर होता है। न तो अशुभ से बंधना, न शुभ से।

महावीर ने कहा है पाप लोहे की ज़ंजीर जैसा है, पुण्य सोने की ज़ंजीर जैसा है। लेकिन ज़ंजीर तो ज़ंजीर है, पाप और पुण्य दोनों से मुक्त हो जाना। मूढ़ता और विवेक दोनों से मुक्त हो जाना। आगे पतंजलि और सावधान करते हैं कि देवताओं के द्वारा इन विभूतियों के प्रलोभन दिए जाएंगे, लालच दिया जाएगा और तब लालच में आने पर अथवा इन शक्तियों से लगाव करने पर या घमंड महसूस करने पर पुनः अनिष्ट हो जाएगा अर्थात आध्यात्मिक पतन हो जाएगा। इन शक्तियों से भी मोह न रहने पर बंधन के बीज नष्ट होते हैं और तब व्यक्ति कैवल्य की तरफ़ आगे बढ़ता है।

52वाँ सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण...

वर्तमान क्षण एवं उसके क्रमों में संयम करने से वास्तविक विवेक उत्पन्न होता है। ओशो की मूल शिक्षाओं में से एक है– वर्तमान में जियो, वर्तमान का यह क्षण ही सबकुछ हो। ऐसे जियो कि यही आख़िरी क्षण है। भूत–भविष्य में मन का पेंडुलम डोलता है, वह ठहर जाए मध्य में, वर्तमान में, यही असली अध्यात्म है। जाति, लक्षण व देश से भेद का निश्चय न होने पर, दो तुल्य वस्तुओं का विवेक से, ज्ञान से भेद तय होता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण भेद जो हमें करना है, वह 'स्व' और 'पर' का भेद है। इसी को 'नीर–क्षीर विवेक' कहा गया है। एक काव्यात्मक प्रतीक बन गया हंस का कि हंस मिश्रण में से दूध और पानी को अलग–अलग कर लेता है। इसलिए हम कहते हैं ज्ञानी को परमहंस। और सबसे बड़ी बात क्या है जो हमारे भीतर मिश्रित हो गई है, मेरा मूलतत्त्व, मेरा स्वभाव क्या है और बाहर के प्रभाव क्या हैं, वे सब मिश्रित हो गए हैं। इसको अलग करना सीख जाएं, महावीर ने इसको भेद–विज्ञान कहा है, 'स्व' और 'पर' में भेद करना।

54वाँ सूत्र...

ऐसी प्रभा अपने आप उत्पन्न होती है सब उसके विषय होते हैं, वह किसी का विषय नहीं होती। एक क्षण में ही अतीत, वर्तमान और भविष्य का युगपत ज्ञान घटित होता है। और विभूतिपाद का अंतिम सूत्र– चित्त और पुरुष की शुद्धि समान होने पर कैवल्य घटित होता है।

पुरुष शब्द आत्मा के लिए प्रयोग किया जाता है, पुर में रहने वाला, पुर यानी शहर। जैसे कानपुर, नागपुर, जबलपुर, माधवपुर इत्यादि। यह शरीर एक शहर है, पुर है। अरबों, खरबों कोशिकाओं से निर्मित, जिसके भीतर 'चेतना' निवास कर रही है; वह पुरुष है। पुरुष जब स्वयं को चित्त से, शरीर से, संसार से भिन्न जान लेता है, तब असली मुक्ति फलित होती है। ऐसा समझना– चित्त है लहर जैसा, और पुरुष है सागर जैसा। लहरों में मत उलझ जाना, सागर की खोज में... और–और गहरे चलना।

विभूतिपाद का हिन्दी भावानुवाद–
मन को एकाग्र करना, और ध्येय से बांधना;
विषय में सीमित होना ही, कहलाती है धारणा। (1)
निरंतर विषय की ओर, मन का बहना ध्यान है।
ध्येय की तरफ जब, ध्याता एक–तान है। (2)
ध्यान जब स्वरूप से, शून्यवत हो जाता है।
समाधि में मन–विषय, एकरूप हो जाता है। (3)

शेष विभूति पाद के सूत्र इस प्रकार हैं–

(4) तीनों (धारणा+ध्यान+समाधि) का एकत्रित रूप संयम कहलाता है।

(5) संयम के सिद्ध होने से प्रज्ञा का आलोक यानी उच्चतर चेतना के प्रकाश का आविर्भाव होता है।

(6) संयम का चित्त भूमियों से विनियोग करना चाहिए। संयम को क्रमशः चरण दर चरण संयोजित करना होता है।

(7) पहले बताए योग के पांच बाह्यअंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) की तुलना में ये तीन (धारणा+ध्यान+समाधि) सबीज समाधि के अंतरंग हैं।

(8) फिर भी ये निर्बीज समाधि के बहिरंग ही हैं।

(9) निरोध–परिणाम मन का वह रूपांतरण है जो तिरोहित हो रहे भाव–संस्कार एवं प्रगट हो रहे भाव–विचार के बीच क्षणमात्र को घटित होता है।

(10) निरोध–संस्कार से चित्त की गति शांत प्रवाह वाली हो जाती है।

(11) समाधि–परिणाम वह आंतरिक रूपांतरण है जहां चित्त की अशांत वृत्तियों का क्रमिक ठहराव आता है और एकाग्रता उदित होती है।

(12) एकाग्रता–परिणाम में चित्त का शांत हो रहा विचार शीघ्र ही वैसे ही विचार से प्रतिस्थापित हो जाता है।

(13) उपरोक्त 4 सूत्रों में कही बात से ही मूल तत्त्वों, इंद्रियों की विशेषताओं, उनके गुणधर्मों व अवस्थाओं के रूपांतरण की व्याख्या भी हो जाती है।

(14) उन परिणामों के अतीती, वर्तमान और भावी गुणधर्म– चाहे सुप्त हों, सक्रिय हों या अप्रगट हों; सारे गुणधर्म आधार तत्त्व में अंतर्निष्ठ होते हैं।

(15) क्रमों का भेद परिणाम के भेद का कारण है। आधारभूत प्रक्रिया में छिपी अनेकरूपता द्वारा रूपांतरण में कई परिवर्तन घटित होते हैं।

सूत्र 16 से लेकर 49 तक विभिन्न सिद्धियों के बारे में हैं–

(16) निरोध, समाधि, एकाग्रता– इन तीनों परिणामों (रूपांतरणों) में संयम उपलब्ध करने से भूत और भविष्य का ज्ञान होता है।

(17) मन में शब्द, अर्थ व विचारों के एक साथ चले आने से उलझावपूर्ण स्थिति बनती है। उनके विभाग में संयम करने से पृथकता घटती है, और तब किसी जीव द्वारा उच्चारित ध्वनि के अर्थ का सही बोध होता है।

(18) अतीतगत संस्कारों का साक्षात्कार कर उन्हें पूरी तरह समझने से पूर्वजन्मों का ज्ञान होता है।

(19) दूसरे के चित्त की वृत्तियों का साक्षात्कार करने से दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है।

(20) लेकिन संयम द्वारा आया बोध उन मानसिक तथ्यों का ज्ञान नहीं करा सकता जो दूसरे के चित्त की छवि–प्रतिछवि को आधार देते हैं; क्योंकि वे संयम की विषय–वस्तु नहीं हैं।

(21) अपने शरीर के रूप में संयम करने से रूप की ग्राह्य शक्ति रुक जाती है। इससे द्रष्टा की आँखों और शरीर से उठती प्रकाश किरणों के बीच संबंध टूट जाता है, और तब योगी का शरीर अदृश्य हो जाता है। यही नियम ध्वनि के तिरोहित हो जाने वाली बात को भी स्पष्ट कर देता है।

(22) कर्म दो प्रकार के होते हैं– सक्रिय व निष्क्रिय– इनमें संयम पा लेने के बाद मृत्यु की घड़ी का ज्ञान होता है।

(23) मैत्री या किसी अन्य सहज गुण पर संयम करने से उस विशेष गुण में बड़ी सक्षमता आ जाती है।

(24) हाथी के बल पर संयम करने से हाथी की सी शक्ति प्राप्त होती है।

(25) पराभौतिक मनीषा के प्रकाश पर संयम करने से सूक्ष्म, प्रच्छन्न, व दूरस्थ तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त होता है।

(26) सूर्य पर संयम संपन्न करने से संपूर्ण भुवन का ज्ञान (सौर–ज्ञान) होता है।

(27) चन्द्रमा पर संयम संपन्न करने से तारों–नक्षत्रों की समग्र व्यवस्था का ज्ञान होता है।

(28) ध्रुव पर संयम संपन्न करने से तारों की गतिमयता का ज्ञान होता है।

(29) नाभि चक्र पर संयम संपन्न करने से शरीर की संपूर्ण संरचना का ज्ञान होता है।

(30) कंठकूप पर संयम संपन्न करने से क्षुधा और पिपासा की वृत्ति क्षीण होती हैं।

(31) कूर्म नाड़ी पर संयम संपन्न करने से योगी को पूर्ण स्थिरता घटित होती है।

(32) मूर्धा यानी सिर के शीर्षभाग के नीचे की ज्योति पर संयम संपन्न करने से सिद्धों का दर्शन होता है, यानी उनके अस्तित्व से जुड़ने की क्षमता मिल जाती है।

(33) प्रातिभ ज्ञान यानी प्रतिभा से योगी सबकुछ जान लेता है।

(34) हृदय पर संयम संपन्न करने से चित्त की प्रकृति के प्रति जागरूकता आती है।

(35) चित्त और पुरुष जो अत्यन्त भिन्न हैं, इन दोनों की प्रतीतियों में भेद कर पाने की अयोग्यता से भोग का उदभव होता है। पर–प्रतीति से भिन्न स्व–प्रतीति पर संयम

संपन्न करने से पुरुष–ज्ञान प्राप्त होता है।

(36) उस स्व–संयम के अभ्यास से प्रातिभ यानी अंतर्बोध, श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद एवं घ्राण की उपलब्धि होती है।

1. प्रातिभ–मन में छिपी हुई, अतींद्रिय, दूरस्थ, अतीत और अनागत वस्तुओं को जानने की क्षमता। 2. श्रवण– दिव्य व दूर के शब्द सुनने की योग्यता। 3. वेदना– त्वचा इंद्रिय की दिव्य स्पर्श की क्षमता। 4. आदर्श– नेत्रों की दिव्य प्रकाश देखने की योग्यता। 5. आस्वाद– जीभ की दिव्य रस जानने की क्षमता। 6. घ्राण– नाक की दिव्य सुगंध सूंघने की क्षमता।

(37) ये उपर्युक्त 6 सिद्धियां मन के बाहर होने से प्राप्त होती हैं, ये समाधि में विघ्न हैं, किंतु व्युत्थान में सिद्धियां हैं।

(38) बन्धन के कारण शिथिल होने से तथा संवेदन–ऊर्जा भरी प्रवाहनियों वाला आवागमन–मार्ग जानने से चित्त (सूक्ष्म शरीर) परकाया में प्रवेश कर सकता है।

(39) उदान के जीतने से जल, कीचड़, कांटों, आदि में असंग रहना होता है और उत्क्रांति (ऊर्ध्वगति) होती है। दूसरा अर्थ– उदान ऊर्जा प्रवाहिनी को सिद्ध करने से योगी पृथ्वी से ऊपर उठ पाता है, और किसी आधार व संपर्क के बिना पानी, कीचड़, कांटों, को पार कर लेता है।

(40) समान के जीतने से योगी दीप्तिमान होता है। दूसरा अर्थ– समान ऊर्जा प्रवाहिनी को सिद्ध करने से योगी अपनी जठराग्नि को प्रदीप्त कर सकता है।

(41) कान व आकाश के बीच के संबंध पर संयम लाने से दिव्य (पराभौतिक) श्रवण उपलब्ध होता है।

(42) शरीर और आकाश के संबंध पर संयम लाने से एवं हलकी चीज़ों जैसे रुई आदि से तादात्म्य बना लेने से योगी आकाशगामी हो सकता है।

(43) शरीर से बाहर कल्पना न की हुई (अर्थात वास्तव में अशरीरी बोध की) वृत्ति महाविदेहा कहलाती है, उससे प्रकाश (सत्व गुण) का आवरण क्षय होता है। (शरीर से बाहर कल्पना की हुई वृत्ति कल्पित विदेह धारणा या विदेहावृत्ति कहलाती है, जो साधना के आरंभ में उपयोगी है।)

(44) पांचों भूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, व अर्थवत्त्व में संयम करने से भूतों पर विजय मिलती है।

(45) उस भूतजय से अणिमा आदि आठ सिद्धियों (1.अणिमा, 2.लघिमा, 3. महिमा, 4.प्राप्ति, 5.प्राकाम्य, 6.वशित्व, 7.ईशित्व, 8.यत्रकामावसायित्व) का प्रादुर्भाव और काय–सम्पत् (देह की संपदा) होती है, एवं उन पांचों भूतों के धर्मों से

शरीर में कोई रुकावट नहीं होती है।

(46) रूप, लावण्य, बल, वज्र जैसी बनावट काया की सम्पदा कहलाती है।

(47) ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, व अर्थवत्त्व में संयम करने से इन्द्रिय–जय होता है।

(48) इन्द्रिय–जय से मनोजवित्व (मन जैसे वेग वाला शरीर), विकरणभाव (देह के बिना इंद्रियों द्वारा दूर व बाहर की बात जानना) एवं प्रधानजय (प्रकृति के सभी विकारों पर विजय) होती है।

(49) चित्त और पुरुष का भेद जाननेवाला सारे भावों का मालिक एवं सर्वज्ञ हो जाता है।

(50) विवेक ख्याति से भी वैराग्य होने पर, दोषों के बीज नष्ट होने पर कैवल्य घटता है।

(51) उच्च स्थान वालों (देवताओं) द्वारा आदर (व विभूतियों के प्रलोभन) दिए जाने पर लगाव या घमंड नहीं करना चाहिए वरना पुनः अनिष्ट (उन्नति में बाधा एवं आध्यात्मिक पतन) के प्रसंग का खतरा रहता है। इन शक्तियों से भी मोह न रहने पर बंधन के बीज दग्ध होते हैं, और तब कैवल्य (मुक्ति) घटता है।

(52) वर्तमान क्षण और उसके क्रमों में संयम करने से विवेक–ज्ञान होता है।

(53) जाति, लक्षण, व देश से भेद का निश्चय न होने पर दो तुल्य वस्तुओं का विवेकज–ज्ञान से निश्चय होता है।

(54) बिना निमित्त के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला, सबको विषय करने वाला, सब प्रकार से विषय करने वाला, बिना क्रम के (एक क्षण में– अतीत, वर्तमान व भविष्य का) विवेकज–ज्ञान घटता है।

(55) चित्त और पुरुष की शुद्धि समान होने पर कैवल्य होता है। इति– तीसरा पाद समाप्त।

अंतिम बात मैं कहना चाहूंगा विभूति के बारे में। विभूति के दो अर्थ हैं– एक शक्ति और दूसरा राख। बड़े अद्‌भुत हैं वे ऋषि जिन्होंने यह शब्द गढ़ा। ये सारी शक्तियां, ये चमत्कारिक विलक्षण प्रतिभाएं; ये सब राख के तुल्य हैं। ध्यानी के मार्ग पर इनका कोई मूल्य नहीं है।

इसलिए मैंने 'विभूतिपाद' को केवल संक्षेप में वर्णित किया है। सावधानी के तौर पर यह बताने के लिए कि रास्ते में ये गढ्ढे आएंगे, इनमें गिर मत जाना। इन शक्तियों में उलझ मत जाना। तुम्हें जाना है कैवल्य की ओर।

धन्यवाद। जय ओशो।।

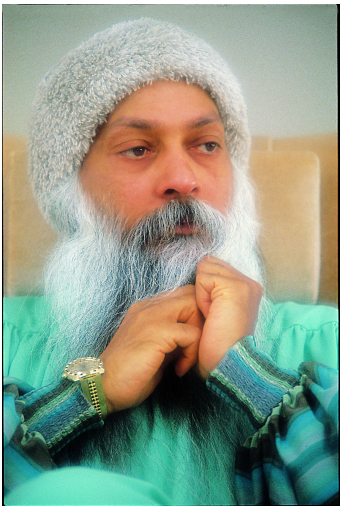

कैवल्य पाद पर विहंगम दृष्टि

पश्चिम के महान दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र ने कहा है– दि अदर इज़ हैल, दूसरा नरक है। बड़ी गहरी बात उसने कही, सारे दुःखों का कारण दूसरा है। लेकिन इनकी बात अधूरी है। भारत के ऋषियों ने इस बात को पूरा कहा है– उन्होंने कहा है स्वयं के एकान्त में डूब जाना स्वर्ग है। सार्त्र इस बात से चूक गया। यह उसी का दूसरा पहलू है। बहुत विद्वान था लेकिन दूसरे पहलू को न देख पाया। आज हम 'कैवल्यपाद' की चर्चा करने जा रहे हैं। 'कैवल्य' का अर्थ है जहां केवल तुम ही रह गए बस। परम एकांत में, परम मौन में दूसरा कोई नहीं बचा। और बड़े मज़े की बात है जहां दूसरा नहीं बचा, वहां तुम भी नहीं बचे। क्योंकि मैं और तू रिलेटिव टर्म हैं, सापेक्ष शब्द हैं। जहां कोई दूसरा ही नहीं वहां तुम भी कहां बचे? उसका नाम है 'कैवल्य', उसका नाम है 'मोक्ष'।

आओ पतंजलि के कैवल्यपाद की संक्षिप्त चर्चा करें, एक विहंगम दृष्टि से देख लें। विस्तार से चर्चा इसलिए नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि इसकी कोई ज़रूरत नहीं। कैवल्यपाद परिणामस्वरूप घटित होता है। आप साधनपाद और समाधिपाद की साधना करें, कैवल्यपाद अपने आप आ जाएगा। उसकी चर्चा की ज़रूरत नहीं है, सिर्फ़ एक विहंगम दृष्टि भर डाल लें।

पतंजलि कहते हैं, विलक्षण सिद्धियां पाँच प्रकार से प्राप्त होती हैं– जन्म से, औषधि से, मंत्र से, तप से और समाधि से। कुछ लोग हैं जन्मजात विलक्षण ताक़त लेकर आते हैं। अभी थोड़े दिन पहले ही डिस्कवरी चैनल में मैं देख रहा था एक बारह साल का बच्चा हिमाचल प्रदेश में पैदा हुआ, चंडीगढ़ में पढ़ता है। 6 साल की उम्र से ही उसने सर्जरी करनी शुरू कर दी और 12 साल की अवस्था में तो वह बड़े–बड़े कैंसर स्पैशिलस्टों से मीटिंग कर रहा है। लंदन में उसकी मीटिंग थी; उसका इंटरव्यू दिखाया जा रहा था। जो

बड़े कैंसर के विशेषज्ञ हैं, उनको वह सलाह दे रहा था कि कैसे कैंसर का ऑपरेशन करना चाहिए, कैसे इलाज करना चाहिए– बारह साल का बच्चा!

कुछ लोग जन्मजात विलक्षण प्रतिभा लेकर आए हैं, लेकिन इसमें भी कोई चमत्कार नहीं है। ये केवल पूर्व की स्मृतियों के कारण ऐसा होता है। पश्चिम का एक बहुत बड़ा संगीतकार चार वर्ष की उम्र में ही महान संगीतकार बन गया था, जगप्रसिद्ध हो गया था। तो जन्म से, औषधि से, मंत्र से, तप से और समाधि से सिद्धियां प्राप्त होती हैं। लेकिन याद रखना ये सिद्धियां अध्यात्म का लक्ष्य नहीं हैं। इस संबंध में पुनः परमगुरु ओशो के वचन पढ़कर सुनाऊँ–

अंतर्विकास के मार्ग में बहुत–सी बाधाएं भी आती हैं। भीतर के पथ पर प्रत्येक क्षण नया–नया अन्वेषण होता है। हरक्षण कुछ न कुछ घटता रहता है, तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते और तुमने उन चीज़ों की मांग भी न की थी। अंतर्यात्रा के रास्ते में अनेक भेंटें रास्ते में मिलती हैं, लेकिन परमात्मा को वही उपलब्ध होता है, जो इन भेंटों को वापिस परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देता है। यदि उन भेंटों को तुम पकड़ने लगे, तो तुम्हारा विकास रुक जाएगा और पतन शुरू हो जाएगा।

पतंजलि कहते हैं अगर तुम्हें समाधि की आकांक्षा है, तुम्हें परम शांति, परम मौन, परम सत्य चाहिए; तो किसी भी तरह की शक्ति से, उपलब्धि से जुड़ाव मत बनाना। फिर चाहे वह इस लोक की हो या उस लोक की, मनोवैज्ञानिक हो या परामनोवैज्ञानिक हो, बौद्धिक हो या अंतर्बोधयुक्त हो; कुछ भी हो, किसी भी तरह की शक्ति के मोह में मत पड़ना। उसे परमात्मा के चरणों में समर्पित करते चले जाना और बहुत कुछ घटेगा, तुम तो बस उसे प्रभु के चरणों में चढ़ाए चले जाना। जब व्यक्ति सबकुछ प्रभु के चरणों में चढ़ा देता है, यहां तक कि स्वयं को भी उसके चरणों में चढ़ा देता है, तब परमात्मा अवतरित होता है। जब सभी कुछ परमात्मा के चरणों में चढ़ा दिया गया, उसी परम को वापिस सौंप दिया गया, तो फिर परमात्मा अंतिम भेंट की तरह, अंतिम उपहारस्वरूप स्वयं चला आता है। परमात्मा अंतिम उपहार है, अंतिम भेंट है। इस सावधानी को स्मरण रखना।

आगे पतंजलि कहते हैं– गुणों का एक प्रकार से दूसरे प्रकार में रूपांतरण भी प्राकृतिक संभावनाओं के कारण होता है। कई बार हमें विलक्षण चीज़ें दिखाई पड़ती हैं। कोई लड़की की तरह पैदा हुई थी और बड़ी होकर वह लड़का बन गई। लेकिन इसमें भी प्राकृतिक संभावनाएं थीं। यह भी कोई विचित्र और चमत्कारिक बात नहीं है। उसके हार्मोन्स में, उसके ग्लैंड्स में कुछ संभावना छिपी थी इस प्रकार होने की।

पतंजलि कहते हैं, यह सब प्राकृतिक संभावनाओं के नियामानुसार ही होता है, चमत्कार जैसी कोई चीज़ नहीं है। वे कहते हैं, निमित्त (एक्सक्यूज़) कारण नहीं है। बड़ा महत्वपूर्ण वचन है। अक्सर हम अपने जीवन में बहुत से दुःख इसलिए झेलते हैं, हम निमित्त को कारण समझते हैं। एक आदमी ने मेरा अपमान कर दिया और मैं क्रोधित हो गया। मैं

समझता हूँ कि यह व्यक्ति ही मुझे क्रोध दिलाने का कारण है। जबकि वास्तविकता यह है, क्रोध मेरे भीतर पहले से ही मौजूद था। यह व्यक्ति तो उसे प्रगट करने का केवल निमित्त, संयोगमात्र है।

मुझे याद आती है एक घटना, एक पश्चिम का आदमी भारतभूमि पर आया। वह जिस देश से आया था, वहां केला नहीं होता था। यहां पहली बार उसने केले का फल देखा। एक सब्जी की दुकान से उसने केला खरीदा, पूछा कि ये क्या है? उन्होंने कहा इसको केला कहते हैं। उसने पूछा इसे कैसे खाया जाता है? सब्जी बेचनेवाले ने बताया कि इसका छिलका उतार देना और भीतर का जो है, उसको खा लेना, छिलका फेंक देना। वह आदमी ट्रेन से यात्रा करने जा रहा था, केले अपने साथ लिए। रास्ते में उसे भूख लगी, उसने केला बाहर निकाला, उसका छिलका छीला और जैसे ही उसने केला खाया संयोग की बात उसी समय ट्रेन एक बोगदे में घुसी, एक सुरंग में घुसी। जैसे ही टनल में ट्रेन घुसी, अंधेरा छा गया। वह व्यक्ति ज़ोर से चिल्लाया कि अरे! बड़ा ख़तरनाक फल है, इसको चखते ही मैं अंधा हो गया हूं।

निमित्त को हम कारण समझ लेते हैं।

पतंजलि चेता रहे हैं– वे कह रहे हैं कि खिड़की खोलने से सूर्य की किरणें भीतर आ जाती हैं, तुम ये मत सोच लेना कि खिड़की खोलने से सूरज उगा। और रुकावट हटा देने से पानी बह जाता है, चट्टान हटा देने से झरना फूट जाता है, यह भी निमित्त है झरने का कारण नहीं है, पानी तो पहले से मौजूद था। सब चीज़ें निसर्ग के अनुसार हो रही हैं। अस्मिता के कारण मन जन्मता है। ऐसा समझना– चेतना का सागर है, अस्मिता की हवा है और चित्त की तरंगें हैं। जब अस्मिता की हवा चलती है तो चित्त की तरंगें पैदा होती हैं।

मन विविध प्रकार के होते हैं, किन्तु एक मौलिक मन से नियंत्रित होते हैं। यहां मौलिक मन से तात्पर्य है– सागर का। और विविध प्रकार के मनों से तात्पर्य है– तरंगों का। इस हर तरंग के पीछे सागर ही है और वही सबका नियंत्रण कर रहा है। ध्यान से उत्पन्न मौलिक मन कामना रहित होता है, निष्काम होता है। योग के कर्म निष्काम होने के कारण न तो शुक्ल कहे जाते, न कृष्ण। जबकि सामान्य जनों के कर्म या तो पापयुक्त होते हैं या पुण्ययुक्त होते हैं अथवा मिश्रित होते हैं। तीन प्रकार के कर्म सामान्य जनों के, लेकिन योगी इस परिभाषा में नहीं आते; क्योंकि वे कामना रहित कर्म कर रहे हैं। उनके कर्म सहज हैं, ऊपर से देखने में बहुत भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। महावीर क़दम फूंक–फूंक कर रखते हैं कि चींटी पर भी पैर न पड़ जाए, इतना अहिंसा का ख़्याल और कृष्ण कहते हैं अर्जुन से कि मज़े से युद्ध करो कोई मरता ही नहीं। दोनों अमृत तत्त्व को जानते हैं, महावीर भी और कृष्ण भी। दोनों के कर्म बहुत भिन्न दिखाई पड़ेंगे। लेकिन दोनों की अंतरात्मा एक–सी है, दोनों के ऊपर कर्म करने का कोई बंधन नहीं है।

पाप और पुण्य मिश्रित होते हैं, यह धारणा भी बड़ी अद्‌भुत है। पाप और पुण्य

अलग–अलग नहीं हो सकते, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उदाहरण के लिए यदि तुम कहते हो कि दान देना पुण्य है और चोरी करना पाप है, तो मुझे बताओ बिना चोरी किए दान दोगे कैसे? जो आदमी आज धनी है वही तो दान कर पाएगा और धन उसने इकट्ठा कैसे किया, शोषण करके। शोषण करना पाप है और दान देना पुण्य है। लेकिन दोनों चीज़ें आपस में जुड़ी हुई हैं। एक के बिना दूसरा हो ही नहीं सकता, इसलिए मिश्रित प्रकार।

आगे कहते हैं पतंजलि कि अनुकूल परिस्थितियां पाकर ये तीनों प्रकार के कर्म, फल की वासनाओं में अंकुरित होने लगते हैं।

हो सकता है एक योगी गुफ़ा में बैठा रहा हो सालों और सोचता हो कि ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया; लेकिन जब वह अपने जंगल, पहाड़ को छोड़कर नीचे शहर में उतरता है, तो स्थिति को देखकर उसके भीतर फिर वासना उत्पन्न हो सकती है। अनुकूल परिस्थितियां पाकर ये बीज फिर अंकुरित हो जाते हैं। भले ही जाति, देश, काल में अंतर पड़ जाए, किन्तु स्मृति और संसार में जड़ें जमाए हुए कर्मों के बीज में भेद नहीं पड़ता, वे ठीक मौसम की प्रतीक्षा करते हैं।

ठण्डे देशों में, मैंने देखा अमेरिका में जहां बर्फ गिरती थी, चार महीने बर्फ जमी रहती थी, वहां गेहूं के बीज बर्फ गिरने के पहले ही बो दिए जाते हैं। फिर बर्फ गिरती है, चार महीने वह बीज दबे रहते हैं छोटे–छोटे अंकुर बनकर। चार महीने बाद जब बर्फ पिघलती है, तब वे अंकुर फिर बढ़ना शुरू कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार हमारे चित्त में कर्म बीज संस्कार के रूप में मौजूद हैं, अवसर पाकर वे पुनः पुष्पित, पल्लवित होने लगते हैं।

जीवेष्णा सदा से है, अतः वासना भी अनादि है। जीवेष्णा ही सब चीज़ों का कारण है, जीने की चाहत। कार्य–कारण के सिद्धांतानुसार वासनाओं का कारण मिटने पर ही, वासनाएं नष्ट हो सकती हैं। ये कारण क्या हैं– जीने की वासना, जीवेष्णा। भूत व भविष्य वर्तमान में मौजूद रहते हैं, किन्तु उनका एहसास नहीं होता; क्योंकि उनका तल भिन्न–भिन्न होता है।

एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घोषणा, 'भूत और भविष्य भी वर्तमान ही हैं, किन्तु तल भिन्न है।' ऐसा समझें कि एक आदमी वृक्ष के ऊपर बैठा है और हम वृक्ष के नीचे बैठे हैं। ऊपर से आदमी कहता है कि मैं देख रहा हूँ एक बैलगाड़ी आ रही है। हम नीचे बैठे हैं हमें तो कोई बैलगाड़ी नहीं दिखाई पड़ रही। हम कहते हैं– हमें तो दिखाई नहीं पड़ रही। फिर दस मिनट बाद बैलगाड़ी हमारे सामने से गुज़रती है। अब बैलगाड़ी हमारे लिए वर्तमान बनी। उस पेड़ पर बैठे आदमी को हम कहेंगे अद्भुत! तुम तो बहुत बड़े भविष्यद्रष्टा हो। लेकिन वास्तव में तो वह भविष्यद्रष्टा नहीं है, उसका वर्तमान थोड़ा ज़्यादा विराट था, फैला हुआ। हम नीचे के तल में हैं, हमारा वर्तमान संकरा है, संकीर्ण है। फिर बैलगाड़ी हमारे सामने से गुज़र गई, हमारे लिए पास्ट, अतीत का हिस्सा हो गई। लेकिन वह ऊपर बैठा हुआ आदमी कहता है कि बैलगाड़ी अभी भी मेरे सामने से जा रही है। हम कहते हैं अद्भुत! तुम तो अतीत को भी

देख पाते हो। अतः केवल तल की भिन्नता है, हम जिसको वर्तमान, भविष्य और भूत में बांट रहे हैं, ऐसा कोई विभाजन वास्तव में नहीं है। चेतना किस तल पर है, उसपर निर्भर करेगा।

चाहे प्रकट हों या अप्रकट– भूत, भविष्य, वर्तमान में– सत्व, रजस, तमस; ये तीनों गुण उपस्थित रहते हैं और इन तीनों की मात्रा में अनुपात के भेद से प्रत्येक जीव अद्वितीय हो जाता है। ओशो के जीवन में हम इन तीनों तत्त्वों का अलग–अलग प्रभाव देखते हैं।

एक समय था ओशो इतने आलसी थे, इतने तामसी थे कि लेटे हुए हैं और सांप उनके ऊपर से गुज़र गया और वे हिल भी नहीं रहे और सांप को हटा भी नहीं रहे। जिस हॉस्टल में वे रहे, दरवाज़े के पास ही उन्होंने अपना बिस्तर लगा रखा था; ताकि कमरे में भीतर चलना ही न पड़े। चार क़दम भी कौन चले! जो किताबें पढ़नी हैं, वह बिस्तर में ही तकिए के पास रखी हैं। दोस्त आते थे कमरे में कभी साल–छह महीने में झाड़ू लगा देते थे, वरना दो इंच मोटी धूल की परत जम गई। क्योंकि उनको कमरे में भीतर कभी जाना ही नहीं। एम.ए. फाइनल की परीक्षा के समय प्रोफेसर ख़ुद आए हैं, पकड़कर कार में बिठाकर ले गए; क्योंकि उनको पता है कि ये आलसीराम ख़ुद परीक्षा देने आने वाले नहीं। इतने तमस में जिये।

फिर उनके जीवन में रजस का फ़ेज़ आया, दूसरा फ़ेज़। फिर इतने कर्मठ इतने ऊर्जावान हो गए कि महीने में 15 दिन तो ट्रेन में रहते थे। सुबह मुंबई में प्रवचन दे रहे हैं, दोपहर को अहमदाबाद में किसी क्लब की मीटिंग है, रात को दिल्ली में ध्यान प्रयोग करा रहे हैं। फिर इतने ऊर्जावान, इतने कर्मठ हो गए।

इसके बाद फिर तीसरा फ़ेज़ आया, सत्व का फ़ेज़– सन 1974 के बाद जहां तमस और रजस संतुलित हो जाते हैं और जीवन के अंतिम फ़ेज़ में, 1981 के बाद गुणातीत अवस्था में चले गए। अर्थात् तीनों गुणों के पार हो गए।

इन तीनों गुणों की मात्रा का अनुपात बदल जाने पर व्यक्तित्व में भेद पड़ जाता है। एक ही वस्तु अलग–अलग चित्तों को भिन्न–भिन्न भासती है; क्योंकि चित्त रंगीन चश्मे जैसा काम करते हैं। किसी वस्तु की सत्ता चित्त पर निर्भर नहीं है, उसका ज्ञात होना या अज्ञात होना इस बात पर निर्भर है कि चित्त उसके रंग में प्रतिबिंबित हुआ या नहीं हुआ। चित्त की वृत्तियां उसके मालिक 'शुद्ध चैतन्य' को सदा ज्ञात होती हैं, मन स्वयं को नहीं जानता; वह केवल दृश्य है और कभी द्रष्टा नहीं हो सकता। विषय और चित्त का युगपत ज्ञान, सायमल्टेनियस नॉलेज संभव नहीं।

अगर हम ऐसा मानें कि एक परिवर्तनशील मन दूसरे मन को जानता है, दूसरा मन तीसरे मन को जानता है, तो फिर एक इनफिनिट रिग्रेस का दोष पैदा हो जाएगा। इसलिए पतंजलि कहते हैं कि यह भ्रम ठीक नहीं है, यह विभ्रम की अवस्था है। मन ही मन को नहीं जानता। चैतन्य, मन को जानता है। निष्क्रिय चेतना स्वप्रतिबिंबित होकर स्वयं को जानती

है, दृश्य या द्रष्टा से रंगा हुआ चित्त दर्पण के समान उन्हीं जैसा भासने लगता है।

अनगिनत वासनाओं से चित्रित मन संसार में उपयोग हेतु हमें मिला है, ऐसा जानने से 'आत्मज्ञान' की भावना उदित होती है और व्यक्ति विवेक उन्मुख होने लगता है, मुक्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। फिर भी विवेक ज्ञान के बीच-बीच में जो अंतराल, छिद्र आते हैं, उनमें से मन की पुरानी प्रवृत्तियां और संस्कार बारंबार प्रवेश कर जाते हैं। वे फिर कर्म और क्लेश का कारण बनते हैं, उनसे मुक्ति पाने का उपाय है जागरूकता...। विवेक ज्ञान से भी विरक्ति होने पर गहन समाधि लगती है, जिसे पतंजलि धर्मभेद समाधि कहते हैं। फिर कर्म और क्लेशों से निवृत्ति होती है। जब सारे दुःख मिट गए, तब मन को जानने योग्य कुछ बचा ही नहीं, मन का काम पूरा हुआ।

याद रखना- जानना और दुःख पर्यायवाची हैं। संस्कृत में विद् धातु से वेद बना, विद्वान बना। विद्वान यानी जाननेवाला, वेद यानी ज्ञान की किताबें और वेद से ही वेदना बना। दुःख ही जाना जाता है, आनंद की संवेदना नहीं होती।

पतंजलि कहते हैं जब सारी वेदनाएं समाप्त हो गईं, तो उनको जाननेवाले मन का काम ही ख़तम हुआ और इसलिए मन तिरोहित हो जाता है। मन का काम समाप्त होने पर तीनों गुणों के परिणाम भी धीरे-धीरे ख़तम होने लगते हैं।

क्षण-प्रतिक्षण या सूक्ष्म सिलसिला या क्रम चलता रहता है। इसका पूरा प्रभाव कुछ समय के बाद स्थूल रूप से प्रगट होता है। जैसे हमने ज़मीन में बीज दबा दिया, उसमें से अंकुर निकल रहा है; लेकिन अभी हमें पता नहीं चल रहा। हो सकता है महीनाभर बाद अंकुर बाहर आए, तब हमें पता चलेगा कि कुछ हो रहा है। लेकिन पिछले एक महीने में भी कुछ-कुछ हो रहा था, अंधेरे में, भूमिगत... अंडरग्राउंड; उसका हमें ज्ञान नहीं था। ठीक इसी प्रकार ध्यान और जागरूकता की साधना करते हुए भीतर-भीतर कुछ पल्लवित होता है, लेकिन पता तब चलता है जब बात बाह्य रूप से प्रगट हो जाती है।

एक उदाहरण से पतंजलि समझाते हैं, जैसे वस्त्र का जीर्ण होना। आपके घर में कपड़े रखे हुए हैं, वे कपड़े धीरे-धीरे पुराने पड़ते जा रहे हैं; एक दिन ऐसा आएगा कि छूने से ही फट जाएंगे। यह घटना किस दिन घटी? रोज़-रोज़ प्रतिक्षण घट रही थी।

त्रिगुणों का अपने कारण में लीन हो जाना, अर्थात लहरों का सागर में वापिस बैठ जाना ही 'कैवल्य' है।

इति 'कैवल्यपाद' समाप्त। महर्षि पतंजलि को नमन और प्यारे सद्गुरु को बारंबार नमन!

धन्यवाद। जय ओशो।।

प्रथम प्रश्नोत्तर

प्रश्न– ओशो की दृष्टि में वास्तविक धर्म क्या है? वह कौन–सी नाव है जो भवसागर पार करा सकती है?

इससे पहले कि हम समझें वास्तविक धर्म क्या है; समझ लें कि झूठे, मिथ्या धर्म क्या हैं? मुख्य रूप से मैं सात हिस्सों में बांटकर समझाना चाहूंगा।

1. मूर्तिपूजा वाले धर्म– मूर्ति पत्थर की नाव है। आप भली–भांति समझ सकते हैं। यह भवसागर पार नहीं करा सकती।

2. शास्त्रज्ञान के धर्म– अध्ययन, चिंतन–मनन, तर्क–वितर्क, शास्त्रार्थ, वाद–विवाद। बातचीत ही बातचीत। शास्त्रों को मैं कहता हूं– काग़ज़ की नाव। यह भी भवसागर पार नहीं करा सकती।

3. बाह्य आडंबर वाले धर्म– किसी ने कोई ख़ास रंग के वस्त्र पहन लिए, माला पहन ली, किसी ने क्रॉस गले में लटका लिया है, कोई जनेऊ पहने है, तिलक टीका लगाए है; कुछ ख़ास बाह्य आडंबर उन्होंने कर लिया। कोई राख लपेटे हैं शरीर में, कोई नग्न रह रहा है; यह सब बाह्य आडंबर है। यह नाव भी पार नहीं करा सकती। यह लोग अभिनय में कुशल हैं। बस अच्छे अभिनेता हैं, धार्मिक नहीं।

4. कर्म–कांड वाले धर्म– शरीर की कोई क्रियाएं पकड़ लीं। पूजा–पाठ, तीर्थ–स्नान, स्वास्थ्य आदि के लिए योग की साधना कर रहे हैं। आसन, प्राणायाम कर रहे हैं। इन्हें भी धर्म से कोई लेना–देना नहीं। इन्हें स्वास्थ्य चाहिए। कह रहे हैं कि हम योग साध रहे हैं। योग तो है चित्तवृत्ति का निरोध और इन्हें तो पाना है शारीरिक स्वास्थ्य। ठीक इसी प्रकार अन्य सभी शरीर की क्रियाएं उस पार न ले जा सकेंगी। उस पार तो साक्षी चैतन्य की साधना ले जाएगी, द्रष्टा की साधना ले जाएगी जैसा कि पतंजलि कहते हैं।

5. अंधविश्वासवाले धर्म– तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, ज्योतिष, भविष्य में उत्सुकता, चमत्कार, प्रार्थनाएं करनेवाले धर्म। वे मानते हैं कि कहीं स्वर्ग में ईश्वर बैठा है जो उनकी प्रार्थनाएं सुनेगा। यह सब अंधविश्वासों पर, ब्लाइंड बिलीफ़्स पर आधारित है। यह नाव मान्यता की नाव है। पार जाने का तो सवाल ही नहीं।

6. अहंकार की नाव– कुछ लोग सेवा कर रहे हैं, समाज–सेवक बन गए, दान दे रहे हैं, मंदिर बनवा रहे हैं, घर–गृहस्थी का त्याग कर दिया, जंगलों में रह रहे हैं,

त्याग के बाद तपश्चर्या कर रहे हैं, अपने आप को कष्ट दे रहे हैं। यह सारे के सारे अहंकारी लोग हैं। और साधना में तो अहंकार को गलाना है। यह साधना के नाम पर अपने अहंकार को और मज़बूत कर रहे हैं। यह नाव पहले ही क़दम पर डूब जाएगी।

7. पिछली सदी में विकसित हो रहे, विशेषकर पश्चिम में धर्म का रिप्लेसमैंट कर रहे हैं– मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण। पादरी की जगह वह साइकॉलजिस्ट ले रहा है। यह भी पार न ले जा सकेगा। जैसा मैंने कहा तन की क्रियाएं उस पार न ले जा सकेंगी; मन का विश्लेषण भी उस पार न ले जा सकेगा; क्योंकि तन और मन दोनों के पार है वह द्रष्टा चैतन्य। उसकी साधना उस पार ले जाएगी।

तो यह सात प्रकार के मिथ्या धर्म। अब आप समझ सकते हैं ओशो की दृष्टि में वास्तविक धर्म क्या है? वह है प्रेम और होश की साधना। योग, झेन, ताओ, सूफ़ी, भक्ति, हसीद, बाउल पंथ– ये सब धर्म के वास्तविक रूप हैं।

प्रश्न– एक साधक को अपने घर में योग साधना करते हुए कौन कौन–सी विशेष बातों का ख़्याल रखना चाहिए जिनसे सहयोग मिल सके?

सबसे पहले समय ऐसा चुनें जब आप ऊर्जा से भरे हुए हैं, स्फूर्ति से भरे हुए हैं। उदाहरण के लिए सुबह उठने के बाद एक अच्छा समय है। ताज़े हैं, शक्ति से भरे हैं, अभी नींद नहीं घेरेगी, वरन कुछ साधक ध्यान के नाम पर भी सो जाते हैं। नींद के तुरंत बाद यदि आपको कोई चाय, कॉफ़ी की आदत है, तो चाय, कॉफ़ी पीकर ध्यान करें। उससे भी जागरण में सहयोग मिलता है। स्नान करके कोई ख़ास रंग के वस्त्र पहनकर, अपनी पसंद का रंग हो, ढीले वस्त्र हों, विशेषकर पेट पर कोई टाइट चीज़ न हो, बैल्ट न पहनें। गहरी सांस का प्रयोग उसमें सहयोगी होगा। आपका कमरा शोर–रहित हो, टेलीफोन, कॉलबेल, इत्यादि उस समय बंद करके रखें। परिवार के लोगों का सहयोग प्राप्त करें। यदि आपको कोई विशेष ख़ुशबू या इत्र पसंद है, फूल पसंद हैं, अपने ध्यान–कक्ष में उनका प्रयोग करें। कोई विशेष संगीत जो आपको पसंद है उसका प्रयोग करें। ध्यान में डूबने से पहले थोड़ी देर अपनी ऊर्जा को जगा लें; नृत्य के द्वारा, व्यायाम के द्वारा, प्राणायाम के द्वारा; तो ज़्यादा अच्छा होगा। आसन ऐसा चुनें जो स्थिर हो, सुखदायी हो कंफर्टेबल पोस्चर में ध्यान करने बैठें। गुरु का चित्र आपके ध्यान–कक्ष में लगा हो। बाकी ध्यान–कक्ष बिल्कुल ख़ाली हो तो बहुत ही अच्छा।

तो यह छोटी–छोटी बातें हैं जो साधना में सहयोगी हो सकती हैं। सबसे

महत्त्वपूर्ण है– आपकी भावदशा। अगर हो सके तो घर में एक कमरा केवल साधना के लिए ही रखें। उस कमरे में जाते ही आपके भाव बदल जाएंगे, वह कमरा आपके लिए मंदिर बन जाएगा।

प्रश्न– वैराग्य या अनासक्ति आरंभ से साधनी पड़ेगी या अंतिम फल है?

दोनों बातें सही हैं। शुरुआत से भी साधनी पड़ेगी। निश्चित रूप से वह बीज रूप होगी और अंत में जाकर जो अनासक्ति खिलेगी वह फूल रूप होगी। अगर तुम बीज नहीं बोओगे तो फूल कहां से आएंगे? ऐसा मत पूछना कि अगर हम बीज बोएंगे तो फिर फूल कैसे खिलेंगे? बीज बोने पड़ेंगे, तभी फूल खिलेंगे। सीधे–सीधे फूल की उम्मीद नहीं की जा सकती। अनासक्ति एक दिन फूल रूप में आएगी; लेकिन आरंभ से ही बीज बोना होगा। खाद, पानी डालना होगा, सुरक्षा करनी होगी।

प्रश्न– क्या साधने से नया संस्कार निर्मित नहीं हो जाएगा, फिर उससे मुक्ति कैसे होगी?

हम ऑलरेडी कंडिशंड हैं, हमारा मन पहले से ही संस्कारों से भरा है। इन संस्कारों को मिटाने के लिए एक नया संस्कार ज़रूरी है। साधना वही ऋतम्भरा प्रज्ञा का संस्कार पैदा करती है। ऐसा समझें बहुत सारे कांटे आपके पैर में गड़े हुए हैं; एक नए कांटे से इन सारे कांटों को निकाल देते हैं। अंत में फिर उस कांटे को भी फेंकना। वही पतंजलि कह रहे हैं– ऋतम्भरा प्रज्ञा का संस्कार भी अंत में जला देना है; तब निर्बीज समाधि घटित होती है।

प्रश्न– क्या पतंजलि के सूत्रों के बाद में विद्वानों ने कुछ जोड़ा या घटाया है?

नहीं। पतंजलि के योग सूत्र बिल्कुल शुद्ध हैं। जैसे लिखे गए थे वैसे ही हैं। क्या कारण है इस शुद्धिकरण का? इनमें कोई कहानी नहीं है, कोई नाटक नहीं है, कोई मनोरंजन नहीं है। इसलिए जनमानस को, भीड़ को इसमें कभी कोई उत्सुकता ही नहीं होती। भीड़ की उत्सुकता बहुत क्षुद्र बातों में होती है। अब समझें आइंस्टाइन का फॉर्मूला। वह फॉर्मूला शुद्ध है। जनमानस को उसमें कोई उत्सुकता नहीं है। ये सारे फॉर्मूले, पतंजलि के सूत्र, बीजरूप हैं। इन्हें किसी गुरु के माध्यम से ही विस्तार से समझा जा सकता है। इसलिए इसमें कोई जोड़–घटा संभव नहीं।

गुरजिएफ जब अपनी किताब लिखता था, तो इस बात का ख़्याल रखता था कि सामान्य जन की समझ में ही न आए। वह रोज़ एक पेज लिखता, अपने शिष्यों

को बुलाकर उनको सुनाता, और किसी के चेहरे पर अगर ऐसा भाव आए कि वह समझ गया है; तो गुरजिएफ उस पेज को फाड़ कर फेंक देता। जब वह देखता बात किसी की समझ में नहीं आई, उस पेज को वह संभालता। इस प्रकार उसने एक मोटी किताब लिखी एक हज़ार पेज की। कई साल लगे लिखने में। गुरजिएफ की किताब को तो कोई पढ़ने के लिए भी राज़ी न होगा उसमें हेर–फेर कौन करेगा, घटाएगा–बढ़ाएगा कौन?

एक अंतिम बात और कहना चाहता हूं। योग की जीवंत परंपरा भी मौजूद है। केवल किताब पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। योग का साधक गुरु अपने शिष्य को कहता है, फिर वह शिष्य जब स्वयं गुरु बन जाता है, आगे नई पीढ़ी में अपने शिष्य को कहता है... तो गुरु से शिष्य को हस्तांतरण, एक जीवंत परंपरा में होता आया है। और उस परंपरा से यह बात साबित है कि अभी पतंजलि योगसूत्र के नाम पर जो चल रहा है वह किताब प्रामाणिक है। ज्यों कि त्यों है कुछ घटाया–बढ़ाया नहीं गया है। आपने पूछा है विद्वानों ने कुछ जोड़ा क्या? विद्वानों को ऐसी चीज़ों में उत्सुकता ही नहीं होती। योगसूत्र साधकों के लिए हैं; विद्वानों के लिए नहीं।

प्रश्न– निद्रा और स्वप्न में द्रष्टाभाव कैसे साधें?

यह तो ऐसे हुआ जैसे कोई पूछे कि समुद्र में छलांग मारकर तैरना कैसे सीखें? मैं आपसे निवेदन करता हूं कृपया पहले घुटने–घुटने पानी में तैरना सीखें। फिर कमर–कमर पानी में जाएं। जब आत्मविश्वास और बढ़ जाए तब गरदन तक के पानी में जाएं। जब तैरना सीख जाएंगे, तब हो सकता है एक दिन सागर में भी तैर पाएं। लेकिन शुरुआत स्विमिंग पूल से या उथली नदी से करें। अभी जागरण में ही नहीं जागे हैं, दिन में ही सचेत नहीं है, नींद में कैसे जागेंगे और स्वप्न में कैसे जागेंगे? पहले जागने में तो जागो। फिर एक दिन संभव है नींद में भी जागना हो पाएगा।

प्रश्न– सात चक्रों व सात शरीरों व कुंडलिनी साधना के संबंध में सविस्तार समझाने की अनुकंपा करें।

यह विषय तो अपने आपमें एक विस्तृत विषय है। संक्षेप में तो नहीं समझा पाऊंगा। सिर्फ आपको नाम बता देता हूं। सात चक्र जो हैं, पहला चक्र है मूलाधार। दूसरा कहलाता है स्वाधिष्ठान। तीसरे का नाम है मणिपुर। चौथा है अनाहत चक्र। पांचवाँ विशुद्ध चक्र। छठवां आज्ञा और सातवां सहस्त्रार चक्र। प्रत्येक चक्र से संबंधित एक–एक शरीर है। इस संबंध में अगर आप विस्तार से समझना चाहते हैं तो मैं निवेदन करूंगा ओशो की प्रवचनमाला 'जिन खोजा तिन पाइयां' सुनें या पढ़ें।

प्रत्येक योग साधक के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण किताब है यह!

प्रश्न– योग साधना में गुरु–शिष्य संबंध अनिवार्य हैं क्या? क्या परमगुरु ओशो एवं ओशोधारा के सद्गुरु त्रिविर इसके पक्ष में हैं?

निश्चित रूप से; वरन हम यहां गुरु का कार्य ही क्यों करते? जब आपने ओशो के नाम के साथ परमगुरु जोड़ा है, प्रश्न से ही स्पष्ट है कि हम गुरु–शिष्य परंपरा के पक्ष में हैं। धर्म की सारी गुह्य साधनाएं गुरु–शिष्य के माध्यम से ही संभव है। लेकिन दो प्रकार के मूढ़ लोग हैं। एक वे जो कहते हैं कि हम नाव में सवार ही न होंगे और दूसरे वे हैं जो उस पार पहुंचने के बाद भी कहते हैं कि हम नाव से न उतरेंगे। दोनों प्रकार की मूढ़ताओं से बचना। गुरु एक नाव है। ओशो की एक किताब का शीर्षक है 'आई एम द गेट'– गुरु–शिष्य संबंध के ऊपर एक अत्यंत महत्वपूर्ण किताब! इसे पढ़ना, सुनना।

जीज़स क्राइस्ट का वचन है यह 'आई एम द गेट' मैं एक द्वार हूं। गुरु को मंदिर का द्वार समझना। जाना है परमात्मा तक; लेकिन इस द्वार से गुज़रकर ही जाना होगा। कुछ लोग हैं जो कहते हैं हम द्वार में प्रवेश ही न करेंगे और कुछ लोग हैं जो द्वार की चौखट पकड़कर रुक जाते हैं। ये दोनों ही नासमझ हैं।

ओशो कहते हैं मैं एक द्वार हूं; आओ और मुझसे गुज़रो। मुझे पकड़कर मत बैठ जाना। सिख अपने मंदिर को गुरुद्वारा कहते हैं न? बड़ा प्यारा है यह शब्द। गुरु एक द्वार है, एक दरवाज़ा है। और तुम पूछते हो कि क्या यह अनिवार्य है? गुरु का अर्थ क्या होता है? गुरु का अर्थ जिससे कुछ पूछना पड़े, जिससे कुछ मार्गदर्शन लेना पड़े, जिससे कुछ सीखना पड़े। अब इस प्रश्न का उत्तर भी तुम स्वयं न खोज सके, यह प्रश्न भी पूछना पड़ा, इसी से सिद्ध हो गया कि गुरु कितना अनिवार्य है? हां, हज़ारों साल में कोई एकाध व्यक्ति ऐसा होता है जिसे गुरु की ज़रूरत नहीं पड़ती। लेकिन वह अपवाद है, नियम नहीं।

प्रश्न– पतंजलि पर आपके प्रवचन सुनकर सार सूत्र मेरी पकड़ में आया कि जागना है। लेकिन मूर्च्छा का क्या अर्थ है? क्या मैं आध्यात्मिक रूप से सोया हूं?

नींद का पता भी तब चलता है जब तुम जाग जाओ। अभी तो समझाना बड़ा मुश्किल है कि तुम मूर्च्छा में हो। कोई सोया हुआ आदमी नींद में पूछे कि क्या मैं सोया हुआ हूं? नींद में बड़बड़ाए कैसे उसे समझाओगे? इसलिए मैं समझाने में न

जाऊंगा, सिद्ध करने में न जाऊंगा। मैं तो तुम्हें हिलाऊंगा, डुलाऊंगा, झकझोरूंगा, जगाऊंगा। जब तुम जाग जाओगे तभी समझ पाओगे कि अभी तक तुम सोये हुए थे। जैसे साधारण नींद के समाप्त होने पर ही पता चलता है कि तुम नींद में थे। सपना देखते हुए तुम्हें पता नहीं चलता कि तुम सपने में हो। उस समय तो वही यथार्थ जैसा लगता है।

शंकराचार्य जब कहते हैं कि यह जगत माया है तुम सुन भी लेते हो मगर बात तुम्हें हजम नहीं होती। तुम्हें तो वह यथार्थ जैसा भासता है। जिस दिन तुम जागोगे, बुद्धत्व घटित होगा, परम ज्ञान घटित होगा; उस दिन पता चलेगा अभी तक तुम जिसे ज्ञान समझ रहे थे; वह सब मिथ्या था, भ्रम था, सपना था, माया था। तो योग की साधना में डूबो; धीरे–धीरे जागो।

प्रश्न– योग एवं तंत्र की बुनियादी दृष्टि में क्या अंतर है?

छोटा–सा भेद है। साध्य दोनों का एक है। योग कहता है– होशपूर्वक वैराग्य में जियो। तंत्र कहता है होशपूर्वक भोग में जियो। यहां थोड़ा–सा फ़र्क़ है। भक्ति और तंत्र कह रहे हैं राग में होश जोड़ दो। योग कह रहा है विराग में होश जोड़ दो। मुख्य साधना होश की है, साक्षीभाव की है। योग का भी वही सार है, तंत्र का भी वही सार है। समस्त साधनाओं का सार सूत्र एक ही है वह है– जागरण की साधना। साध्य एक ही है। साधन में शुरुआत में थोड़ा–सा भेद है– मंज़िल एक ही है।

ऐसा समझो अगर हम एवरेस्ट पर चढ़ने लगें भारत की तरफ़ से तो उत्तर की तरफ़ मुंह कर के चढ़ना पड़ेगा और अगर चीन से एवरेस्ट की चढ़ाई की तो दक्षिण की तरफ़ मुंह करके चढ़ना पड़ेगा। उन दो पर्वतारोहियों की दिशा भिन्न होगी लेकिन जैसे–जैसे एवरेस्ट के नज़दीक वे पहुंचने लगेंगे; वे निकट आने लगेंगे, उनकी दूरी कम होने लगेगी। परमात्मा को पाकर चाहे वह तांत्रिक हों, चाहे योगी, चाहे भक्त; अंततः वे एक ही बिंदु पर पहुंच जाते हैं।

धन्यवाद। जय ओशो।।

अंतिम प्रश्नोत्तर

प्रश्न– महर्षि पतंजलि ने हज़ारों साल पहले जिन यम–नियमों की चर्चा की थी। क्या आज के रुग्ण समय में भी इनकी उपयोगिता है?

यह सवाल तो ऐसा ही हुआ कि रुग्ण समय में क्या औषधि की उपयोगिता है? मैं कहूंगा... और भी ज़्यादा। पतंजलि के समय में जितनी ज़रूरत थी उससे भी ज़्यादा ज़रूरत आज है। अहिंसा और प्रेम क्या कभी ग़ैर उपयोगी हो सकता है? सत्य की क़ीमत क्या कभी कम हो सकती है? अगर तुम कहते हो कि आज का रुग्ण समय है तब मैं कहूंगा आज औषधि की और भी ज़्यादा आवश्यकता है। योग आज इतना समसामयिक है, जितना पहले नहीं था। पहले से भी ज़्यादा आज ज़रूरत है।

प्रश्न– अलग–अलग संप्रदायों में विभिन्न धार्मिक साधनाएं प्रचलित हैं। ऐसी कौन–सी मुख्य बात है जो सब में कॉमन है? क्या सीधा उसी को नहीं साधा जा सकता?

अभी मैं जो कह रहा था ठीक वही बात थोड़े और विस्तार से समझ लें। कल मैंने चर्चा की थी सात चक्रों की। प्रत्येक चक्र से संबंधित एक साधना हो सकती है। मूलाधार चक्र से संबंधित है; कर्म योग। स्वाधिष्ठान चक्र से संबंधित है; तंत्र की साधना। मणिपुर चक्र से संबंधित है; हठ योग। अनाहत अथवा हृदय चक्र से संबंधित है; भक्ति। विशुद्ध चक्र से संबंधित है; ज्ञान योग। आज्ञा चक्र से संबंधित है; राजयोग और सहस्त्रार से संबंधित है– सांख्य योग।

मुझे याद आता है 'महागीता' नामक चौथे प्रवचन में ओशो ने एक बहुत सुंदर उपमा देकर यह बात समझाई है। उन्होंने कहा– समझो, तुम किसी वैद्य के पास गए। वैद्यराज ने जड़ी–बूटी पीसकर पाउडर बनाकर दी और कहा कि इसको शहद के साथ खा लेना। आप कहने लगे कि नहीं मैं शहद नहीं लेता; मैं शुद्ध शाकाहारी हूं। वैद्य ने कहा, कोई बात नहीं; दूध में मिलाकर पी जाना। आप कहने लगे कि क्षमा करें घर में गाय–भैंस नहीं है। दूध का इंतज़ाम नहीं है... कुछ और बताएं। वैद्य ने कहा पानी में घोलकर पी जाना। असली बात है दवा तुम्हारे पेट में पहुंचे। कोई व्यक्ति यह भी पूछ सकता है कि क्या मैं दवा को सीधा ही खा जाऊं? यह पानी, दूध, शहद यह माध्यम ज़रूरी है क्या? वैद्य कहेगा कोई बात नहीं अगर सीधी दवा खा सको तो और भी सुंदर। किसी माध्यम की ज़रूरत नहीं है।

बस, ऐसा ही समझें... यह जो सात प्रकार की साधनाएं हैं, इनका सार सूत्र एक ही है वह है– साक्षीभाव, द्रष्टाभाव, होश, जागरण– जो आप नाम देना चाहें दे लें। उसी की साधना करनी है। हां, वह जागरण रूखा–सूखा नहीं, प्रेमल जागरण है; एक लविंग अवेयरनैस। उसी को साधना है। तुम्हें शहद पसंद है, तो शहद के साथ दवाई चाट लेना; दूध पसंद है, तो दूध में घोलकर पी लेना। अब कोई व्यक्ति कर्मठ क़िस्म का है, तो हम उसे कहेंगे; ठीक, तुम कर्मयोगी बन जाओ। कोई कहेगा मैं भावुक क़िस्म का हूं। उसे कहेंगे, भक्ति में डूबो। कोई कहे मैं विचारक प्रवृत्ति का हूं; तुम ज्ञानयोग को साधो। तो अपने–अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करेगा; सात प्रकार के लोग दुनिया में है। फिर आपने पूछा– क्या सीधा उसी को नहीं साधा जा सकता है? साधा जा सकता है, उसी का नाम है सांख्य योग।

प्रश्न– ध्यान करते हुए किन कठिनाइयों से साधक को गुज़रना पड़ता है? इनसे बचने के उपाय भी बताने का कष्ट करें।

पतंजलि ने वर्णन किया हैः रोग, निर्जीवता, संशय यानी डांवाडोलपन, प्रमाद यानी लापरवाही, आलस्य, विषयासक्ति, भ्रांति, दुर्बलता और अस्थिरता– ये बाधाएं चित्त में विक्षेप लाती हैं। जो समाधि में विघ्न पैदा करते हैं। और... दूसरे ढंग से समझने की कोशिश करें। वाचाल मन, भीतर विचारों की भीड़, निरंतर बकवास चल रही है; एक आंतरिक वार्तालाप चल रहा है; यह बाधा है। भय; जो व्यक्ति डरा हुआ है वह ध्यान में न डूब पाएगा, समाधि उसे मृत्यु जैसी लगेगी। ग़लत धारणाएं और अंधविश्वास से भरा हुआ चित्त, साधना के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। साहस की कमी जिसके भीतर है उससे भी साधना नहीं होती। कोई व्यक्ति बहुत अपेक्षाओं, एक्सपेक्टेशंस से भरा है, उसका मन कामनाग्रस्त है; वह भी साधना में न डूब पाएगा। जहां–जहां वासना है, वहां संसार खड़ा हो जाएगा। चाहे वह कामना धर्म की, ईश्वर की, शांति की ही क्यों न हो। पुनरावृत्ति की आकांक्षा भी एक बाधा है। कभी ध्यान में गहरी झलक मिल जाती है, समाधि की गहराई मिल जाती है; फिर तुरंत कामना पैदा हो जाती है कि फिर वैसा हो। यह बाधाएं हैं। इन बाधाओं से सावधान रहना!

प्रश्न– अपने स्वर्गीय पूज्य पिता जी के निर्देशानुसार साधु–संग, सदाचरण, नैतिकता, सादा जीवन उच्च विचार, समाज–सेवा आदि श्रेष्ठ सिद्धांतों का आजीवन पालन करने की कोशिश की है; किंतु कलियुग में सच्चे साधु नहीं मिलते,

सत्संग कहां से करूं? आज के समय में भ्रष्टाचारी को मेवा मिलता है, सेवा से मेवा भी नहीं प्राप्त होता। मन की शांति नहीं प्राप्त हो रही है। मुझसे क्या भूल हो रही है? कृपया बताएं।

आप बहुत ही मूर्च्छित प्रकार के व्यक्ति होंगे जो अपनी भूल भी नहीं पकड़ पा रहे हैं। पतंजलि का सूत्र याद दिलाता हूं– सुखी से मैत्री, दुखी पे करुणा, पुण्यवान से खुश होना; मन की शांति चाहिए तो, पापी की उपेक्षा करना। ये चार बातें साध लो। मैत्रीभाव। किसके प्रति? सुखी व्यक्तियों के प्रति। जो प्रसन्न हैं, आनंदित हैं उनके प्रति। दूसरा करुणाभाव– दुखी के प्रति। तुम करुणा नहीं कर रहे हो; तुम जिसको करुणा कह रहे हो, समाज सेवा कह रहे हो, वह अहंकार का खेल है। वह करुणा नहीं है। तीसरा– पुण्यवान से खुश होना। तुम तो मानते ही नहीं कि कोई पुण्यवान है। तुम कह रहे हो कलयुग में कहां साधु–संगत करें?

मन की शांति चाहिए तो पापी की उपेक्षा करना। तुम उपेक्षा नहीं कर रहे तुम तो उनका वर्णन कर रहे हो कि भ्रष्टाचार का युग आ गया, कलयुग आ गया। तुम बड़े निंदाभाव से भरे हो। इस सूत्र को याद रखना यह चार बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक साधक को ख़्याल रखना होगा।

जीज़स क्राइस्ट ने कहा है 'रिज़िस्ट नाट इवल' बुराई का प्रतिरोध तक मत करना। वह ध्यान देने योग्य भी नहीं है। उपेक्षा का अर्थ है– इंडिफ्रंस। कहीं कुछ ग़लत हो रहा है; तुम्हें उसपर ध्यान देने की ज़रूरत भी नहीं। तुम कोई समाज सुधारक न बनो, तुमने कोई ठेका लिया है? तुम अपने आत्म रूपांतरण में लगो, समाज को बदलने में नहीं। ओशो ने धर्म और राजनीति की बड़ी संक्षिप्त परिभाषा की है। राजनीति अर्थात् दूसरों को बदलने की कोशिश और धर्म यानी आत्म रूपांतरण का प्रयास। अपने भीतर ग़ौर से देखो तुम्हें किसमें उत्सुकता है? राजनीति में जाओगे तो मन की शांति नहीं मिलेगी। अपनी दिशा बदलो।

प्रश्न– पतंजलि द्वारा प्रस्तावित पांच नियम समझाते हुए आपने तप का अभिप्राय सरलता से समझाया, यह बात कुछ सिर के ऊपर से निकल गई। कृपया पुनः समझाएं।

तप का अर्थ ओशो की भाषा में सरलता है, सहजता है, स्वाभाविक जीवन है। आत्मपीड़ा नहीं, आत्महिंसा नहीं, स्वयं को सताना नहीं। पतंजलि के पूरे शास्त्र में आया कहीं स्वयं को सताने का वर्णन? कहीं भी नहीं आया। फिर तपस्या के नाम पर जो लोग कर रहे हैं वे क्या कर रहे हैं? वे अहंकार का खेल खेल रहे हैं। पहले दूसरों को

सताते थे अब वह ख़ुद को सताने लगे। नहीं, तप का अर्थ पीड़ा देना नहीं है; न दूसरे को, न स्वयं को। पतंजलि ने तो कहा न– 'स्थिरं सुखम आसनम्।'

सुखपूर्वक स्थिर हो जाना आसन है। लेकिन आसन के नाम पर योगाचार्य क्या–क्या सिखा रहे हैं? कोई सिखा रहा है शीर्षासन, कोई सिखा रहा है मयूरासन और भगवान जाने कहां–कहां की सर्कस की तरकीबें। ऐसे–ऐसे विचित्र आसन जो कोई कर ही न सके। यह तो पीड़ादायी चीज़ें होंगी। नहीं, यह तप नहीं है। पतंजलि की परिभाषा में तो यह आसन ही नहीं है। पूरे हिंदुस्तान के जितने भी योग शिक्षक हैं, वे आसन के नाम पर जो सिखा रहे हैं, पतंजलि की परिभाषा में वह फ़िट तक नहीं होता। पतंजलि को ग़ौर से समझना और तब तुम समझोगे सहजता, सरलता ही तप है।

प्रश्न– क्या बिना योग वग़ैरह साधे भी आनंद प्राप्ति संभव है? मेरी उम्र 72 साल हो गई किंतु परिवार में ज़रा भी शांति नहीं रहती है। अब तो शरीर भी साथ नहीं देगा, कैसे साधना करूं?

परिवार में शांति सीधे–सीधे नहीं ला सकते। मन की शांति लानी होगी। और निश्चित रूप से तुम पूछते हो क्या बिना योग साधे मिल सकती है? अगर मिल सकती, तो इन बहत्तर साल में मिल गई होती। क्या इतनी–सी बात तुम्हें समझ में नहीं आती? बहत्तर साल में नहीं मिली, तो अब कितना और इंतज़ार करना है? दो–चार साल का और जीवन होगा। कम से कम अब तो जागो। अभी भी तुम बहाना खोज रहे हो। कह रहे हो अब तो शरीर भी साथ नहीं देगा क्या करूं? योग साधना में शरीर की साधना नहीं करनी है। चैतन्यता की साधना करनी है, द्रष्टाभाव की, साक्षीभाव की साधना करनी है। अब तुम्हें अरजेंसी फ़ील होनी चाहिए। जवानी में तो तुम कह सकते थे कि अभी बहुत समय है बाद में देखेंगे। अब तो बहत्तर साल के हो गए। कल का भरोसा नहीं; आज रात सोकर कल पक्का उठोगे? कितने लोग हार्ट–अटैक से मर जाते हैं, पता भी नहीं चलता। अब तो तुम्हें और भी अरजेंसी महसूस होनी चाहिए जो भी करने योग्य है अभी करना है, आज ही करना है। तो उम्र का बहाना न बनाओ, अपने आलस्य को न छिपाओ। अपनी नासमझी को आड़े न आने दो। अगर शांति चाहते हो तो पहले तो आंतरिक शांति उपलब्ध करनी है, परिवार की शांति अपने आप आएगी। आए न आए उसकी फ़िक्र छोड़ो। तुम्हारे विदा होने का समय आया; यह परिवार चलता रहेगा बाद में भी। तुम अपने भीतर शांति की तलाश करो।

प्रश्न– क्या समाधि की इतनी सारी अवस्थाओं से गुज़रने

में बहुत लंबा समय नहीं लगेगा? क्या गुरुकृपा से जल्दी बात नहीं बन सकती?

तुम पर निर्भर है कितनी अवस्थाओं से गुज़रो? पतंजलि ने तो लंबा–चौड़ा वर्णन किया है सवितर्क और निर्वितर्क समाधि; सविचार और निर्विचार समाधि; संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि; सबीज और निर्बीज समाधि। हां, तुम पैसेंजर ट्रेन से जाओ तो बहुत–से स्टेशन पड़ेंगे। अगर तुम एक्सप्रेस ट्रेन से जाओ, तो कम स्टेशन पड़ेंगे। सुपरफास्ट से जाओ– तो जंक्शन टु जंक्शन– छोटे स्टेशनों का पता ही न चलेगा। और अगर तुम हवाई जहाज़ से यात्रा करो तो कोई स्टेशन नहीं सीधे ही छलांग लग सकती है; बिना कहीं रुके। तो तुम पर निर्भर करता है तुम कितनी अवस्थाओं से गुज़रोगे। अगर तुम तीव्र गति से, त्वरा से चलते हो तो किसी अवस्था से गुज़रने की ज़रूरत नहीं, सीधे मंज़िल पर पहुंच सकते हो।

और पूछा है क्या गुरुकृपा से जल्दी बात नहीं बनती? बन सकती है; लेकिन याद रखना! वह विधि समर्पण की है, संकल्प की नहीं। योग साधना मुख्य रूप से संकल्प की विधि है। पतंजलि भी समर्पण की चर्चा करते हैं। ओशो ने अपने एक फोटोग्राफ पर एक वचन लिखा था कि समर्पण करो और मैं तुम्हें रूपांतरित करूंगा; यह मेरा आश्वासन है। निश्चित रूप से गुरु के प्रति समर्पण भी अपने आप में पर्याप्त है। किसी अन्य साधना की ज़रूरत, किन्हीं अवस्थाओं से गुज़रने की ज़रूरत न पड़ेगी। लेकिन शिष्यत्व के नाम पर अपने आलस्य को मत छुपाना। अगर पूर्ण समर्पण का भाव नहीं है, तो फिर साधना में लगो। फिर पैसेंजर ट्रेन से चलो।

अब अपनी तरफ से आखिरी बात–

प्यारे जिज्ञासुओ, साधको, गंतव्य की ओर चल पड़े राहियो! आपने पतंजलि के सूत्रों पर ओशो की दृष्टि समझी। समझ मात्र नक्शे जैसी है। नक्शा रखकर घर में न बैठे रहना, यात्रा करनी होगी। राह पर चलने में नक्शे का सदुपयोग करना। पाकशास्त्र पढ़कर व्यंजन पकाने की याद रखना। कुकिंग बुक मात्र अध्ययन के लिए नहीं होती। ठीक ऐसे ही ध्यान का यह अनूठा शास्त्र है। समझना, फिर करना। और समझना, फिर और करना। समझ परिपक्व हो तो ध्यान की गहराई बढ़ती है। ध्यान का स्वाद मिले तो समझ और विकसित होती है। दोनों का संयोग, सोने पर सुहागा हो जाता है। इस अद्‌भुत अंतर्यात्रा के लिए निमंत्रण व मंगल कामनाओं सहित–

बहुत–बहुत धन्यवाद।

जय पतंजलि। जय ओशो।।